पार्श्वनाथ विद्यापीठ ग्रन्थमाला : ६१

प्रधान सम्पादक
प्रो० सागरमल जैन

2751

हिन्दी जैन साहित्य का बृहद् इतिहास

खण्ड-३ (मरु गुर्जर) : १८वीं शती

लेखक
डॉ० शितिकण्ठ मिश्र

पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पार्श्वनाथ विद्यापीठ ग्रन्थमाला-९१

प्रधान सम्पादक
डा० सागरमल जैन

हिन्दी जैन साहित्य का बृहद् इतिहास

खण्ड—३ : १८वीं शती

विक्रम संवत् १७०१ से १८०० तक

(मरुगुर्जर)

लेखक :
डा० शितिकण्ठ मिश्र

पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी-५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुस्तक : हिन्दी जैन साहित्य का बृहद् इतिहास – खण्ड-३

प्रकाशक : पार्श्वनाथ विद्यापीठ
आई. टी. आई. रोड, करौंदी, वाराणसी
दूरभाष : ३१६५२१, ३१८०४६

प्रथम संस्करण : १९९७

मूल्य : २०० रुपये

मुद्रक : डिवाइन प्रिन्टर्स
सोनारपुरा, वाराणसी फोन : ३२१३७१

Book : Hindi Jaina Sahitya Ka Brihad Itihasa–Vol. III

Publisher : Parsvanatha Vidyapitha
ITI Road, Karaundi, Varanasi-221005
Phone : 316521, 318046

Printed at : Divine Printers
Sonarpura, Varanasi Phone : 321371

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ सहयोग

श्री मुम्बई जैन युवक संघ, मुम्बई के जैन नागरिकों की प्रबुद्ध संस्था है जो अपनी समाज-सेवा सम्बन्धी गतिविधियों तथा अपने विद्यासत्रों एवं पर्युषण व्याख्यानमाला के आयोजनों के कारण लोक-विश्रुत है। 'प्रबुद्ध-जीवन' नामक पाक्षिक पत्र, श्री म० मो० शाहा सार्वजनिक वाचनालय और दीपचन्द त्रिभुवनदास पुस्तक प्रकाशन ट्रस्ट के माध्यम से यह संस्था जैन विद्या के क्षेत्र में अनुपम योगदान कर रही है। इसके साथ ही अस्थि सारवार केन्द्र, नेत्रयज्ञ आदि प्रवृत्तियों द्वारा मानव समाज की सेवा में भी लगी हुई है। इस संस्था के द्वारा पार्श्वनाथ विद्यापीठ को अपने प्रकाशन कार्यक्रमों में सदैव सहयोग प्राप्त होता रहा है। अब तक इसके आर्थिक सहयोग से पार्श्वनाथ विद्यापीठ के द्वारा सात ग्रन्थों का प्रकाशन हो चुका है। 'हिन्दी जैन साहित्य का बृहद् इतिहास' के प्रथम-द्वितीय खण्ड के समान ही इस तृतीय खण्ड के प्रकाशन में भी उन्होंने हमें बीस हजार रुपये का आर्थिक सहयोग प्रदान किया है। इस हेतु हम श्री रमणलाल चि० शाह के और श्री मुम्बई जैन युवक संघ के अन्य ट्रस्टियों के विशेष आभारी हैं और यह आशा करते हैं कि भविष्य में भी उनके सहयोग द्वारा हम जैन विद्या की सेवा करते रहेंगे।

भूपेन्द्रनाथ जैन
सचिव
पार्श्वनाथ विद्यापीठ
वाराणसी-५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशकीय

हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में जैन लेखकों का अवदान महत्वपूर्ण है। हिन्दी भाषा के आदिकाल से लेकर वर्तमान युग तक जैन मुनि एवं लेखक हिन्दी साहित्य के भण्डार को समृद्ध करते रहे हैं। जैन साहित्य के बृहद् इतिहास की निर्माण योजना के अन्तर्गत पूर्व में हमने प्राकृत और संस्कृत जैन साहित्य से सम्बन्धित छः भाग प्रकाशित किये। इसी प्रकार तमिल, मराठी और कन्नड़साहित्य का भी एक भाग उस योजना के ७ वें भाग के रूप में प्रकाशित किया गया है। अपभ्रंश साहित्य के इतिहास का लेखन कुछ व्यवधानों के कारण पूर्ण नहीं हो सका है। उस हेतु हम प्रयत्नशील भी हैं। क्योंकि हिन्दी जैन साहित्य विशाल है, अतः उसे स्वतन्त्र खण्डों में प्रकाशित किया जायेगा। हिन्दी जैन साहित्य के इतिहास की दृष्टि से हमने पूर्व में आदि काल से लेकर सोलहवीं शती (विक्रम) तक का लगभग १४०० पृष्ठों के प्रथम-द्वितीय खण्ड प्रकाशित किया है। इसके लेखक हिन्दी के वरिष्ठ प्राध्यापक डा० शितिकण्ठ मिश्र हैं। प्रस्तुत कृति उसी योजना का अग्रिम चरण है। इसमें हमने अठारहवीं शताब्दी (विक्रम संवत् १७०१–१८०० तक) के हिन्दी जैन कवियों और लेखकों को समाहित किया है।

डा० शितिकण्ठ मिश्र द्वारा तैयार किये गये इस खण्ड में मुख्य रूप से श्री मोहनलाल दलीचन्द देसाई और अगर चन्द नाहटा की कृतियों को आधार बनाया है, किन्तु इसके अतिरिक्त भी डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल आदि की कृतियों से भी उन्हें जो सामग्री प्राप्त हो सकी, उसे इसमें समाहित करने का प्रयत्न किया है। जैन परम्परा से विशेष परिचित न होने पर भी उन्होंने हिन्दी जैन साहित्य के बृहद् इतिहास के खण्डों के लेखन का दायित्व स्वीकार किया है इसके लिए हम निश्चय ही डॉ० शितिकण्ठ मिश्र के आभारी हैं।

अठारहवीं शताब्दी (विक्रम संवत् १७०१ से १८०० तक) के जैन कवियों और लेखकों और उनकी कृतियों की संख्या इतनी अधिक है कि सीमित पृष्ठों में उसे समाहित करना एक कठिन कार्य था, फिर भी जो भी सूचना प्राप्त हो सकी उन्हें संक्षिप्त करके समाहित किया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गया है। यद्यपि इस शती की भी सभी कृतियाँ अथवा उनके लेखकों के संबंध में सूचनाएँ पूर्णतः उपलब्ध नहीं हैं। अभी तो अनेक जैन भण्डारों का सर्वेक्षण ही नहीं हो पाया है। अतः यह दावा करना मिथ्या होगा कि इस भाग में हमने सत्रहवीं शताब्दी के सभी जैन कवियों और लेखकों को समाहित कर लिया, फिर भी उपलब्ध स्रोतों से जो भी सामग्री मिल सकी है उसे विद्वान् लेखक ने सम्प्रदाय निरपेक्ष भाव से समाहित करने का प्रयत्न किया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के मुद्रण का कार्य डिवाइन प्रिंटर्स के श्री महेशकुमार जी ने सम्पन्न किया है। प्रस्तुत ग्रन्थ की प्रूफ रीडिंग एवं कार्ड बनाने से लेकर प्रेस तक के सभी कार्यों का सम्पादन डा० असीम कुमार मिश्र, शोध-सहायक पार्श्वनाथ विद्यापीठ ने अत्यन्त कुशलता से किया है, एतदर्थ हम उनके आभारी हैं। आज हमें हिन्दी विद्वत् जगत् को यह कृति समर्पित करते हुए अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है। हम यह अपेक्षा रखते हैं कि वे अपने बहुमूल्य सुझावों से हमें अवगत करायें ताकि अगले खण्डों को और अधिक प्रामाणिक एवं पूर्ण बनाया जा सके।

भूपेन्द्र नाथ जैन
मानद् मन्त्री
पार्श्वनाथ विद्यापीठ
वाराणसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लेखकीय निवेदन

'हिन्दी जैन साहित्य का बृहद् इतिहास के तृतीय खण्ड में १८ वीं शताब्दी (विक्रम) के हिन्दी जैन साहित्यकारों और उनकी सुलभ रचनाओं का विवरण दिया गया है। १७वीं और १८वीं शताब्दी साहित्य-सृजन की दृष्टि से हिन्दी जैन साहित्य का स्वर्णयुग माना जाता है। इसलिए इनमें रचनाओं और रचनाकारों का बाहुल्य स्वाभाविक है। वे केवल संख्या में ही अधिक नहीं हैं बल्कि अनेक साहित्यिक गुणों की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं। सत्रहवीं शती के कई महापुरुष १८वीं में भी सृजनशील रहे और कुछ नये रचनाकार भी सामने आये। इसलिए विवरण-संबंधी ग्रंथ का कलेवर बढ़ गया। इसमें दो-तीन कवियों का दुबारा उल्लेख इसलिए हो गया है क्योंकि पाण्डुलिपि तैयार हो जाने के पश्चात् उनके संबंध में कुछ महत्वपूर्ण सूचनायें मिली जिन्हें बढ़ाना जरूरी लगा। कलेवर बढ़ने के भय से ही अज्ञात कवियों की रचनाओं और कुछ अज्ञात गद्यात्मक कृतियों— टीका, टब्बा, बालावबोध इत्यादि का विवरण छोड़ना पड़ा है: ब्रह्मनाथू और नाथू ब्रह्मचारी एक ही कवि हैं, वह भूल से छप गया।

मैंने तो इसकी रचना जगह-जगह से गोचरी करके तैयार की है। जिन महानुभावों से ज्ञानभिक्षा प्राप्त की गई है उनकी रचनाओं का उल्लेख सहायक संदर्भ पुस्तक सूची में कर दिया गया है: मैं उन महानुभावों का ऋणी हूँ, आभारी हूँ। प्रारंभ में मुझे इस ग्रंथ के निर्माण के लिए दिशानिर्देश मिला था कि मैं इस संबंध में श्री मोहनलाल दलीचंद देसाई और श्री अगरचंद नाहटा को प्रमुख रूप से मार्गदर्शक मानकर चलूँ: मैंने भरसक वैसा ही किया है। मोहनलाल दलीचंद देसाई के ग्रंथ 'जैन गुर्जर कवियों' से मुझे सर्वाधिक सहायता मिली जो पुस्तक के पन्ने-पन्ने पर अंकित है। मैं उनकी दिवंगत आत्मा के प्रति श्रद्धावनत हूँ और उनके नवीन संस्करण के संपादक श्री जयंत कोठारी का भी आभार स्वीकार करता हूँ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुस्तक की पाण्डुलिपि सन् १९९५ में मैंने छपने के लिए दे दी थी; कुछ विलंब हुआ पर पुस्तक अच्छी छपी। 'देर आयत दुरुस्त आयत'। मैं संस्थान के संबंधित अधिकारियों को एतदर्थ धन्यवाद देता हूँ। लेखन-प्रकाशन के हर स्तर पर जैसी प्रेरणा निदेशक प्रो० सागरमल से मिलती रही उसके लिए मैं उनका हृदय से आभार स्वीकार करता हूँ।

अस्वस्थ हो जाने के कारण विषयसूची, संदर्भ ग्रंथसूची और पुस्तक तथा लेखक नामानुक्रमणिका तैयार करने में मैं असमर्थ हो रहा था किन्तु आत्मज असीम कुमार ने यह सारा शुष्क किन्तु अत्यावश्यक कार्य बड़ी तत्परता से पूरा किया; एतदर्थ मैं उसे शुभाशीष देता हूँ और यह पुस्तक मैं अपने दिवंगत पूज्य पिता पं० शत्रुघ्न मिश्र के चरणों में श्रद्धांजलि स्वरूप समर्पित करता हूँ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सहायक संदर्भ ग्रंथसूची

१. श्री गोविन्द सखाराम देसाई —मराठों का नवीन इतिहास, प्रथम सं०

२. श्री सत्यकेतु विद्यालंकार —भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास, प्रथम सं०

३. श्री अगरचंद नाहटा — जिनहर्ष ग्रंथावली (शार्दूल रि० ३०० बीकानेर)

४. श्री कामताप्रसाद जैन — हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास

५. श्री डॉ० प्रेमसागर जैन — हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि

६. अगरचंद नाहटा और (अन्य संपादक) — राजस्थान का जैन साहित्य

७. श्री डॉ० लालचंद जैन — जैन कवियों के ब्रजभाषा प्रबंध काव्यों का अध्ययन

८. श्री डॉ. कस्तूरचंद कासलीवाल और अनूपचंद (सं०) — राजस्थान के जैन शास्त्रभंडारों की ग्रंथसूची भाग ३ और ४

९. श्री मोहनलाल दलीचंद देसाई — जैन गुर्जर कवियो भाग २, ३ प्र० सं० और भाग ४ और ५ न० सं०

१०. श्री अगरचंद नाहटा —परंपरा

११. श्री भोगीलाल सांडेसरा —प्राचीन फागुसंग्रह

१२. श्री उत्तमचंद कोठारी — ग्रंथसूची (अप्रकाशित)

१३. श्री डॉ० हरिप्रसाद गजानन शुक्ल — गुर्जर जैन कवियों की हिन्दी कविता को देन

१४. श्री डॉ० कुँवर चंद्रप्रकाश — भुज-कच्छ ब्रजभाषा पाठशाला

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५.	अगरचंद नाहटा	—ऐतिहासिक जैन काव्यसंग्रह
१६.	श्री विजयधर्म सूरि	—ऐ० जैन राससंग्रह
१७.	श्री डॉ० अम्बादास नागर	—गुजरात के हिन्दी गौरव ग्रंथ
१८.	श्री नाथूराम प्रेमी	—हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास
१९.	श्री मिश्रबन्धु	—मिश्रबन्धु-विनोद
२०.	श्री नेमिनाथ शास्त्री	—हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन
२१.	श्री डाँ० शितिकंठ मिश्र	—हिन्दी जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, खंड १
२२.	श्री मुनि जिनविजय (सं०)	—ऐ० जैन गुर्जर काव्य संचय
२३.	श्री डा० प्रेमप्रकाश गौतम	—हिन्दी गद्य का विकास (अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर)
२४.	श्रीमती विद्यावती जैन	—हिन्दी जैन साहित्य का एक विस्मृत बुन्देली कवि देवीदास (अप्रकाशित लेख)
२५.	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	—हिन्दी साहित्य का इतिहास
२६.	श्री डॉ० वासुदेव सिंह	—अपभ्रंश और हिन्दी में जैन रहस्यवाद
२७.	डॉ० भगवानदास तिवारी	—हिन्दी जैन साहित्य
२८.	डॉ० कस्तूरचंद कासलीवाल	—राजस्थान के जैन संत
२९.	श्री मोहनलाल दलीचंद देसाई	— जैन ऐतिहासिक रासमाला
३०.	,, ,,	— जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास (गुजराती)
३१.	श्री विद्याधर जोहरापुरकर	—भट्टारक संप्रदाय
३२.	पं० परमानंद शास्त्री	— जैन ग्रंथ प्रशस्ति संग्रह
३३.	सं० डॉ० पीतांबर दत्त बड़थ्वाल और अन्य	—हस्तलिखित पुस्तकों की खोज रिपोर्ट भाग ८, १२, १४ और १५ (नागरी प्रचारिणी सभा, काशी)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आंग्ल पुस्तकें

डॉ० श्रीराम शर्मा--द रिलिजस पॉलिसी आफ द मोगल इंपरर्स

डॉ० मेन्डेस्लो --ट्रेवेल्स इन वेस्टर्न इण्डिया

पत्रिकायें--नागरी प्रचारिणी पत्रिका, सन् १९००

नोट--हिन्दी जैन साहित्य के बृहद् इतिहास खण्ड एक और दो में जिन संदर्भ-ग्रंथों का उल्लेख किया जा चुका है, उनका इस खण्ड में भी यथावसर उपयोग किया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय सूची

I पूर्वपीठिका—राजनीतिक पीठिका २-५; सामाजिक पीठिका ५-६; धार्मिक स्थिति ६-९; विविध कलाओं की स्थिति–स्थापत्य ९; चित्रकला ९-१०, संगीत १०-११, साहित्यिक अवस्था ११-१६, भाषा १६-१९, रस २०-२२, काव्यरूप २२-२४।

II १८वीं शती के साहित्यकार और उनका साहित्य

अचलकीर्ति २५-२६, अजयराज पाटनी २६-२९, अजीतचंद २९-३०, अभयनंद सूरि ३०, अभयसोम ३१-३३, अमरकवि ३४, अमरचंद ३४-३५, अमरपाल ३५, अमरविजय या अमर गणि ३५-३७, अमरविजय II ३७, अमरसागर ३८, अमीचंद ३९, अमृतगणि ३९, अमृतसागर ४०, अमृतसागर II ४०, आणंदनिधान ४१, आणंद मुनि ४१-४२, आणंदरुचि ४२-४३, आनंदवर्द्धन ४३-४५, आनंद सूरि ४५, आनंदघन ४५, आसकरण ४५-४६, इन्द्रसौभाग्य ४६, उत्तमचंद ४६-४७, उत्तमसागर ४७-४८, उदयचंद मथेन ४८-४९, उदयचंद ४९-५०, उदयरत्न ५०, उदयरत्न II ५०-५८, उदैराम ५८, उदयविजय ५८-६१, उदयसमुद्र ६१-६२, उदयसागर सूरि ६२, उदयसिंह ६३, उदयसूरि ६३, ऋषभदास ६३-६४, ऋषभसागर ६४-६५, ऋषिदीप ६५, ऋषिविजय ६६, ऋद्धिहर्ष ६६, कनककीर्ति ६७, कनककुशल ६७-६८, कनकनिधान ६८, कनकमूर्ति ६९, कनकविजय ६९, कनकविलास ६९-७०, कनकसिंह ७०, कमलहर्ष ७०-७२, कर्मचंद/कर्मसिंह ७२-७३, कर्मसिंह II ७३-७४, कहानजी गणि ७४-७५, कानो ७५, कांतिविजय ७५-७६, कांतिविजयII ७७-७९, कांतिविमल ७९, कृपाविजय ८०, कृपाराम ८०, किशनदास, कीसन अथवा कृष्णदास मुनि ८०-८२, किशनसिंह ८२-८६, कीर्तिविजय ८६, कीर्तिसागर सूरि शिष्य ८६-८७, कीर्तिसुंदर या कान्हजी ८७-८९, कुशल ८९-९०, कुँवरकुशल ९०-९१, कुशलधीर ९१-९३, कुशललाभ (वाचक) ९३-९४, कुशलविजय ९४-९५, कुशलसागर अथवा केशवदास ९५-९६, केशवऋषि (श्रीधर ९६-९७, कुशलोजी ९८, केसर ९८, केसरकुशल ९९-१००, केसरकुशल II १००, केशरविमल १०१-१०२, क्षमाप्रमोद १०२-१०३, क्षमासागर १०३,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्षेमविजय १०३-१०४, क्षेमहर्ष १०४-१०५, खरगसेन/संगसेन १०५-१०६ खीममुनि १०६-१०७, खुशाल १०७, खुशालचंद काला १०७-१०९, खेडिया जगा या जगोजी ११०, खेतल-खेताक अथवा खेता ११०-११३, खेम ११३-११४, खेमचंद ११४-११५, खेमहर्ष ११६, गजकुशल ११६, गजविजय ११७, गुणकीर्ति ११८, गुणविलास ११८-११९, गुणसागर ११९, गौड़ीदास ११९-II १२०, गंगमुनि (गांगजी) १२१-१२२, गंगविजय १२२-१२३, घासी १२३ चत्तर या चतुर १२४-१२५, चतुरसागर १२६, चंद्रविजय I १२६, चंद्रविजय II १२७, चंद्रविजय III १२८, चंपाराम १२९-१३०, जगतराम १३०-१३२, जगन १३२, जगजीवन १३२-१३४, जनतापी-तापीदास (जैनेतर) १३४, जयचंद १३५, जयकृष्ण १३५-१३६, जयरंग या जैतसी १३६-१३८, जयसागर १३८-१३९, जयसोम १३९-१४१, जयसौभाग्य १४१, जसवंत सागर १४१-१४२, जितविमल १४२, जिनउदय-जिनोदय सूरि १४२-१४३, जिनचंद सूरि १४३-१४४, जिनचंद सूरि II १४४, जिनदत्त सूरि १४४, जिनदास १४५, जिनदेव सूरि १४६, जिनभक्त सूरि १४६, जिनरत्न सूरि १४६-१४७, जिनरंग सूरि १४७-१५०, जिनलब्धि सूरि १५०, जिनवर्द्धमान सूरि १५०-१५१, जिनविजय I १५१-१५२, जिनविजय II १५२-१५३, जिनविजय III १५३-१५५, जिनविजय IV १५५-१५७, जिनसमुद्र सूरि (महिमसमुद्र) १५७-१५९, जिनसुख सूरि १५९-१६०, जिनसुंदर सूरि १६०-१६१, जिनसोम १६१-१६२, जिनहर्ष १६२-१७३, जिनेन्द्रसागर १७३-१७५, जिनेश्वरदास १७५, जीतविजय १७५-१७६, जीवण १७६, जीवराज १७७, जीवविजय १७८, जीवसागर १७८-१७९, जैकृष्ण १७९, जोगीदास मथेण १७९-१८०, जोधराज गोधीका १८०-१८२, जोशीराय मथेण १८२, ज्ञानकीर्ति १८२-१८३, ज्ञानकुशल १८३-१८४, ज्ञानधर्म १८४, ज्ञाननिधान १८४-१८५, ज्ञानविजय १८५, ज्ञानविमल (नयविमल) १८५-१९१, ज्ञानसमुद्र १९१, ज्ञानसागर I १९१-१९६, (ब्रह्म) ज्ञान सागर १९६-१९८, ज्ञानसागर II १९८-१९९, ज्ञानसागर III १९९, ज्ञानसागर IV १९९, ज्ञानसागर V १९९-२०१, ज्ञानहर्ष २०१-२०२, ज्ञाक्षण यति २०२, टीकम २०२, तत्वविजय २०३-२०४, तत्वहंस २०४, तिलकचंद २०४-२०५, तिलकविजय २०५, तिलकसागर २०६-०७, तिलकसूरि २०७-२०८, तेजपाल २०८-०९, तेजमुनि २१०-२११, तेजसिंह २११-२१२, तेजसिंह गणि २१२-१३, त्रिलोकसिंह २१३-२१४, दयातिलक २१४-२१५, दयामाणिक्य २१५,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दलपति २१६, दयासार २१६-२१७, दशरथ निगोत्या २१७, दान विजय I २१७-२१९, दानविजय II २१९-२२१, दामोदर २२१, दिलाराम २२१, दीपचंद २२२-२२३, दीपचंद II २२४, दीपचंद कासलीवाल २२४-२२५. दीपविजय III या दीप्तिविजय २२५-२२६, दीपसौभाग्य २२६-२२८, दुर्गदास या दुर्गादास २२८-२२९, देवकुशल २२९-२३०,(श्रीमद्) देवचंद २३०-२३४, देवविजय २३४-२३७, (वाचक) देवविजय २३७-३८, देवविजय III २३८-२३९, ब्रम्हदेव या देवजी २३९-२४१, देवीचंद २४१, देवीदास २४२-२४४, देवीसिंह २४४, दौलतराम पाटणी २४४-४५, दौलतराम कासलीवाल २४५-२४७, दौलत विजय २४७-२४८, द्यानतराय २४८-२५१, धनदेव २५१, धर्मचंद (मंडलाचार्य भट्टारक) २५१-२५२, धर्ममंदिर गणि २५२-२५५, धर्मसिंह २५५, धर्मवर्द्धन महोपाध्याय धर्मसिंह २५५-२६२. धीरविजय २६२, नंदराम(जैनेतर) २६२-२६३, नथमल २६३-२६४, नयप्रमोद २६४-२६५, नयविजय २६५, नयणरंग २६५, नयनशेखर २६६, नयन सिंह २६७, नवल २६७, नवलसाह २६७-२६८, नाथू (ब्रम्हचारी) २६८, नित्य-विजय २६८-२६९, नित्यलाभ २६९-२७१, नित्यसौभाग्य २७२, निहाल चंद २७३-२७५, नेणसीमूता २७५-२७६, नेमचंद्र २७६-७७, नेमिचंद्र I २७७-२७९, नेमिदास श्रावक २७९-२८०, नेमविजय २८०-२८३, न्याय-सागर २८३-२८६, पद्म २८६-८७, पद्मचंद्र २८७-२८९, पद्मचंद्र शिष्य २८९, पद्मचंद्र सूरि २८९-२९०, पद्मनिधान २९०, पद्मविजय २९०, पद्मसुंदर गणि २९१, पद्मो २९१-९२, परमसागर २९२, पर्वतधर्मार्थी २९३, प्रागजी २९३, प्रीतिवर्द्धन २९३-९४, प्रीतिविजय २९४-९५, प्रीतिसागर २९५-९६. पुण्यकीर्ति २९६. पुण्यनिधान २९६-९७, पुण्यरत्न २९७-२९९, पुण्यहर्ष २९९-३०१. पूर्णप्रभ ३०१-३०४. प्रेमचंद ३०४, प्रेमानंद ३०४-०६, प्रेमविजय ३०६, बख्तावरमल ३०६, बच्छराज ३०७. बधो ३०७, बाल ३०७-०९, बालक (रामचंद्र) ३०९, बंशीधर ३०९-३१०. ब्रह्मदीप ३१०-३११, ब्रह्मनाथू ३११-३१२, बिहारीदास ३१२-३१३, बृन्द ३१३, बुधविजय ३१४, बृद्धिविजय ३१४, बुलाकीदास ३१४-३१६, बेलजी मुनि ३१६. (भैया) भगवतीदास ३१६-३२२, भवानीदास ३२२-३२३. भागविजय ३२३-३२४. भानुविजय ३२४, भानुविजय या भाणविजय ३२५-३२६. भावजी ३२६, भावप्रमोद ३२७, भावरत्न (भावप्रभ सूरि) ३२७-३३३. भाऊ ३३३-३३४, भुवनसोम या भुवनसेन ३३५-३३६, भूधरदास खंडेलदास ३३७-३४३, भोजसागर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३४३, मणिविजय IV ३४४, मतिकुशल ३४४-३४५, मतिसागर ३४५, मतिसार ३४६, मनराम ३४६, मनोहरदास ३४६-३४९, महिमावर्धन ३५०, महिमा सूरि ३५०, महिमासेन ३५०, महिमाहंस ३५०, महिमाहर्ष ३५१, महिमोदय या महिमोदय ३५१-३५२, महेश ३५२, माणिक्य ३५२-३५३, माणिक्यविजय ३५३-३५४, माणिक्य सागर ३५४, माणेकविजय ३५४-३५५, माणेकविमल ३५५, मानकवि ३५५-३५७, मानमुनि ३५७-३५८ मानविजय I ३५८-३५९, मानविजय II ३५९-३६०, मानविजय III ३६०-३६२, मानविजय ३६२-३६४, मानसागर ३६४-३६६, मानसिंह 'मान' ३६६-३६७, मुनिविमल ३६७, मेघविजय ३६७, मेघविजय II ३६८, मेघविजय III ३६८-३७०, मेरुलाभ ३७०-३७१, मेरुविजय ३७१-३७२, मोतीमालु ३७२-३७३, मोहनविजय ३७३-३७७, मोहनविमल ३७७-३७८, यशोनंद ३७८, यशोलाभ ३७९, यशोवर्धन ३८०, यशोविजय ३८१-३८३, रंगप्रमोद ३८३, रंगविनय गणि ३८३-८४, रंगविलास गणि ३८४-८५, रत्नचंद (भट्टारक) ३८५-८६, रत्नजय ३८६, रत्नराज (उपा०) ३८६, रत्नवर्द्धन ३८७, रत्नविमल ३८८, रघुनाथ ३८८-३९३, राजरत्न ३९३-९४, राजलाभ ३९४-९६, राजविजय ३९६-९७, राजसार ३९७-३९९, राजसुंदर ३९९-४००, राजसोम ४००, राजहर्ष ४००-४०२, रामचन्द्र 'बालक' ४०२-४०३, रामचन्द्र ४०३, रामचन्द्र चौधुरी ४०३, रामचन्द्र ४०३-४०८, रामविजय ४०८-४१०, रामविजय (रूपचंद) ४१०-४१२, (वाचक) रामविजय ४१३-४१५, रामविजय ४१५-४१६, रामविमल ४१६, रायचंद ४१७-१८, रायचंद II ४१८ १९, रुचिरविमल ४१९-४२०, रूपभद्र ४२०, रूपविमल ४२०-४२१, लक्ष्मण ४२१, लक्ष्मीचंद्र ४२१-२२, लक्ष्मीदास ४२२-२३, लक्ष्मीरत्न ४२३-४२५, लक्ष्मीवल्लभ (उपा०) ४२५-४३१, लक्ष्मीविजय ४३१-४३२, लक्ष्मीविजय II ४३२, लक्ष्मीविजय ४३२-४३३, लक्ष्मीविमल ४३३-३४, लाखो ४३५, लब्धरुचि ४३५-३६ लब्धिविजय ४३७-३८, लब्धिविजय (वाचक) ४३८-३९, लब्धिसागर ४३९-४४०, लब्धोदय गणि ४४०-४४३, लाधाशाह ४४३-४४६, लाभकुशल ४४६, लालचंद या लाभवर्द्धन ४४६, लाभवर्द्धन पाठक ४४७-४४९, लालचंद ४४९, लालरत्न ४४९-४५०, लावण्यचन्द्र ४५०-५१, लावण्यविजय गणि ४५१-५२, लोहर (शाह) ४५२-५३, वछराज ४५३, वधो ४५३-५४, वर्द्धमान ४५४, वरसिंह ४५४-५५, वल्लभकुशल ४५५-५६, वस्ता (मुनि) ४५६-५७, ब्रह्मवाधिराध ४५७,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विक्रम ४५७, विजयसूरि ४५७, विजयदेव सूरि ४५७, विजयजिनेन्द्र सूरि शिष्य ४५७-५८, विद्याकुशल ४५८, विद्यारुचि ४५८-५९, विद्याविलास ४५९-६०, विद्यासागर ४६०, विद्यासागर दिग०) ४६०-६१, विनयकुशल ४६१, विनयचंद्र ४६१-६४, विनयलाभ(बालचंद)४६४-६६, विनयविजय (उपाध्याय) ४६६-४६९, विनयशील ४६९-७०, विनयसागर ४७१, विनयसागर II ४ ७१, विनीतकुशल ४७१-४७३, विनीतविजय ४७३, विनीत विमल ४७३-७४, विनोदीलाल ४७५-४७९, विमलरत्न सूरि ४७९, विमलविजय ४७९-४८०, विमलसोमसूरि ४८१, विबुधविजय ४८१-८२, विबुधविजय II ४८२-८३, विवेकविजय ४८३, विवेकविजय II ४८३-८५, (साध्वी) विवेकसिद्धि ४८६, विश्वभूषण ४८६-४८८, वीरविजय ४८८-४९०, वीरजी ४९०, वीरचंद ४९१, वीरविमल ४९१-९२, वृद्धिविजय ४९२-९४, वृद्धिविजय II ४९४ ९५, वेणीराम ४९५-९६, शांतसौभाग्य ४९७, शांतिदास ४९७, शांतिविजय ४९७-४९८, शामळदास ४९८, श्यामकवि ४९८, शिरोमणिदास ४९८-५००, शिवदास ५००-०१, शीलविजय ५०१, शुभचन्द्र ५०२, मुनि शुभचंद्र ५०३, शुभविजय ५०४, श्रीदेव ५०४-०६, श्रीपति ५०६, श्री सोम ५०६, संतोषविजय ५०७, संघसोम ५०७, संघरुचि ५०८, सकलचंद्र ५०८, सकलकीर्ति शिष्य ५०८, सभाचंद ५०९, सत्यसागर ५१०, समयनिधान ५११, समयमाणिक्य ५११, समयहर्ष ५१२, सिद्धितिलक ५१३, सिद्धिविजय ५१३, स्थिरहर्ष ५१४, सिंह ५१४, सिंहविमल ५१४, सुखदेव ५१५, सुखलाभ ५१६, सुखविजय ५१६, सुखरतन ५१६, सुखसागर I ५१७, सुखसागर II ५१८-५२०, सुंदर ५२०, सुबुद्धिविजय ५२०, सुमतिधर्म ५२१, सुमतिरंग ५२१-५२३, सुमतिवल्लभ ५२३-२४, सुमतिविजय ५२५, सुमतिविमल ५२६, सुमतिसेन ५२६, सुमतिहंस ५२७, सुरचंद ५२८, सुरजी मुनि ५२९, सुरजी (सूरसागर) ५३०, सुरविजय ५ १, सूर ५३२, सुरेन्द्रकीर्ति मुनीन्द्र ५३३, सुरेन्द्रकीर्ति II ५३४, सुरेन्द्रकीर्ति III ५३५, सुरेन्द्रकीर्ति IV ५३५, सेवक ५३५, सौभाग्यविजय ५३६, सौभाग्यविजयII ५३७, हंसरत्न ५३८-३९, हंसराज ५४०, हर्षकीर्ति ५४१, हरषचंद साधु ५४१, हर्षचंद ५४१, हर्षनिधान ५४१, हर्षविजय ५४२, हर्ष ५४२, हरिकिसन ५४२, हरिराम ५४२, हस्तरुचि ५४३, हिम्मत ५४४, हीराणंद-हीरानंद ५४४, हीराणंद-हीरमुनि ५४५, हीर उदयप्रमोद ५४६, हीरसेवक ५४६,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पं० हीरानंद ५४७, हेमकवि ५४८, पांडे हेमराज ५४९-५५२, हेमसार ५५२, हेमसागर ५५२, हेमसौभाग्य ५५३

III उपसंहार – ५५४ से अंत तक।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मरुगुर्जर हिन्दी जैन साहित्य का बृहद् इतिहास

खण्ड ३ (विक्रम सं० अठारहवीं शती)

पूर्व पीठिका—

प्रसिद्ध रूसी आलोचक ग्रियोरेव अपोलान अलेक्जान्दोविच ने ठीक ही कहा है कि साहित्य किसी राष्ट्र की विकास-प्रक्रिया की तर्कहीन आंगिक उपज है "...irrational organic product..."। यह सच है कि साहित्य अपने देश-काल की उपज है, साथ ही वह देशकाल का निर्माता भी है। दोनों में अन्योन्य सम्बन्ध है। इसलिए किसी साहित्य का इतिहास उसके देशकाल से अभिन्न-रूप में जुड़ा होता है और देशकाल निरपेक्ष साहित्य का अध्ययन निराधार होता है। अतः १८वीं (विक्रम) शती के हिन्दी जैन साहित्य का सम्यक् परिचय प्राप्त करने के लिए तत्कालीन सामाजिक पीठिका से परिचित होना पाठक के लिए परमावश्यक है। लोकतंत्र में लोक या समाज शासनतंत्र को प्रभावित करता है परंतु राजतंत्र में राजा ही काल का कारण होता है और समाज को प्रभावित-परिचालित करता है। १८वीं शती में भारत की शासन व्यवस्था राजतांत्रिक थी, इसलिए सर्वप्रथम तत्कालीन राजनीतिक स्थिति का परिचय प्राप्त करना उपयोगी है।

राजनीतिक पीठिका -

विक्रम की १८वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध राजनीतिक दृष्ट्या परस्पर पर्याप्त भिन्न प्रकृति के हैं। पूर्वार्द्ध में दिल्ली में मुगल सम्राट् शाहजहाँ का शासन था। वह सर्वश्रेष्ठ मुगल सम्राट् था। खफी खाँ ने लिखा है कि अकबर महान विजेता और साम्राज्य संस्थापक-नियामक अवश्य था किन्तु सुप्रबन्ध, शानशौकत, सुशासन और आर्थिक सुदृढ़ता की दृष्टि से शाहजहाँ सर्वश्रेष्ठ मुगल शासक था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसके द्वारा निर्मित 'ताज' संसार के सात आश्चर्यों में गिना जाता है। अब्दुल हमीद लाहौरी ताज का निर्माण बारह वर्षों में होना बताता है किन्तु ट्रेवर्नियर इसे बाईस वर्षों में बताता है। इसके निर्माण पर तीन करोड़ रुपये व्यय हुए थे। इसके अतिरिक्त उसने प्रसिद्ध मयूर सिंहासन बनवाया था। जामा मस्जिद, मोती मस्जिद आदि कई मस्जिदों, मकबरों का निर्माण कराया था और एक पूरा नगर अपने नाम पर शाहजहानाबाद बसाया था। उसके शासनकाल में कला और साहित्य की अभूतपूर्व उन्नति हुई। पंडितराज जगन्नाथ उसके दरबारी कवि थे। उसने अपने पुत्रों की शिक्षा का उत्तम प्रबन्ध किया था। दारा की रुचि धर्म, दर्शन, अध्यात्म की तरफ थी। अतः वह इनका अध्ययन करने काशी आया था। उसके नाम पर बसा दारानगर आज भी वाराणसी का मशहूर मुहल्ला है। औरंगाबाद औरंगजेब के काशी आगमन की याद दिला रहा है। इस काल को मुगल-साम्राज्य का स्वर्णयुग कहा गया है। सं० १७१४-१५ में शाहजहाँ बीमार पड़ा और उत्तराधिकार का युद्ध उसके पुत्रों में प्रारम्भ हो गया। ३१ वर्षों तक शासन करते-करते शाहजहाँ भी वृद्ध और कमजोर हो चुका था। उस समय दारा ४३ वर्ष, शुजा ४१, औरंगजेब ३९ और मुराद ३३ वर्ष के हो चुके थे। इस युद्ध के दौरान सं० १७१५ में औरंगजेब ने शाहजहाँ को बन्दी बना लिया, सामूगढ़ के युद्ध में औरंगजेब विजयी हुआ और दारा के पक्षपातियों ने अवसर का लाभ लेकर औरंगजेब का समर्थन शुरू कर दिया और वह गद्दी पर बैठा। सं० १७१६ में उसने दारा और शुजा तथा १७१८ में मुराद का भी अन्त कर दिया। वह निर्द्वन्द शासन करने लगा और सं० १७६४ तक अपनी मृत्यु पर्यन्त राज्य किया। इस प्रकार १८वीं शती के पूर्वार्द्ध में शाहजहाँ के डेढ़ दशकों के शासनोपरांत अधिकतर समय में औरंगजेब का ही शासन-काल था। इसी के शासनकाल में मुगल साम्राज्य का पतन भी प्रारंभ हो गया। इसका जन्म सं० १६७५ में हुआ था। यह प्रायः ४० वर्ष की अवस्था में गद्दी पर बैठा और आधी शताब्दी तक इसने देश के बहुत बड़े भूभाग पर शासन किया। सं० १७१६ में वह बाकायदे सम्राट् बन चुका था।

उसे प्रारम्भ में विजय और सफलता मिली क्योंकि वह शाहजहाँ के समय से ही गुजरात, मुल्तान और दकन आदि प्रदेशों का सूबेदार रह चुका था तथा मीर मुहम्मद हाशिम से अरबी, फारसी की अच्छी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शिक्षा प्राप्त कर चुका था। सोलहवें वर्ष में उसे बहादुर का खिताब और मंसबदारी मिल चुकी थी। वह बुन्देलों, बल्खों को युद्ध में पराजित कर चुका था, अर्थात् उसे युद्ध संचालन और शासन प्रबन्ध की कुशलता प्राप्त हो चुकी थी। साथ ही वह स्वभाव से चालाक और अवसर को पहचानने वाला व्यक्ति था। उसने दारा की उदारता और हिन्दू धर्म के प्रति रुझान का खूब लाभ उठाया। वह कट्टर सुन्नी मुसलमान था तथा क्रूर और कठोर स्वभाव का था। लेकिन औरंगजेब की यही कट्टरता और चक्रवर्ती केन्द्रीयता ने मराठों, बुन्देलों, राजपूतों, रुहेलों, सतनामियों, जाटों और सिक्खों को बागी बनाया। केन्द्रीयकरण की स्वाभाविक परिणति विघटन और विखंडन होती ही है। यही खास कारण था कि औरंगजेब एक तरफ चक्रवर्ती सम्राट् था तो दूसरे छोर पर विघटित साम्राज्य का अन्तिम शासक भी था। उसे अनेक विफलतायें भी देखनी पड़ी, पर उसकी विफलता भी महान् थी ऐसा विचार लेनपूल ने व्यक्त किया है।

औरंगजेब ने अकबर के समय से चली आती धार्मिक सहिष्णुता की नीति का त्याग कर दिया। साझी संस्कृति का जनाजा निकाल दिया। हिन्दू विरोधी नीति, बलात् धर्म परिवर्तन और मंदिरों का विध्वंश प्रारम्भ हुआ। तुलादान, प्रणाम, तिलक लगाना, झरोखा दर्शन आदि प्रथायें बन्द कर दी गईं। सं० १७२६ में प्रसिद्ध काशी-विश्वनाथ मन्दिर तोड़ा गया। पाठशालाओं में हिन्दू धर्म-चर्चा वर्जित कर दी गई। सरकारी सेवाओं का मार्ग हिन्दुओं के लिए प्रायः बन्द हो गया[1]। नेमिश्वर रास में नेमिचंद ने औरंगजेब की मृत्यु के पाँच वर्ष पश्चात् लिखा है कि क्रूर, अन्यायी और अधर्मी राजा अपने वंश का समूल नाश करता है। यह कथन औरंगजेब के लिए सटीक सही है। उसकी अनीति के कारण मुगल साम्राज्य का समूल नाश हो गया। १८वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध का राजनीतिक इतिहास इसका स्पष्ट प्रमाण है।

औरंगजेब की नीति का बीजवपन शाहजहाँ के समय में ही हो गया था। शाहजहाँ की माँ तो हिन्दू रानी थी किन्तु उसने किसी हिन्दू या राजपूत राजकुमारी से विवाह नहीं किया, इसलिए हरम में हिन्दू प्रभाव कम हो गया। उसने इस्लाम की उन्नति

---

१. श्री गोविन्दसखाराम देसाई—मराठों का नवीन इतिहास, पृ० ५०४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर बल दिया, हिजरी सन् को राजकीय कैलेण्डर घोषित किया और दरबार में मुस्लिम त्यौहारों का मनाया जाना अनिवार्य कर दिया। इन अवसरों पर हिन्दू, मुसलमान बादशाह को भेंट देते थे। डॉ० श्रीराम शर्मा ने लिखा है कि शासन के बारहवें वर्ष की ईद पर राजा जसवंत सिंह और राजा जयसिंह ने बादशाह को हाथी भेंट किया[1]। इसने गुजरात, कश्मीर और मध्यदेश में अनेक मन्दिर तोड़े, केवल बनारस में ७२ मन्दिर इसने विध्वंस कराये थे और हिन्दू तीर्थयात्रियों पर कर लगाया था पर यह औरंगजेब की तरह न तो कट्टर था और न धर्मान्ध था। इसने बाद में मंदिर तोड़ना और तीर्थ कर बंद कर दिया था। वह नीतिकुशल था, इसलिए इसने राजनीति पर धर्म को हावी नहीं होने दिया ? जबकि औरंगजेब की धर्मनीति ही राजनीति की संचालिका थी। इसने सुलह-कुल का रास्ता पूरी तरह बन्द कर दिया। फलतः प्रजा में अशांति, विग्रह और फूट पड़ गई, साम्राज्य बिखरने लगा, जगह-जगह विद्रोह होने लगे, औरंगजेब आजीवन इन्हीं बगावतों और विद्रोहों को कुचलने में थक गया और उसके जीवन की आखिरी रात आ गई।

उसकी मृत्यु के पश्चात् सं० १८०० तक कुल पाँच बादशाह दिल्ली की गद्दी पर बैठे पर वे नामधारी बादशाह थे। औरंगजेब के बाद अपने भाइयों का कत्ल करके बहादुरशाह गद्दी पर बैठा और पाँच वर्ष गद्दी पर रहा। उसे राजकाज की कोई परवाह नहीं थी। उसे 'शाह बेखबर' कहा गया है। उसकी मृत्यु के बाद फिर उत्तराधिकार का युद्ध हुआ और खूनखराबे के बाद जहाँदारशाह गद्दीनशीन हुआ। इसी समय सैयद बन्धुओं का उदय हुआ। इनमें बड़ा भाई अब्दुल्ला खाँ इलाहाबाद में सहायक सूबेदार तथा छोटा भाई हुसैन खाँ बिहार में नायब सूबेदार था। इन लोगों ने बहादुर शाह की मदद की थी और तभी से शक्तिशाली होते जा रहे थे। ये लोग जहाँदारशाह से नाराज हो गये। उसने लालकुँवर नामक कुजड़िन रखैल के वशीभूत होकर उसके सम्बन्धियों को बड़े-बड़े पद प्रदान कर दिए। इससे सैयद बन्धु अधिक क्रुद्ध हो गये। इसके भतीजे (अजीमुश्शान के पुत्र) फर्रुखसियर ने सैयद बन्धुओं को मिलाकर उसे कैद कर लिया और

1. Dr. Shri Ram Sharma—The Religions Policy of the Moghal Emperors, page 96.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वयं गद्दी हथिया ली। सं० १७७० से ७७ तक सात वर्ष यह सैयद बन्धुओं से पीछा छुड़ाने के प्रयत्नों में ही लगा रहा और अन्ततः सैयद बन्धुओं ने मराठों की सहायता से फर्रुखसियर को कैद कर लिया और उसके स्थान पर शाहजहाँ द्वितीय को गद्दी पर बैठाया। पर इसकी तीन चार महीने में ही यक्ष्मा से मृत्यु हो गई और इसके बाद मुहम्मदशाह 'रंगीले' गद्दी पर बैठा। यह अयोग्य शासक था। शासन प्रबन्ध सैयद बन्धुओं के हाथ में था। इसके समय में साम्राज्य के विघटन की गति तीव्रतर हो गई। बंगाल, अवध, मालवा, गुजरात, बुन्देलखण्ड, पंजाब प्रान्त अलग हो गये, जाटों, राजपूतों, मराठों ने स्वतन्त्र होना शुरू कर दिया। इसी बीच नादिरशाह का आक्रमण हो गया। सं० १७९६ में करनाल के मैदान में डेढ़ लाख सेना के साथ वह लड़ने गया किन्तु बुरी तरह पराजित हो गया। २० करोड़ हरजाना देकर दिल्ली बचाने का प्रयास किया, किन्तु दिल्ली लूटी गई और कत्लेआम हुआ। पूरा दरी बाजार लाल खून से रंग गया। डेढ़ लाख लोग मारे गये, मुगल सम्राट् का राजचिह्न छीन लिया गया। कोहनूर सहित अपार सम्पदा तथा सैकड़ों कलाकारों और बंधुआ बेगार लोगों को साथ लेकर वह वापस लौट गया। इस आक्रमण का देश और साम्राज्य पर भयंकर कुप्रभाव पड़ा। मुगलशक्ति का पूर्ण पतन हो गया। इसी बीच अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण और लूटपाट तथा मराठों के युद्ध तथा ईस्ट इण्डिया कम्पनी के बढ़ते प्रभाव ने भी मुगल साम्राज्य की कब्र खोदने में मदद की। प्लासी के युद्ध के बाद ईस्ट इंडिया कम्पनी एक साम्राज्यवादी शक्ति के रूप में उदित हुई। इस प्रकार १८वीं (विक्रम) शती मुगल साम्राज्य के चरम उत्कर्ष बिन्दु से पतित होकर विनाश के गर्त तक जाने की कहानी अपने भीतर समेटे हुए है जिसका परिचय हमें तत्कालीन जैन साहित्य में साहित्यिक आवरण के बीच दिखाई पड़ता है। साथ ही इस राजनीतिक परिस्थिति का जो प्रभाव समाज और संस्कृति पर पड़ा उसका तो भरपूर वर्णन तत्कालीन ग्रंथों में प्राप्त होता ही है।

सामाजिक पीठिका--

तत्कालीन समाज पर सामंती व्यवस्था का शिकंजा जकड़ा हुआ था। सारे देश में सामंतों, नवाबों, राजाओं का आतंक छाया हुआ था। प्रजा आतंकित थी, शोषित और अशिक्षित थी। एक तरफ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दरबारी शान-शौकत, समृद्धि और विलासिता थी, दूसरी ओर साधारण जनता दुर्दशाग्रस्त, विपत्तिग्रस्त और भूखी-नंगी थी। सामन्तों, अमीरों के अन्तःपुरों में तीन-चार रानियों, रक्षिताओं, रखैलों और नर्तकियों की भीड़ थी; विलास की सभी सामग्री एकत्र थी पर कृषक, कामगार को भरपेट भोजन मुहाल था। उनकी अवस्था गुलामों से अच्छी नहीं थी[1]। बीच में एक तीसरा मध्यवर्ग भी अत्यन्त दबा सिकुड़ा था जिसमें साहूकार, व्यापारी, अहलकार, कर्मचारी आदि थे जो मितव्ययी और सादा जीवन यापन करने के लिए बाध्य थे। बड़े लोग शाही बारातों, उत्सवों में धूमधाम करते, मदिरापान करते, जश्न मनाते थे और बेचारी साधारण जनता इनका जय-जयकार करती भूखी सोने के लिए विवश थी। स्त्रियों की दशा और शोचनीय थी। बलात्कार पुरुष का अधिकार था। वह पिता, पति और पुत्र के खूँटे में बँधी गाय की तरह बेसहारा थी। सम्पत्ति पर उसका कोई हक नहीं था, शिक्षा से वह पूर्णतया वंचित थी। ढोंगी, पाखण्डी, साधु-फकीर भी उनका शीलभंग करते थे। एक बार पतिता घोषित होने पर आजीवन वेश्या जीवन बिताने की बेवसी उन्हें झेलनी पड़ती थी। तत्कालीन समाज तत्कालीन मुगल साम्राज्य की तरह पतनशील, ह्रासोन्मुख और दयनीय था।

धार्मिक स्थिति--

राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों का धर्म पर प्रभाव पड़ना अवश्यम्भावी है। जब राजसत्ता और समाज पतनोन्मुख था तो धर्म उससे अछूता नहीं रह सकता था। सम्राट् शाहजहाँ अपनी प्रारम्भिक कट्टरता को नीतिवश कम करके अपने व्यवहार में थोड़ा सहिष्णु हो गया था। मेंडलस्लो, जो शाहजहाँ के समय भारत यात्रा पर आया था, लिखता है कि जब वह अहमदाबाद पहुँचा तो वहाँ के हाकिम सूबेदार औरंगजेब ने मुगल दरबार के खास जौहरी शांतिदास द्वारा निर्मित श्री चिन्तामणि-पार्श्वनाथ जैन मन्दिर को तुड़वा दिया था और उसका नाम कुवल उल-इस्लाम रख दिया था। सेठ शांतिदास ने जब शाहजहाँ से फरियाद की तो उसने फरमान भेजा कि मस्जिद

---

१. श्री सत्यकेतु विद्यालंकार---भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास, पृ० ५५०–५१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और शेष मन्दिर के बीच दीवार खड़ी कर दी जाय। मन्दिर सेठ को सौंप दिया जाय और मन्दिर की सामग्री वापस कर दी जाय[1]। यह उल्लेख इसलिए किया गया ताकि स्पष्ट हो सके कि जैन साधु और श्रावक-श्रेष्ठि राजदरबारों में अच्छा प्रभाव रखते थे। अकबर के समय हीरविजय, जिनचंद्र सूरि और विजयसेन आदि प्रभावक आचार्यों की चर्चा पूर्व खण्ड में की जा चुकी है। जहाँगीर की माँ और पत्नी दोनों हिन्दू थीं। वह अधिक उदार और अपने पिता की धार्मिक नीति का अनुयायी था। मुगल सम्राट् की तरफ से हीरविजय के स्तूप के लिए २२ बीघा और विजयसेन के स्तूप के लिए १० बीघा जमीन श्रीसंघ को दान में मिला था। जैन साधुओं और श्रावकों ने मुगल बादशाहों के दरबार में पहुँचकर उन्हें प्रभावित किया और उनसे जीवकल्याणकारी आदेश प्राप्त किए। आचार्य जिनचंद्रसूरि ने जहाँगीर से ऐसे आदेश रद्द भी करवाये थे जिन्हें उसने नशे की मदहोशी में जारी किया था। जैनसाधु स्वयं अपरिग्रही, अहिंसक और आचारवान् थे जिससे शासक प्रभावित होते थे। जहाँगीर ने जैनसाधुओं से शिक्षा ली थी और अपने पुत्र की शिक्षा के लिए भानुचंद्र को गुजरात से मांडू बुलाकर नियुक्त किया था। अकबर, जहाँगीर देश के सभी धर्मों का ध्यान रखते थे जिनमें हिन्दू और मुसलमान धर्म तो प्रमुख थे ही, पर इसके बाद जैन धर्म का ही स्थान था क्योंकि मुगल सम्राट् किसी बौद्ध विद्वान् या साधु के सत्संग और शिक्षा से प्रभावित नहीं हुए थे पर जैन साधु और सेठ-श्रावकों के संपर्क में लगातार आते रहे। विजयदेव सूरि को जहाँगीर अपना सच्चामित्र मानता था साथ ही उनसे कल्याण की कामना भी करता था। मुगल सम्राटों के अलावा देशी रजवाड़ों, सामंतों, नवाबों को भी जैन साधु और सेठ प्रभावित करते थे। जगडू, वस्तुपाल-तेजपाल, भामाशाह, शेठ शांतिदास आदि इस क्षेत्र में कुछ उल्लेखनीय नाम हैं। उदयपुर के राणा जगत सिंह, स्वयं महाराणा प्रताप आदि भी जैनसाधुओं और श्रावकों के सम्पर्क से प्रभावित थे। इस प्रकार तत्कालीन समाज में जैन धर्म की स्थिति अच्छी थी। जैन कवियों ने औरंगजेब या आलमगीर का भी अच्छे शब्दों में यत्र-तत्र उल्लेख किया है। पता नहीं काव्यरचना में शाहेवक्त के उल्लेख की रूढ़ि का पालन करने मात्र के लिए ऐसा किया गया है अथवा वस्तुतः वे लोग उसे अच्छा समझते थे। जो भी हो, जैन कवियों

१ मेंडलस्लो-ट्रैवेल्स इन वेस्टर्न इण्डिया, पृ० १०१-१०२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैसे आणंदमुनि और आणंदरुचि तथा पं० लाखो आदि कई रचनाकारों ने उसकी प्रशंसा की है। उदयसमुद्र आदि कई कवियों ने औरंगजेब के मुसलमान सूबेदारों की भी प्रशंसा की है। तात्पर्य यह कि जैनसाधु और श्रावकों का शासकों से संबंध प्रायः अच्छा रहा। इसलिए शासन की तरफ से वे उतने पीड़ित या प्रताड़ित नहीं हुए जितने हिन्दू हुए थे। उस समय हिन्दू धर्म खतरे में था। यह खतरा इस्लाम और ईसाइयों की तरफ से दोतरफा था। औरंगजेब ने जुल्म के साथ प्रलोभन का भी सहारा लिया। उस समय एक कहावत प्रसिद्ध थी 'मुसलमान हो जावो, कानूनगो बन जावो'। विधर्मी बनने पर सबसे बड़ा पद जो प्राप्त हो सकता था वह कानूनगो का था और इसके लिए न जाने कितने पढ़े-लिखे लोग इस्लाम धर्म स्वीकार करने लगे थे। हिन्दू धर्म उपेक्षित दलित था किन्तु इस्लाम धर्म के प्रति भी जन-साधारण में आस्था नहीं थी। इसी समय संसार के अत्यन्त शक्तिशाली ईसाई धर्म का हमारे देश में आगमन हुआ। इनलोगों ने धर्मप्रचार के लिए तलवार का नहीं बल्कि तराजू और तरकीब का सहारा लिया। हिन्दू मुसलमानों को लड़ाया, अस्पताल, स्कूल खोले, मिशन खोले, गाँव-गाँव में वे प्रचार में जुट गए और नाना हथकण्डों को अपनाकर ईसाई बनाना शुरू किया। हिन्दू-मुसलमान और ईसाइयों की लड़ाई से तटस्थ रहकर जैन साधकों ने अपना धर्मप्रचार और जीव कल्याणकारी कार्य चालू रखा तथा उसमें सफल हुए।

जैन प्रबन्ध काव्यों में तत्कालीन धार्मिक अवनति का उल्लेख भी मिलता है पर अधिकांश रचनाओं में दार्शनिक, गंभीर चिन्तन और जिनभक्ति भावना का उन्मेष प्रकट हुआ है। आनंदघन, यशोविजय, जिनहर्ष आदि महाकवियों की रचनाओं से ऐसे पुष्कल उदाहरण दिए जा सकते हैं। जबकि अन्य धर्म एक दूसरे के प्रति अश्रद्धा उत्पन्न करने में जुटे थे, इन लोगों ने धर्म के प्रति आस्था, नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा का प्रयत्न किया। धार्मिक संकीर्णता और कट्टरता का शमन किया, तत्कालीन भोगविलास और शृंगारी मनोवृत्ति का प्रत्याख्यान किया। जनमानस में धर्म के सच्चे स्वरूप की स्थापना तथा समाज से ऊँचनीच और छूआछूत के भेदभाव को कम करके आत्मा की अमरता और समता का संदेश दिया। इनके स्याद्वाद और सप्तभंगी नय ने इन्हें ऐकांतिक कट्टरता से मुक्त रखा। इसलिए इन लोगों ने धर्म और समाज में सम्यक्त्व की स्थापना में आदर्श

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

योगदान किया। इस प्रकार कुल मिलाकर अन्य धर्मों की तुलना में जैनधर्म की स्थिति इस शताब्दी में अच्छी ही थी।

विविध कलाओं की स्थिति

स्थापत्य—पूर्व विवेचित पृष्ठभूमि पर तत्कालीन कलाओं की स्थिति पर जब हम दृष्टिपात करते हैं तो वहाँ भी विघटन और ह्रास का प्रभाव परिलक्षित होता है। औरंगजेब की धार्मिक कट्टरता, अरसिकता, निरंतर युद्ध और अशांति तथा अर्थाभाव के कारण स्थापत्य का जो चरम उत्कर्ष शाहजहाँ के समय में था वह नहीं रहा। साम्राज्य ने संरक्षण नहीं दिया पर अलग-अलग रियासतों में इसे संरक्षण प्राप्त हुआ। जयपुर के महाराज सवाई जयसिंह ने आदर्शनगर, जयपुर का निर्माण सं० १७८४ में कराया। संवत् १७१४ में औरंगजेब ने भी औरंगाबाद बसाया था। उदयपुर के महाराणा राजसिंह ने राजसमंद का निर्माण कराया। कई अन्य नरेशों ने भी राजप्रासादों, दुर्गों, मंदिरों और तालाबों का निर्माण करवा कर वास्तुकला की उन्नति में सहयोग किया। इनमें मुगल और हिन्दू स्थापत्य के सम्मिश्रण के कारण एक नयी शैली का उद्भव भी हुआ। जयसिंह की वेधशाला, अहिल्याबाई के मंदिर, अमृतसर का स्वर्णमंदिर इसी शताब्दी की देन हैं। इन स्थानों और मंदिरों की शिल्पकला का सुंदरवर्णन जैन काव्यग्रंथों में मिलता है। ऊँचे कंगूरों, मंदिरों में खचित मूर्तियों, मूर्तियों में जटित रत्नों का वर्णन भी अनेक स्थानों पर मिलता है। इन साधु कवियों ने नगरों के वर्णन में अनेक गजलें लिखी हैं जिनका उल्लेख पूर्व खण्ड में हो चुका है।

चित्रकला—मुगल साम्राज्य का पूर्वार्द्ध चित्रकला का वैभवकाल था। अकबर और जहाँगीर दोनों इसके प्रशंसक और पारखी थे पर शाहजहाँ ने चित्रकला की अपेक्षा वास्तुकला पर ही अधिक ध्यान दिया। वह प्रदर्शनप्रिय था। उसके समय की चित्रकारी में सोने चाँदी और रत्नों की जगमगाहट अधिक झलकती है, किन्तु विविध रंगों का सुंदर सम्मिश्रण और प्रयोग नहीं मिलता। उसने अनेक चित्रकारों की दरबार से छुट्टी कर दी। वे राजपुताना और हिमांचलप्रदेश के राजाओं के आश्रय में चले गये और वहाँ चित्रकला की नयी कलम-राजपूत और कांगड़ा कलम के नाम से विकसित हुई। औरंगजेब को यह सब पसंद नहीं था। उसने तो बीजापुर के महलों और सिकंदरा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की चित्रकारी पर चूना पुतवा दिया था। इस काल में राजसंरक्षण का अभाव होने के कारण चित्रकला का व्यवसायीकरण हुआ और यह जनसामान्य तक पहुँच गई। यह परोक्ष लाभ था। मांगलिक उत्सवों और पर्वों पर लोग घरों में नाना प्रकार के चित्र सजाने लगे। विवाह एवं अन्य संस्कारों और त्योहारों पर अल्पना, मेंहदी, चित्रकारी आदि सजाने लगे जिससे चित्रकला को लोकसंरक्षण प्राप्त हुआ और वह नवीन रूप में विकसित होने लगी।

संगीत—इसको शाहजहाँ ने संरक्षण दिया, वह स्वयं अच्छा गवैया था। मुहम्मदशाह रंगीले भी संगीत प्रेमी था। इसके दरबार में अदारंग-सदारंग का बोलबाला था और उनकी ख्याल गायकी की धूम थी। इसी समय शोरी के टप्पों का गायन भी प्रचलित हुआ। दक्षिण के सुल्तान भी संगीतज्ञों का सम्मान करते थे और संरक्षण देते थे। संगीत हिन्दू जीवन का तो अविभाज्य अंग ही है। हमारे जीवन में हर मौके पर गीत और गवैयों की आवश्यकता पड़ती है। घरों में, मंदिरों में, महफिल-दरबारों में, खेत-खलिहानों में सब जगह संगीत बैठा हुआ है। इसलिए संगीत का प्रचार-प्रसार अवरुद्ध नहीं हुआ। इस युग के जैन संत कवियों ने भी भक्त कवियों के समान आध्यात्मिक रस से ओतप्रोत संगीत का सृजन किया। सभी धर्मों के संतों—चाहे वे हिन्दू संत हों या सूफी संत, फकीर, योगी, दरवेस या भिखारी हों—में संगीत का अच्छा प्रचलन था। दक्षिण के भक्तों से लेकर उत्तर के वैष्णव भक्तों को उनके पदों और गीतों के लिए सदैव स्मरण किया जायेगा। इसलिए संगीत की स्थिति वैसी निराशाजनक नहीं थी जैसी अन्य क्षेत्रों में हम पहले देख आये हैं। जैन कवियों ने अपने रासों, चौपाइयों और चरित काव्यों में भरपूर संगीत का प्रयोग किया है। उनमें नाना-शास्त्रीय राग-रागिनियों के अलावा देसियों, ढालों, लोकगीतों और प्रचलित लोकधुनों का प्रयोग हुआ है। इनमें टेक का प्रयोग करके भी वे रचनाओं में गेयता उत्पन्न करते थे और छंद के अंत में हाँ, सुन रे, लाल आदि संबोधन लगाकर संगीतात्मकता को बढ़ाने का प्रयास करते थे। संगीत के सहारे ये धर्मप्रवण काव्य को शुष्क होने से बचाकर उसे जनजन के लिए ग्राह्य बनाने का उपक्रम करते थे। इसलिए जैन साधुसंतों, श्रावकों ने संगीत की सफलता में पूर्ण योगदान किया। उनके साहित्य का अध्ययन—जो आगे प्रस्तुत किया जा रहा है—इस कथन का प्रमाण है, जिसमें प्रयुक्त ढालों और देसियों का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संख्या और गुण के आधार पर सम्यक् अध्ययन होना अभी शेष है। जैन साहित्य लोक से कितना घनिष्ट रूप से जुड़ा है इसकी सम्यक् जानकारी के लिए इन लोकधुनों का अवगाहन आवश्यक है।

साहित्यिक अवस्था

विक्रम की १७वीं और १८वीं शताब्दी मरुगुर्जर जैन साहित्य का मध्यकाल है और स्वर्णकाल है; यह बात द्वितीय खण्ड में कही जा चुकी है। १७वीं शती इस युग का उत्कर्षकाल था जिसका प्रभाव १८वीं शती तक चलता रहा, किन्तु १८वीं शती के उत्तरार्द्ध से साहित्यिक गति-विधि शिथिल पड़ने लगी। इसलिए इस शती के पूर्वार्द्ध में कई विशिष्ट विद्वानों और सुकवियों के दर्शन होते हैं, जिनमें से कुछ का जन्म १७वीं में और कुछ कवियों का १७वीं के अंतिम चरण या १८वीं के प्रारंभ में हुआ था। इनमें मेघविजय, विनयविजय और यशोविजय के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। मेघविजय की अधिकांश कृतियाँ संस्कृत में हैं परन्तु शेष दोनों ने संस्कृत के अलावा मरुगुर्जर में प्रभूत साहित्य सृजन किया है। पूर्वार्द्ध के श्रेष्ठ कवियों में योगिराज आनंदघन, धर्मवर्द्धन, जिनहर्ष और लक्ष्मीवल्लभ प्रमुख कवि हैं। आनंदघन की चर्चा १७वीं शती में की जा चुकी है। धर्मवर्द्धन राज-मान्य कवि थे। इन्होंने वीरदुर्गादास, अमरसिंह और शिवाजी आदि वीरों पर ओजस्वी गीतों की रचना की है। जिनहर्ष और यशोविजय का भी विवरण १७वीं शती में दिया जा चुका है क्योंकि जो लोग दो शतियों में सृजनरत रहे उनका पूर्व शती में ही विवरण दिया गया है।

किसी युग के कई उपविभाग इतिहासलेखन की सुविधा से किए जाते हैं। सं० १७०१ से १७४३ तक; अर्थात् इस शताब्दी के पूर्वार्द्ध के सर्वश्रेष्ठ कवि यशोविजय जी थे, अतः यदि कुछ विद्वान् इस कालावधि को यशोविजय युग कहें तो आपत्तिजनक नहीं है। वे सरस, सहृदय महाकवि थे और अपनी कविता द्वारा जैनदर्शन, सिद्धांत और धर्म का सुन्दर प्रवचन भी करते थे। वे काव्यरसिक और काव्यकार थे। श्रीपालरास में उन्होंने लिखा है—

> शास्त्र सुभाषित काव्यरस, वीणानाद विनोद।
> चतुर मले जे चतुर ने, तो ऊपजे प्रमोद ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थात् 'काव्य शास्त्र विनोदेन कालोगच्छति धीमतां' की उक्ति उन पर पूर्णतया चरितार्थ होती है। वे रसिकों से काव्यचर्चा को ही परमानंद की वस्तु मानते हैं। महात्मा लाभानंद या आनंदघन महान अध्यात्म योगी और संत कवि थे। जैन साधना के क्षेत्र में आचार्य हेमचन्द्र के छः सौ वर्ष पश्चात् वे दूसरे युगसर्वज्ञ संत हैं। दोनों के मार्ग भिन्न हैं पर गन्तव्य एक हैं। हेमचन्द्र ने लोकसंग्रह का मार्ग चुना था पर आनंदघन का मार्ग आत्मसाधना का था। इसलिए एक ने राजदरबारों को अपना कार्यस्थल बनाया तो दूसरे ने जंगलों और बीरानों को। लोकसंग्रह के क्षेत्र में हेमचन्द्र के रिक्त स्थान की पूर्ति यशोविजय ने ही की। वे प्रखर नैयायिक, तार्किक, शास्त्रज्ञ आचारवान् साधु, समाजसुधारक, धर्मप्रभावक महापुरुष और श्रेष्ठ साहित्यकार थे। अतः हम चाहें तो इस कालखण्ड का नाम उनसे जोड़कर इसे एक अच्छी पहचान दे सकते हैं। आपने प्राकृत, संस्कृत और मरुगुर्जर में पुष्कल रचनायें तो की ही, साथ ही संप्रदायों की मनमानी के विरुद्ध दिग्पट चौरासी बोल, देवधर्मपरीक्षा आदि कई ग्रंथ लिखे। इस प्रकार आपने युग का मार्गदर्शन किया अतः आप युगपुरुष थे और युग का नामकरण आपके नाम पर उपयुक्त है।

यशोविजय जी ने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की तरह एक मण्डल का निर्माण किया जिन्होंने यशोविजय के आदर्शों पर चलकर अपनी रचनाओं से युग को पूर्णतया प्रभावित किया। इनमें विनयविजय, सत्यविजय आदि हैं। इस शती के पूर्वार्द्ध के महाकवियों में जिनहर्ष का उल्लेख किए बिना वर्णन अपूर्ण रहेगा। इन्होंने साठ वर्षों तक मरुगुर्जर में रास, चौपाई, प्रबन्ध और चरित्र आदि की रचना की। इनका प्रारम्भिक जीवन राजस्थान में और सं० १७३६ के पश्चात् सं० १७६३ तक गुजरात (पारण) में बीता; अतः ये मरु-गुर्जर के वास्तविक प्रतिनिधि कवि हैं। इन्होंने दोनों प्रदेशों में प्रचलित देसियों-ढालों का अपनी रचनाओं में भरपूर उपयोग किया। इनकी भाषा में व्रजभाषा, पंजाबी का भी पुट प्राप्त होता है। भक्तिरस और प्रेमतत्त्व इनके पदों और दोहों में भरा हुआ है, यथा—

धन पारेवा प्रीति, प्यारी विणन रहे पलक।
ए मानवियाँ रीति देखी जसा न एहड़ी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस दोहे को पढ़कर विहारी का प्रसिद्ध दोहा याद हो आता है, कितना भाव और वर्णन साम्य इनमें है, देखिये—

पटु पाँखै भखु काकरैं सदा परेई संग,
सुखी परेवा जगत में तूही एक विहंग।

दोनों ने दोहे जैसे छोटे छन्द में भावसागर भर दिया है; 'गागर में सागर' की कहावत चरितार्थ की है। दोनों ने परेवा पक्षी का प्रेम के आदर्श दम्पति के रूप में उदाहरण दिया है। परेवा (Dove) को लेकर महान रूसी कवि टालस्टाय ने भी अपनी कहानी 'ह्वाई देयर इज इविल इन द वर्ल्ड' (संसार में बुराई क्यों है?) लिखी है। वैसे तो जैन कवियों पर यह लांछन लगा दिया जाता है कि वे सम्प्रदाय या धर्म प्रचारक मात्र हैं पर यह कथन शत प्रतिशत सत्य नहीं है। अनेक जैन कवि इसके अपवाद हैं और जिनहर्ष उनमें अग्रगण्य हैं। प्रमाण-स्वरूप उनके विरह वर्णन की दो पंक्तियाँ देखें—

जिण दिन साजन वीछड्या, चाल्या सीख करेह,
नयणे पावस ऊलस्यौ झिरमिर नीर झरेह।[1]

इनकी रचनाओं में बड़ा वैविध्य है। वैराग्य की चर्चा का नमूना देखिये—

ईंधन चंदन काठ करै, सुवृक्ष उपारि धतूर जो बोवै।
सोवन थाल भरे रज-रेत, सुधारस सूँ करि पाड़हि धोवै

× × ×

मूढ़ प्रमाद ग्रह्यो जसराज, न धर्म करे नर सो भव खोवै।

इसकी तुलना में श्रृङ्गार रस की ये पंक्तियाँ रखकर देखने पर इनके वर्णन वैविध्य का अनुमान सम्भव होगा।

गोरउ सउ गात रसीली सी बात सुहात मदन की छाक छकी है।
रूप की आगर प्रेम सुधाकर रामति नागर लोकन की है।।
नाहर लंक मयंक निसंक, चलइ गति कंकण छयल तकी है।
घूँघट ओट में चोट करइ, जसराज के सनमुख आय चुकी है।।[2]

---

१. सं० अगरचंद नाहटा—जिनहर्ष ग्रन्थावली पृ०
(प्र० सार्दूल रिसर्च इंस्टीट्यूट, बीकानेर)
२. सं० अगरचंद नाहटा -जिनहर्ष ग्रंथावली, पृ० ४०१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इनके काव्य रूपों की विविधता, रचना कौशल की विलक्षणता और रचना सृजन की विशालता देखकर पाठक चकित होता है। इन्होंने १८-२० वर्ष की अवस्था से ही साहित्य सृजन प्रारम्भ कर दिया और आधी शताब्दी तक लिखते रहे। इस अवधि में इन्होंने सैकड़ों श्रेष्ठ रचनायें की। आपके कितने गुणों की चर्चा करूँ? आप अच्छे संगीतज्ञ थे, पर सबसे अधिक आप साम्प्रदायिक संकीर्णता से मुक्त सच्चे साधु थे। आपने तपागच्छ के साधु सत्यविजय की प्रशंसा में 'सत्यविजयरास' लिखा और जब आप बीमार पड़े तो आपकी सेवा सुश्रूषा एक तपागच्छीय साधु वृद्धिविजय ने की थी। इससे यह निवेदन करना चाहता हूँ कि वे मुक्त स्वभाव के सहज और सरस कवि थे। उनके पद मीरा और कबीर की कोटि के हैं जैसे 'मेरा दिल लागा साईं तेरा नाम सुँ' या 'मेरो एक संदेशो कहियौ। पाइं परूं मैं वीरबटाऊ, बिच में विलम न रहियो।' मेरी इत्यादि। इनके अलावा लाभवर्द्धन, कमलहर्ष, महिमासमुद्र (जिनसमुद्र), लालचंद (लब्धोदय), विनयचंद, लक्ष्मीवल्लभ आदि उल्लेखनीय कवि हो गये हैं। पूर्वार्द्ध के अनेक बड़े कवियों की तुलना में जब हम उत्तरार्द्ध पर दृष्टि डालते हैं तो कवियों की संख्या क्रमशः अल्पतर होती जाती है साथ ही उनके व्यक्तित्व और कृतित्व भी लघुतर लगते हैं। कुछ अपवाद अवश्य हैं। इनमें प्रमुख नाम श्रीमद् देवचंद का है। इनके अलावा यशोवर्द्धन, अमरविजय, रामविजय आदि कुछ गिने चुने नाम ही मिलते हैं।

मध्यकाल (१७-१८वीं शती) के अन्तिम चरण में जिस प्रकार भाषा परिवर्तन स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है, उसी प्रकार वर्ण्य विषय भी बदलने लगा था। आध्यात्मिकता के स्थान पर भक्तिकाव्य का प्रभाव व्यापक रूप से दिखाई पड़ता है। भक्ति से ओतप्रोत पद, भजन और गीतों की रचना विपुल परिमाण में होने लगी थी। रीतिवाद का यत्किंचित् प्रभाव भी यदा-कदा झलक जाता है पर जैन कवि यथाशक्ति वासनात्मक शृङ्गार से बचते रहे बल्कि समय-समय पर उसके विरुद्ध भी चेतावनी देते रहे। फिर भी कुछ शृङ्गारी रचनायें अवश्य हुईं और छन्द, काव्यरूप तथा शिल्प पर तो रीतिकालीन प्रभाव प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता है। अलंकार और छंदशास्त्र पर रचनायें भी हुईं अर्थात् लक्षण और लक्ष्य ग्रंथ लिखे गये पर इनकी मात्रा दाल में नमक के समान स्वादिष्ट है; अरुचिकर या अश्लील नहीं है। हिन्दी रीतिकालीन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साहित्य के प्रभाववश उदयचंद मथेन और उदयरत्न आदि कुछ कवियों ने रीति और शृङ्गारी रचनायें की हैं। १८वीं शती के उत्तरार्द्ध में प्रबन्धों की तुलना में मुक्तक और स्फुट रचनायें अधिक हुई। उनमें दोहा, सवैया, चौपाई आदि छंदों का प्रचुर प्रयोग हुआ है। हेमराज का दोहाशतक, दौलतराम का विवेक-विलास इसी प्रकार की कृतियाँ हैं। १९वीं शती के प्रारम्भ तक यह स्थिति बनी रही और बुधजन ने बुधजन सतसई और नवल ने दोहापच्चीसी आदि लिखी। ये रचनायें रीति शैली के प्रभाव की सूचक हैं किन्तु इनके शिल्प और रूपविधान तक ही वह प्रभाव सीमित है इनका वर्ण्य-विषय सर्वथा भिन्न है। इनमें अहिंसा और सदाचरण की स्तुति तथा मांसभक्षण, परस्त्रीगमन, अहंकार आदि की निन्दा की गई है। छंद अवश्य दोहे ओर सवैये हैं। ढूढ़ाणी कवियों में जोधराज और पार्श्वदास के सवैये मनोहारी है। जोधराज की ज्ञानसमुद्र और धर्मसरोवर उत्तम कृतियाँ हैं। सन्तों और वैष्णवभक्तों के प्रभाव से पद साहित्य की लोकप्रियता बराबर बनी रही। आगरा और जयपुर में विपुल पद साहित्य लिखा गया है। इन रचनाकारों में भैया भगवती दास, द्यानतराय और जगतराम आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। अनित्य पच्चीसिका (भैया भगवती दास), उपदेश शतक (द्यानतराय) और भूधरशतक (भूधरदास) की कृतियाँ प्रमाणस्वरूप देखी जा सकती हैं।

मरुगुर्जर जैन साहित्य का मध्ययुग विशेषतया १८वीं शती हिन्दी साहित्य का शृंगार काल या रीतिकाल था। इस काल के सभी हिन्दी कवि केवल दरबारी और शृंगारी नहीं थे बल्कि अनेक कबि रीतिमुक्त थे जो हृदय के विस्तार के लिए विस्तृत भावभूमि चाहते थे। वे प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए हृदय का पूर्ण योग चाहते थे न कि इन्द्रियों और शरीर का। इनके काव्य में अर्थविस्तार, भावगाम्भीर्य, तीव्रानुभूति और कोमल कल्पनाओं का मर्मस्पर्शी उद्‌गार व्यक्त हुआ है। इस काल के जैन कवियों में भी ये गुण मिलते हैं किन्तु वे उन्मुक्त प्रेम के गायक नहीं बल्कि अध्यात्म, भक्ति और शील के पुरस्कर्त्ता हैं। ऐसे कवियों में आनंदघन, भगौतीदास, जिनहर्ष आदि विशेष रूप से रेखांकित किए जा सकते हैं। रीतिकालीन हिन्दी कवियों ने भी लोकनीति, उपदेश, प्रेम और अध्यात्म आदि विविध विषयों पर पर्याप्त प्रभावशाली

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साहित्य सृजन किया है जिनके उदाहरणों से ग्रंथ का कलेवर बढ़ाना समुचित नहीं है। इनमें उत्तरार्द्ध की रचनायें प्रायः मुक्तक हैं किन्तु इस शती के पूर्वार्द्ध में प्रबन्धों की रचना भी पर्याप्त संख्या में हुई। अधिकतर जैन कवियों ने पद्मपुराण, हरिवंशपुराण और महापुराण आदि पुराण ग्रंथों के अतिरिक्त प्राकृत, संस्कृत और अपभ्रंश भाषाओं के श्रेष्ठ काव्यग्रंथों का भावानुवाद करके उन्हें नवीन ढंग से प्रस्तुत किया। प्रबन्धकाव्यों की चर्चा आगे यथास्थान की जायेगी, इसलिए यहाँ पुनरुक्ति की आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार हम देखते हैं कि जिस प्रकार १८वीं (वि०) शती राजनीतिक दृष्टि से मुगल साम्राज्य के चरम उत्कर्ष और पतन की संधिबेला है उसी प्रकार जैनसाहित्य के विकास और ह्रास की संक्रमण सीमा भी है। इसके उत्तरार्द्ध से ह्रास का जो क्रम प्रारंभ हुआ वह १९वीं शती में भी उसी प्रकार चलता रहा जिस प्रकार मुगल साम्राज्य के पतन की कहानी चलती रही।

भाषा

पहले कहा जा चुका है कि १८वीं शती तक आते-आते विषय परिवर्तन के साथ-साथ भाषा में परिवर्तन भी परिलक्षित होने लगा था फिर भी बहुतेरे जैन साधु और श्रावक अपनी काव्यरचनाओं में परिपाटीविहिन मरुगुर्जर का प्रयोग कर रहे थे। चूँकि भगवान महावीर ने अपने उपदेशों में प्राकृत का प्रयोग किया था इसलिए उनके अनुयायी १८वीं शती में भी प्राकृताभास मरुगुर्जर का प्रयोग करते थे। यद्यपि इस काल तक अलग-अलग प्रदेशों में गुजराती, राजस्थानी और हिन्दी का स्वतंत्र और स्पष्ट विकास हो गया था और उनमें काफी साहित्यसृजन भी होने लगा था। दिगम्बर कवि तो पहले से ही अपनी रचनाओं में हिन्दी का प्रयोग करने लगे थे, अनेक श्वेताम्बर कवि भी अब ब्रजभाषा और हिन्दी भाषा का प्रयोग कर रहे थे फिर भी ऐसे जैनसाधु कवियों की संख्या कम नहीं थी जो परंपरित मरुगुर्जर का ही मिश्र प्रयोग कर रहे थे।

१८वीं शती में मध्यदेश के बाहर पंजाब से लेकर गुजरात तक काव्यभाषा के रूप में ब्रजभाषा का प्रयोग हो रहा था इसलिए जैन कवियों ने भी इसे अपनाया। जैनकवि पहले से ही अपनी भावाभिव्यक्ति के लिए जनभाषा का प्रयोग करते रहे हैं और ब्रजभाषा इस समय देश के एक विशाल भूभाग की शिष्ट काव्यजनोचित भाषा हो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गई थी, इसलिए इसके प्रति उदासीन रहना उनके लिए संभव नहीं था। व्रजभाषा राजदरबारों और विद्वानों में प्रचलित तथा मान्य भाषा थी। इसमें अद्भुत लालित्य और माधुर्य था। गुजरात में व्रजभाषा साहित्य की परिपाटी पहले से प्रचलित थी जिस पर स्वतंत्र रूप से कई विद्वानों ने काफी शोध किया है। इसलिए काव्य की यह मान्य भाषा थी। जो कवि व्रज प्रदेश के बाहर के थे जैसे ढूढाण आदि सटे क्षेत्रों के थे वे भी व्रजमिश्रित या व्रजभाषा में कविता करने में गौरव का अनुभव करते थे। इसलिए मरुगुर्जर मिश्रित व्रजभाषा, ढूढाणीव्रज या व्रजभाषा में अनेक रचनायें की गईं। ऐसे कवियों में विनोदीलाल, पांडे लालचंद, नथमल, दौलतराम, भूधरदास और मनोहरदास आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

जैन साधु स्थान-स्थान पर विहार करते रहते थे अतः उनकी भाषा क्षेत्रीयता की दीवार में अवरुद्ध नहीं होती। उनकी भाषा में देशज शब्दों, ध्वनियों, क्रियाओं और कारक चिह्नों का सम्मेलन सहज ढंग से हो जाता है। इसलिए ऐसे कवियों की भाषा में ब्रज के साथ राजस्थानी और गुजराती (मरुगुर्जर) का पुट स्वाभाविक है; जैसे कुण, सुण, घणे, पाणी, वैण, जाण, आपणो, स्यूं, करसी, सुणिज्यो, हिरदा, जीवडा, पहुँता आदि शब्दप्रयोग बराबर मिलते हैं, यथा—

पहुँती पीव पास ही जाई, सुणिज्यो प्रभु तुम चितलाई।
हम कौन गुनहों तुम कीयौ, परण्या बिनिही दुष दीयौ ॥[1]

कहीं-कहीं खड़ी बोली के व्याकरणिक प्रयोग और शब्द प्रयोग भी प्राप्त होते हैं। श के स्थान पर स का प्रयोग जैसे विसाल, सारद, सोग और ल के स्थान पर 'र' का प्रयोग जैसे बादर, मूर, घूर आदि देशज भाषा प्रयोग द्रष्टव्य है। 'ण' की अधिकता राजस्थानी प्रभाव के कारण है। संयुक्त वर्णों के सरलीकरण की प्रवृत्ति भी पाई जाती है जैसे श्वेत>सेत, यत्न>जतन, स्नेह>सनेह, मुक्ति> मुगति इत्यादि। जैनकवियों ने लोक प्रचलित तत्सम, तद्भव और देशज सभी प्रकार के शब्दों का सहज और समान रूप से प्रयोग किया है। कुछ अरबी-फारसी के प्रचलित शब्द जैसे जहाँन, दरबार, गरीबनिवाज, दिल, हाजिरी, दुश्मन, खिदमतगार आदि भी मिल जाते हैं।

---

१. नेमिनाथ चरित-पद्य १०३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इनकी शब्दयोजना में ध्वनिमूलकता, वर्णमैत्री, आनुप्रासिकता का समावेश है। एक उदाहरण देखिये–

किलकंत बेताल काल कज्जल छवि छज्जहिं,
भौं कराल विकराल भाल मदगज जिमि गज्जहिं।

प्रसाद गुण जैनकाव्यों की भाषा का प्रधान गुण है, परन्तु इससे यह अभिप्राय नहीं है कि भाषा के अन्य गुणों-माधुर्य और ओज का उनमें अभाव है। वे भी यथावसर ढूढ़ने पर मिल जाते हैं। भाषा की सबसे बड़ी विशेषता उसका भावानुकूल होना है। जैन कवियों ने इसकी हमेशा कोशिस की है। यह अलग बात है वे सर्वत्र इस प्रयत्न में कृतकार्य न हो पाये हों।

एक सफल कोशिस का नमूना लीजिए–

काना कुंडल जगमगै तन सोहै पीतांबर चीर तौ,
मुकुट विराजै अति भली, बंशी बजावै स्याम सरीस वौ।
रास भणौ श्री नेमिको।

पाश्र्वपुराण से अनुप्रास का एक अनूठा उदाहरण प्रस्तुत है—

केला करपट कटहल कैर, कैंथ करौंदा कोंच कनैर।
किरमाला कंकोल कन्हार, कमरख कंज कदम कचनार।

शब्दालंकार की चर्चा भाषा सम्पदा के अन्तर्गत होने के कारण किया गया है परन्तु अर्थालंकारों को छोड़ दिया गया है क्योंकि वे काव्य सौष्ठव के अन्तर्गत आते हैं। पर इसका कदापि यह मतलब नहीं है कि जैन काव्यों में अर्थलिंकारों का नितांत अभाव है। उनमें जगह जगह पर सुन्दर शब्दालंकारों का उदाहरण उपस्थित है जिनमें उपमा, रूपक, अनन्वय, यमक, श्लेष आदि का व्यापक प्रयोग किया गया है। इनका उल्लेख काव्यसौष्ठव का संकेत करते समय यथास्थान करना ही उचित होगा न कि भाषा के अन्तर्गत।

छन्द—जैन कवियों ने नाना प्रललित छन्दों के अलावा चाल और ढाल का प्रयोग किया है जो हिन्दी कवियों की रचनाओं में प्रायः नहीं मिलता। चाल अधिकतर कवियों का प्रिय छन्द रहा है और इसका विधान कथा को द्रुत गति देने के लिए प्रायः किया गया है। कुछ प्रबन्धों में चाल का नाम दिया गया है, इनसे चाल के नाना प्रकारों का संकेत मिलता है। जीवंधर चरित, यशोधर चरित, पार्श्वपुराण,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नेमिचन्द्रिका, श्रेणिक चरित आदि प्रबन्ध काव्यों में चालों का प्रयोग किया गया है। प्रायः सभी जैन काव्यों में अनेक प्रकार के ढालों का प्रयोग मिलता है। ढाल या ढार शब्द से लयात्मकता ध्वनित होती है। वस्तुतः गेयता ढाल की प्रथम विशेषता है। इसका प्रचलन कब से हुआ, क्या ये शास्त्रीय राग-रागिनियों पर आधारित हैं अथवा लोक-गीतों और धुनों पर ढले हैं, इनकी क्या विशेषतायें हैं, कितनी संख्या है, इनसे क्या सुविधा कवि को होती है, यह एक स्वतन्त्र ग्रन्थ का विषय है। अकेले देसाई (मोहनलाल दलीचंद) ने 'जैन गुर्जर कवियो' में हजारों ढालों का उदाहरण देकर एक बड़े महत्वपूर्ण कार्य का श्रीगणेश किया है जिसे आगे बढ़ाना जैन विद्या के अनुसंधित्सुओं का दायित्व है। अभी इन प्रश्नों का समुचित उत्तर मेरे पास नहीं है पर इतना अवश्य कह सकता हूँ कि ये ढाल लोकगीतों की भाँति लोक-हृदय से निकले हैं और लोकमानस को स्पर्श करते हैं, इसलिए जन-प्रिय होते हैं। अकेले नेमीश्वर रास में १०१० ढाल हैं। कवि छन्द लिखने से पूर्व ढाल का उदाहरण बराबर देता चलता है जैसे 'चेत मन भाई ई' ए देशी, या 'दान सुपात्रन दीजिए' ए देशी इत्यादि।

चालों, ढालों के अलावा अन्य परंपरित छन्दों में दोहा, सवैया, कवित्त, सोरठा आदि मात्रिक छन्दों का प्रयोग अधिक हुआ है। ये रचनायें नाना काव्यरूपों और शैलियों में आबद्ध हैं। काव्यरूपों की चर्चा पूर्व खण्ड में की जा चुकी है। प्रायः वे सभी काव्यरूप इस शती में भी प्रचलित थे। जैन कवियों ने अपनी रचनाओं को कहीं संवाद या प्रश्नोत्तर शैली में, कहीं प्रबोधन शैली में, कहीं उपदेशात्मक और कहीं व्यंग्य या उपालंभ शैली में प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है। रूपक शैली में मनोभावों का मानवीकरण भी इस शती की रचनाओं में अधिक मिलता है। इन रूपक या प्रतीकात्मक काव्यकृतियों में चेतन को प्रायः नायक का पद प्रदान किया गया है। भारतीय परंपरा के अनुसार जैन काव्यों में अन्ततः हिंसा पर अहिंसा की, असत्य पर सत्य की, पाप पर पुण्य की और राग पर विराग की विजय दिखाई गई है इतना सब होते हुए भी युग का प्रभाव धर्म की ढाल के भीतर से भी झाँकतादिखाई पड़ जाता है। अलंकरण की प्रवृत्ति और शृङ्गार युक्त वर्णनों का सम्पूर्ण त्याग काव्य में सम्भव भी नहीं होता, इसलिए यदि इस शती की रचनाओं में उनका कहीं-कहीं प्रवेश हो गया है तो अस्वाभाविक कदापि नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रस

इस शती की रचनाओं में शान्त, भक्ति और वियोग श्रृंगार रस की प्रधानता है, शेष रसों का वर्णन गौण है। शांत को जैन कवियों ने सर्वश्रेष्ठ रस माना है, कविवर बनारसीदास ने लिखा है 'नवमो शांत रसनको नायक' अर्थात् श्रृंगार रसराज नहीं बल्कि शांत को रसराज या नायक का पद जैन साहित्य में प्राप्त है। इसलिए अधिकतर कृतियों में शान्तरस की प्रधानता स्वाभाविक है। अन्य रस भी शांत में ही अन्तर्भुक्त किए जाते हैं। समयसार नाटक में बनारसीदास ने रसों का परिचय देते हुए लिखा है–

> अद्‌भुत अनंत बल चितवन, शांत सहज वैराग ध्रुव।
> नवरस विलास परगास तब, सुबोध घट प्रगट हुव ।।

वीर और श्रृंगार रस की कुछ रचनायें अवश्य मिलती हैं पर इनसे अधिक परिमाण में भक्तिरस और उसके स्वरूप को स्पष्ट करने वाली कृतियाँ प्राप्त होती हैं।

भक्तिरस का सुन्दर परिपाक पार्श्वपुराण, नेमीश्वर रास, नेमिनाथ मंगल जैसे ग्रन्थों के अतिरिक्त तीर्थंकरों की पंचकल्याणक स्तुतियों, बीसी, चौबीसी और स्तोत्रों आदि में हुआ है। श्रृंगार के मर्यादित पक्ष--दाम्पत्यभाव--की व्यंजना नेमिचरित, नेमिव्याह, शिवरमणी विवाह तथा राजुल पच्चीसी जैसी रचनाओं में सुन्दर ढंग से हुई है। दांपत्यभाव के संयोग पक्ष को सीताचरित्र, श्रेणिक चरित, नेमीश्वर रास आदि में ढूढ़ा जा सकता है। नेमिनाथ चरित में राजुल द्वारा प्रियमिलन की उत्कंठा से किया गया श्रृंगार संयोगश्रृंगार का ही एक रूप है, यथा–

> राजुल अपने महल में, कर सोड़स सिंगार।
> रूप अधिक स्यौ अधिकै छवि, नैना काजल सार ।।

> अथवा-- अनंग अंग आलिंग को, रंग बहुत उर मांहि।
> संग त्यागि उद्यम कियौ, रहै बनै अब नाहि ।।

(सीताचरित्र पृष्ठ ७०)

> अथवा–कनक कलश कुच कटि मृग बाज, कदली थंभ जंघ सिरताज।
> नषशिष सोभा नृप बहु प्रीति, प्रानहुँ ते अति प्यारी रीति ।।

(श्रेणिक चरित्र पृ० ३)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऐसे कुछ उदाहरण संयोग शृंगार के अवश्य ढूढ़े जा सकते हैं पर वे विरल हैं, इनकी अपेक्षा वियोग के वर्णन अधिक हैं क्योंकि वियोग में ही नारी के शीलनिरूपण का अच्छा अवकाश कवियों को मिलता है। उनके हृदय की कोमल वृत्तियों के प्रसार के लिए विप्रलंभ शृंगार अच्छा अवसर प्रदान करता है। उदाहरणार्थ 'नेमिराजुल बारहमासा' का एक स्थल प्रस्तुत है। वसंत कामदेव का सखा है। वसंत में विरह की पीड़ा का वर्णन करती हुई राजुल कहती है–

पिय लागैगो चैत वसंत सुहावनो, फूलेंगी बेल सबै बनराई।
फूलैंगी कामिनी जाको पिया घर फूलैंगे फूल सबै बनराई॥
खेलहिंगे ब्रज के वन में सबै बाल गोपाल अरु कुंवर कन्हाई।
नेमि प्रिया उठि आवो घरे तुम काहे करैहो तू लोग हसाई॥

(नेमिराजुल बारहमासा, संवाद पृ० ४२)

ऐसा नहीं कि नारी का विरह ही व्यंजित किया गया हो, पुरुष की पीड़ा भी मार्मिक ढंग से प्रकट की गई है। सीताहरण के पश्चात् रामचन्द्र 'बालक' अपने प्रबन्ध सीताचरित में राम की विरह वेदना का मार्मिक निवेदन करते हैं–

राम गयो चलि वेग दे, आगे सीता नाहिं।
मूर्छित ह्वै धरनी परयो दुष व्यापी तन माँहि॥
सावचेत ह्वौ तुरत, उठि करि चाल्यो राम।
सबन को पूछत फिरैं, कहुँ देषी सीता बाम॥

कवि की ये पंक्तियाँ हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवि तुलसीदास की इन पंक्तियों का स्मरण दिलाती हैं–

हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी, कहुँ देखी सीता मृगनैनी।

(रामचरितमानस)

वीर और रौद्र के उदाहरण खोजने पर अवश्य मिल जायेंगे पर यह स्पष्ट है कि कवियों का मन इनमें नहीं रमा है। करुण रस के अपेक्षाकृत अच्छे और अधिक उदाहरण अवश्य उपलब्ध हैं। कृष्ण के महाप्रयाण के दुखद अवसर पर भाई बलभद्र का शोकोद्गार करुणरस का अच्छा उदाहरण है। (देखिये नेमिश्वर रास पृ० ७२)। सीताचरित से करुण का एक उत्तम प्रसंग दे रहा हूँ। जब सेनापति सीता को निर्दिष्ट जंगल में ले जाकर रथ से उतार देता है तो वह आत्मधिक्कार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देता हुआ शोकमग्न हो जाता है और अपने जन्म को व्यर्थ मानता है—

सेनापति अति रह्यो सोच में, भयो बहोत दलगीर।
ऊचों फिरि देखै नहीं, नैन झरै अति नीर॥
माता हौं बिरथा जन्यो वही मास नौ भार।
चाकर ते कूकर भलो, धृंग म्हारो जमवार॥

(सीताचरित पृष्ठ ६)

वात्सल्य के वर्णन पंचकल्याणकों के अवसर पर हुए हैं, इसी प्रकार भयानक और अद्‌भुत रसों के प्रसंग भी प्रबन्ध काव्यों में यत्रतत्र आ गये हैं। सारांश यह कि न्यूनाधिक मात्रा में सभी रसों को कवियों ने प्रसंगानुसार अपनी रचनाओं में स्थान दिया है किन्तु अधिकांश का अवसान शांतरस में ही अन्ततः हुआ है। वे शांतरस की पुष्टि ही करते हैं। शांत के पश्चात् काव्यों में भक्तिरस की प्रधानता है और उसके बाद विप्रलंभ शृङ्गार की। अन्य रसों में करुण, वात्सल्य और संयोग शृङ्गार के अलावा वीर, रौद्र, अद्‌भुत, भयानक का नमूना ढूढ़ने पर प्राप्त होता है।

काव्य-कथ्य—

यह तो बारम्बार कहा जा चुका है कि जैन साहित्य मूलतः धार्मिक साहित्य है। रीतिकालीन जैन कवियों ने छिछले शृङ्गार अथवा लौकिक, काल्पनिक, रूमानी प्रेमाख्यानों की अपेक्षा धार्मिक और आध्यात्मिक साहित्य रचना में ही रुचि दिखाई है। इन कवियों की अधिक धर्मनिष्ठा और अनावश्यक साम्प्रदायिक वृत्ति के कारण साहित्य के साथ कहीं-कहीं अन्याय भी हो गया है परन्तु मात्र इसी कारण समग्र जैन साहित्य की उपेक्षा उससे बड़ा अन्याय है और अब उसके निराकरण का समय आ गया है। विद्वान् मानने लगे हैं कि धार्मिक रचनायें भी उच्चकोटि की साहित्यिक रचनायें हो सकती हैं। कबीर, जायसी, सूर, तुलसी आदि इस कथन के ज्वलंत उदाहरण हैं। इसी प्रकार स्वयंभू, पुष्पदंत, धनपाल से लेकर बनारसीदास, आनंद-घन, यशोविजय आदि भी श्रेष्ठ साहित्यकारों की कोटि के कवि हैं। इनकी रचनाओं में धर्म और साहित्य का सुन्दर समन्वय हुआ है। १८वीं शती की कई काव्यकृतियों जैसे पार्श्वपुराण, बंकचोर की कथा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यशोधर चरित्र, नेमीश्वर रास, सीता चरित्र आदि में धर्म, नीति, उपदेश को रस, छंद, अलंकार, लय आदि श्रेष्ठ साहित्यिक तत्त्वों के साथ इस प्रकार गुम्फित किया गया है कि वे संसार की किसी भी श्रेष्ठ भाषा के उन्नत साहित्य से टक्कर ले सकती हैं। परन्तु दुःख है कि तमाम ऐसी भी रचनायें है जिनमें धार्मिक, सिद्धांत, दर्शन, क्रियाकांड, अर्हत्, सिद्ध, साधु आदि की विरुदावली अनुपात से अत्यधिक हो गई है, कर्म सिद्धांत और भवभवांतर का नियम, पाप-पुण्य की चर्चा, दान, सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, मोक्ष आदि का उपदेश और कठिन साधुचर्या व्रत, उपवास, तीर्थ, संघयात्रा आदि की चर्चा अत्यन्त शुष्क शब्दावली में रूक्ष रूप से थोपने की चेष्टा की गई है। उनमें इसलिए रस नहीं है क्योंकि उनका उद्गम नीरस स्थलों से हुआ है। अतः उन्हें रसमय साहित्य में न रखकर साम्प्रदायिक साहित्य में परिगणित किया जाय तो अनुपयुक्त न होगा। कुछ रचनाओं में इन सिद्धान्तों को पवित्र मनोहारी दृष्टांतों की ओट में रखकर प्रस्तुत करने की समन्वित चेष्टा भी हुई है। ऐसी मध्यम कोटि की रचनाओं की संख्या पर्याप्त है जिनका विवरण आगे दिया जा रहा है।

राजस्थान और गुजरात के जैन शास्त्र भंडारों में ऐसी रचनाओं की भी हस्तप्रतियाँ सुरक्षित हैं जो दरबारी कवियों द्वारा लिखी गई हैं, रीतिग्रस्त हैं और शृंगारप्रधान हैं। उन्हें छोड़ दिया गया है, यद्यपि उनका रचनाकाल १८वीं शती है और वे सशक्त रचनायें हैं। उनपर अलग से कार्य होना अपेक्षित है। इसी प्रकार भण्डारों में तमाम गुटके हैं जिनका संग्रह तो १८वीं शती में हुआ है किन्तु उनमें संकलित रचनायें अलग-अलग शताब्दियों की हैं, इसलिए उन्हें भी अभी छोड़ दिया गया है। जो रचनायें ली गई हैं वे जैन कवियों की हैं और जैन परंपरा के मेल में हैं। ऐसी रचनायें प्रबंध और मुक्तक दोनों काव्य-विधाओं में लिखित हैं। इनका विषय प्रायः धार्मिक, दार्शनिक और पौराणिक विषयों पर आधारित हैं। कुछ रचनाओं में सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों तथा ऐतिहासिक घटनाओं और पात्रों का वर्णन किया गया है। इनके प्रमुख पात्र शलाकापुरुष, तीर्थंकर, सिद्ध-साधु आदि हैं। किसी-किसी काव्य में किसी सती नारी को केन्द्रीय पात्र का महत्व प्रदान किया गया है जैसे सीताचरित्र। पुरातन महापुरुषों के चरित के लिए दिगंबर कवि पुराण एवं चरित दोनों शब्दों का प्रयोग करते हैं परन्तु श्वेताम्बर प्रायः चरित ही कहते हैं। पुराण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में इतिहास, इतिवृत्त या ऐहित्य की चर्चा प्रधानतः होती है। पुराण शब्द में 'इति इह आसीत', 'यहाँ ऐसा हुआ' ऐसी कथाओं का वर्णन होने से उसमें इतिहास की झलक मिलती है। पुराणों में तीनों लोक, तीनों काल, तीर्थ और सत्पुरुषों की चर्चा होती है। ये काव्य चरित काव्यों से साम्य रखते हैं पर एक अंतर यह अवश्य है कि चरितकाव्यों की अपेक्षा इनमें वर्णन विस्तृत, धार्मिक उपदेशों की अधिकता और कथात्मक जटिलता अधिक होती है। उदाहरण के लिए पार्श्वपुराण देखा जा सकता है।

काव्यरूपों की दृष्टि से भी १८वीं शती का जैनसाहित्य वैविध्यपूर्ण और संपन्न है। इस काल में चरित, पुराण, रास या रासो, कथा, चौपई या चौपाई, मंगल, वेलि और बारहमासा आदि प्रबन्धों और खण्डप्रबन्ध तथा संवाद, बीसी, पच्चीसी, चौबीसी, बत्तीसी, बावनी, बहत्तरी, शतक, स्तुति, पूजा, पद आदि नाना मुक्तक काव्यरूपों में सहस्रों रचनायें की गईं। इन काव्यरूपों की संक्षिप्त चर्चा इससे पूर्व के खण्ड में की गई है अतः यहाँ केवल नामोल्लेख किया जा रहा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अचलकीर्ति—आपका विस्तृत जीवनवृत्त ज्ञात नहीं है। आपने अपनी कृति 'अठारह नाते' में थोड़ा सा आत्मपरिचय दिया है—

सहर फिरोजाबाद में हौं नाता की चौढ़ाल,
बारबार सबसों कहो हौं, सीषो धर्मविचार।[1]

इससे इतना निश्चित होता है कि ये भट्टारकीय परम्परा में शिक्षित-दीक्षित थे और इन्होंने प्रस्तुत रचना फिरोजाबाद में की थी। हो सकता है कि ये वहाँ के रहने वाले रहे हों। इनकी गुरु-परम्परा का पता नहीं चल सका। जैन समाज में अठारहनाते की कथा का प्रचलन पुराना है। यह रचना किसी संस्कृत ग्रन्थ पर आधारित प्रतीत होती है। इसके अतिरिक्त इन्होंने विषापहार स्तोत्र, धर्मरासो, कर्मबत्तीसी, रविव्रत कथा नामक ग्रंथ और कुछ स्फुट पद आदि लिखे हैं। विषापहार स्तोत्र नारनौल में सं० १७१५ में लिखी गई थी। इसका रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है—

सत्रह से पन्द्रह सुभथान, नारनौल तिथि चौदस जान।[2]

संस्कृत के प्रसिद्ध कवि धनंजय ने इस स्तोत्र की रचना की थी। यह स्तोत्र उसका अनुवाद या कोरा अनुकरण नहीं है, उससे प्रभावित अवश्य है। भक्त की भावुकता और अभिव्यक्ति की प्रौढ़ता से यह रचना सरस हो गई है, यथा—

प्रभु जी पतित उधारन आउ, बांह गहे की लाज निबाहु
जहाँ देखों तहाँ तुमही आय, घट घट ज्योति रही ठहराय।[3]

यह स्तोत्र जैनसमाज में बहुत प्रसिद्ध है।

कर्मबत्तीसी सं० १७७७ में समाप्त हुई थी। इसमें कुल ३५ पद्य हैं। कर्मों के प्रभाव की चर्चा इसमें सरल ढंग से की गई है। प्रसंगतः पावानगरी और वीरसंघ का उल्लेख है जिससे अनुमान होता है कि ये उसी से संबंधित रहे होंगे। भाषा सरस एवं प्रवाहपूर्ण है। धर्मरासो और रविव्रत पूजा के नामों से वे धर्म और व्रत-पूजा सम्बन्धी रचनायें

१. श्री कामताप्रसाद जैन — हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास पृ० ९७
२. नागरी प्रचारिणी पत्रिका सन् १९००
३. डा० प्रेमसागर जैन—हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि पृ० २४१-२४२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रतीत होती हैं। अचलकीर्ति ने इनके अलावा भक्तिपरक पदों का भी निर्माण किया है, यथा—

काह करु कैसे तिरु भवसागर भारी,
माया मोह मगन भयो महा विकल विकारी।

इनसे व्रजभाषा के भक्त कवियों के पदों का प्रभाव प्रकट होता है जो स्वाभाविक है। वे उसी क्षेत्र (व्रज) के आसपास रह रहे थे और व्रजभाषा उस समय की मान्य काव्य भाषा थी। उसमें रचना करना कवि के लिए गौरव की बात थी। इनका एक फाग दिगंबर मंदिर, बड़ौत के एक पदसंग्रह में अंकित है जिसकी दो पंक्तियाँ देखिए—

डफ बाजन लागे हो हो होरी,
सब मिलि फाग सुहावनी, हो खेलत हैं नरनारी।
छांड़ि गयो महा साँवरो प्यारो, जाय चड़्यो गिरिनारी। डफ।[1]

पंक्तियों से कवि सुलभ उल्लास और सरसता का अनुभव होता है और इस अनुमान की पुष्टि होती है कि अचलकीर्ति की जैन कवि के रूप में कीर्ति वस्तुतः अचल रहेगी। वे कोरे उपदेशक ही नहीं बल्कि भावुक भक्त और सहृदय कवि थे।

अजयराज पाटणी—इनका जन्म सांगानेर(आमरे) में १८वीं शती (विक्रमीय) के अंतिम चरण में हुआ था। इनके पिता मनसुखराम अथवा मनीराम पाटणी गोत्र के खंडेलवाल थे। अजयराज ने भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति के शिष्य महेन्द्रकीर्ति से ज्ञान प्राप्त किया था। ये हिन्दी और संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे। इनकी प्रायः बीस रचनाएँ उपलब्ध हैं; आदिपुराण (१७९७), नेमिनाथ चरित्र भाषा सं० १७३५, कक्काबत्तीसी, चरखा चउपइ, चारमित्रों की कथा, चौबीस तीर्थंकर पूजा, चौबीस तीर्थंकर स्तुति, जिनगीत, जिनजी की रसोई, णमोकार सिद्धि, नन्दीश्वर पूजा, पंचमेरु पूजा, पार्श्वनाथ जी का सालेहा, बीस तीर्थंकरों की जयमाल, यशोधर चौपइ, वंदना, शांतिनाथ जयमाल, शिवरमणी विवाह और विनती। इनमें काव्यत्व की दृष्टि से शिवरमणी विवाह और चरखा चउपइ उत्तम कृतियाँ हैं। ये दोनों रूपक काव्य हैं।

१. डा० प्रेमसागर जैन—हिन्दी जैन भक्तिकाव्य और कवि पृ० २४१-२४२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शिवरमणी (१७ पद्य) में तीर्थंकर रूपी दूल्हा भव्यजनों की बारात के साथ पंचमगति रूपी ससुराल में पहुँचकर भक्तिरूपी शिवरमणी से विवाह करते हैं, तदुपरांत वर-वधू ज्ञानसरोवर में मिलकर तृप्त होते हैं।[1]

चरखा चउपइ (११ पद्य) इसमें कवि ने ऐसा चरखा चलाने का उपदेश दिया है जिसमें शील और संयम रूपी खूँटे, शुभध्यान रूपी ताड़ियाँ लगे हों। इसमें बारह व्रतों का रूपक बाँधा गया है। चरखा चउपइ की कुछ पंक्तियाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं—

श्री जिनवर वंदू गुणगाय, चतुर नारि चर्षे लाय।
राग दोष विगत परिहरै, चतुर नारि चर्षे चित धरै।
प्रथम मूल चरषा को जाणि, देव कर्म गुरु निस्चै आणि।
दोष अणरा रहत सूँ देव, गुरु निरग्रंथ तिण करिसेव।[2]

शिवरमणी से भी एक नमूना लें। शिवरमणी ने आत्मा का मन मुग्ध कर लिया है, यथा—

शिवरमणी मन मोहीयो जी जेठै रहे जी लुभाय।
ज्ञान सरोवर मैं छवि गये जी, आवागमण निवारि।
आठ गुणा मंडित हुवा जी, सुख को तहाँ नहीं छोर।
प्रभु गुण गाया तुम तणां जी अजैराज कर जोड़ि।[3]

आपकी अधिकांश रचनायें भक्ति और अध्यात्म से परिपूर्ण हैं। जिन गीत (१० पद्य) में कवि भगवान को पुकारता है—

थाको तारणैं विरद सुन्यो तुम सरण आइयो जी,
थाको दरसण देषित मैं प्रभु पुनि उपाइयो जी।
प्रभु जी शिवरमणी कौ कंत, परमपद ध्याइयो जी।
तातैं अब मोहि पार उतारि, दया चित लाइयो जी।[4]

---

१. राजस्थान का जैन साहित्य पृ० २१९

२. डा० प्रेमासागर जैन—हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि पृ० ३८५ और डा० लालचंद—जैन कवियों के ब्रजभाषा प्र० काव्यों का अध्ययन पृ० ८४

३. डा० प्रेमसागद जैन—हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि पृ० ३५७-३६४

४. वही पृ० ३५९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिनजी की रसोई (५३ पद्य) में भोजन के नाना व्यंजनों का वर्णन है। इसमें षट्रस का अच्छा वर्णन किया गया है, यथा—

छिमक चणा किया अति भला, हलद मिरच दे घृत में तला।
मेसी रोटी अधिक वणाई, आरोगो त्रिभुवन पति राई।[1]

विनती और पदों में दैन्यभाव की भक्ति से सराबोर पद्य सरस तथा गेय है। इन्होंने कई पूजाएँ लिखी हैं जैसे वसंतपूजा[2], वंदना, विनती आदि। चारमित्रों की कथा सं० १७२१ ज्येष्ठ सुदी १३ को लिखी गई।[3] इनके अलावा आदिनाथ पूजा, चतुर्विंशति तीर्थंकर पूजा, नंदीश्वर पूजा, पंचमेरु पूजा, सिद्ध स्तुति, चौबीस तीर्थंकर स्तुति, बीस तीर्थंकरों की जयमाल, पार्श्वनाथ सालेह आदि नाना स्तुति पूजापरक रचनायें प्राप्त हैं। नेमिनाथ चरित इनकी महत्वपूर्ण प्रबन्धात्मक रचना है। यह २६४ पद्यों में आबद्ध है। इसका रचना-काल इस प्रकार बताया गया है–

संवत सतरा सै त्रेणवै, मास असाढ़ चौपाइ वर्णयो।
तिथि तेरस अंधेरी पाख, शुक्रवार शुभ उत्तिम पाख।[4]

इस खण्डकाव्य की प्रेरणा कवि को आमेर के जैन मंदिर में प्रतिष्ठित नेमिनाथ की मूर्ति से मिली। इसमें नेमिनाथ के चरित्र के साथ राजुल के उदात्त शील का भी सुंदर निरूपण है। रूपचित्रण एवं विविध वस्तुओं का वर्णन रमणीय है। कृति के बीच बारहमासा के रूप में प्रकृति के उद्दीपन विभाव का अच्छा प्रयोग किया गया है। दोहे चौपाइयों में लिखा गया यह खण्डप्रबन्ध संगीतात्मक ढालों के प्रयोग से पर्याप्त गेय हो गया है। उस समय आमेर पर राजा जयसिंह सवाई का शासन था। इसका प्रारंभ —

---

१. डा० प्रेमसागर जैन——हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि—पृ० ३६० और कस्तूरचंद कासलीवाल और अनूपचंद—राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची भाग ३, पृ० ९

२. वही भाग ४, पृ० ५५

३. वही भाग ३, पृ० २९८

४. वही पृ० ३६३ और डा० प्रेमसागर जैन——हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि पृ० ३६३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री जिनवर बंदौ सबै, आदि अंत चउबीसै,
ज्ञानपुंज गुण सारिखा, नमो त्रिभुवन काईस।

अम्बावती या आमेर स्थित नेमिनाथ के मंदिर के आसपास की प्राकृतिक शोभा का वर्णन करता हुआ कवि लिखता है–

अंत--अजयराज इह करियो बषाण, राज सवाई जयसिंह जाण।
अंबावती सहरै सुभ थान, जिनमंदिर जिम देवविमाण।[1]
वीर निवाण सोहै बनराई, बेलि गुलाब चमेली जाई।
चम्पो मरबो अरै सेवती, यो तो जाति नाना बिध केती ॥[2]

अजयराज इस मंदिर में नित्य प्रति पूजा दर्शन के निमित्त जाते थे और भक्ति से प्रेरित होकर नेमिनाथ चरित लिखा। इसके अंत में वे कहते हैं–

ताकौ चरित कह्यौ मन अपणा, बुधि सारु उपजाई।
पंडित पुरुष हंसो मत कोई, भूल चूक यामैं जो तोई॥

इससे स्पष्ट है कि यह मौलिक रचना है।

'श्रेयांस सकल गुणधार' आदि अन्य अनेक छोटी-छोटी स्तुति-पूजा-परक रचनायें भी इनकी उपलब्ध हैं जिनसे प्रमाणित होता है कि अजयराज पाटणी १८वीं शती (विक्रम) के उत्तरार्द्ध के उत्तम कवि थे, अच्छे भक्त थे और सद्गृहस्थ श्रावक थे।

अजीतचंद - आप तपागच्छ की उपकेश शाखा के साधु अमीचंद के शिष्य थे। इन्होंने सं० १७३६, आश्विन शुक्ल १० को रेवा के किनारे स्थित होडियो नामक स्थान में धर्मपुर निवासी श्रावक अभयचंद के आग्रह पर 'चंदनमलयागिरि रास' की रचना की। इसमें चंदन और मलया की कथा है जो जैनसाहित्य में अनेक कवियों द्वारा नाना रचनाओं में कही गई है। इसका उद्धरण नहीं मिला, अतः कवि की कवित्व शक्ति के संबंध में कुछ कहना संभव नहीं है।[3]

---

१. डा० लालचंद जैन —जैन कवियों के ब्रजभाषा प्रबन्ध काव्य का अध्ययन पृ० ८३-८४
२. डा० प्रेमसागर जैन – हिन्दी जैन भक्तिकाव्य और कवि पृ० ३६३
३. श्री मोहनलाल दलीचंद देसाई–जैन गुर्जर कवियो भाग २ पृ० ३५५ (प्रथम संस्करण) और भाग ५ पृ० २६ (नवीन सं०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभयकुशल--खरतरगच्छ की कीर्तिरत्न सूरि शाखा के संत ललितकीर्ति के शिष्य पुण्यहर्ष आपके गुरु थे। आपकी 'ऋषभदत्त रूपवती चौपाई' और 'विवाहपटल भाषा' नामक दो रचनाओं का उल्लेख मिलता है। प्रथम कृति की रचना सं० १७३७ फाल्गुन १० को महाजन नगर में हुई जो निम्न उद्धरण से प्रमाणित होता है

संवत् मुनि गुण ऋषि शशि अे, फागुण मास उदार।
उजवाली दसमी दिने अे, महाजन नगर मझार ॥[१]

जैन गुर्जर कवियों के प्रथम संस्करण में रचनाकाल १७३० बताया गया था जो उद्धृत पंक्तियों को देखते हुए अशुद्ध लगता है। गुरुपरंपरा से संबंधित कुछ पंक्तियाँ आगे दी जा रही हैं—

कीरतिरतन सूरींदनी, शाखा सकल वदीत।
ललितकीरति पाठकवरु अे साधु गुणे सुपवित्त।
तास सीस जगि परगडा अे, बहु विद्या भंडार।
श्री पुण्यहरष पाठक जायो अे, तसु संनिधि लहिसार।
अभयकुशल अे भाषिओ अे, सषर संबंध रसाल।
भणतां गुणतां वाचतां अे, बाधइ मंगल माल ॥

विवाह पटल भाषा राजस्थानी मिश्रित हिन्दी की कृति है। यह ५६ पद्यों की छोटी रचना है। इसके अंतिम दो छंद नमूने के रूप में प्रस्तुत हैं-विवाह पटल ग्रंथ छे मोटो, कहितां कबही तावे त्रोटो।

मूरख लोक समझावण सारू, अे अधिकार कीयो हितकारू।
पुन्यहरष वाचक परगडा, परवादी गंजण उतकटा।
तसु प्रसादे शुभमति लही, अभयकुशल वाचक अे कही।[२]

यह रचना श्री अगरचंद नाहटा संग्रह में सुरक्षित है।

अभयचंद सूरि--आपकी एक रचना का पता चला है; वह है 'विक्रम चौबोली', इसे सूरिजी ने सं० १७२४ आषाढ़ कृष्ण १० को पूर्ण किया था। यह पद्यबद्ध कथा है। भाषा हिन्दी है और इसे कवि ने मतिसुंदर के लिए लिखा था।[३]

१. देसाई—जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १२९५-९६ (प्रथम संस्करण)
२. वही भाग ५, पृ० २८ (न० संस्करण)
३. संपादक–कस्तूर चन्द कासलीवाल और अनूपचंद–राजस्थान के जैन शास्त्र भंडारों की ग्रन्थसूची भाग ४, पृ० २४०

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

अभयसोम—खरतरगच्छ के सातवें जिनचंद्र सूरि के शिष्य सोमसुंदर आपके गुरु थे। आपकी निम्नांकित रचनायें प्राप्त हैं—

वैदर्भी चौपइ चैत्र पूर्णमासी सं० १७११, चंद्रोदय कथा चौपइ सं० १७२० नवसर, जयंती संधि सं० १७२१, खापरा चोर चौपइ १७२३ सिरोही, विक्रम लीलावती चौपइ सं० १७२४, मानतुंग मानवती चौपइ सं० १७२७, वस्तुपाल तेजपाल चौपइ सं० १७२९, गुणावली चौपइ सं० १७४२ सोजत, पार्श्वनाथ छंद, दादागुरु छंद।[1] इनमें से प्रमुख रचनाओं का परिचय सोदाहरण दिया जा रहा है।

वैदर्भी चौपइ का रचना काल इस प्रकार बताया गया है,

संवर सतर अग्यारोतरइं जी रे चैत्री पुनिम मान।

गुरुपरंपरा—षरतरगच्छइं सोहग संपदाजी जिनचंद चढतइं वान।
सोमसुंदर गुरु सुपसावलइं जी रे, कहिय कथा भरपूर
अभयसोम श्री संघनइ रे, मंगल करै सनूर।

इसमें श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न की पत्नी वैदर्भी के रूप-गुण के साथ शील का वर्णन मुख्यरूप से किया गया है, यथा—

यादवकुल मंडण जायो, किसन प्रजून कुमार,
तास त्रिया गुण वरणवुं, वैदरभी विस्तार।

इस चौपइ का प्रारम्भ इन पंक्तियों से हुआ है—

पास जिणेसर परगडो, दोलित नो दातार,
फलवधि तो ग्रइं फलवधि, नाम जपइ निरधार।[2]

विक्रमचरित पर इनकी दो रचनाये हैं प्रथम विक्रमचरित्र खापरा चौपइ (२८ ढाल २८८ कड़ी सं० १७२३ ज्येष्ठ, सिरोही) का रचनाकाल कवि ने इन पंक्तियों में लिखा है—

सत्तरह से तेवीसे समेजी, जेठ मास जगिसार।
सीरोही नगर सुहामणो जी, चरित कीयौ सुखकार।

---

१. श्री अगरचंद नाहटा—परंपरा पृ० ९८

२. श्री देसाई—जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० १४२ (प्रथम संस्करण) और भाग ४, पृ० १७८ न० सं०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आगे वही गुरुपरम्परा दी गई है जो वैदर्भी चौपइ में बताई गई है। इसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ निम्नलिखित हैं—

सरसत माता समरी ये, नितप्रत लीजै नाम।
चित माहे जे चिंतवै ते सविसीझै काम।
पय जुग प्रणमी तेहना, विक्रमचरित कहेस।
सांनिधि करज्यो मायडी हुं तुझ विनय बहेस।[1]

विक्रम चरित्र से सम्बन्धित दूसरी रचना को लीलावती अथवा चौबोली भी कहा जाता है। यह रचना सं० १७२४ प्रथम आषाढ़ कृष्ण दसमी को पूर्ण हुई थी। इसमें विक्रमादित्य और रानी लीलावती के परिणय की कथा कही गई है। इसका प्रारम्भ देखें—

वीणा पुस्तक धारणी, हंसासन कविमाय।
प्रह उगमंत नित नमुं, सारद तोरा पाय॥
× × ×
चउबोलें राणी चतुर, शीलवती सुषकार।
विक्रम परणी जिण विध्ये, कथा कहसि निरधार॥

इसके रचनाकाल से संबंधित पंक्तियों के दो पाठांतर मिलते हैं, प्रथम पाठ--

सतरैं चउबीसें किसन दसमी, आदि आषाढ़ सही।

और दूसरा पाठ--

सतर चौबीसे वर्ष ते जाण अे, मास आसाढ़ महिपति राण अे।
कृष्ण दसमी सुगुरु विचार अे, संक्षेपे कह्यो में आचार अे॥[2]

मानतुंग मानवती चौपइ (१४ ढाल ३०० कड़ी सं० १७२७ आषाढ़ शुक्ल २, गुरुवार) इसमें मानतुंग मानवती की प्रेमकथा के माध्यम से कवि ने सत्य की सर्वोच्चता प्रमाणित की है, यथा-

धरम अनेक प्रकार छे, साँच समो नहि कोय।
बोलणहारो साँचना, विरलो कोइक जोइ।

रचना के अंत में भी इसी सत्य पर बल देते हुए लिखा है—

---

१. श्री देसाई—जैन गुर्जर कविओ भाग ४, पृ० १७८ (नवीन संस्करण)
२. वही भाग २ पृ० १४५ और भाग ३ पृ० ११९५-९८ (प्रथम संस्करण) तथा भाग ४ पृ० १८ (न० संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देखी महिमा साँच तणइ करइ,
संसार ना ते सुख पामी सयल भवसागर तरइ।

रचनाकाल-संवत सतवीसै धुरै, सुदि आषाढ़ बीजा दिनै गुरइ।[1]

यह रचना राजस्थान भारती भाग १२ अंक १ में प्रकाशित हो चुकी है।

वस्तुपाल तेजपाल चौपइ--(सं० १७२९ श्रावण) इसमें वीरधवल के प्रसिद्ध अमात्य बन्धुओं का यशोगान किया गया है—

जिनसासन जगि सोहकर, वस्तुपाल तेजपाल।
ते हूँआ इण पंचमइ, कहिसुं बात रसाल॥

इन दोनों मंत्रिवरों की जीवनी पर आधारित अनेक जैन रचनायें उपलब्ध हैं। इसके अंत में अभयसोमजी लिखते हैं--

पोरवाड बंसै अे धीगे धडै, कुण जगि कीजै अेहनी समवडै।
गुरुमुखि संभलि लोकमुषै सुणी, चरित थकी पिण रास कह्यं भणी।

अर्थात् इनके समान अन्य कोई नहीं हुआ, इनके चरित्र की चर्चा समाज में व्याप्त है जहाँ से कवि ने भी सुनी थी। इसका रचनाकाल इस प्रकार कहा गया है—

कह्या इ भणिनै रास रंगै, सतरह से गुणतीस अे।
श्रावणै खरतरगच्छ सोहै, श्रीजिणचंद अधीश अे[2]।

इन्होंने अपनी कई रचनायें अपने प्रिय शिष्य मतिमंदिर के लिए बनाई थी जैसा कि इन पंक्तियों से प्रकट होता है —

वाचनाचारिज सोमसुन्दर अभयसोमै उपदिसी,
अे कथा सुन्दर मतिसुन्दर, सगुणने हीयडै वसी[3]।

कुछ रचनाओं की इन बानगियों के आधार पर निस्संकोच कहा जा सकता है कि अभयसोम इस शती के एक समर्थ कवि और प्रभावशाली साधु थे।

---

१. श्री देसाई—जैन गुर्जर कविओ भाग ४ पृ० १८२ (नवीन संस्करण)
२. वही भाग ३ पृ० ११९५-९९ (प्रथम संस्करण)
३. वही भाग ४ पृ० १८४ (न० संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अमर कवि—आप अभयसोम के गुरुभाई थे अर्थात् सोमसुन्दर के शिष्य थे। आपकी रचना '२४ एकादशी प्रबन्ध' सं० १७११ में लिखी गई थी। यह 'राजस्थानी वृत्त कथायें' नामक पुस्तक में प्रकाशित है।[1] इस कृति का विशेष विवरण नहीं प्राप्त हो सका।

अमरचंद—अंचलगच्छ की विधि शाखा के अमरसागर>गुणसागर पक्ष के रयणचंद>मुनिचंद के आप शिष्य थे। इनकी बृहद् रचना 'विद्याविलासचरित्र' या पवाडो ३ खण्डों में विभक्त है। इसे अमरचंद ने सं० १७४५ भाद्र शुक्ल ८ भृगुवार को राधनपुर में पूर्ण किया था।

अे अधिकार में अेहवो गायो, श्री संघतणे मनि भायो जी।
अमरचंद ये संघ आसीसा, हो जो सुजस जगीसा जी।
सवत १७४५ भाद्रपदमास सुहरषे जी,
शुदि अष्टमी सोहे भृगुवारे रास रच्योराधणपुरें रंगिसुं गायो,
श्रीसंघ थयो सवायो जी।=हितकारे जी।
पाँच से सवा चोपाई अनुमाने, रास में ते कहायोजी।[2]

इसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं--

सकल सुखदायक सदा प्रणमुं जिनवर पास।
समरुं सरसति सामिनी, वर दे मुझ सुविलास।[3]

इसमें विद्याविलास की कथा को प्रमाण बनाकर दान का महत्व समझाया गया है--

गुरु प्रणमुं गिरुआ ध्रुवां ज्ञान दृष्णि गुण जांण।
दानतणां फल वर्णतां वर दे मुझ हे वाणि।
पुन्य थकी ऋधि पामिइं, पुन्ये बहुला पुत्र।
पुन्ये माने पंचजन, साखि अेहनो सुत्र।[4]

गुरुपरंपरा—विधिपक्ष नो राजीओ श्री अमरसागरसूरि जांणो जी,
तप तेज दिवाकर ते तपे, मुझ जंपे अमृत वाणो जो।

१. अ० च० नाहटा—परंपरा पृ० ८९
२. मो० द० देसाई—जैन गुर्जर कवियो भाग २ पृ० ३७३ प्र० सं०
३. वही, भाग ३ पृ० १३८८ प्र० सं०
४. वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धीगडमल्ल धर्मधुरंधर, पाटोधर पुण्यवंतो जी।
सूर कल्याण नो शिष्य सवाई गुणसागर मतिवंतो जी,
तसि पषि में महाव्रतधारी वाचक श्री हितकारी जी,
रयणचंद सुनाम अनोपमबहुला तप व्रतधारी जी।
शिष्य तसु नामे सुविनीता श्री मुनिचंद मतिवंताजी,
नाम लेयंते पातिग नासे, भागे मन की चिंता जी।[1]

यह रचना शा खीमसी प्रेम जी द्वारा प्रकाशित की जा चुकी है।

अमरपाल—आपका जीवनवृत्त या विशेष परिचय नहीं उपलब्ध है। आपकी एक रचना आदिनाथ के पंचमंगल सं० १७७२ की बताई गई है। उससे यह भी पता लगता है कि आप गंगवाल गोत्रीय खंडेलवाल वैश्य थे तथा देहली के निकट जयसिंहपुर में निवास करते थे।[2]

अमरविजय (गणि) या अमरगणि—आप १८वीं के उत्तरार्द्ध और १९वीं शती के प्रथम दशक के कवि हैं। आपका रचनाकाल सं० १७६१ से १८०६ तक ज्ञात होता है। आप खरतरगच्छ के जिनरत्नसूरि के पट्टधर जिनचंद्र सूरि के शिष्य महोपाध्याय उदयतिलक के शिष्य थे। आपकी पच्चीस रचनाओं की सूचना श्री अ० च० नाहटा ने दी है-- भावपच्चीसी १७६१ (गाथा २६); सम्मेतशिखर स्तवन सं० १७६२ फाल्गुन शुक्ल १४; संघसहयात्रा, पार्श्वस्तवन सं० १७६२ और १७६६; सिद्धाचलतीर्थस्तवन सं० १७६९; अरहन्ना संञ्झाय १७७०; मेघकुमार चौढालिया सं० १७७४ बगसाऊ, मुच्छमाखण कथा सं० १७७५; सुमंगलरास, मेतार्य चौपइ १७८६ सरसा; रात्रि भोजन चौपइ १७८७ नायासर, जैसलमेर स्तवन १७८७; लोद्रवा स्तवन १७८७; सुकमाल चौपइ १७९० आगरा; सुकोमल संञ्झाय १७९०; सुप्रतिष्ठ चौपइ १७८७ राजपुर; सुदर्शन चौपइ १७९८ नायासर; पूजाबत्तीसी सं० १७९९ फलौंदी; समकित ६९ बोल संझाय १८००; उपदेश बत्तीसी

---

१. जैन गुर्जर कवियो भाग २ पृ० ३७३ (प्रथम संस्करण) और भाग ५ पृ० ४९-५० (नवीन संस्करण)

२. संपादक—कस्तूरचन्द कासलीवाल— राजस्थान जैन शास्त्र भंडारों की ग्रंथसूची भाग ४ पृ० १०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सं० १८०० के अतिरिक्त अनेक स्तवनादि संवतोल्लेख रहित भी ज्ञात हुए हैं।[1] इनमें से कतिपय कृतियों का विवरण-उद्धरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

सुप्रतिष्ठ चौपइ (सं० १७९४ मागसर रवि, मरोठ) इसमें कवि ने अपनी गुरु परम्परा का उल्लेख इस प्रकार किया है—

श्री खरतरगच्छनी परंपरा श्री जिणचंद मुनीस,
उदयतिलक पाठक जग परगडा चारु विचक्षण-सीस।
अमर भमर सम गुरुपद कमलनुं अहनिसि सेवत रंग,
गुरुदेव अनुग्रह थी जसगाइयो साधुमहागुण चंग।

रचनाकाल—संवत सत्तरे से चोराणवे, रविदिन मगसिर मास।
चढी प्रमाण भली या चोपइ, हूऔ ज्ञान प्रकास।[2]

सुदर्शन चौपइ (सं० १७९८ भाद्र शु० ५)

आदि—श्री सिद्धारथ सुत नमुं वर्द्धमान शिववास,
काम कुंभ मण कल्पतरु इहनी पूरण आस।[3]

रचनाकाल—संवर सत्तर अठाणवा बरषे, भादव सुकल मझारि।
तिथि पंचम कवि सिद्ध वृद्धि योगे, पूरण भई कथा री।

इसमें आठ सर्ग हैं—

आठम सरग करि रास रच्यो, रस लहे अउ सिद्ध वरारी।
सरधा सेती सुणहि सुणावे, सुख पावे नर नारी।
पंच परमेष्ठी जे समरेसी मंगलिक आचारी।
ते नर अमर मुगति सुखविलसे जैनधर्म उपकारी।

इसमें कवि ने अपना नाम केवल 'अमर' दिया है। सुप्रतिष्ठ चौपइ में भी अमर नाम ही दिया है लेकिन सुदर्शन चौपइ की निम्न पंक्ति में अमरगणि भी लिखा है, यथा—

तसु विनती अमरगणि पभणे, गुरुदेव पांय दया री।
कोड़ी थी जिण कुंजर कीयो, अघट ही घाट घटा री।

---

१. अरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० १०३-१०४
२. श्री देसाई—जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० ५८२ (प्रथम संस्करण)
३. वही भाग ३ पृ० १४५७ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्मदत्त चौपइ में कवि ने अपना नाम अमरविजय लिखा है। पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

थया परंपर रतनसुरिंदा, श्री जिणचंद मुणिंदा रे,
उदयतिलक पाठक सुखकंदा, अमरविजय आणंदा रे।[1]

इससे स्पष्ट होता है कि उदयतिलक के शिष्य प्रसिद्ध कवि अमरविजय ही अमर और अमरगणि हैं। इन्होंने धर्मदत्त चौपइ का रचनाकाल इस प्रकार बताया है—

गुण पूरण वसु चंद्र संवच्छर, कीनों चोमास रहासर रे।
कातिक मास धनतेरस वासर, रचीयो रास सुवास रे।

इनकी अक्षरबत्तीसी नामक रचना में हिन्दी भाषा का स्पष्ट और स्वच्छ प्रयोग मिलता है। शेष रचनाओं की भाषा मरुगुर्जर या राजस्थानी मिश्रित हिन्दी है।[2] आपका रचनाकाल १९वीं शती के प्रथम दशक तक फैला है अतः कुछ रचनाओं को छोड़ दिया जा रहा है। परन्तु जितनी रचनायें देखी गई उनके आधार पर ये क्षमतावान् सर्जक सिद्ध होते हैं।

अमरविजय II—तपागच्छीय विजयराज सूरि के भी एक शिष्य अमरविजय हो गये हैं उन्होंने भी 'पार्श्वनाथ स्तुति' लिखी है। पूर्ववर्णित खरतरगच्छ के उदयतिलक के शिष्य अमरविजय की पार्श्वस्तवन नामक तीन रचनायें सं० १७६२, ६६ और ६९ की प्राप्त हैं, लगता है कि इनमें से एक रचना प्रस्तुत अमर विजय की है। निम्न पंक्तियों से यह कथन प्रमाणित भी होता है—

भट्टारक श्री विजयराज सूरि तप गच्छ केरो राय जी।
तस पद पंकज मधुकर सरीखो अमर विजय गुण गाय जी।[3]

ठीक ऐसी ही उपमा सुप्रतिष्ठ चौपइ में खरतरगच्छीय अमरविजय ने भी दी है और स्वयंको गुरु के चरणकमलों में निवास करने वाला

1. मो० द० देसाई—जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १४५७ (प्र० संस्करण) तथा भाग ५ पृ० २१४ (नवीन संस्करण)
2. राजस्थान का जैन साहित्य पृ० १७८ और २८०
3. श्री देसाई—जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० ३६२ (प्रथम संस्करण) और भाग ५ पृ० ३९ (नवीन संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भौंरा बताया है। इससे लगता है कि यह रचना उन्हीं अमरविजय की है या दोनों रचनाओं में कुछ घालमेल हो गया है। इनके गुरु श्री विजयराज का स्वर्गवास सं० १७४२ में हुआ था अतः यह निश्चित है कि ये १८वीं शती के लेखक थे पर इनकी रचना का निश्चय नहीं हो पाया है। पार्श्वनाथ स्तुति यदि इन्हीं की रचना हो तो इसका रचनाकाल भी सं० १७४२ के आसपास होगा।

अमरसागर— तपा० धर्मसागर>गुणसागर>भाग्यसागर> पुण्यसागर के आप शिष्य थे। इनकी रचना 'रत्नचूड चौपइ' मधुमास ? चैत्र शुक्ल १० गुरुवार को मालवा के खिलजीपुर में पूर्ण हुई थी। यह रचना विजयरत्न सूरि के सूरिकाल में लिखी गई। वह कालावधि है सं० १७३२ से १७४९। अतः इसी बीच यह रचना किसी वसंत ऋतु में की गई प्रतीत होती है। इसे कवि ने 'उपदेश रत्नाकर' नामक ग्रंथ के आधार पर लिखा है। इसमें रत्नचूड़ की कथा के व्याज से दान की महिमा बताई गई है। प्रमाण स्वरूप पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

कहीश कथा मौतिक मणी, सांमलिज्यो नरनारि।
रत्नचूड गुणवंत नी, दान तणै अधिकार।
उपदेश रत्नाकर ग्रंथ थी मे जोंई रे संवंध।
बासठि ढाल दूहे करी लोकभाषाइं रच्यो अेह संबंध।[1]

कवि ने अपनी भाषा को लोकभाषा कहा है अर्थात् काव्यभाषा का यही रूप कम से कम जैन साधु लेखकों में प्रचलित था। यह ग्रंथ काफी विस्तृत है, यथा—

तीन सहस्र नव सत्तर ऊपरे, सत्तसठि श्लोका जाणि,
मधुमास दिन दसमी दिने गुरुवारे रे चोपईचढ़ी प्रमाण।

उन दिनों अमरसागर जी खिलजीपुर में चौमासा करने गये थे, वहीं पर शिष्यों के आग्रह पर यह रचना उन्होंने पूरी की थी, वे लिखते हैं—

मालव देस में अति भलुं, खिलजीपुर पुण्यवास।
शिष्य तणां आदर थकी, कीधी चोपइ रे तिहां रही चोमास।[2]

१. श्री देसाई—जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १२८६-८७ (प्र० संस्करण)
२. वही भाग ३ पृ १२८७ (प्र० संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसमें कवि ने तपागच्छीय विजयदेव सूरि से लेकर विजयप्रभ, विजयरत्न, धर्मसागर, गुणसागर, भाग्यसागर और पुण्यसागर तक की गुरुपरंपरा का उल्लेख किया है। पुण्यसागर के बारे में वे लिखते हैं—

तस चरण पंकज रसिक मधुकर अमरसागर सीसे।
शिष्य ने हित करणइ कीधी चउपइ रे, पुहती मनह जगीस।

पंक्तियों से लगता है कि गुरु के चरण कमलों में शिष्य अपने को भ्रमर के समान लिखने की रूढ़ि का प्रायः निर्वाह करते थे।

अमीचंद—आपने सं० १७१३ में 'सीमंधर जिनविज्ञप्ति' नामक रचना की। रचनाकाल इन पंक्तियों से प्रकट है—

संवत सत्तर से तेरोत्तरे सुचि मास
सुदी सातमि शुक्रे स्वातियोगे शुभ तास।
सूरि विजयप्रभ राज्ये चित्त तणे उल्लास।
नयर वाडा मांहि थुणीयो रहे चौमास।

अर्थात् यह रचना विजयप्रभसूरि के पट्टकाल में हुई थी। उस समय कवि वाड़ा या वडली में चौमास कर रहा था। वहीं के भक्त-जनों के आग्रह पर आपने यह रचना की थी, यथा—

वडली नो वासी व्यवहारी शुभचित्त,
गेलाकुल दीवो अमीचंद सुपवित्त।
संवेगी सुधो त्यागी सब सच्चित्त।
अे तवन रच्युं में भणवा तेह निमित्त।[१]

अमृतगणि—की एक रचना 'नेमिराजुल संवाद' सं० १७३१ की सूचना जलगाँव के श्री उत्तमचंद कोठारी की सूची से मिली है।[२] सूची में अन्य विवरण नहीं है।

१. श्री देसाई—जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० १५२ (प्रथम संस्करण)
२. उ० च० कोठारी—ग्रंथसूची (पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अमृतसागर– आप आंचलगच्छीय अमरसागर>नेमसागर>शीलसागर के शिष्य थे। आपकी एक रचना 'रात्रिभोजन परिहार रास' सं० १७३० की लिखी प्राप्त है। जैसा इसके नाम से ही सूचित होता है यह रात्रि भोजन छोड़ने की अच्छाइयों पर प्रकाश डालती है। इसका अपर नाम जयसेन कुमार रास भी है। यह सं० १७३० विजयदसमी गुरुवार को अंजार में लिखी गई थी। संबंधित पंक्तियाँ देखिये --

पूज्य पुरंदर चिरजगि प्रतपउ, गच्छ अंचल गणधार जी।
श्री अमरसागर सूरीश्वर सुपरइं द्रूजां लगि थिरथार जी।

रचनाकाल--श्री शीलसागर गुरु सुपसायइं, अमृतसिन्धु उदार जी।
सत्तरह त्रीसइ नमसुदि सातमि, जोडिरची जयकार जी।[१]

इसमें तीन खण्ड है और ४४ ढाल है। तृतीय खण्ड के अन्त में भी कवि ने लिखा है—

सतरह सइं त्रीसइ संवच्छरि, विजयदसमि गुरुवारि।
त्रीजे खण्ड थयउ तीहां पूरण, इणि परि पुरि अंजारि रे।

चूँकि प्रति का प्रथम पृष्ठ अनुपलब्ध है अतः कृति का मंगलाचरण नहीं प्राप्त हो सका। कवि ने अपने को अमृतसिन्धु भी लिखा है। इस प्रकार नाम के खण्ड का पर्यायवाची प्रयोग कभी कभी भ्रम का कारण बन जाता है।

अमृतसागर II—एक अन्य अमृतसागर तपागच्छ के श्रुतसागर के शिष्य शांतिसागर के शिष्य हो गये हैं। उनकी एक गद्य रचना का उल्लेख मो० द० देसाई ने किया है वह है 'सर्वज्ञशतक बालावबोध', यह रचना सं० १७४६ में लिखी गई। उस समय वृद्धिसागर का सूरिकाल था। यह रचना अमृतसागर के दादा गुरु धर्मसागर सूरि की मूल रचना की व्याख्या है। मूल रचना में १२३ गाथायें हैं।[२]

---

१. श्री देसाई—जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० २७१ और भाग ३ पृ० १२७४-७५ (प्रथम संस्करण)

२. वही भाग २ पृ० ५९२, भाग ३ पृ० १६२५ (प्रथम संस्करण) और भाग ५ पृ० ५४ (नवीन संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आणंदनिधान -आप खरतरगच्छ की आद्यपक्षीय शाखा के मतिवर्द्धन के शिष्य थे। आपने मौन एकादशी चौपइ सं० १७२७ जोधपुर; कुलध्वज चौपइ सं० १७३४ सोजत; कीर्तिधर सुकोशल चौढालिया सं० १७३६ वगडी और देवराज वच्छराज चौपइ सं० १७४८ वैशाख शुक्ल को सोजत में लिखी।[1] आपकी रचनायें कई हैं जिससे आप समर्थ कवि प्रतीत होते हैं; पर खेद है कि आपकी रचनाओं का उद्धरण और विवरण प्राप्त सूत्रों से उपलब्ध नहीं हो सका अतः आपकी रचनाओं का विवरण नहीं दे सका।

आणंदमुनि--आप लोकागच्छीय शिवजी के शिष्य त्रिलोक गणि के शिष्य थे। इनकी कई कृतियाँ प्राप्त हैं जिनमें गणित विषयक रचना 'गणितसार' सं० १७३१ लालपुर में रची गई थी। इसके अलावा हरिवंश चरित्र नामक विशाल रास ४ खण्डों में सं० १७३८ में राधनपुर में इन्होंने पूरा किया था।[2]

गणितसार सं० १७३१ श्रावण, लालपुर (दिल्ली) औरंगजेब के शासनकाल में लिखी गई थी; कवि ने लिखा है—

दल्ली जहांनाबाद बषाण, अवरंगसाह छत्रपति जाण।
लोक बसे निज सुखिया सहु, पर उपगार करे ते बहु।

आश्चर्य है कि जिस बादशाह को लोग कट्टर मुसलमान, मूर्तिभंजक और क्रूर कहते हैं आणंद मुनि ने उसके शासन को लोगों के लिए सुखकर बताया है। हो सकता है कि इसके दो कारण रहे हों, पहला तो यह कि सामान्यतया सभी शासकों और राजा-रजवाड़ों से जैनसंघ का प्रायः अच्छा संबंध रहा है इसलिए औरंगजेब से भी ठीक रहा हो; दूसरे लोकागच्छ के लोग भी मूर्तिपूजा में विश्वास नहीं करते थे, इसलिए औरंगजेब के मूर्तिभंजक स्वभाव से उन्हें परेशानी न मालूम पड़ी हो। कवि ने काजी, कोटवाल और अदालत के अधिकारी शेखसुलेमान तथा मीरहुसेनी की भी प्रशंसा की है और बताया है कि वे लोग वादों का निपटारा शीघ्र और न्याययुक्त करते थे, यथा—

---

१. श्री देसाई—जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १२४५ (प्रथम संस्करण) और अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० १०९

२. अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० ११३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जेजेनर आवे फरियाद, सुणे सहु को वादविवाद
तुरत लेख लखि आपे घणा, न्याय करे कुलमुलकह तणा ।[1]

इसमें नागौरी सरदार श्रावक रामचन्द्र और उनके पुत्रों-- मानसिंह, हरिकृष्ण, भगीरथ और रूपचन्द की चर्चा है जिनके यहाँ गणि त्रिलोकसी ने सं० १७३१ में चौमासा किया था। वही पर यह रचना उसी समय हुई थी—

संवत सतर सये अेकतीस, श्रावण मास सदा सुजगीस ।
गणित सार मुनि आनंद कहे, भणे गणे सीखे सुखलहे ।

हरिवंश चरित्र—(सं० १७३८ कार्तिक शुक्ल १५ सोम, राधनपुर) आदि—

श्री सुखदायक नेमजी, जादव कुलसणगार ।
श्री हरिवंश तिलक प्रभु, वंछीत वरदातार ।

रचनाकाल--श्री राधनपुर रंगस्युं, सत्तरसे अड़त्रीस जी,
कार्तिक सुदी पुन्य महीने, सोमवार सुजगीसजी ।

कवि ने यह रचना उत्तराध्ययन की टीका, ज्ञाता, अंतगड और समवायांग आदि अंग ग्रन्थों के आधार पर की है और यह चार खण्डों में है, यथा—

चोथा खण्ड तणी सही, ढाल कही एकत्रीस जी,
भणे गुणे बांचे सुणे, सुख संपत्ति जगीस जी ।[2]

इसके अंत का कलश निम्नाङ्कित है—

हरीवंश उतपती शास्त्र बहू श्रुति नेमि जिनपति जगगुरु,
श्री कृष्ण यदुपति त्रिखंड नरपति बंधव बलभद्र खुषकरु ।
भामादि रुकमणि आठि भामणी, मुगतिगामणी गाइअे,
संघ परजुन आदि बहु गुण भणत सहु सुष पाइअे ।[3]

आणंदरुचि--आप तपागच्छीय उदयरुचि के प्रशिष्य और पुण्यरुचि के शिष्य थे। आपने सं० १७३६ में 'षट् आर पुद्गल परावर्त्त स्वरूप

१. श्री देसाई—जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० २८३ (प्रथम संस्करण)
२. वही पृ० २८६ (प्रथम संस्करण)
३. वही भाग २ पृ० २८६ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्तवन' लिखा जिसकी प्रारंभिक पंक्तियाँ निम्नवत् हैं—

श्री सिद्धाचल नित नमी, ऋषभ जिनेसर देव,
भवभयवारण जिनवरु, सेव करी नितमेव।
वीनत करूं मी माहरी रलीऊ भव अनंत,
संसार सागर मांहि थिकउ, अव्यक्त मिथ्याती हुंत।
जनम मरण कर्या घणा, कहत न लाभे पार,
पुद्गल परावरत अनंत जे, सूक्ष्म तेह विचार।[1]

गुरु परम्परान्तर्गत कवि ने तपागच्छ के विनयप्रभसूरि, विजयरत्नसूरि, उदयरुचि और पुण्यरुचि का सादर उल्लेख किया है, तदुपरान्त इन पंक्तियों में रचनाकाल का निर्देश किया है—

तस सीस लेसि स्तवीउ उलसी आणंदरुचि आदीसरो,
इंदु मुनि गुणरस संख्या अेह संवत्सर चितधरो।

कवि ने जैन, शैव और यवन शास्त्रों को ध्यान में रखते हुए पुद्गल पर विचार किया है। समन्वय की यह भावना औरंगजेब के समय, जब साझी संस्कृति का जनाजा निकल रहा था, अनोखी है। यह जैन साहित्य में ही संभव है अन्यत्र तो दुर्लभ थी। कवि लिखता है—

त्रिण जग माँहि तीरथ अेहवउ अवर न कोई जाणीउ।
जैन, शैव जवन शास्त्रि, महिमा तास बखाणीउ।

इसे ६ आरा स्तवन भी कहते हैं। इसमें पुद्गल-परावर्त्तन, सम्यक्त्व, १४ गुणस्थान और ६ आरा आदि का वर्णन किया गया है। यह साम्प्रदायिक रचना होते हुए भी अनेकांतवादी उदार दृष्टिकोण के कारण दुराग्रह मुक्त और समन्वयशील है। काव्यत्व सामान्य कोटि का है। रचना में छंद भंग के कारण लय और प्रवाह नहीं है। फिर भी जैसे घी का टेढा लड्डू भी अच्छा ही लगता है वैसे ही काव्य शिल्प भले अटपटा हो पर कवि-कथ्य उत्तम कोटि का है।

आणंदवर्द्धन—ये खरतरगच्छीय महिमासागर के शिष्य थे। इन्होंने अरहन्नक रास सं० १७०२ (४), चौबीसी सं० १७१२, अंतरीक

1. श्री देसाई—जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० ३५५ (प्रथम संस्करण) भाग ३ पृ० १३२६ और भाग ५ पृ० १७-१८ (नवीन संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्तवन, विमलगिरि स्तवन, कुलपाक आदि स्तवन सं० १७२६, कल्याण-मंदिरध्रुपद और भक्तामर सवैया आदि रचनायें की हैं।[1] अरहन्नक रास का रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है—

संवत सत विडोत्तरइ वडखरतर गच्छैवास,
मणि महिमासागर हितवीनवे आणंदपुरे कहियो रासविलास।[2]

इसका एक पाठान्तर इस प्रकार भी मिलता है—

संवत सत्तर चाडोत्तरी वडखरतरे गच्छवास,
गणि महिमासागर गुरु हितकर आणंदि ते कहियो रासविलास।

विडोत्तर और चाडोत्तर के कारण यह निश्चय नहीं हो पाता कि रचना सं० १७०२ की है अथवा १७०४ की। इसका आदि देखिए—

सरसति सामिणि वीनवुं रे, प्रणमी श्री ऋषिराय,
साधु शिरोमणि गुणनिलोरे, अरहन्नक सिरताज।

चौबीसी सं० १६१२ (चौबीस जिन गीत भास)

आदित कुलगिर चन्द्रमा, संवत खरतर वाण,
चउबीसे जिन वीनव्यां, आतमहित मन आण।
जिन वर्द्धमान मया करो, चउवीसमा जिनराय।
महिमासागर वीनती आणंदवर्द्धन गुणगाय।

प्रथम रचना अरहन्नकरास – जैन संज्झाय संग्रह (सारा भाई नवाब) और अन्यत्र से भी प्रकाशित है। चौबीसी नामक दूसरी रचना चौबीसी बीसी संग्रह और स्तवन मंजूषा में प्रकाशित है। चौबीसी का आदि इस प्रकार है—

आदि जिणंद मया करू, लाग्यो तुम्ह शूं नेहा रे,
दिन रयणी दिल में बसे, ज्यूँ चातक चित्त मेहा रे।[3]

आदि की इन दो पंक्तियों से ही इतना पता लग सकता है कि कवि भक्त है और सहृदय भी। भक्त कवियों में भगवान और भक्त के सम्बन्ध को चातक और मेघ द्वारा दर्शाया गया है। इनकी अन्य स्तवन सम्बन्धी रचनायें भी भक्तिभावपूर्ण हैं और कवि की भावुकता

१. अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० १०६-०७
२. श्री देसाई—जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० १२४-२५, १४९ (प्र० सं०) भाग ३ पृ० ११८० और ११९९ (प्रथम संस्करण)
३. वही भाग ४ पृ० ६७ (नवीन संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की द्योतक हैं। कवि संगीत का जानकार है और रचनाओं में शास्त्रीय रागों तथा दोहा सवैया आदि छन्दों का उसने अच्छा प्रयोग किया है।

आनंदसूरि—आपकी एकमात्र रचना 'सुरसुन्दरी रास' का पता चला है जिसकी रचना सं० १७४० में हुई। अन्य सूचनायें अनुपलब्ध हैं।[1]

आनंदघन—आप १७वीं १८वीं शताब्दी के महान साधक संत और कवि थे। आपकी आनंदघन बहत्तरी या आध्यात्म बहत्तरी तथा चौबीसी नामक रचनायें अति विख्यात हैं। आपके पदों में कबीर की तरह अनुभव का सत्य, प्रिय के विरह की पीड़ा और साधना तथा तप का तेज है। आपके कृतित्व का परिचय तथा रचनाओं में व्यंजित रहस्यवाद की चर्चा द्वितीय खण्ड (१७वीं शती) में ही किया जा चुका है इसलिए यहाँ विस्तार से बचने का प्रयत्न है।

आसकरण—आपकी मर्मस्पर्शी रचना 'नेमिचन्द्रिका' का निर्माण सं० १७६१ में हुआ था। इसमें नेमिनाथ और राजुल का चरित्र चित्रण सुंदरता के साथ किया गया है। इसका कथात्मक संघटन और शिल्प सौन्दर्य इसकी कोमल करुण कथा में चार चाँद लगा देता है। राजुल के चरित्र में घात-प्रतिघात की व्यञ्जना मार्मिक है। प्रियपथ पर चलते-चलते उसका हृदय विरह और करुणा के संगम में अवगाहन कर परम सात्विक एवं पवित्र हो गया है। कुछ पंक्तियाँ देखिए—

ए उठि चाली है राजकुमारि, पिया पथ गहि लियो हो।

× × × ×

काहे केत दुख मोको दीयो, कौन मेरो सुख हरि लीयो।
जब नहि पावहि उत्तर देहि, दीरघ सांस उसांसजु लेहि।[2]

---

१. मोहनलाल दलीचंद देसाई—जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० ३५९ (प्रथम संस्करण) और भाग ५ पृ० ३७ (नवीन संस्करण)

२. नेमिचन्द्रिका पृ० २९-३० और डा० लालचंद जैन—रा० ब्रजभाषा के प्रबन्ध काव्यों का अध्ययन पृ० ७९-८०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नेमिचन्द्रिका का उल्लेख उत्तमचंद कोठारी की सूची में भी है पर उसमें भी विवरण उद्धरण नहीं है।[1]

इन्द्रसौभाग्य—तपागच्छीय राजसागरसूरि > वृद्धसागर > लक्ष्मीसागर > कल्याणसागर > सत्यसौभाग्य के आप शिष्य थे। आपकी 'जीवविचार प्रकरण' और 'धूर्त्ताख्यान प्रबन्ध' (सं० १७१२) नामक दो रचनायें उपलब्ध हैं। आपने राजसागरसूरि के अंतिम समय में ही संस्कृत में 'महावीर विज्ञप्ति षट्त्रिंशिका' की रचना की थी। धूर्त्ताख्यान गद्य में रचित है या पद्य में, इसका पता नहीं चल सका है। जीवविचारप्रकरण के प्रारंभ की पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

वीर जिणेसर पय नमी, कहिस्युं जीव विचार।
सिद्ध अनइ संसार नां, अे बिहु जीव प्रकार।

इसकी अंतिम पंक्तियाँ निम्नलिखित हैं—

तपगच्छमंडन वाचक नायक सत्यसौभाग्य गुरुराय रे,
तास शिष्य इणिपरि रे बोलै, इन्द्रसौभाग्य उवझाय रे।
बालक ने भगवान कारणे, विरच्यो जीवविचार रे।
भणे गणे जे भवियण भवि, ते आमे भवपार रे।[2]

आपके सं० १७४७ तक विद्यमान रहने का पता लगता है। इनकी शिष्य परंपरा में वीर सौभाग्य > प्रेम सौभाग्य और शांतसौभाग्य आदि हुए। शांतसौभाग्य ने सं० १७८७ में पाटण में अंगडदत्त ऋषि चौपइ लिखी थी जिसकी चर्चा यथास्थान की जायेगी।

उत्तमचंद—आप तपागच्छीय विजयदेव सूरि के प्रशिष्य एवं विद्यानंद के शिष्य थे। आपकी एक रचना 'उपधान विधि स्तवन' सं० १७११ श्रावण शुक्ल १० गुरुवार को बीजापुर में पूर्ण हुई। इसकी प्रारंभिक पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

सरसति सारदा रे, सीस नमी गुरुपाय रे।
उपधान विधि भावे भणु रे, सांभलता सुखथाय रे।
श्री अरिहंत की सीखड़ी रे।

---

१. सूची का प्राप्ति स्थान—पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी
२. श्री देसाई—जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० १४५ और भाग ३ पृ० ११९४ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रचनाकार–संवत सत्तर बरसइ अेकारस सार,
श्रावण सुदि दसमी दिवसै गुरु ते वार।
पंडित विद्यानंद सीस कहइ कर जोड़ी,
अे तवन भणसइ तेह-घर संपति कोडि।

इसका कलश इस प्रकार है—

इय पास जिणवर भविक दुखहर वीजपुर मंडण धणी।
मनि आस पूरइ पाप चूरइ जासि जगि कीरति घणी।
तपगच्छनायक मुगतिदायक श्री विजयदेव सूरीसरो,
वर विबुध विद्यानंद सेवक उत्तमचंद मंगलकरो[1]।

इनकी एक 'बीसी' भी है पर यह निश्चित नहीं कर पाया हूँ कि यह इन्हीं उत्तमचंद की रचना है। इसके आदि और अन्त की पंक्तियाँ दे रहा हूँ—

आदि–श्री सीमंधर मुझ मन मानीउ जी, पर उपगारी परधान रे,
आस्यापूरण अे जिन उलगउ रे, जिउं पामउ अविचल थान रे।

अन्त–रुखमणी वर वखति मिल्यो जी, तउ पहुंती सघली आस रे,
उत्तमचन्द मांगइ अेतलइंजी करयो तुम्हारो दास रे।[2]

उत्तमसागर –आप तपागच्छीय कुशलसागर के शिष्य थे। आपने 'त्रिभुवन कुमार रास' (६५० कड़ी) की रचना सं० १७१२ वैशाख शुक्ल ३ गुरुवार को पोरबन्दर में पूर्ण की थी। इसके सम्बन्ध में कवि कहता है कि रास पहले भी बहुत लिखे गये और आगे भी बहुत से रचे जायेंगे पर त्रिभुवनकुमार रास को सुनकर यदि श्रोता न रीझें तो या वे गुणज्ञ नहीं या मेरी वाणी में रस नहीं, यथा—

सरस रास अनेक छे, होस्यो वली अनेक।
त्रिभुवनसिंह कुमार नो, सुणयो रास विवेक।
एह रास सुणतां थको, जे नर नवि रीझंत,
तो मुझ वयनि रस नहीं, के श्रोता नहीं गुणवंत।

---

१. श्री देसाई—जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० १४२, भाग ३ पृ० ११९४ *(प्र०सं०) और भाग ५ पृ० १८५ (न० संस्करण)*

२. वही भाग २ पृ० १४२ और भाग ३ पृ० ११९४ प्र० सं०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग़ालिब ने इसी तर्ज पर कहा था—

'दे और दिल उनको न दे गर मुझको जुबाँ और'

इसकी आदि की पंक्तियां देखिए—

श्री श्रुतदेवी सार, समरूं सासन नायिका;
प्रणमुं जिन चौबीस वलि सद्गुरु-सुखदायका।

रचनाकाल—संवत सतरे वरोतरे आषा त्रीज गुरुवार।
रास रच्यो पुरबंदिरे, जिहां मोटो रे जिन त्रिण्य विहार।

इसमें उत्तम सागर ने विजयदेव सूरि विजयप्रभ और कुशलसागर का सादर स्मरण किया है। इन्होंने यह रचना भणशालि वीरा के आग्रह पर की थी। यह रचना भद्रबाहु भाषित त्रिभुवन चरित्र पर आधारित है, यथा—

भद्रबाहु भाषित बड़ो रे देषी कुमार चरित्र,
स्तवतां गुण गुणनिधि तणां, म्हि रचना रे कीधी सुपवित्र, के।[1]

जैन कवियों ने प्रायः प्राचीन कृतियों के आधार पर नवीन भाव-भंगी के साथ अपनी रचनायें की हैं जिन्हें कोरा अनुकरण नहीं कहा जा सकता और न वे उनकी मौलिकता का दावा करते हैं, किन्तु वे पाठकों से सहृदयता और समझदारी की अपेक्षा अवश्य करते हैं।

उदयचंद मथेन (यति)—खरतरगच्छ के ऐसे जैन यति जो साध्वाचारका पूर्ण पालन न कर सकें उन्हें मथेन कहा गया है। प्रस्तुत मथेन राज्याश्रित सुकवि थे। इन्होंने बीकानेर के महाराज अनूपसिंह के लिए अलंकार और नायक-नायिका भेद पर आधारित रीतिग्रंथ अनूपरसाल सं० १७२८ में लिखा। इसकी पुष्पिका में इसके रचयिता की जगह अनूपसिंह का ही नाम दिया हुआ है किन्तु प्रति की प्रारंभिक सूची में 'मथेन उदयचन्द कृत' लिखा हुआ है। इसकी एकमात्र प्रति अनूप लाइब्रेरी बीकानेर में सुरक्षित है। इन्होंने संस्कृत में पांडित्य-दर्पण नामक ग्रंथ लिखा है। हिन्दी में आपकी लोकप्रिय रचना 'बीकानेर गजल' है जो अपने समय में अनोखी विधा की रचना थी

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो भाग २ पृ० १४७-१४९ और भाग ३ पृ० ११९९ (प्र० सं०) और भाग ४ पृ० २४७-४८ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशेषतया जैन यतियों के लिए। इस जैन कवि ने रूढ़ि से आगे बढ़कर गजल लिखी और रीतिकाल की माँग के अनुसार रीति ग्रंथ भी लिखा। इस गजल में बीकानेर नगर का सुन्दर वर्णन है और यह 'वैचारिकी' पत्रिका के बीकानेर विशेषांक में प्रकाशित हो चुकी है।[1] यह रचना सं० १७६५ चैत्र में की गई थी, इसकी कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

बीकानेर सहर अजब है रे च्यार चक में ताको प्रसिद्धी लीनी।
उदयचन्द आणंद सु युं कहे रे, भले चातुर लोक कै चित्त भीनी।
चक च्यारे नवखण्ड में रे प्रसिद्ध बधावो बीकानेर ताईं।
छत्रपति सुजाणसाह जुग जीवो, जाके राज में बाजे नौबत याई।

इससे यह लगता है कि वे सुजान सिंह के भी कृपापात्र थे, या उनके शासनकाल में रचनाशील थे। रचनाकाल इस प्रकार बताया है—

संवत सतरे सें पैंसठ रे मास चैत में पूरी गजल कीनी
मात सारदा के सुपसाय सु रे मुझे खूब करण कीमति दीनी।
मनरंग सूं खूब बनाय केरे, सुणाय के लोक में स्याबास पाई।
कवि चंद आणंद सु थुं कहे रे, गिगड़धूं गिगड़धूं गजल खूब गाई[2] ॥

उदयचंद—ये अंचलगच्छीय विनयचंद के शिष्य थे। इन्होंने सं० १७१४ फाल्गुन शुक्ल शनि को 'माणिककुमर की चौपइ' पूरी की। गुरु परम्परान्तर्गत इन्होंने कल्याणसागर>अमरसागर>विनयचंद का उल्लेख किया है और स्वयं को विनयचंद का शिष्य कहा है, यथा—

विनयचंद शिष्य इम भणइ अे, उदयचंद आणंदि,
सयल सिद्धि आवी मिलइ अे, जिउं माणिक नरिंद।[3]

रचनाकाल---संवत सतर चउदोतरइ अे, शुदि फागण सुभ मासि
शनि रोहणी सुभ घड़ी अे, कीउ संबंधि उलासि।

---

१. अगरचन्द नाहटा—राजस्थान का जैन साहित्य पृ० २७६।

२. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो भाग ३ पृ० १४१४ (प्र०सं) और भाग ५ पृ० २३०-२३१ (न० सं०)।

३. वही, भाग ३ पृ० १२०३-०४ (प्र० सं०) और भाग ४ पृ० २६५-२६६ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसमें शील की महत्ता माणिक नरेन्द्र की कथा के माध्यम से स्पष्ट की गई है।

दान शील तप भावना अे, धर्म मांहि मुखि शील
व्रत सारथक वली तेहना, जे पालइ जगि शील।[1]

कवि ने नवरसों की सूची संस्कृत श्लोक में दी है, इससे उसके काव्य शास्त्र संबंधी अभिरुचि का अनुमान होता है। इस रचना का कुछ भाग जैनाचार्य श्री आत्मानंद शताब्दी स्मारक ग्रन्थ के पृ० १९२ से १९६ पर प्रकाशित हुआ है।

उदयरत्न--खरतरगच्छ के जिनसागर सूरि के शिष्य उदयरत्न ने सं० १७२० फाल्गुन कृष्ण २, गुरुवार को जिनधर्मसूरि के आदेश से 'जंबू चौपाई' की रचना की। इसका उदाहरण और अन्य विवरण नहीं मिला।[2]

उदयरत्न II--तपागच्छीय विजयराज > विजयरत्न > हीररत्न > लब्धिरत्न > सिद्धरत्न > मेघरत्न > अमररत्न > शिवरत्न के शिष्य थे। ये इस शती के एक महत्वपूर्ण कवि हो गये हैं। इनकी छोटी-बड़ी पचासों रचनायें प्राप्त हैं जिनमें से अनेक प्रकाशित हो चुकी हैं। ये खेड़ा गुजरात में प्रायः रहते थे और इनका स्वर्गवास मियांगाँव में हुआ था। इन्होंने शृङ्गाररस पूर्ण एक रचना 'स्थूलिभद्र नवरसो' लिखी थी जिसके कारण आचार्य ने इन्हें संघ से बहिष्कृत कर दिया था; बाद में इन्होंने 'नववाड ब्रह्मचर्य' की रचना की तो पुनः तीन-चार वर्ष पश्चात् संघ में प्रवेश प्राप्त हुआ। आप एक प्रभावक साधु थे और जैनधर्म के प्रचार-प्रसार में इन्होंने महत्वपूर्ण योगदान दिया था। इनकी कुछ रचनाओं का विवरण-उद्धरण आगे दिया जा रहा है।

जम्बू स्वामी रास (६६ ढाल सं० १७४९ बीजा, भाद्र शुक्ल १३, खेडा हरियालाग्राम)।

---

१. मोहनलाल दलीचंद देसाई--जैन गुर्जर कवियो भाग ३ पृ० १२०३-४ (प्र० सं०) और भाग ४ पृ० २६५-६६ (न० सं०)।
२. वही भाग ३ पृ० १२१५ (प्र० सं०) और भाग ४ पृ० २९९ (न० सं०)।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

आदि – रमज्योति परकासकर, परम पुरुष परब्रह्म,
चिद्रूपी चित्त मांहि धरूँ, अकल स्वरूप अगम्य ।
सरस कथा रस केलवुं पामी पास पसाय,
संबंध जंबु स्वामी को कथावंध कल्लोल ।
चित्तशुं श्रवणे चाखतां अभिनव अमृत घोल
भर यौवन मांहे भामिनी, आठ तजी मद मोड़ि ।

× × ×

नवरस सरस संबंध मनोहर, अे मे रास बनाया जी ।
चतुर तणी करि चउस्ये अे तव,
लहिस्ये अे मूल सवाया जी[1] ।

रचनाकाल—संवत सत्तर उगुण पंचासि, द्वितीय भाद्रपद मासि जी ।
सित तेरसि सदा सुभदिवसे, रासरच्यो उल्लासि जी ।

गुरु परंपरान्तर्गत कवि ने उपरोक्त आचार्यों की विस्तृत नामावली दी है । अन्त में लिखा है—

ढाल छासठिमी राग धन्यासी पूरण पूजी आसो जी,
उदयरत्न कहें श्रवणें सुणतां, कमला करे घरिवासो जी ।

अष्टप्रकारी पूजा (७८ ढाल सं० १७५५ पोष शुक्ल १०, अणहिलपुर, पाटण)

आदि–अजर अमर अकलंक जे अगम्य रूप अनंत,
अलष अगोचर नित नमुं जे परम प्रभुतावंत ।

रचना का विषय और रचनाकाल —

अर्चा अरीहंत देव नी अष्ट प्रकारी जेह,
भावभेद युगति करीं विधिशुं वषानुं तेह ।
संवत सतर पंचावना वरषें पोस मासइं मनु भाया,
रविवासरे दसमी दिवसइं पूरण कलस चढाया रे ।

---

१. मोहनलाल दलीचंद देसाई – जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० ३८६-४१४; भाग ३ पृ० १३४९-६५ (प्र० सं०) और भाग ५ पृ० ७६-११४ (न०सं०) ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुरु परम्परा इसमें भी वही दी गई है, इसकी अंतिम पंक्तियाँ निम्नांकित हैं—

उदयरत्न कहि आठोतिरमी ढाले धन्यासी गवाया,
संघ चतुर्विध चढ़त दिवाजा, सुखसंपति बहुपाया रे[1]।

यह रचना जिनेन्द्र स्तवनादि काव्य संदोह भाग २ पृ० २४२ पर प्रकाशित है। स्थूलिभद्ररास अथवा संवाद अथवा नवरसो (९ ढाल सं० १७५९ मागसर शुक्ल ११ सोमवार, ऊना गाँव)

आदि--सुख संपतदायक सदा, पायक जास सुरिंद,
सासण नायक सीवगती वांदुवीर जिणंद।
जंबू द्वीपना भरत मां पाडलीपुर नृप नंद,
सिकडाल महेंतो तस प्रिया लाछल दे सुखकंद।

× × ×

श्री स्थूलभद्र भोगी भ्रमर मुनीवर मां पिण सिंह,
वेश्या विलूंधो ते सही न लहे रात निंदीह।

रचनकाल— सत्तर से उगणसाठ मागसिर रे सुदी मौन एकादशी रे।

पाठांतर—सत्तर से उगणसाठ मागसिर रे सुदी पाँच निमवार शशीरे।

इसे गुलाबचंद लक्ष्मीचंद खंडेलवाल ने प्रकाशित किया है।

शंखेश्वर पार्श्वनाथ नो शलोको अथवा छंद (सं० १७५९ वैशाख कृष्ण ६)

रचनाकाल--ओगणसाठ ने उपर सत्तर बरषे,
बइसाख वदी छठी ने दिवसे,
एह शलोको हरखे में गायो,
सुख पायो ने दुरगति पलायो।

यह शलोका संग्रह और प्राचीन छंद संग्रह में प्रकाशित है।

मुनिपति रास (९३ ढाल २८२१ कड़ी, सं० १७६१ फाल्गुन कृष्ण ११ शुक्रवार, पाटण) आदि

सकल सुखमंगल करण, तरण बुद्धि भंडार
सर्व वस्तुवादे सदा आदि पुरुष अवतार।

---

१. मोहनलाल दलीचंद देसाई—जैन गुर्जर कवियो भाग ५ पृ० ७६-११४ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रचनाकाल–फागुण वदि अेकादसी दिवसे, सतर से अेकसट्ठा वरषे,
शुक्रवासर ने श्रवण नक्षत्रे, सर्वयोग मनहर्षइ रे। ते मुनि।
पंचासर प्रभुपास प्रसादे, श्री मणिपति मुनि गायो,
अणहिलपुर पाटण मां अे मे, पूर्णकलस चढायोरे। ते मुनि।[1]

राजसिंह रास अथवा नवकाररास अथवा पंचपरमेष्ठी (३१ ढाल ८८० कड़ी सं० १७६२ मागसर शुक्ल ७ सोमवार, अहमदाबाद)

आदि –अरिहंत आदि देइ ने परमेष्ठी जे पंच,
पहिले प्रणमुं तेहने, जिमलहीइ सुख संच।

इसमें नवकार मंत्र का माहात्म्य बताया गया है––

श्री नवकार तणा गुण गाया मनवंछित सुख पाया, बे,
मीलतणा दृष्टांत बताया, परगट फल देखाया बे।
पंचकथा गर्भित गुणधारी, अे भीलचरित मनोहारी, बे।
सुणी नवकार जपो नरनारी, सुरनर शिव सुखकारी, बे।

रचना काल एवं स्थान––

संवत सत्तर बासठ बरषे मागसिर सुदी सातमे हरखे बे,
सोमवार नक्षत्र धनिष्ठा, हर्षण योग गरिष्ठा बे।
गुर्जर मंडल मांहि गाजे, गढ़ चौफेर विराजे बे,
अहमदाबाद नगीनो जे, भूषण साबरमति नो बे।[2]

ब्रह्मचर्य अथवा शियल नी नववाड संज्झाय (१० ढाल सं० १७६३ श्रावण कृष्ण १०, बुधवार, खंभात) आदि––

श्री गुरु ने चरणे नमी समरी सारद मात,
नव विध सीयलनी वाडीनो, उत्तम कहुँ अवदात।

अंत –खंभाति रही चोमास सत्तर त्रेसठे हो श्रावण वदि (बीजा)
दसमी बुधे भणी।
उदयरत्न करजोडि सीयलवंत नर नारीहो तेने जाऊं भामणे।

बारव्रतरास (७७ ढाल १६७१ कड़ी सं० १७६५ फाल्गुन शुक्ल ७ रवि, अहमदाबाद)

---

१. मोहनलाल दलीचंद देसाई—जैन गुर्जर कवियो भाग ५ पृ० ७६-११४ (न० सं०)।

२. वही भाग ५ पृ० ८८-८९ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदि-वंदू अरिहंत सिद्ध ने आचारज उवझाय,
साधु सबेनि नित नमुं शिवपथि जेह सखाय।

× × ×

देश विरतिनो धर्म जे समकित मूल व्रत बार,
रास रचुं हुं तेहनो आलोवा अतिचार।

रचनाकाल— कार्तिक शुति सातमी रविवारे, सत्तर से पासठ वरषे,
उत्तराषाढ़ नक्षत्र धृति योगि, संघने आग्रह ने हरषे रे।

अंत—सत्तोत्तरमि ढाल सोहावी, उदयरतन कहि आज,
कल्याणनि में कोड़ी उपाई, पाम्यो अवीचल राज रे,
भावि समकित सुरतरु सेवो।

मलयसुन्दरी महाबलरास अथवा विनोदविलास रास (१३३ ढाल २९७५ कड़ी सं० १७६६ माग शुक्ल ८ सोम, खेड़ा हरियाला गाम)

प्रारम्भ में तीर्थङ्कर शांतिनाथ, पार्श्वनाथ और गौतम गणधर तथा गुरु हीररत्न के साथ सरस्वती की वंदना की गई है। मंगलाचरण के पश्चात् कवि कहता है—

मलयसुन्दरी नो मोदस्यूं नामि विनोद विलास,
ग्रंथ आगम गुण लेइने रम्य रचूं हुं रास।

रचनाकाल तथा स्थान—

संवत सतरै सै छासठि, मागसिर सुदि आठमि दिवसे रे,
पूर्वाभद्र पद नक्षत्रे सिद्धि योग सोमवारनि करिसे रे।
खेडा हरियाला गाम मां जिहां प्रतिपि पास जिणंदो रे,
भीडि भंजण नामि प्रभु प्रतपि जग जेम जिणंदो रे।[1]

यशोधररास (८१ ढाल १५०३ कड़ी सं० १७६७ पौष शुक्ल ५, गुरु, पाटण)

आदि--कर आमल परि जे फलि, सकल विश्व सयकाल।
त्रिकालवेदी त्रिविध नमुं, ते जिन सुविधि त्रिकाल।

रचनाकाल—सतर सें सतसठा समिरे, शुदि पांचमि सुदिनां
पोस मास गुरुवासरिरे, सिद्धि योग शुभ लगनां।

---

१. मोहनलाल दलीचंद देसाई—जैन गुर्जर कविओ भाग ५ पृ० ८८-८९ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाटणपुर ने परिसरि रे, उर्णाकपुर संघनां ।
भीडिमंडन प्रतपे प्रभु रे, जिहां श्री पास जिना ।

लीलावती सुमति विलास रास अथवा चौपाई (२१ ढाल ३४८ कड़ी, सं० १७६७ भादो कृष्ण सोम, पाटण, उनां) आदि

परम पुरुष प्रभु पास जिन, सरसती सद्गुरु पाय ।
वंदी गुण लीलावती, बोलीस बुद्धि बनाय ।

रचनाकाल —वरस सत्तरसे सत्तसठे आसो वद छट्ठि सोमवारी जी ।
मृगसिर नक्षत्रे ने शिवयोगे, गाम उनाऊं मझार जी[1] ।

इसे भीमशी माणेक और कालीदास सांकलचंद ने प्रकाशित किया है। धर्मबुद्धि मंत्री अने पापबुद्धि राजानो रास (२७ ढाल ३९६ कड़ी सं० १७६८ मागसर शुक्ल ११ रविवार, पाटण) (प्रायः राजा क्षत्रिय थे तथा विलासी और मांस मदिरासेवी होते थे परन्तु मन्त्री जैन वैश्य होते जो निरामिष, अहिंसावादी और अपरिग्रही होते थे इसलिए उनकी धर्मबुद्धि से पापबुद्धि राजाओं का भी कल्याण होता था, इसलिए जैन साहित्य में ऐसी कई कथाएँ प्रचलित हैं।) इसका रचनाकाल इस प्रकार कहा गया है

सिद्धि रस मुनि इंदु समये (१७६८) अेकादसी अजुआली,
मागसिर सी रविदिन शिवयोगे, नक्षत्र अश्विनी माली रे ।

इस रचना को सवाईचंद राइचंद (अहमदाबाद) ने प्रकाशित किया है।

शत्रुंजय तीर्थमाला उद्धार रास सं० १७६९ की रचना है।

भुवनभानु केवली रास अथवा रसलहरी रास (९७ ढाल २४२४ कड़ी सं० १७६९ पौष कृष्ण १३ मंगलवार, पाटण, उनाउ) यह मूलतः मलधारी गच्छ के हेमचन्द्र सूरि द्वारा विरचित है उसी के आधार पर यह उदयरत्न ने भाषा में लिखी है। रचनाकाल देखिये—

सत्तर से ओगणयोत्तर समे, वदि तेरस मंगलवार ।
पोष मास पूर्वाषाढ़ में हर्षण योगे रे थयो हर्ष अपार ।

यह कृति जैनकथारत्नकोष भाग ५ में प्रकाशित है। नेमनाथ शलोको (५७ कड़ी) नामक रचना भी प्रकाशित है यह सलोका संग्रह

---

१. मोहनलाल दलीचंद देसाई—जैन गुर्जर कवियो भाग ५ पृ० ९८-९९ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाग १ केशवलाल सवाईभाई द्वारा तथा जैन संज्झायमाला भाग २ में बालाभाई द्वारा प्रकाशित हो चुकी है। इन्होंने कई शलोको लिखे हैं जिनमें शालिभद्र शलोको (६६ कड़ी सं० १७७० मागसर शुक्ल १३) और भरत बाहुबल नो शलोको भी शलोकासंग्रह भाग १ में ही प्रकाशित है।

भावरत्न सूरि प्रमुख पाँच पाट वर्णन गच्छ परंपरा रास (३१ ढाल १७७०) में पाँच पट्टधरों—राजविजय, रत्नविजय, हीररत्न, जयरत्न और भावरत्न की पट्ट परंपरा और उनके गुणों का वर्णन है। यह बारेजा में प्रारंभ हुई और खेड़ा में पूर्ण हुई थी।

ढंढण मुनिनी संज्झाय (१७ ढाल सं० १७७२ भाद्र शुक्ल १३ बुधवार, अहमदाबाद) इसे संघवी मलूकचंद के आग्रह पर ढंढणमुनि के तप का वर्णन करने के लिए लिखा था।

चौबीसी (सं० १७७२ भाद्र शुक्ल १३ बुधवार, अहमदाबाद) चौबीसी बीसी संग्रह और ११५१ स्तवन मंजूषा में प्रकाशित है।

धमन्नक रास (१३ ढाल १८३ कड़ी सं० १७८२ असो कृष्ण ११ बुध अहमदाबाद) की कथा 'वसुदेव हिन्डी' पर आधारित है।

वरदत्त गुणमंजरी रास (सौभाग्यपंचमी व्रत के माहात्म्य पर लिखी गई; १३ ढाल सं० १७८२ मागसर बुध, अहमदाबाद) यह कनककुशल कृत मूल रचना पर आधारित है।

सुदर्शन श्रेष्ठी रास (२३ ढाल सं० १७८५ भाद्र कृष्ण ५ गुरु मालज) यह रचना देवेन्द्र कृत प्रश्नोत्तर रत्नमाला से प्रेरित है।

विमल मेहता नो शलोको (११७ कड़ी सं० १७९५ ज्येष्ठ शुक्ल ८ खेडा हरियाणा) यह 'सलोका संग्रह में प्रकाशित है।

नेमनाथ राजिमती बारमास या तेरमास (सं० १७९५ श्रावण शुक्ल १५ सोम ऊनाउ)

रचनाकाल—भू रसी भुत नंदी जुत संवछर नूं नाम
श्रावण सुदि पून्यम ससी, उनाऊ मां शुभथान।

यह 'मध्यकालीन बारमासा संग्रह भाग १' में प्रकाशित है।

हरिवंश अथवा रस रत्नाकर रास (सं० १७९९ चैत्र शुक्ल ९ गुरु उमरेठ) इसमें कुरुवंशोत्पन्न जैन महापुरुषों का चरित्र वर्णित है, यथा—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुरुवंश पण के तला नरनारि निरधार,
जिनधरमि जेजेथया कहूं तेहनो अधिकार।

इसे कवि ने उनाऊ ग्रामवासी केशव मेहता के पुत्र गोविंदजी के परिवार में भवानीदास के पुत्र थोभण के आग्रह पर लिखा था, रचनाकाल का वर्णन प्रस्तुत है---

संवत सत्तर नवांणुया वर्षे चैत्र शुद नवमी गुरुवार जी,
पुण्य नक्षत्रे सुकर्मा सुभयोगे, वर्त्यो जयजयकार जी।
चीडोत्तर मां ऊबंरठ गामे, श्री शांतिनाथ पसायजी,
पूरण रास चड्यो परमाणे, संपद वाधी सवाय जी।[1]

महिमती राजा अने मतिसागर प्रधान रास (यह भी धर्मबुद्धिमंत्री रास जैसी ही प्रधान या अमात्य पर आधारित रचना है) यह सं० १८८० में पूना से छपी है। इनकी इतनी अधिक रचनायें हैं कि उनका पूर्ण विवरण देने के लिए एक छोटा-मोटा ग्रंथ अपेक्षित है। अतः केवल अन्य ज्ञात प्रमुख रचनाओं का रचनाकाल के साथ आगे नामोल्लेख किया जा रहा है।

सूर्ययशा (भरतपुत्र) रास सं० १७८२; भामा पारसनाथ नुं स्तवन १७७९, महावीर गीत, पार्श्वस्तवन, सिद्धाचल स्तवन, शत्रुंजयपद, शत्रुंजय स्तवन, दंडक स्तवन, भांगवारक संज्झाय १७९५, बलभद्रमुनि वैराग्य संज्झाय, जोबन अस्थिर संज्झाय, नारीने शिखामण संज्झाय, परस्त्री त्याग संज्झाय, शिष्य विषे सिखामण आदिसंज्झाय तथा गुरु भास, हीररत्नसूरिभास, जयरत्नसूरिभास, भावरत्नसूरिभास इत्यादि कई भास और पंचमी स्तवन, भीड़भंजन स्तवन, अजितनाथ स्तवन, चार कषाय चरित्र विनती आदि बहुतेरी रचनायें हैं जिनमें अनेक उत्तम कृतियाँ हैं। इनका थोड़ा परिचय दे रहा हूँ। चार कषाय चरित्र विनती (१५ कड़ी) महत्वपूर्ण रचना है उसका प्रारंभिक छंद आगे दिया जा रहा है–

प्रभो पाय पूंजी पवित्रेय होई,
नमूं निम्मल भाविहि सामि जोई।

---

१. मोहनलाल दलीचंद देसाई -जैन गुर्जर कविओ भाग ५ पृ० ११०-१११ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

घणा काल नूं खामि मइं आज दीठुं।
मुझ लागउ चितिउ अमीय मीठु।[१]

पंचमी स्तवन में पंचमी व्रत का माहात्म्य बताया गया है, यह व्रत जैनसमाज में खूब प्रचलित है, इसका प्रारंभ देखिये–

सरसती समाणी समरी माय हीयडे समरी श्री गुरुराय।
पंचमी तपनो महीमा घणो भवियण भावे कहुं ता सुणो।

भीड़भंजन स्तव छह कड़ी की छोटी रचना है पर भीड़ (कष्ट) भंजन के लिए इसके जाप का महत्व है। इसके अंत की पंक्ति निम्नवत् है—

भीड़ भंजन प्रभु पास जिनेसर, पुजतां पाप पलाइ छे रे।

इनकी रचनाओं का विषय वैविध्य, वर्णन विस्तार और काव्य-कौशल इन्हें महत्वपूर्ण कवि सिद्ध करते हैं। इनकी भाषा में राजस्थानी से गुजराती के प्रयोग अधिक प्राप्त होते हैं। यह संभवतः गुर्जरनिवास का प्रभाव होगा फिर भी भाषा पूर्णतया गुजराती नहीं हैं। भाषा सरल गुजराती प्रभावित मरुगुर्जर ही है।[२]

उदैराम –आपकी रचित दो जखड़ी (हिन्दी भाषा) उपलब्ध हैं। दोनों ऐतिहासिक हैं। इनमें भट्टारक अनंतकीर्ति के (सं० १७८५ में सांभर) चातुर्मास का वर्णन है। दिगम्बर साहित्य में इस प्रकार की रचनाएँ कम उपलब्ध हैं। इस दृष्टि से इसका महत्व है, पर भाषा और काव्य की दृष्टि से सामान्य कोटि की कृतियाँ हैं।[३]

उदयविजय –आप तपागच्छ के सूरि विजयसिंह के शिष्य थे। इन्होंने श्रीपाल रास (६ खण्ड सं० १७२८ कुशलगढ़), रोहिणी रास

---

१. मोहनलाल दलीचंद देसाई जैन गुर्जर कवियो भाग ५ पृ० ४११-४१२ (न० सं०)।

२. वही भाग ५, पृ० ७६-११४, ४११-१२ (न० सं०) और भाग २ पृ० ३८६-४१४, भाग ३ पृ० १३४९-६५ (प्र० सं०)।

३ सम्पादक कस्तूरचन्द कासलीवाल और अनूपचंद—राजस्थान के जैन शास्त्र भंडारों की ग्रंथ सूची भाग ३ पृ० १०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और मंगलकलश रास तथा कुछ अन्य रचनायें की है जिनका नाम आगे दिया गया है।[1] समुद्रकलश संवाद, शंखेश्वर (पार्श्व) जिनराज गीत, उत्तराध्ययन ३६ संज्झाय, २० विरहमान जिन गीतानि, अनाथी मुनि संज्झाय आदि।

श्रीपाल रास (६ खण्ड, ७७ ढाल, २०५५ कड़ी सं० १७२८ दीपावली, किशनगढ़) का आदि—

उदय करे श्रुतदेवता सुप्रसन्न थइ जेण,
अरिहंतादिक हुं जपुं नवपद अहनिशि तेण।

यह रचना जिनविजय के आग्रह पर की गई थी, यथा—

जिनविजय पंडित तेहना रे तेहने कथने अेह,
श्री श्रीपाल नरिंदनी, में कीधी चोपाई नेह।
सत्तर अडवीसे करी रे चोपाई अेह उदार,
दीवाली दिवसे सुखे श्री किशन गढ़े जयकार।

रोहिणी तप रास (२३३ कड़ी) की अंतिम पंक्तियाँ देखिए जिसमें गच्छ का परिचय है—

विजयदेव सूरी गच्छ के राया, तेहना पाट दीपाया जी,
ते श्री विजयसिंह मनभाया, गोतम गुणे कहाया जी।
तस सीस उदयविजय उवझाया, दिनदिन नूर सवाया जी,
लीला लखमी वांछित पाया, मंगल नूर बजाया जी।[2]

समुद्र कलश संवाद (२७२ कड़ी सं० १७१४ दीपावली, राधनपुर)

आदि—सकल कला केली कुशल चतुर पुरुष अवतंस,
जास जापइं हुइं जगत मां ओपावइ निजवंश।

रचनाकाल—विद्या मुनिवर शशधर मित संवत्सरइ रे(१७१४)
दीप महोत्सव दीस रे,
पुरनर पुरवर राधनपुर मांहि रच्यो रे
पुहती पुहती संघ जगीस रे।

---

१. अगरचंद नाहटा परंपरा पृ० १११।
२. मोहनलाल दलीचंद देसाई—जैन गुर्जर कवियो भाग ४ पृ० २६६-२७४ (न० सं०) और भाग २ पृ० २५५-२५८ (प्र० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुरु परंपरा–तपगच्छ नायक जेसिंघ जी गुरुपाटवी रे,
श्री विजयदेव सूरिराय रे,
नरपति नरपति इंदल साह जेणि रीझव्यो रे
जगि जस सुजय गवास रे।

यह रचना इन्द्रशाह के शासन काल और गच्छनायक जयसिंह के पाटकाल में लिखी गई। 'शंखेश्वर पार्श्वनाथ स्तव' (१३५ कड़ी) का आदि देखिए—

कलावंत कवि केलवइ कौतुक कोडाकोडि,
वदइ वादवादी बड़ा मानी मूंछ मरोडि।

इसमें क, व और म पर अनुप्रास का प्रयोग कवि के शब्द प्रयोग पर अधिकार की सूचना देता है। इसकी प्रशस्ति प्राकृत में है।

शंखेश्वर (पार्श्व) जिनराज गीता (गीत) इसमें कवि ने प्रबल मोह से मुक्ति हेतु शंखेश्वर पार्श्वनाथ से विनती की है। वृद्धिविजय की ज्ञानगीता से इसका पर्याप्त साम्य है। कवि कहता है–

धन्य दिवस धन ते घड़ी धन मुझ बेला तेह,
जब सुखदायक त्रायक निरख्यु सुं नेह।

माया-मोह के पास क्रोध, मान, मद आदि की बड़ी फौज है जिसके बल-बूते पर वह चक्रधर, हलधर सबको जीत लेता है। कवि माया की निन्दा करता हुआ कहता है–

भरमा जगि धूतारी। ऊतारी नवि जाय।[1]

इसने ब्रह्मा, विष्णु, शिव सबको नचाया है; अतः जैसे तुलसीदास विनयपत्रिका में कहते हैं वैसे ही अन्त में उदयविजय जी प्रार्थना करते हैं कि हे नाथ मुझे इस माया-मोह से बचाइए। अन्त में गुरु की भी बंदना है–

श्री विजयदेव तपगछ राजा, श्री विजयसिंह गुरु बड़ा दवाजा।[2]

उत्तराध्ययन ३६ अध्ययन ३६ संज्झाय सं० १७२६ का प्रारंभ इस प्रकार हुआ है–

---

१. प्राचीन फागु संग्रह पृ० २२८

२. वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पवयण देवी चित्त धरी जी, विनय बखाणो संसार,
जंबूनइं पूछयइं कह्यो जी, श्री सोहम् गणधार।
भविकजन विनय कहो सुखकार।

यह रचना जैन सज्झाय संग्रह (साराभाई नवाब) में प्रकाशित है। २० विहरमान जिन गीतानि-यह कृति कवि ने ताराचंद रूपचंद के आग्रह पर लिखा था –

कचरा सुत ताराचंद छाजइ, रूपचंद सुत राजइ जी,
तास वचन थी सबल दिवाजइ, कर्या गीत गुण गाजइ जी।[1]

विमलाचल स्तव (२६ कड़ी) छोटी रचना है इसका प्रारम्भ इस पंक्ति से हुआ है–

श्री आदीसर ओलगु रे लो वीनतडी अवधार रे जिणंदराय।

अनाथी मुनि सज्झाय का आदि–'मगधदेश राजग्रहि नगरी राजा श्रेणिक दीपे रे' से हुआ है।[2]

उदयसमुद्र--खरतरगच्छ के जिनचन्द्रसूरि की परंपरा में ये कमलहर्ष के शिष्य थे। इन्होंने कुलध्वजरास' अथवा रसलहरी (२९ ढाल, सं० १७२८ ?) में लिखा जिसका मंगलाचरण इस दोहे से प्रारंभ होता है–

श्रुतदेवी समरुं सदा, प्रणमुं सद्गुरु पाय।
मीठी वाणी मुख थकि, प्रगटे जास प्रसाद॥

इसमें शील का महत्त्व बताया गया है, यथा—

दान शियल तप भावना, चउविह धरम प्रधान।
शियल सरीखो को नहि, इम भाषे वर्द्धमान॥[3]

सोहम् पाट की बेरी शाखा, कोटिक गण, खरतरगच्छ के जिनरतन सूरि के पट्ट पर आसीन श्री जिनवर्धमान के आदेश से कवि ने

---

१. मोहनलाल दलीचंद देसाई— जैन गुर्जर कवियो भाग ४ पृ० २७३ (न० सं०)।
२. वही, भाग ३, पृ० १२१२-१३ और १२६१-६६ (प्र० सं०)।
३. वही भाग ४ पृ० ४२५ (न० सं०) और भाग २ पृ० ५६०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अहमदाबाद में चौमासा किया। उस समय वहाँ खान मुहब्बत दिल्ली बादशाह का सूबेदार था जिसे कवि ने बड़ा त्यागी और दानी बताया है, यथा–

आदेस तस रह्या आदरे चोमासु अमदाबाद।
महा खान मुहब्बते राजवी, तिहां राइ रे गाजे जस वाद।[1]

उसके व्यवहरिया रतनसी सुत मूलजीपारेख के आग्रह पर उदयसमुद्र ने यह रचना की थी। इसमें रचनाकाल नहीं है। कमलहर्ष का समय ज्ञात है इसलिए यह रचना इसी के आसपास की होगी इसीलिए सं० १७२८ पर देसाई जी ने प्रश्नवाचक चिह्न लगा दिया है। जैन गुर्जर कवियो भाग २ पृ० २६८-७० पर सं० १७२८ और भाग २ पृ० ५६० पर सं० १७८६ दिया गया है।

कवि ने लिखा है कि कुलध्वज की कथा कौतूहल कथा के साथ पुण्य कथा भी है इसलिए इसमें सोने में सुगन्ध के समान सौन्दर्य है, यथा–

पुण्यकथा कौतिक कथा, अके सोनुं ने सुगन्ध।

उदयसागर सूरि— इस नाम के दो कवि प्रमुख रूप से हुए हैं, प्रथम १७वीं शती में वर्णित हैं। प्रस्तुत उदयसागर विजयगच्छ के विजयमुनि>धरमदास>खेमराज>विमलसागर सूरि के शिष्य थे। इनकी रचना का नाम है—

मगसी पार्श्वनाथ स्तवन (५९ कड़ी) इसके अन्त में उपरोक्त गुरु-परम्परा दी गई है। इसका कलश निम्नवत् है—

इय पास सामी सिद्धिगामी मालव देसइं जाणीयइ,
मगसिय मंडण दुरितखंडण नाम हियडइ आणीयइ।
श्री उदयसागर सूरि पाय प्रणमइ अहनिसि पास जिणंद अे,
जिनराज आज दया दीठ वुं मन हुवइ आणंद अे।[2]

१. मोहनलाल दलीचंद देसाई— जैन गुर्जर कवियो भाग २ पृ० २६८-२७० और भाग ३ पृ० १२७१ और १४५० (प्र० सं०)।
२. वही, भाग ५ पृ० ३७१ (न० सं०) और भाग २ पृ० ५८८ (प्र० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उदयसिंह—ये सदारंग के शिष्य थे। इन्होंने आश्विन शुक्ल १० सं० १७६८ में 'महावीर चौढालिया' की रचना किशनगढ़ में की।[१] सदारंग नागोरीगच्छ के साधु थे।[२] इस रचना का उद्धरण नहीं मिल पाया।

उदयसूरि—ये खरतरगच्छीय बेगड़शाखा के गुणसमुद्र सूरि के प्रशिष्य और जिनसुंदर सूरि के शिष्य थे। खरतरगच्छ में जिनोदयसूरि के समय सं० १४२२ में जब धर्मविलास आचार्य पद पर थे तभी बेगड़ शाखा चली थी। इसके पट्टधरों में जिनशेखर>जिनधर्म>जिनचन्द्र>जिनमेरु>जिनगुण>जिनेश्वर>जिनचन्द्र>जिनसमुद्र आदि सूरि गुणसमुद्र से पूर्व हो चुके थे। उदयसूरि ने सं० १७१९ श्रावण में 'सुरसुंदरी अमरकुमार रास' की रचना की। इस रास में रचना का समय इस प्रकार बताया गया है—

संवत उगणोत्तर श्रावण मासि, अेह रच्यो उलासै,
वेगड खरतर गच्छ विराजे, गुणसमुद्र सूरि गाजै।
वर्त्तमान गुरुगच्छ वडइ, श्री जिनसुंदर सुरिंदा,
श्री उदैसूरि कर जोड गावे, सुख सम्पत्ति सदा।[३]

उगणोत्तर का अर्थ देसाई ने १९ लिया है किन्तु श्री अ०च० नाहटा ने इसका रचनाकाल सं० १७६९ बताया है[४]।

ऋषभदास—कल्याण शिष्य; आपकी तीन रचनाओं का पता चलता है—

(१) २३ पदवी स्वाध्याय (१८ कड़ी सं० १७७२ चौमासा गगडाण)
आदि—'गणधर गौतम स्वामी जी समरी श्रुतदातारो रे।

(२) श्रावक नाम वर्णन (१५ कड़ी सं० १७८५ चौमासा गगडाण)

---

१. अगरचंद नाहटा—परंपरा पृ० ११४।

२. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो भाग ३ पृ० १४२२ (प्र० सं०) और भाग ५ पृ० २६७ (न० सं०)।

३. वही, भाग २ पृ० १८६–१८७ (प्र० सं०)।

४. अगरचन्द नाहटा परंपरा पृ० १०८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदि – ध्यान विनय विडसग धरो ए देसी
प्रणमी जिनवर वीर जी रे समरी गुरु कल्याण
श्रावक श्राविका गुण भणूं रे सुत्त तणा परिमाण रे।
सुंदर सांभलौ श्रावक नाम जिम थापै रूडा काम रे।

रचनाकाल--संवर सतर पच्चासीय रे गगडाणइ चउमास,
गुण गुरुआ श्री श्रावक सहु रे इम कह ऋषभदास रे।
सुंदर सांभलो श्रावक नाम।[1]

(३) वीर जिनस्तवन (१७ कड़ी)

अन्त–देज्यो सेवा दया करी मुझ मन मोटी आस, आ
तारक तूँ प्रभु माहरो रे अे जाणो अरदास।
सुखकारी सद्गुरु भलो नामै श्री कल्याण,
ऋषभदास इपरि कह समरण होय सुजाण।[2]

ऋषभदास नामक प्रसिद्ध श्रावक कवि इससे पूर्व हो चुके हैं। चौमासा रहने वाले ये ऋषभदास अवश्य साधु होंगे किन्तु अपने गच्छादि का इन्होंने उल्लेख नहीं किया है।

ऋषभसागर—तपागच्छीय चारित्रसागर>कल्याणसागर>ऋद्धि-सागर के शिष्य थे। इनकी रचना 'गुणमंजरी वरदत्त चौपाई' (सं० १७४८ ?) कार्त्तिक शुक्ल ५ सोमवार, आगरा)

आदि–प्रणमुं जगदानंदकर जगनायक जिनराज,
सांभरतां संपजैं सकल सुख सिरताज।
गुणधर गणधर लबधिकर श्रुत पूरबधर सार
कंचन कंजासन सरस, ध्यान धरइधीधीर।

आपके विद्यागुरु जसराज थे जो इन पंक्तियों से प्रकट होता है--

कलि प्रणमुं विद्यागुरु पंडित श्री जसराय।

कवि ने ज्ञान का महत्व बताते हुए लिखा है –

ज्ञान थकी पावैं सुगति, ग्यानइं परमानंद,
ज्ञान कल्पतरु सम कह्यो, सुणो भविक जनवृंद।

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो भाग ३ पृ० १४३० (प्र० सं०) और भाग ५ पृ २८७-२८८ (न० सं०)।

२. वही, भाग ५ पृ० ४१७-१८ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह ज्ञान तभी प्राप्त होता है जब ध्यानशक्ति प्राप्त हो और ध्यान शक्ति पंचमीतप से सिद्ध होती है। वरदत्त गुणमंजरी ने पंचमी तप द्वारा सब कुछ प्राप्त किया था, इसलिए इस तप का महत्व समझाने के लिए उनका चरित्र दृष्टांत रूप से प्रस्तुत किया गया है--

वरदत्त गुणमंजरी पंचमि आराधी जिण भांति
ते दृष्टांत कहस्युं इहां धरी मन खांति।
पंचमीपंच ग्यानने आपइ, पंच सुमति सम्मपंजइ जी,
पंच महाव्रत पंचमी थी हुवें, पंचम अनुस अंबें जी।[1]

इसमें तपागच्छ की ऊपर दी गई गुरुपरंपरा बताई गई है।

वरदत्त गुणमंजरी का रचनाकाल इस प्रकार कहा गया है—

मित्रभाव जुगभाव मदरपति, ससि तइं संवच्छर धारें जी,
ऋषभ आगरे चरित रच्यो अे, काति सित सरतिथि ससिवारें जी।[2]

मदरपति का अर्थ (मदर = स्वर्ग = ७ सात) हो सकता है और मित्र शब्द से यदि सूर्य का संकेत हो तो १ या १२ संख्या भी हो सकती है इसप्रकार संकेताक्षरों का अर्थ अस्पष्ट और अनिश्चित होना रचनाकाल के निश्चय में बाधा है। इसकी रचना विजयरत्न के सूरिकाल में हुई थी इसलिए सं० १७३२ से ७३ के बीच अर्थात् १८ वीं शती में ही हुई होगी। इनके साथ भाग २ (जैन गुर्जर कवियो) में श्री देसाई ने विद्याविलास रास का भी उल्लेख पृ० ३८०-३८३ पर किया था पर सं० १८४० में रचित कोई कृति इनकी नहीं हो सकती, इसके कर्त्ता कोई अन्य ऋषभदास हो सकते हैं जो छानबीन के पश्चात् निश्चित हो सकता है अतः उसे छोड़ा जा रहा है।

ऋषिदीप—ये वर्द्धमान के शिष्य थे। सं० १७५७ में 'गुणकरंड गुणावली चौपइ, के बाद सुदर्शन सेठ छप्पय तथा पंचमी चौपइ की इन्होंने रचना की है। इसमें से सुदर्शन चरित्र छप्पय, छप्पय छंदों में पद्यबद्ध अच्छी रचना है। यह प्रकाशित भी है।[3]

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो भाग ३ पृ० १३३९ (प्र० सं०) और भाग ५ पृ० ६१-६३ (न० सं०)।
२. वही, भाग ५ पृ० ६१-६३ (न० सं०)।
३. अगरचन्द नाहटा—परम्परा पृ ११४।

५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऋषिविजय (वाचक) – तपागच्छीय विजयप्रभसूरि के शिष्य थे। आपने जिन पंचकल्याणक स्तव १० ढाल सं० १७५४ औरंगाबाद में लिखा। इसका आदि निम्नवत् है—

सारद मात नमी करो, प्रणमी सद्गुरु पाय,
पंचकल्याणक जिनतणा, गणतां सिव सुख थाय।
च्यवन, जनम, दिक्षादिवस, नांणसिद्धि गतिनाम,
पंचकल्याणक जांणयो, अे जिनना अभिराम।

रचनाकाल, सतर चोपने प्रेम सुंरेलाल, कर्मा चोमासो रंग रे,
श्री अवरंगाबाद मां रे लाल, जिहां जिनधर उत्तंग रे।
गुरु श्री विजयप्रभ सूरी जी रे लाल, श्री जिनसासन जयकार रे,
वाचक ऋद्धिविजय नमे रे लाल, श्री जिनगुरु सुखकार रे।

१८ नातरा संज्झाय का आदि पहिला ते समरुं रे पास पंचासरुरे।[1]

इनके नाम के साथ दी गई रचना 'रोहिणी रास' अन्य ऋद्धिविजय की है जो विजयाणंद के शिष्य और विजयराज के शिष्य थे। इसलिए उसे छोड़ दिया गया है। श्री देसाई ने ऋद्धिविजय कृत वरदत्त गुणमंजरी रास (१७०३ कार्तिक शुक्ल ३ गुरुवार खंभात) का उल्लेख किया है।[2] परन्तु यह रचना इनके शिष्य ऋषभसागर की हो सकती है। अतः उसे भी छोड़ना उचित लगा है।

ऋद्धिहर्ष—आपकी रचना नेमिकुमार धमाल (५ कड़ी) छोटी है। इसका आदि और अंत दिया जा रहा है। आदि—

गढ़ गिरनार की तलहटी खेलइ श्री नेमिकुमार,
एक दिसि सायर जल भर्यउ दिसि दूजो पर गिरनार।
विचि सहसांवन सोभतउ तिण मांहे खेलई नेमिकुमार।

अंत नेम हथीहथ नां तजइ समझावइ जोरे जगन्नाथ,
सिद्धिहरष मन हुई सुखी बात सांभलि सिवा देवी मात।[3]

आपकी एक रचना 'नेमिराजीमती रास' सं० १७७९ का उल्लेख उदयचन्द कोठारी ने भी अपनी सूची में किया है।[4]

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई–जैन गुर्जर कवियो भाग २ पृ० ५२३ २४, भाग ३ पृ० १४३६-३७ (प्र० सं०) और भाग ५ पृ० १३३-१३४ (न० सं०)।
२. वही भाग ३ पृ० ११३७ (प्र० सं०)
३. वही भाग ४ पृ० ४१८-१९ और भाग ५ पृ० ४२१ (न० सं०)।
४. उत्तमचन्द कोठारी—सूची प्राप्तिस्थान–पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कनककीर्ति– इनकी दो रचनाओं का उल्लेख श्री उत्तमचंद कोठारी ने अपनी सूची में किया है प्रथम 'नेमिनाथ रास' सं० १७४७ की और द्वितीय नेमिनाथ चौपाई सं० १७७८ की बताई गई है। चूँकि कोई उद्धरण या विवरण नहीं दिया गया है इसलिए यह कहना कठिन है कि ये दो रचनायें अलग-अलग हैं या एक ही रचना के दो नाम हों और प्रतियों का लेखन काल अलग-अलग हो।[1]

कनककुशल आप तपागच्छीय प्रतापकुशल के शिष्य थे। ये राज सम्मानित आचार्य कवि थे। इन्होंने तथा इनके शिष्य कुँवर-कुशल ने कच्छप्रदेश में ब्रजभाषा के प्रचार-प्रसार में बड़ा योगदान किया था। कच्छ के राव लखपतसिंह ने भुज में ब्रजभाषा काव्यरचना की शास्त्रीय शिक्षा देने के लिए एक पाठशाला की स्थापना की थी और कनककुशल को उसका संचालक नियुक्त किया था। वैसे ये राजस्थान के किशनगढ़ से आए थे। ये संस्कृत के प्रगाढ़ पंडित और ब्रजभाषा के कुशल साहित्यकार थे। महाराव ने इन्हें भट्टार्क की पदवी से अलंकृत किया था। इस पाठशाला में कहीं से भी आने वाले छात्रों को निःशुल्क आवास, भोजन की व्यवस्था थी।

कनककुशल ने सं० १७९४ में लखपत मंजरी नाममाला, लखपति पिंगल, सुंदर श्रृङ्गाररसदीपिका (श्लोक सं० २८७५) सं० १७९८, महाराओ श्री गोहड जीनो जस और लखपतयशसिन्धु आदि ग्रंथों की रचना की है। इन ग्रंथों से महाराव लखपतसिंह के असाधारण विद्या-व्यसनी व्यक्तित्व की झलक मिलती है। लखपत मंजरी और लखपत यशसिंधु उनके अन्य गुणों को उद्घाटित करते हैं। सुन्दर श्रृङ्गार रस दीपिका सुंदर श्रृङ्गार की भाषा टीका है। इनकी भाषा शैली का एक नमूना देखिए --

विकट वेर वेताल कनक संघट जब जोरत,
अरिगढ़ गंजन अतुल सदल श्रृङ्खला बल तोरत।
ऐसे प्रचंड सिंधुर अकल महाराज जिन मान अति,
पठये दिल्लीस लखपति को, कहे जगत धनि कच्छपति।[2]

१. श्री उत्तमचन्द कोठारी (जलगाँव) की सूची प्राप्तिस्थान–पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी।

२. डॉ० हरिप्रसाद गजानन शुक्ल 'हरीश'—गुर्जर जैन कविओ की हिन्दी कविता को देन पृ० १०२-१०३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कनककुशल ने सैकड़ों शिष्यों को व्रजभाषा और साहित्य शास्त्र की शिक्षा दी और व्रजभाषा का साहित्य समृद्ध किया तथा उसका प्रचुर प्रसार किया।[१] आपकी भाषा और रचना शैली रीतिकालीन वीररस तथा व्रजभाषा के प्रसिद्ध कवि भूषण और पद्माकर आदि के मेल में है जिन लोगों ने अपने आशयदाताओं के शौर्य और गुणज्ञता की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

कनकनिधान—आप खरतरगच्छीय जिनकुशल सूरि की परंपरा में हंसप्रमोद के प्रशिष्य और उपाध्याय चारुदत्त के शिष्य थे। इन्होंने सं० १७२८ में "रत्नचूड़ व्यवहारी रास" लिखा जो भीमसी माणेक द्वारा प्रकाशित है।[२] विवरण निम्नलिखित है—

रत्नचूड व्यवहारी रास (सं० १७२८ श्रावण कृष्ण १०, शुक्रवार)

आदि— स्वस्ति श्री शोभा सुमति, लीला लबधि भंडार,
परता पूरण प्रणमीइ, अडवडियां आधार।

रचनाकाल—संवत गयवर आंखड़ी मुनिवर शशी उदारो रे (१७२८)
श्रावण वदी दशमी ने दिने, चोपई जोड़ी सुक्रवारे रे।

गुरु परंपरान्तर्गत खरतरगच्छ के जिनराज से लेकर जिनरतन, जिनचंद, जिनकुशल, हंसप्रमोद, और चारुदत्त का स्मरण किया गया है। आप लिखते हैं—

कनकनिधान वाचक रची अे चोपई चोबीस ढालो रे,
सखर संबंध सोहामणो, सरवरी चोपई चोसालो रे।

इसमें रत्नचूड़ व्यवहारी की कथा के द्वारा दान का माहात्म्य बताया गया है, यथा—

दाने जग माने सहू दाने दोलति होय,
इह भवि अविहड सुख हुवे, साराहें सहुलोय।
रतनचूड व्यवहारी ओ पुण्यवंत परसीद,
तेह तणा गुण वरणवुं, नाम थकी नव निधि।[३]

---

१. डॉ० चन्द्रप्रकाश सिंह—भुजकच्छ ब्रजभाषा पाठशाला पृ २१।

२. अगरचन्द नाहटा—परंपरा-पृ १०५।

३. मोहनलाल दलीचंद देसाई—जैन गुर्जर कवियो भाग ४ पृ० ४१८-१९ (न० सं०) और भाग २ पृ० २६३-६४ तथा भाग ३ पृ० १२६८(प्र० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कनकमूर्ति--ये गजानन्द के शिष्य थे। इन्होंने 'एकादशी चौपइ की रचना सं० १७६५ में की थी।

कनकविजय -आप वृद्धिविजय के शिष्य थे। आपने सं० १७३२ में 'रत्नाकार पंचविंशति स्तव भावार्थ, शाहपुर में लिखा। लेखक की स्वलिखित प्रति सं० १७३२ शाहपुर में श्राविका पुजी के पठनार्थ माघ शुक्ल दशमी की लिखित प्राप्त है।[1]

कनकविलास—ये खरतरगच्छीय क्षेमशाखा के कनककुमार के शिष्य थे। इन्होंने (वैशाख) माधवमास, सं० १७३८ जैसलमेर में देवराज वच्छराज चौपई ४६ ढालों में पूर्ण की।[2]

कनककुमार की गुरु परंपरा मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने गुणविजय>मतिकीर्ति>सुमति सिंधुर के क्रम से बताई है। इसका आदि निम्नवत् है :—

प्रहसमि प्रणमुं प्रेम धरि, पास जिणेसर पाय,
गोड़ी मंडण गुण भणी, तारण त्रिभुवन ताय।

रचनाकाल—सिद्धि इसरदृग भूधर पृथ्वी, संवत संख्या कहवी बे,
माधव मासनी उज्वलतीथे, लायक मे यश लीजे बे।
जेसलमेरु नगर जयदाई, खरतरसंघ सदाई बे।
युग प्रधान श्री जिनचंद यतीसर, श्री जिनसिंह सूरीसर बे।
श्री जिनराज सूरि राजेसर, श्री जिनरतन मुनिसर बे।
वरतमान वरते तसु पाटे, श्री जिनचंद यश खाटे बे,
चोपड़ा वंश सरहंस सरीखो, पुण्ये अेह सरीखो बे।

इसके पश्चात् गुणविनय से लेकर कनककुमार तक के गुरुओं की वंदना की गई है। वाणी की वंदना करता हुआ कवि पारस से उसकी उपमा देता हुआ कहता है—

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो भाग ३ पृ० १६३० (प्र० सं०) भाग ५ पृ० ३ (न० सं०)।
२. अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० १०६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जासु प्रसाद पामी करी, मानव महिमावंत,
पारस पामी लोह जिम, धरे सुकंचन कंत।[1]

× × × ×

पामी सहाय्य इहांनौ पूरौ, संबंध कीयो मे सनूरो बे,
रुडी ढालां बात पिण रस री, मीठी दूधज्युं मिसरी बे।

कनकसिंह—ऐतिहासिक जैन काव्यसंग्रह में जिनरतन सूरि गीतानि में चौथागीत कनकसिंह कृत है, एक उद्धरण देखिए—

कनकसिंह गणिवर कहइ, दिन दिन द्युं आसीस,
श्री जिनरतन सूरिंद जी, प्रतपउ कोडि वरीस।

इस कड़ी की पाँचवीं रचना विमलरत्न की है जिसमें जिनरत्न सूरि को युगप्रधान कहा गया है। गीत का उदाहरण यथास्थान दिया जायेगा।[2] जिनरतन सूरि गीतानि के अन्तर्गत रूपहर्ष, खेमहर्ष आदि के गीत भी दिये गये हैं। ऐतिहासिक रास संग्रह में भी 'जिनरतन सूरि गीतम्' संकलित है। कमलहर्ष ने जिनरतन सूरि निर्वाण रास लिखा है। इन सूत्रों से सूचित होता है कि जिनरतन राजस्थान में सेरुणा ग्रामवासी तिलोक और तारा के पुत्र थे, जन्म १६७०, जिनराजसूरि से दीक्षा सं० १६८४, पट्टासीन सं० १७०० में हुए थे।

कमलहर्ष—खरतरगच्छ के जिनराजसूरि>मानविजय आपके गुरु थे। आपने जिनरत्नसूरि निर्वाणरास सं० १७११ आगरा, दशवैकालिक गीत सं० १७२३ सोजत, पांडवरास सं० १७२८ मेड़ता, धन्ना चौपई सं० १७२५ सोजत, अंजना चौपई सं० १७३३, कुलध्वज चौपई, वीर-वृहत् स्तवन गाथा ८३ जोधपुर, आदिनाथ बृहत् स्तवन गाथा ५३, रात्रि भोजन चौपई सं० १७५० लूणकरण, पार्श्वनाथ स्तवन इत्यादि कई रचनायें की हैं। आपके शिष्य विद्याविलास और उदयसमुद्र भी अच्छे विद्वान् और रचनाकार थे।[3]

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई--जैन गुर्जर कवियो भाग २ पृ० ३५७-५८ (प्र० सं०), भाग ५ पृ० २९ (न० सं०)।

२. ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह।

३. अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० १००।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिनरत्न सूरि निर्वाण रास (ऐतिहासिक जैन काव्यसंग्रह के पृ० २३४-४० पर प्रकाशित है) ४ ढाल सं० १७११ श्रावण शुक्ल ११ रविवार, आगरा का आदि—

सरसति सामणि चरणकमल नमी; हीयडइ सुगुरु धरेवि,
श्री जिनरतन सूरीसर गुरु तणा, गुण गाऊं संखेवि।

रचनाकाल-संवत सतरइ सय भलइ, इग्यारे हो श्रावण वदि सार।
सोमवार सातम दिनइ, सोभागी हो पहले पहर मझार।
अति जयवंतु आगरइ, खरतर संघ सुखकार।
सुख संपत देज्यो सदा धरि मन शुद्ध विचार।[1]

रास का अध्ययन करने पर पता लगता है कि सं० १७०० में पट्टासीन होने के पश्चात् जितरतन सूरि सं० १७०८ में आगरा आये और बीमार पड़ गये। वहीं पर सं० १७११ श्रावण वदी ७ सोमवार को स्वर्गवासी हो गये। उन्हीं की स्मृति में प्रस्तुत निर्वाण रास कमलहर्ष ने उसी समय लिखा था।[2] इनकी अन्य रचनाओं का संक्षिप्त परिचय सोदाहरण आगे दिया जा रहा है।

दशवैकालिक १० अध्ययन स्वाध्याय सं० १७२३ सोजत में लिखा गया था। धन्ना चौपइ सं० १७२५ आसो शु० ६ सोजत में लिखी गई, इसका रचनाकाल इस प्रकार बताया है—

वाण नयण वारिधि शशि वरसइ, आसू सुदि छठी दिन सरसइ।
सोझित नगर सदासुख थापइ, धरमनाथ जिनकर सुपसायइ।

उपरोक्त संकेताक्षरों से रचनाकाल १७२५ प्रतीत होता है। इसमें धन्ना सेठ की कथा को दान के दृष्टांत रूप में प्रस्तुत किया गया है। कवि कहता है -

भवियण दान धन्ना जिम दीजइ, भावइ वलि भावना भावीजइ,
इह भव परभव दान प्रभावइ, पगि पगि कीरति कमला पावइ।

समाज में अपनी शाहखर्ची और दान के कारण धन्नासेठ का नाम एक कहावत बन गया है।

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो भाग ४ पृ० १८६ (न० सं०)।

२. ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह पृ० २३४-२४०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पांडव चरित्र रास (सं० १७२८ आसो कृष्ण २ रवि, मेड़ता) का रचनाकाल--

संवत सतरे से भले वरसे वलि अठावीसे रे,
आसू वद द्वितीया तिथै रविवारे अधिक जगीसे रे।

इसमें पाण्डवों की प्रसिद्ध कथा जैन दृष्टिकोण से लिखी गई है।

अंजना चौपई सं० १७३३ भाद्र शुक्ल ७ और आदिनाथ चौपई भी आपकी प्राप्त रचनायें हैं।

रात्रिभोजन चौपई (सं० १७५० मागसर, लूणकरणसर) की प्रारम्भिक पंक्तियाँ आगे दी जा रही हैं--

श्री वरधमान जिण वंदिये, अतुल बलि अरिहंत,
मद प्रमाद भय अठार दूबण, वरजित अतिशयवंत।

कवि माँ सारदा से कालिदास के समान कवि बनने की कामना करता हुआ कहता है –

मन सुध सारद मातनो धरतां निशदिन ध्यान,
कालिदास पर कवि ह्वो, आऊ जाणों उपमान।

इसमें रात्रि में भोजन का निषेध किया गया है। रचनाकाल देखिये--

सतरे से पचासे वच्छरे रे मनरंग मगसर मास,
लूणकरणसर में कीधी चोपाई रे, मन धरि अधिको उलास।[1]

पहले देसाई ने पांडव चरित्ररास को भूल से मानविजय की रचना बताया था, बाद में भूल सुधार कर लिया।

कर्मचंद/कर्मसिंह ये पार्श्वचंद्रगच्छ के जयचंद्र सूरि के प्रशिष्य और प्रमोदचंद्र वाचक के शिष्य थे। इन्होंने रोहिणी (अशोकचंद्र) चौपाई (२९ ढाल, ५५५ कड़ी सं० १७३० कार्तिक शुक्ल १० रविवार को जालोर में पूर्ण किया। इसका प्रकाशन जैन रास संग्रह भाग १ में हुआ है। उसमें इस रास के कर्त्ता का नाम कर्मचंद है। उसी के आधार पर देसाई ने भी जैन गुर्जर कवियो भाग ३ पृ० १३३० पर

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई–जैन गुर्जर कवियो भाग २ पृ० २५३, ३८५, भाग ३ पृ० १२६१ और १३४७-४९ (प्र० सं०) तथा भाग ४ पृ० १८५-१८८ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसके कर्ता का नाम कर्मचन्द दिया है किन्तु इससे पूर्व भाग २ पृ० २७१ पर इसके कर्त्ता का नाम उन्होंने कर्मसिंह बताया था, किन्तु दोनों जगह गुरुपरम्परा एक जैसी है अतः दोनों एक ही व्यक्ति हैं जिसकी रचना रोहिणी रास है। उसका प्रारम्भ प्रस्तुत है—

श्री जिनपय युग प्रणमियइ, वासुपूज्य अभिधान।
सोवनगिरि श्री पास जिण, महिमा मेरु समान।[1]

देसाई ने रचनाकाल सं० १७३० और १७३७ दोनों बताया है। भाग दो जैन गुर्जर कवियो में रचनाकाल "संवच्छर सतरैतीसे, कातीमास जगीसै जी' लिखा है और भाग ३ में 'संवत्सर सतरे सेतीसे कातीमास जगीसे जी, दिया है। लगता है यह भ्रम प्रतिलिपि में सतरेसे तीसे और सतरे सेतीसे लिखने से उत्पन्न हो गया है। गुरुपरंपरा सर्वत्र एक जैसी है यथा 'श्री पासचंद सूरि गच्छ प्रतापी जगतमां कीरतिव्यापी जी, से शुरू करके जयचंदसूरि>पदमचंदसूरि>मुनिचंद>जयचंद और प्रमोदचंद वाचक का सादर नामोल्लेख किया गया है। कवि ने अपना नाम कर्मसिंह ही लिखा है, यथा –

अे अधिकार जग भणै भणावै ते कर मंगल आवै जी,
संघ चतुरविध सदा सुहावै, करमसीह गुण गावै जी।

जैन रास संग्रह के पाठ में भी कवि ने अपने को 'तास शिष्य करमसिंह'[2] ही कहा है। इसलिए रचनाकाल की तरह रचनाकार के नाम में भी भ्रम हो गया और कवि का नाम कर्मचंद नहीं वरन् कर्मसिंह ही है।

कर्मसिंह II—ये भी पार्श्वचंद्र गच्छ के कवि थे। इनकी गुरु परंपरा पृथक् है। ये राजचंद्र>हीरानंद>ठाकुरसिंह>धर्मसिंह के शिष्य थे। इन्होंने 'अढार नामां चौपाई' (मोह चरित्र गर्भित) ९ ढाल सं० १७६२, पाटण में लिखा। यह रास भी रोहिणी रास (कर्मचंद/कर्मसिंह) के ठीक पहले जैन रास संग्रह भाग १ (मातृचंद ग्रंथमाला पृ० ३२-३९ के पृ० ७९-९२ पर प्रकाशित है। इसका आदि इस प्रकार है—

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो भाग ४ पृ० ४२८ (न० सं०) और भाग २ पृ० २७१ तथा भाग ३ पृ० १३३० (प्र० सं०)।
२. जैन रास संग्रह भाग १

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री गौतम गणधर नमी, पार्मा सुगुरु पसाउ
अष्टादस सगपण तणी कथा कहुंधरि भाउ।

गुरु परंपरान्तर्गत इन्होंने स्वयं को नागोरी बड़तपगच्छ के पार्श्वचंद्र की परम्परा में धर्मसिंह का शिष्य बताया है। रचनाकाल इस प्रकार बताया है—

द्वीप ससी संवत सही रे, बरस युगल रस जाणि,
पर आपण हित कारणे रे, ओ कही कथा बषाणि, रे प्राणी।

चूँकि इनकी गुरु परंपरा भिन्न है अतः ये रोहिणी रास के कर्त्ता कर्मसिंह से भिन्न लगते हैं। रचनाएँ भी भिन्न हैं। इसमें कवि ने मोह की महिमा का वर्णन करके उससे बचने का उपदेश दिया है-

तसु विनयी मुनि कर्मसिंह रे, पाटण नयर मझार,
चरित्र रच्यो अे मोह नो रे, सगपण मिस अवधार रे।[1]

कहान जो गणि आप लोकागच्छीय तेजसिंह के शिष्य थे। आपने 'गज सुकुमार संज्झाय (९ कड़ी सं० १७५३, पौष), अर्जुनमाली संज्झाय (१६ कड़ी सं० १७४७ राणपुर), शांति स्तव (७ कड़ी सं० १७५६ सूरत चौमासा), सुदर्शन सेठ संज्झाय (१८ कड़ी सं० १७५६ सूरत) और सामायिक दोष संज्झाय (१६ कड़ी सं० १७५८ सूरत) नामक रचनाएँ की हैं। इनकी दो रचनायें-गज सुकुमार संज्झाय और सामायिक दोष संज्झाय प्रकाशित है। प्रथम का प्रकाशन जैन स्वाध्याय मंगलमाला भाग १ में और दूसरी का लोकागच्छीय श्रावकस्य सार्थ पंचप्रतिक्रमणसूत्र में हुआ है। सामायिक दोष संज्झाय की अंतिम दो पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं-

पूज्य श्री तेजसिंह जी, सूरत नगर चोमासे,
बरस सत्तर अठावने, गणी काहान जी इम भासे।[2]

इन रचनाओं के अलावा काहान जी गणि ने नेमनाथ स्तव ६

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई-जैन गुर्जर कवियो भाग ३ पृ० १४०८ (प्र० सं०) भाग ५ पृ० २२१ (न० सं०)।
२. वही भाग २ पृ० ४४७, भाग ३ पृ० १३९५ (प्र० सं०) और भाग ५ पृ० ६० (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कड़ी सं० १७६७ फाल्गुन जंबुसर में और मेघमुनि संज्झाय (७ कड़ी सं० १७७० कालावड में) लिखा था।

कल्याणसागर सूरि शिष्य की एक रचना 'सिद्धगिरि स्तुति (१०९ कड़ी) प्राप्त है। यह जैन रत्न संग्रह और प्राचीन स्तवन संज्झादि संग्रह में प्रकाशित है। इसका प्रारंभ इस प्रकार है–

श्री आदीश्वर अजर अमर अव्यावाध अहनीश,
परमातम परमेसरु प्रणमु परम मुनीस।

अन्त में दिया है -

श्री कल्याणसागर सूरि शिष्यें, शुभ जगीसें सुखकरी।
पुण्य महोदय सकल मंगल, वेलि सुजसें जयसिरी।[1]

यह शिष्य उदयसागर हो सकते हैं।

कानो—मांकड भास नामक दो कड़ी की छघुकृति सं० १८१० से पूर्व की रचित है। इसलिए इसे १८वीं शती के अंत की रचना मानकर देसाई ने १८वीं शती में इसे रखा है।

मांकण माठां माणसां अेह थी रहीइं दूरि,
कर जोडि कांनो कहि विजओ नदीपुर।
मांकण मांण माणसां ढांक्यां न रहे लिगार,
कर जोडि कांनो कहे बदन तणे विकार।[2]

यह रचना प्रकाशित हो चुकी है।

कांतिविजय—ये तपागच्छीय कीर्तिविजय के शिष्य विनयविजय जी उपाध्याय के गुरु भाई थे। आपकी प्रसिद्ध रचना 'सुजस वेलीभास (४ ढाल) सं० १७४५ के आसपास पारण में पूर्ण हुई। इसमें यशोविजय के गुणों का वर्णन किया गया है, यथा—

प्रणमी सरसति सामिनी जी, सुगुरु नो लही सुवसाय।
श्री यशोविजय वाचक तणाजी, गाइसुं गुण समुदाय।
गुणवंता रे मुनि वरधन तुम ज्ञान प्रकाश।

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई–जैन गुर्जर कवियो भाग ३ पृ० १४-१५ (प्र० सं०), भाग ५ पृ० ३३७ (न० सं०)।
२. वही भाग ५ पृ० ४२२-४२३ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसमें बताया गया है कि यशोविजय की कीर्ति बढ़ते-बढ़ते राजसभा तक पहुँची—

कीरति पसरी दिसि दिसि उजली जी विबुध तणी असमान,
राजसभा मां करतां वर्णना जी निसुणें महोबत खान।
गुञ्जरपति ने हुंस हुई खरीजी, जोवा विद्यावान,
तास कथन थी जस साधें वलीजी, अष्टादश अवधान।

यशोविजय ने महोबतखान को राजसभा में अष्टादश अवधान के चमत्कार से प्रसन्न किया। यह रचना देसाई के संशोधन के साथ ज्योति कार्यालय से प्रकाशित है। यह प्राचीन स्तवन संग्रह में भी सङ्कलित है।[१] इसमें गुरु परम्परा नहीं है। इसे देसाई के कथनानुसार ही कांतिविजय की रचना माना गया है।[२] संवेग रसायन बावनी का प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है—

सकल मनोरथ पूरवइ, श्री संखेसर पास।
कृपा करीं मुज ऊपरी, आयो वचन विलास।

अन्त—श्री गुरु हीर सुरिंदना, श्री कीर्तिविजय उवझाय,
तेह तणा सुपसाय थी, में कीधी अेह संञ्झाय।
गुरु भ्राता गुरु सशिखा श्री विनय विजय उवझाय,
गंथ बेलाख जेहणे कर्यो, रंगीले आतमा वादी मद भंजणहार
संवेग रसायन बावनी जे सुणे नर ने नार,
कांति विजय कहे तस घरे नितनित मंगल माल।

चौबीसी में भी लिखा है—

कीर्ति विजय उवझाय नो इम कांति विजय गुणगाय हो।

इनकी रचनाओं 'शील पचीसी' (२७ कड़ी), पंचमहाव्रत संञ्झाय आदि में यही गुरु परम्परा बताई गई है। इसी समय एक अन्य कांति विजय भी हो गये हैं पर ये रचनायें कीर्ति विजय शिष्य कांतिविजय की ही हैं। शील पचीसी में कहा है—

श्री तपगच्छ सोहकरू रे, श्री कीर्तिविजय उवझाय रे,
कांतिविजय हर्षे करीरे, कीधी अे सञ्झाय रे।[३]

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई - जैन गुर्जर कवियो भाग ५ पृ० ५०-५२ (न० सं०)।

२. वही

३. वही भाग २ पृ० १८१, भाग ३ पृ० १२०९ (प्र० सं०) और भाग ५ पृ० ५०-५३ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचमहाव्रत संञ्झाय (५ ढाल) संञ्झाय माला भाग १-२ में प्रकाशित रचना है। इसी संकलन में रात्रिभोजनत्याग संञ्झाय और सुंदरी महासती संञ्झाय भी प्रकाशित है। इनके अलावा हरियाली (६ कड़ी) और भगवती पर संञ्झाय इनकी अन्य दो लघु कृतियाँ भी प्राप्त हैं।

कांतिविजय II—तपागच्छीय विजयप्रभसूरि के प्रशिष्य एवं प्रेमविजय के शिष्य थे। इनकी एक रचना 'महाबल मलयसुंदरी रास' इसलिए विवादास्पद हो गई है क्योंकि मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने जैन गुर्जर कवियो के भाग २ और भाग ३ प्र० सं० में तो इसे कांतिविजय की रचना बताया है किन्तु इसके नवीन संस्करण के सम्पादक कोठारी ने इसे छोड़ दिया है पर छोड़ने का कोई सन्तोषजनक कारण नहीं बताया है इसलिए मैं इसे इन्हीं कांतिविजय की रचना मानकर विवरण दे रहा हूँ।[1]

महाबल मलयसुंदरी रास (चार खण्ड १७७५ वैशाख शुक्ल ३, पाटण)

आदि—स्वस्ति श्री सुखसंपदा, पूरण परम उदार।
आदीश्वर आनंदनिधि, प्रणमुं प्रेम अपार।

इसमें कवि का नाम कांति दिया हुआ है, यथा—

जे भवि भावें भणस्ये गुणस्ये लहिस्ये ते जयमाल।
ओगण च्यालीस मी कही कांति, चोथा खंडनी ढालरे।

इसमें गुरु परंपरा दी गई है, यथा—

श्री तपगण गणनायक गिरुआ श्री विजयप्रभ सूरी।
गुणवंता गौतम गुरु तोले महिमा महिम सनूर रे।
तास शिष्य कोविद कुलमंडन प्रेमविजय बुधराया,
कांतिविजय तस शिष्ये इणि परे विधविध भावण गाया रे।

इसलिए इसके आधार पर ये ही कांतिविजय इसके रचयिता सिद्ध होते हैं।

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो भाग २ पृ० ५२६, भाग ३ पृ० १४३८ (प्र० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रचनाकाल –संवत शर मुनि विधु वर्षे रही पाटण चोमास।
श्री विजेक्षमा सूरीश्वर राज्यें गाइ मलया उल्हास रे।

केशी गणधर ने मलयचरित का वर्णन किया था, उस पर जयतिलक ने नूतनमलयचरित रचा। ज्ञानरत्न ने उसकी व्याख्या की। उसी पर आधारित यह रचना है।[1] इनके अतिरिक्त इनकी एकादशी स्तवन, चौबीसी हीराबेध बत्रीसी, सौभाग्य पंचमी, माहात्म्य गर्भित श्री नेमिजिन स्तव, अष्टमी स्तव, ऋषभ जिन स्तव, गोडी पार्श्वनाथ छंद आदि प्रकाशित रचनायें उपलब्ध हैं। इनके संक्षिप्त उद्धरण दिए जा रहे हैं—

एकादशी स्तव (१७६९ मागसर शुक्र ११, डभोई) रचनाकाल –

सतरसय उगणेतर समे रही डभोइ चउमास अे,
सुदि माश मृगसिर तिथ इग्यारस रच्या गुण सुविसाल अे।

चौबीसी अथवा चोबीश जिन स्तव (सं० १७७८ मागसर शुक्ल १) का आदि इस प्रकार है –

सुगुण सुगुण सोभागी साचो साहिबो हो जी, मीठड़ो आदि जिणंद।
मोहन मोहन मूरति रुडो देखतां हो जी, वाधइ परम आणंद।

यह चौबीसी बीसी संग्रह और ११५१ स्तवनमंजूषा में भी प्रकाशित है।

हीराबेधी बत्रीसी बुद्धि प्रकाश वर्ष ८१ अंक २ में प्रकाशित है।

सौभाग्यपंचमी मा० ग० श्री नेमिजिन स्तव (सं० १७९९ श्रावण शुक्ल ५ रविवार, पालणपुर।

रचनाकाल सतर नवाणूआ रहीअे, पाल्हणपुर चोमास,
श्रावण सुदि तिथि पंचमी अे हस्ता-दिन खास।

यह प्राचीन जैन पूर्वाचार्यों विरचिय स्तवन संग्रह में प्रकाशित है।

अष्टमी स्तवन चैत्य आदि संग्रह और जिनेन्द्र भक्तिप्रकाश में प्रकाशित हो चुकी है।

ऋषभ जिन स्तव जैन काव्यसार पृ० ६१४ पर प्रकाशित।[2]

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो भाग ५ पृ० २७०-२७६ (न० सं०)।

२. वही भाग २ पृ० ५२६-६३, भाग ३ पृ० १४३८-३९ (प्र० सं०) और भाग ५ पृ० २७०-२७६ (न० सं०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोडी पार्श्वनाथ छंद (५१ कड़ी) प्राचीन छंद संग्रह में प्रकाशित है। इसका आदि देखिए—

सुवचन मुझ सारदा सामिण तु समरत्थ,
गोडीरा गुण गावतां उपजे सरस अरत्थ।[1]

कांतिविमल—तपागच्छीय शांतिविमल>कल्याणविमल>केसरविमल के आप शिष्य थे। आपने सं० १७६७ मागसर शुक्ल १० रविवार को राधनपुर में ८९० कड़ी ४१ ढाल की रचना विक्रम (चरित्र) कनकावती रास लिखा जिसकी प्रारम्भिक पंक्तियां निम्न हैं—

सकल समीहित पूरवे परतिख पास जिणंद,
अलिय विघन दूरे हटें सेवें सुरनर वृन्द।

इसमें शील का महत्व दृष्टांत देकर समझाया गया है, यथा—

शीलें शिव सुख पामीइं शीलें वांछित होय,
सुख पाम्या कनकावती ते सुणज्यो सहूँ कोइ।
विक्रम राय चरित्र मां सरस सुणो अधिकार,
रास रचुं रलीयामणौ श्रोताजन सुखकार।

रचनाकाल—

सायर रस मुनि चंद्रमा, अेहवो संवत्सर मनि जांणि हो, रे हो राज।
मागसिर शुदि दसमी दिने रविवारे कीध प्रमाण हो, रे हो राज।

आपने ग्रंथ में उपरोक्त गुरु परम्परा का उल्लेख किया है, यथा—

तस पयकमल मधुकरा बुधकल्याणविमल सुखदाय हो राज,
तस बंधव कोविद वली, श्री केसरविमल गुरुराय हो राज।

× × × ×

एकतालिस ढाले करी में तो रचियो रास रसाल हो राज।
कांतिविमल कहे अेहवुं होज्यो घरि घरि मंगलमाल हो राज।[2]

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो भाग ५ पृ० २७०-२७६ (न० सं०)।

२. वही भाग २ पृ० ४६८-४७०, भाग ३ पृ० १४१६ (प्र०सं०) और भाग ५ पृ० २६४-२६६ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कृपाविजय—धनविजय के शिष्य थे। इन्होंने 'बार व्रत' पर १२ संज्झाय नामक रचना की है जिसका प्रारम्भ इस प्रकार है—

समकित रतन जतन करी राखो, दूषण पंच निवारी रे,
जेह थकी लहीइ सीव संपति, श्री जिनवचन विचारी रे।

अन्त—बारमो व्रत आराधंता रे, कांकर थया रे निधान,
कृपाविजय कहे पोषाइ रे, उत्तम पात्र प्रधान
कर जोडी ने वीनवु जी, धनविजय गुरु सीस,
कृपाविजय कहे जे, सुणे जी, ते लहे अधिक जगीस।[1]

कृपाराम—आपके पिता का नाम तुलाराम था। आपका निवास स्थान शाहजहांपुर था। आपने सं० १७४२ में 'ज्योतिष सार' नामक ज्योतिष पर एक ग्रंथ लिखा है। एक उद्धरण उपस्थित है—

के दरियो चौथो भवन, सपतम दसमौं जान,
पंचम अरु नौमो भवन अेह त्रिकोण बखान।
तीजो षटरस ग्यारसो घर दसमो कर लेखि,
इनको उपमै कहत है सर्वग्रंथ में देखि।[2]

इस प्रकार जैन पंडितों ने हिन्दी छंदों में सभी विषयों पर रचनायें की हैं।

किशनदास कोसन अथवा कृष्णदास मुनि–ये गुजराती लोकागच्छ के श्री संघराज जी महाराज के शिष्य थे। इनके मूल निवास स्थान और जन्मतिथि के बारे में निश्चित सूचना नहीं मिलती, परन्तु इतना निश्चित है कि इन्होंने सं० १७६७ अश्विन शुक्ल दसमी को जैन संघ में दीक्षित अपनी बहन रतनबाई को उपदेश देने के लिए 'उपदेश बावनी' या किशनबावनी की रचना की थी, परन्तु इन पंक्तियों से भिन्न सूचना मिलती है—

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई–जैन गुर्जर कवियो भाग ३ पृ० १५२९ (प्र० सं०) भाग ५ पृ० ३७२ (न० सं०)।
२. कस्तूरचन्द कासलीवाल—राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रंथ सूची भाग ४ पृ० ३१-३२।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

साधवि सूविज्ञान मा की जाई श्री रतन्नबाई,
तजी देह तापर रची हे विगत्तावनि
मत किन मनि लीनी ततही पे रुचि दीनी,
वाचक किसन कीनि उपदेश बावनी ।[1]

इन पंक्तियों से स्पष्ट प्रकट होता है कि यह रचना किशन ने अपनी बहन रतनबाई के शरीरत्यागोपरांत लिखी थी ।

उपदेश बावनी के सम्पादक डॉ० अम्बादास नागर ने इन्हें संघराज का शिष्य इस पंक्ति के आधार पर स्वीकार किया है—

क्षिति संघराज लोंकागच्छ शिरताज आज,
तिनकी कृपा ते कविताई पाई पावनी ।[2]

किशन बावनी के सम्पादक गोविंद गिल्लाभाई के अनुसार कच्छ के राजकवि जीवराम अजरामर गौर ने इन्हें उत्तर भारत का गौड़ ब्राह्मण कहा है और बताया है कि पति के निधनोपरांत किशनदास की माता अपने पुत्र-पुत्री को लेकर संघराज के आश्रय में अहमदाबाद चली आई थी । संघराज जी ने ही किशन को शिक्षित किया और काव्य रचना का अभ्यास कराया, लेकिन गोविंद गिल्लाभाई स्वयं इससे सहमत नहीं हैं और वे इन्हें गुजरात का मूल निवासी मानते हैं । किशनदास को केवल भाषा के आधार पर गुजराती या राजस्थानी नहीं सिद्ध किया जाना चाहिए क्योंकि प्रायः समस्त जैन साहित्य ही पुरानी हिन्दी और मरुगुर्जर में है ।

उपदेशबावनी या किशनबावनी गुजरात में बड़ी लोकप्रिय रही है । इसमें ६२ कवित्त हैं, यह शांतरस की सुंदर रचना है । इसके प्रारम्भिक ५ कवित्त "ओं नमः सिद्धं' के प्रत्येक वर्ण से प्रारम्भ हुए हैं, तत्पश्चात् नागरी वर्णमाला के अ से आरम्भ होकर अन्त तक के प्रत्येक अक्षर पर ५७ छन्द हैं । प्रत्येक कवित्त सरस एवं प्रभावोत्पादक हैं । जीवन की क्षणभंगुरता और आयु के पलपल छीजने का मार्मिक वर्णन निम्नांकित सवैये में द्रष्टव्य है—

---

१. श्री मोहनलाल दलीचंद देसाई – जैन गुर्जर कवियो भाग २ पृ० ४७२, भाग ३ पृ० १४१६ (प्रथम संस्करण) और भाग ५ पृ० २६६ (न०सं०)

२. सम्पादक डा० अम्बादास नागर—गुजरात के हिन्दी गौरवग्रन्थ पृ० १८२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंजली के जल ज्यों घटत पलपल आयु
विष से विषम विविसाउत विष रस के।
पंथ को मुकाम कहु बाय को न गाम यह,
जैबो निज धाम तातें कीजे काम यश के।
खान सुलतान उमराव राव रान आन,
किसिन अजान जान कोऊ न रही सके।
सांझ रु विहान चल्यो जात है जिहान तातै,
हमहूँ निदान महिमान दिन दस के।[1]

मन बड़ा चंचल है, यह व्रत-उपवास, मुंडन-बनवास आदि वाह्याचारों से वश में नहीं आता, इसे आंतरिक शुद्धि और परमात्मा के प्रति अनन्य श्रद्धा द्वारा वशीभूत किया जा सकता है यथा मन में है आस तो किसन कहा बनवास, ह्वैहै मन चंगा तो कठौती में गंगा है। इनमें ज्ञान-वैराग्य के माध्यम से शम स्थिति की स्थापना और अंततोगत्वा शांतरस की सुन्दर अवतारणा हुई है। प्रत्येक कवित्त ३१ मात्रा का मनहरण छन्द में रचित है। भाषा प्रयोग और छन्द रचना पर किशनदास का अच्छा अधिकार है। इसलिए सभी पक्षों की दृष्टि में ये अच्छे कवि सिद्ध होते हैं। भाषा हिन्दी है।

किशनसिंह - इनके पितामह सिंगही कल्याण रामपुर के निवासी और पाटण गोत्रीय खंडेलवाल वैश्य थे। किसी तीर्थयात्रा के लिए संघ निकलवाने के कारण उन्हें संघी या संघवी कहा जाने लगा। सिंगही उसी का बिगड़ा रूप है। सिंगही कल्याण जी यशस्वी और दानी पुरुष थे जो त्रेपन क्रियाकोश की प्रशस्ति की इस पंक्ति से प्रमाणित होता है।

संगही कल्याण सब गुण जाणं, गोत्र पाटणी सुजस लियं।[2]

कल्याण के दो पुत्र थे, सुखदेव और आनंद। सुखदेव के तीन पुत्र थान, मान और किशन यथा -

तसु सुत दुय एवं गुरु सुखदेवं लहुरो आणंद सिंह सुणौ।
सुखदेव सुनंदन जिनपदवंदन थान मान किसनेस सुणौ।

---

१. डा० हरीश–गुर्जर जैन कवियों की हिन्दी साहित्य को देन पृ० १६८-१७०

२. त्रेपनक्रियाकोश–प्रशति — प्रशस्तिसंग्रह जयपुर १९५० पृ० २२०
(डा० प्रेमसागर जैन–हिन्दी जैन भक्तिकाव्य और कवि पृ० ३२७ पर उद्धृत)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ये सूचनायें किशन सिंह की रचना त्रेपन क्रिया कोश की प्रशस्ति पर आधारित है इसलिए विश्वसनीय है। डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल ने भी पिता का नाम सुखदेव बताया है और इन्हें सांगानेर का निवासी कहा है। कवि ललितकीर्ति का शिष्य था और अनन्तकीर्ति उस समय आचार्य थे। डॉ० गंगाराम गर्ग ने किशन सिंह को मथुरादास पाटणी का पुत्र बताया है किन्तु उसका कोई प्रमाण नहीं दिया है[1]। डॉ० गर्ग का कथन है कि मथुरादास टोंक (रामपुर) के प्रतिष्ठित निवासी थे और वहाँ एक भव्य जिनमंदिर बनवाया था। डॉ० गर्ग ने किशन सिंह के छोटे भाई का नाम आनन्द सिंह बताया है। किशन सिंह रामपुर से सांगानेर चले गये, उस समय वहाँ सवाई जयसिंह का शासन था, किशनसिंह ने वहीं सुखपूर्वक साहित्य सृजन किया। इन्होंने भी हिन्दी में ही रचनाएँ की हैं। पं० नाथूराम प्रेमी ने इनके त्रेपनक्रियाकोश, भद्रबाहुचरित्र और रात्रिभोजन कथा का ही उल्लेख किया है।[2] लेकिन अब तक उनकी लगभग बीस कृतियों का पता लग चुका है जिनमें णमोकार रास सं० १७६०, चौबीस दण्डक १७६४, पुण्यास्रवकथा कोष १७७३, लब्धि विधान कथा १७८२, निर्वाण काण्ड भाषा १७८३, चतुर्विंशति स्तुति, चेतनगीत, चेतन लोरी, पदसंग्रह आदि प्रसिद्ध हैं। अधिकतर रचनायें जिनभक्ति और धार्मिक क्रियाओं से सम्बन्धित हैं। त्रेपनक्रियाकोश सं० १७८४—इसमें जैनों की धार्मिक क्रियाओं का उल्लेख है, इसलिए कवित्व सामान्य कोटि का ही है। इसमें २९०० पद्य हैं। यह रचना जैन साहित्य प्रसारक कार्यालय हीराबाग, बम्बई से प्रकाशित है। नमूने के तौर पर कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

नमो सकल परमातमा, रहित अठारह दोष।
छियालीस गुन प्रमुख जे, है अनंत गुन कोष।
आचारज उवझाय गुरु, साधु त्रिविध निरग्रंथ।
भवि जगवासी जनन को, दरसावै सिव पंथ।[3]

भद्रबाहु चरित्र इसमें अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु का चरित्र

१. गंगाराम गर्ग – लेख राजस्थानी पद्य साहित्यकार, राजस्थान का जैन साहित्य पृ० २२१ पर संकलित
२. पं० नाथूराम प्रेमी हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास पृ० ६६
३. डा० प्रेमसागर जैन—हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि पृ० ३३०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंकित है। इसका रचनाकाल सं० १७८३ है। यह रत्ननन्दि द्वारा विरचित भद्रबाहु चरित (संस्कृत) पर आधारित है, यथा –

संवत सतरह सै असी ऊपरि और है तीन,
माघ कृष्ण कुज अष्टमी ग्रंथ समापत कीन्ह[1]।
केवल वोध प्रकास रवि उदै होत सखि साल,
जग जन अन्तरतम सकल छेद्यो दीनदयाल।

इसमें चार सन्धियाँ हैं, नाना छन्द हैं, सामान्य कोटि की रचना है। रात्रि भोजन को नागश्री कथा भी कहते हैं। इसका प्रारम्भ इस प्रकार है –

समोसरण शोभा सहित जगतपूज्य जिनराज,
नमौ त्रिविध भवदधिन कौ तारण विरुद जहाज।

यह रचना सं० १७७३ श्रावण शुक्ल ६ को पूर्ण हुई[2]। बावनी (सं० १७६३) का मंगलाचरण प्रस्तुत है—

ॐकार अपर अपार अविकार अज,
अचरजु है उदार, दादनु हुश्न को।
कुंजर ते कीट परजन्त जग जन्तुताके,
अन्तर को जागी बहुनामी सामी सन्त को।
चिंता को हरनहार चिंता को करनहार,
पोषन भरनहार किसन अनन्त को।
अन्त कहै अन्त दिन राखे को अनन्त बिन,
ताके तंत अन्त को भरोसा भगवन्त को।

चेतनगीत—चेतन जो भ्रम में भूलकर सत्य से पराङ्मुख हो गया उसे उद्‌बोधित करते हुए कवि किशन कहते हैं –

तुम सूते काल अनादि के जागो जागोजी चेतन गुणवान।[3]

लब्धि विधान व्रत कथा में गौतम गणधर का चरित्र चित्रित है। रचनाकाल सं० १७८२ है यथा 'शुभ बयासिय सत्रह सौ समे' (लब्धि-

१. डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल—राजस्थान के जैन शास्त्र भंडारों की सूची भाग ४ पृ० २३१ और २३८, भाग ३ पृ० २७०-२७९
२. वही
३. डॉ० प्रेमसागर जैन—हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि पृ० ३२७-३३०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विधान कथा पद्य २२५) इसे मूलतः अभ्र पण्डित ने संस्कृत में लिखा था; उसी पर यह रचना आधारित है—

कथा संस्कृत यह अभ्र पण्डित ने कीनी,
हरष ब्रह्म उपदेश पाय सुखकर रचिलीनी।
(वही पद्य २२३)

लब्धिव्रत की महिमा बताई गई है। गौतम ने यह व्रत पूर्वभव में किया था जिसका परिणाम गणधर पद की प्राप्ति थी। यह दोहा चौपाई और अन्य तेरह छन्दों में लिखा गया है[1]।

पुण्यास्रव कथाकोश–यह महत्वपूर्ण रचना सं० १७७३ में रचित है। इसमें जैन भक्तों की पद्यवद्ध कथायें हैं। आदिनाथ जी का पद सं० १७७१ में रचित है, यह प्रथम तीर्थङ्कर आदिनाथ की स्तुति में लिखा गया है। चतुर्विंशति जिनस्तुति–एक चौबीसी है। पार्श्वनाथ की स्तुति में रचित एक छप्पय की अन्तिम दो पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

गणधर जु भये दस ज्ञान धर कोस पाँच समवादि मनि।
श्री पार्श्वनाथ वंदौ सदा कमठ मान वन दव अगिनि।

इन्होंने भक्तिपूर्ण सरस पदों की भी रचना की है; एक पद की पंक्तियाँ देखें—

जिन आप कूं जोया नहीं, तन मन कूं खोज्या नहीं,
मन मैल कूं धोया नहीं, अंगुल किया तो क्या हुआ।

इसकी भाषा शुद्ध खड़ी बोली है, यह खड़ी बोली हिन्दी पद्य के प्राचीनतम नमूनों में गणनीय है। इससे खड़ी बोली पद्य साहित्य की प्राचीनता भी प्रमाणित होती है साथ ही कबीर आदि सन्तों की भाव-भाषा शैली का प्रसार विकास भी दिखाई पड़ता है। इन प्रमुख रचनाओं के अलावा श्रावक मुनि गुण वर्णन गीत, एकावली व्रत कथा आदि का भी पता चला है।

किशनदास और किशनसिंह राजस्थान, गुजरात या उत्तर प्रदेश के थे यह विवाद महत्वहीन है। वे जहाँ बस गये थे, वहाँ के ही थे। किसनदास गुजरात (अहमदाबाद) और किशनसिंह (सांगानेर) राज-

---

१. डॉ० लालचन्द जैन––जैन कवियों के ब्रजभाषा प्रबन्ध काव्यों का अध्ययन ९१-९२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थान में रहकर हिन्दी में रचनाएँ करते रहे यह ऐतिहासिक महत्व की बात है। यह तत्कालीन काव्यभाषा ब्रज जिसमें षट्भाषाओं का मेल था और जो मरुगुर्जर के मेल में थी, का दूरव्यापी प्रभाव व्यक्त करती है।

कीर्तिविजय--इनकी एक रचना 'गोड़ी प्रभु गीत' (११ कड़ी सं० १७६६ वैशाख) का पता चला है। इसका रचनाकाल कवि ने इस प्रकार लिखा है—

सतरइ सइ छासठै साखइ, तवन रच्यउं वैशाखइ,
गोड़ी पास तणा गुण गाया, सफल थई मुझ काया।
कीरतिविजय इण परि बोलइ, प्रभु जी नै कोंइ न तोलइ।

इसका आरम्भ प्रभुमिलन-स्मरण से हुआ है, यथा—

आज दिवस मुझ सफल जु फलीयो सुपने प्रभु जी मीलिया।[1]

कीर्तिसागर सूरि शिष्य—इस अज्ञान कवि ने 'भीमजी चौपई' सं० १७४२ चैत्र शुक्ल १५ पूजापुर में पूर्ण किया। यह ऐतिहासिक रास संग्रह भाग १ में प्रकाशित है। इसके आदि में सरस्वती की वन्दना है—

सरस वचन द्यो सरसति, प्रणमी वीनवुं माय,
अविरलमुझ मति आपजो करजो अे सुपसीय।
× × × ×
चतुर छयल पण्डित पुरस, तस मन अधिक सुहाय।
बुधि अकलि आविअ फलि, सांभलता सुखथाय।
जाण होसे ते जाणसे अवर न जाणे भोय,
काव्य गीत गुण उरें, मूढ न आगे हेज।

अर्थात् काव्यरस का आनन्द सहृदय ज्ञानी पुरुष ही उठा सकते हैं न कि अरसिक-अज्ञानी। इसमें भीमसाह की कथा है, यथा—

भिमसाह भोगी भरजे अछे इणि संसार,
तेह तणां गुण वरणवुं सांभलजो नरनार।[2]

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई-जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० ४६६ प्र० सं० और भाग ५ पृ० २५८ न० सं०।

२. वही, भाग २ पृ० ३६३ (प्र०सं०) और भाग ५ पृ० ४०-४१ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसका नाम भीम चौपाई इसलिए है क्योंकि इसमें भीमासाह ने केशरिया जी का संघ निकाला था; वे बड़े दानी थे, उनके गुणानुवादार्थ यह चौपाई लिखी गई है। भीम पोरवालवंशीय उदयकरण और उनकी पत्नी अंबु के पुत्र थे। ये ठाकुर अमरसिंह चौहान के मन्त्री थे। भीम ने जो संघ यात्रा निकाली थी उसी का इसमें मुख्यतया वर्णन किया गया है। कवि ने लिखा है कि भीम परोपकारी, सत्यवादी, दानी, देवगुरु सेवक और सप्तक्षेत्र में धनी सद्व्यय करने वाले सत्पुरुष थे।[1] संघयात्रा वर्णन से सम्बन्धित कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

संघपति तिलक धराविउ, मारग चाले मनरंग।
के वाहण के पालकी के नर चड्या तुरंग।
चतुर पुरुष छयल जे श्रावक समकितधार,
मारग चाले मयमंता करता जयजयकार।

इसमें प्रयुक्त 'छयल' शब्द तुलसीद्वारा राम की बारात में जानेवाले घुड़सवार 'छयल' से तुलनीय है। इसका रचनाकाल इन पंक्तियों में बताया गया है—

संवत सतर बयतालीसमे रे मैत्री पुन्यम सुखकार।
जे नर भणे गुणें नें सांभले रे तस घर जयजयकार।

लेखक ने स्वयं को कीर्तिसागर का शिष्य बताया है परन्तु अपना नाम नहीं दिया है, यथा—

सकल भट्टारक-पुरंदर सिरोमनी श्री कीर्तिसागर सूरिंद।
तत् शिष्ये जोड़ी चौपई रे, पुजपुर नगर मझार।[2]

कीर्तिसुन्दर या कान्हजी—खरतरगच्छ जिनभद्रशाखा के धर्मसिंह आपके गुरु थे।

अवंती सुकुमार चौढालिपु, मांडकरास, अभयकुमारादि पंचसाधुरास, कौतुकपचीसी, चौबोली चौपई, वाग्विलास कथासंग्रह आपकी प्राप्त रचनायें हैं। इनका विवरण निम्नाङ्कित है-

अवंतीकुमार चौढालिपु (सं० १७५७ मेड़ता, चौमासा)

---

१. ऐतिहासिक जैन संग्रह भाग १
२. वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदि—वंदु श्री महावीर ना, पाय कमल धरि प्रेम,
जिणरो शासन जाणीयें, आगम भाख्या अेम।
× × ×
करणी जिन मोटी करी, मुनी अवंती सुकुमाल,
सूत्र तणें अनुसार सुं संबंध कहुं रसाल।

रचनाकाल-संवत सतरे वरस सतावने, मेडता नगर मझार।
चौमासे श्री जिनचंद सूरि जी, सहुगछ में सिरदार जग में।
पाठक श्री ध्रमसी जी परगंडा, पंडित गुणे परधान।
करी जोड त्यारे सिष कान्ह जी, धरिवा धमनो ध्यान।

भाषा अनगढ़ है जैसे धर्म का ध्रम और धम प्रकट का परगडा आदि प्रयोग चिन्त्य हैं।

मांडकरास (सं० १७५७ मेड़ता) राजस्थान भारती अंक ३-४ में प्रकाशित है।

अभयकुमारि पंचसाधुरास (१२ ढाल सं० १७५९ जयतारण)

आदि—जगगुरु प्रणमुं वीर जिन, अधिक भाव मन आणि।
सुपसायै जिणरें सहूं, वंछित चढ़ै प्रमाण।
सहु सुबुधी सिर सेहरो अधिक कीया उपगार।
कीरति अभयकुमार री सहुजाणै संसार।
तसु संबंध संक्षेप सु अवर च्यार अणगार।
शिव, सुब्रत, धन, जनक जु एहना कहुं अधिकार।

रचनाकाल-संवत सतरै गुणसठे समें जयतारणपुर जाण,
चौमासे श्री जिनचंद्र सूरि जी भट्टारक कुलभाण।[१]

इसमें गुरु परम्परा विस्तार से दी गई है। खरतरगच्छ की जिनभद्रसूरि शाखा के अन्तर्गत साधुकीर्ति से लेकर साधुसुंदर, विमलकीर्ति, विजयहर्ष और धर्मवर्द्धन का वन्दन करके कहा है :—

विमलकीरति जगि विम्मलचंद, जयुं विजयहरख सुखदान।
श्री धर्मवर्धन राजें सद्गुरु, पाठक सुगुण प्रधान।
गुण साधांरा मन सुख गावता, सहु सुख लहीयें सार,
कीरति सुन्दर हवै कान्हजी, संघ उदय सुखकार।[२]

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई-जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १४०४-६ (प्र० सं०) और भाग ५ पृ० १८२-८४ (न० सं०)।

२. वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कौतुक पचीसी सं॰ १७६१ आषाढ़ में और चौबोली चौपाई सं॰ १७६२ थागलें नगर में रचित रचनायें हैं। इनकी एक कृति कथासंग्रह सम्बन्धी 'वाग्विलास संग्रह' भी प्राप्त है। इनकी भाषा पर राजस्थानी का प्रभाव अधिक प्रकट होता है।

कीसन (कृष्णदास मुनि)--आप लोकागच्छीय सिंघराज के शिष्य थे। आपने सं॰ १७६७ आसो शुक्ल १० को कीसनबावनी या उपदेश बावनी की रचना की। (इनका परिचय किशनदास नाम से दिया जा चुका है) देखिये किशनदास।

कुशल—लोंकागच्छ के रामसिंह आपके गुरु थे। इन्होंने दशार्ण-भद्र चोढालिउ, सनत् कुमार चोढालिउ (१७८९ मेड़ता) लघु साधु वंदणा और सीता आलोयणा आदि रचनायें की। परिचय संक्षेप में प्रस्तुत है—

दशार्णभद्रचोढालिउ (सं॰ १७८६, सोजत) दशार्ण देश के राजा दशार्णभद्र के संयमव्रत पालन से सम्बन्धित है। प्रारम्भिक पंक्तियाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं—

सारद समरुं मनरली समरुं सद्गुरु पाय।
वचन अमीरस सारीखा, मुझ दीज्यो चित लाय।
देस दसारण नो धणी दसारणभद्र नरिंद्र।
संयम लीधो चुप सूं, जीतो सुरवर इद्रि !

रचनाकाल, स्थान तथा गुरुपरम्परा का परिचय इन पंक्तियों में दिया गया है—

नगरभलो सुखदाय हो, सोजित सहर बखाणिये।
गुण गाया भलै भांव सुं हो, संवत-सत्तर छयासिये।[1]
गछनायक गुणवंत महिमासागर सेवीयै,
रामसिंघ जी गछराय, कुशल सीस गुण गाइया।

सीता आलोयणा भी इनकी प्रसिद्ध कृति है इसका मंगलाचरण इन पंक्तियों से प्रारम्भ हुआ है—

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई–जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ॰ ५६०-५६१, भाग ३ पृ॰ १४५३-५४(प्र॰ सं॰)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सती न सीता सारखी, पती न राम समान ।
जती न जंबू सारखो, गती न मुगति समान ।
सीता जी कुं रामजी जब दीनो बनवास ।
तब पूरब कृत करम कुं, याद करे अरदास ।

इसमें जैन मतानुसार पूर्वभव के कर्म का प्रभाव सीता बनवास के रूप में प्रकट किया गया है । इस आलोयणा की कुछ अन्तिम पंक्तियाँ कवि के गच्छ और गुरु का परिचय देती है, यथा--

नागोरी गछ नायक नीको, श्री रामसिंघ जी सद्गुरुजी को ।
शीष कहावे कुशल सुग्यानी, तिण आलोयणा करीय सुध्यानी ।
× × × ×
नहि विवेक तिर्यंच में मनुष्य मां हे सहुवात,
मुगति मांहे सुख सासतां, केवल कुशल-कहात ।

इनकी दो और छोटी-छोटी रचनाओं का नामोल्लेख किया गया है उनमें एक है 'निदानी संज्झाय' और दूसरी है सीमंधर संज्झाय (गाथा ७) । श्री देसाई ने जैन गुर्जर कवियो भाग २ में कवि का नाम कुशल सिंह दिया है पर कवि ने सर्वत्र अपना नाम कुशल ही दिया है इसलिए यहाँ इनका परिचय 'कुशल' नाम से ही दिया गया है । नागोरी गच्छ और लोंकागच्छ को लेकर जयंत कोठारी ने इन पर शंका उठाई है ।[1] अगरचंद नाहटा ने इनका नाम कुशलसिंह लिखा है और दशार्णभद्र चौढालिया तथा संत कुमार चौढालिया का उल्लेख किया है तथा रामसिंह का शिष्य बताया है ।[2]

कुँवर कुशल--वे भट्टार्क कनककुशल के शिष्य और प्रतापकुशल के प्रशिष्य थे ।

ये महाराव लखपत और उनके पुत्र द्वारा सम्मानित थे । इनके ग्रंथ इन दोनों को समर्पित हैं । इनका व्रजभाषा पर अच्छा अधिकार है और ये व्रजभाषा के प्रौढ़ कवि थे, साथ ही इन्हें संस्कृत, फारसी जैसी भाषाओं के अलावा संगीत आदि अन्य कलाओं की भी अच्छी

---

१ मोहनलाल दलीचन्द देसाई--जैन गुर्जर कवियो भाग ५ पृ० ३२२-३२३ (न० सं०) ।

२. अगरचन्द नाहटा--परंपरा पृ० ११४ ।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

जानकारी थी। आप काव्यशास्त्र और पिंगलशास्त्र के भी पंडित थे, अर्थात् आप रीतिकालीन आचार्य कवियों की ब्रजभाषा काव्य परंपरा के विद्वान् थे। लखपतमंजरी नाम माला और अन्य रचनायें इन्होंने अपने काव्यगुरु कनककुशल के साथ सृजन सहयोग पूर्वक रचा था। इनकी अन्य रचनायें पारसति (पारसात) नाममाला, गौड़पिंगल, लखपति स्वर्ग प्राप्ति समय, महाराव लखपत दुवावैत, मातानो छंद अथवा ईश्वरी छंद आदि हैं। लखपतिजससिंधु काव्यप्रकाश पर आधारित रचना है। इसमें महाराव के शौर्य एवं ऐश्वर्य का वर्णन भी किया गया है, यथा -

कच्छपति देसल राउ कै, तखत तेज बलबीर।
महाराव लखपति मरद, कुंअर कोटि कोटीर।
बड़े कोट किल्ला बड़े, बड़ी तोप विकराल।
बड़ी रौंस चहुं ओरबल, जबर बड़ी जंजाल।[1]

कुशलधीर - ये खरतरगच्छ के आचार्य जिनमाणिक्य सूरि की परम्परा में कल्याणधीर के प्रशिष्य और वाचक कल्याण लाभ के शिष्य थे। आप कवि तो थे ही, अच्छे भाषा टीकाकार भी थे। सं० १६९६ में ही इन्होंने कृष्णवेलि का बालावबोध भावसिंह के आग्रह पर भाषा टीका के रूप में लिखा था। आप १७वीं शती के अन्तिम दशक से लेकर १८वीं शती पूर्वार्द्ध तक रचनाशील रहे। आपके शिष्य प्रसिद्ध कवि कुशललाभ थे। उनके आग्रह पर इन्होंने 'शीलवती रास' सं० १७२२ साँचोर में रचा था। इनकी अन्य प्राप्त रचनाओं में लीलावती रास (सं० १७२८, सोजत) प्रमुख है जिसे इन्होंने अपने दूसरे शिष्य धर्मसागर के आग्रह पर लिखा था। भोज चौपई सं० १७२९ सोजत, राजर्षि कृत कर्म चौपई १७२८ सोजत, चौबीसी सं० १७२९ सोजत, कुशलसूरि गीत (गाथा २१) आदि इनकी अन्य रचनायें उल्लेखनीय हैं। इनकी सर्वप्रथम प्राप्त रचना 'उद्यम कर्म संवाद' सं० १६९९ की है जो किशनगढ़ में श्रावक सच्चीदास के आग्रह पर लिखी गई थी। इसके दो दशक बाद से इनकी रचनायें १८वीं शती में रचित

---

१. कुवरचन्द्रप्रकाश सिंह-भुज (कच्छ) की ब्रजभाषा पाठशाला पृ० ३१; डॉ० हरीश—जैन गुर्जर कविओ की हिन्दी क० को देन पृ० १७३-१७५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं। इन्होंने रसिक प्रिया भाषा टीका नामक गद्य की रचना सं० १७२४ जोधपुर में की थी। 'सभाकुतूहल' इनका एक अन्य वर्णन संग्रह ग्रन्थ है।[1] उद्यमकर्म संवाद की कुछ पंक्तियाँ पहले देखिये—

उद्यम कर्म बिहुंतणउ सूरिराय सिरताज,
न्याय विवेच्यउ इम विमल युगवर श्री जिनराय।

रचनासमय— संवत सोल निन्याणवे किशनगढ़े सुखकार,
उद्यम कर्म संवाद इम कहइ धीर अणगार।
धरम धुरंधर सुघड़ अति श्रावक सच्चीदास,
आग्रह तेहने इम कहे, कुशलधीर सुप्रकाश।[2]

राजर्षिकृतकर्म चौपई का आदि—

परम पुरुष परमेष्ठि पय, प्रणमुं परमानंद।
सेवकजन सुख पूरवइं, परतषि सुरतरु कंद।

रचनाकाल— संवत सतरह सय अठवीसयइ रे, सोझित नगर मझार।
धरमनाथ जिनवर सुपसाउलइ रे, अे चउपइ रचीय उदार।[3]

भोजराज चौपइ (सं० १७२९) में दान की महिमा का दृष्टांत भोज चरित्र द्वारा दर्शाया गया है, यथा

दान तणै अधिकार दीपाई, कहीय कथा चितलाई बे।
इमि जे दान सुपात्रे देसै, वंछित फल ते लहस्ये बे।

इसमें कहा गया है कि पंचम आरे में भोजराज नामक महादानी राजा हुआ। यह रचना उसी के दान का वर्णन करती है। इसके पांच खण्डों में से प्रथम खण्ड में मुंज भोज की उत्पत्ति, भोजराज प्रतिबोधक धनपाल सोभन का स्वर्गगमन वर्णित है। प्रथम खण्ड १७२९ कार्तिक कृष्ण षष्ठी को पूर्ण हुआ—

प्रथम खण्ड पूरो कीयो, करे ग्रन्थ अेकठ।
निधिभुज संवच्छरे कार्तिक वदि छठ।[4]

---

१. अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० १०१-१०२।
२. मोहनलाल दलीचन्द देसाई जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १२६८ (प्र० सं०)।
३. वही
४. वही, भाग ३ पृ० १२६६-६७ (प्र० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वितीय खण्ड में भोज के दान, विद्या और यश की प्रशस्ति वर्णित है। तृतीय खण्ड में पूर्वभव कथन, परकाय प्रवेश और विद्यासिद्धि का वर्णन है। चतुर्थ खण्ड में सत्यवती प्रतिज्ञा कथन और देवराज पुत्र जन्म कथन है। पंचम खण्ड में भोजराज की कथा का उपसंहार किया गया है और रचनाकाल इस प्रकार कहा गया है—

संवत सतरैसे गुणत्रीसै, माह वद तेरस दीसे,
पंचम खंड थयौ इहां पूरौ, सोझित नगर सनूरो रे।

इस रचना में ऐतिहासिक महत्त्व की पर्याप्त सूचनाएं हैं।

लीलावती रास—(सं० १७२८ सोजत)

आदि—आदीसर समरि नै प्रणमी सद्गुरु पाय।
सती चरित कहिसुं सुपरि, सुणज्यो सहुचित्तलाय।

इसमें लीलावती के सतीत्व का महत्व बताया गया है। रचनाकाल आगे दिया जा रहा है—

संवत वसु भुज भोयण अे सोजित नगर मझार।
रास रच्यो रंगई करी अे, श्री संघनइ सुषकार ॥[1]

कुशललाभ (वाचक)—खरतरगच्छीय जिनमाणिक्य >कल्याण-धीर>कल्याण लाभ>कुशल धीर के शिष्य थे। ये हिन्दी मरुगुर्जर के प्रसिद्ध कवि हैं। इनकी रचनाओं ने धर्मबुद्धि चौपइ सं० १७४८ नवलखी, गुणसुंदरी चौपइ १७४८, वनराजर्षि चौपइ १७५०, भटनेर, मल्लिनाथ स्तव १७५६ (४२ गाथा) जैसलमेर, आदि प्रमुख हैं जिनका संक्षिप्त वर्णन किया जा रहा है—

धर्मबुद्धि चौपइ (३५ ढाल सं० १७४८ पोष कृष्ण १०)

आदि—आदि चरण प्रणमी करी, शांतिनमुं मुख चंद।
नेमनाथ मन में धरी, प्रणमुंपास जिणंद।[2]

इसमें उपरोक्त गुरु परंपरा दी गई है। यह रचना कुशल लाभ ने अपने शिष्यों कुशल सुंदर और हीर सुंदर के आग्रह पर लिखी थी, स्थान और रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है—

१. मोहनलाल दलीचंद देसाई—जैन गुर्जर कवियो भाग ३ पृ० १२६६-६७ (प्र० सं०)।
२. अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० १०२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संवत सतरइ सइ अठतालइ, पोस वदइ दसमी दिनइ,
अे थइअ पूरी अति सनूरी कथा कविनइ सुखकरी।
× × ×
नगर मनोहर नवलखी देहरासर सुखकार,
शांति जिणेसिर सोलमो सुरतरु नइ अवतार।[1]

वनराजर्षि चौपइ (३९ ढाल सं० १७५० सं० आषाढ़ शुक्ल १५ भटनेर)

आदि—आदि जगेसर आदि देव चोवीसे जिणचन्द,
प्रणमुं ते दिन दिन प्रतें सहुजीवां सुखकन्द।
भावस्तुति पूजा थकी राजलह्यो बनराज;
ते सम्बन्ध इहां हिवे, हुं कहिस्यूं हितकाज।

रचनाकाल— संवत सतरे सइ पचासे समे रे, आषाढ़ मास उदार।
अजुआली रे पूनम पूरी थई रे, चउपइ अे सुखकार।
नगर भलो रे भटनेर बखांणी अे रे, नगरां मांहि प्रधान।
श्रावक सुखी सखरा जिहाँ रे, धरें सदा ध्रमध्यान।
इहाँ चोमासे रे आवी कीधी चउपइ रे, श्री जिनकुशल पसाय।
इहाँ ते थूम विराजइ सासतउ रे, कुशललाभ सुखदाय।[2]

कुशलविनय—ये क्षेमशाखा (खरतर०) के रत्नवल्लभ के शिष्य यशोवर्द्धन के शिष्य थे। इन्होंने नेमिराजुल सिलोको और राणकपुर स्तवन सं० १७५४ में बनाया।[3] श्री मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने नेमिराजुल शलोको का रचनाकाल सं० १७५९ आषाढ़ शुक्ल ३ बताया है।[4] इन रचनाओं का कोई उद्धरण नहीं प्राप्त हुआ इसलिए 'त्रैलोक्य दीपक काव्य' (सं० १८१२) के रचयिता कुशल विजय और प्रस्तुत कुशल विनय एक ही हैं या दो व्यक्ति और कवि हैं यह भी निश्चय

१. मोहनलाल दलीचंद देसाई—जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १३३९-४२ और भाग ५ पृ० ६३-६६ (न० सं०)।
२. वही
३. अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० १०२।
४. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १४०४ (प्र०सं०) और भाग ३ पृ० १५२४ (प्र० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं हो सका। यह रचनाओं का परीक्षण करने के पश्चात् ही कुछ कहा जा सकता है।[1]

कुशलसागर अथवा केशवदास—ये खरतरगच्छीय जिन भद्रसूरि शाखा के लावण्यरत्न के शिष्य थे। इनका जन्म नाम केशवदास था, इस नाम से भी इनकी रचनाएँ मिलती हैं। इन्होंने सं० १७३६ में केशव बावनी; सं० १७४५ में वीरभाण उदयभाण रास (६५ ढाल नवानगर) की रचना की।[2] श्री मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने भी कुशलसागर (केशव) को खरतरगच्छीय जिनभद्र शाखा के साधुकीर्ति >महिमसुंदर>नयमेरु>लावण्यरत्न का शिष्य बताया है।

केशवदास बावनी या मातृका बावनी (सं० १७३६ श्रावण शुक्ल ५ मंगलवार)

आदि–ओङ्कार सदा सुख देउ तही नित सेउत वंछितइच्छित पावै।
बाउन अक्षर मांहि शिरोमणि योगीसर ही इस ध्यावै।
ध्यान में ग्यान में वेद पुराण में कीरति जाकी सबै मनभावै।
केशवदास कुं दीजिइं दोलत भाव सौं साहिब के गुण भावै।

अंत—बाउन अक्षर जोर करी भया, गाउ पन्यास ही मन भावें।
सतर सों छत्रीस को साउन सुदि पांचु भृगुवार कहावे।
सुख सोभागनी को तितको हुवे बाउन अक्षर जो गुन गावे।
लावनरत्न गुरु सुपसाउलो केशवदास सदा सुख पावे।[3]

इस प्रकार केशवदास (कुशलसागर) ने अपनी रचना में लावण्यरत्न को अपना गुरु बताया है।

वीरभाण उदयभाण रास (सं० १७४५ विजयदसमी सोमवार, नवानगर)

आदि–सद्गुरु जी सानिध करो, श्री जिनकुशल सूरींद।
परना पूरण तुं प्रभु, परतिख सुरतरु कंद।

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कविओ भाग ५ पृ० १९४ (न० सं०)।

२. अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० १०६।

३. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कविओ, भाग २ पृ० ३५४ (प्र०सं०) और भाग ५ पृ० २१ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वीरभाण तो दान थी लाघी लीला ऋद्धि।
उदेभाण सेवा करी, साधु तणी मन सुद्धि।

इससे स्पष्ट है कि वीरभान ने दान से और उदयभान ने साधुसेवा से मनःशुद्धि लाभ किया और महामुनि हो गये।

धन धन वीरभाण उदेभाण मुनीवरु नाम थकी विस्तार।
माहा मुनीसर नां गुण गावतां, पामीजे भवपार।

यह रचना विक्रमचरित्र पर आधारित है, यथा—

विक्रमचरित्र थकी अे उधर्यो सरस कथा रस जोय।

रचनाकाल—अे अरज छे रे कवियण माहरी, थे छो चतुर सुजाण;
माहरी शोभा वधस्ये तुम थकी, वाच्यां सरस बखाण।
सतर पसताले संवत्सरे, विजयादसमी सोमवार।
पूरण रास कर्यो मे तिण दिने, वर्त्या जयजयकार।

कवि ने उपरोक्त गुरु परंपरा बताकर अंत में अपना नाम कुशलसागर बताया है—

तेहनो शिष्य सुविनीत छे, कुशलसागर गणी जाण।[1]

केशवदास ने 'शीतकार के सवैया' (६ सवैया छंद) नामक हिन्दी रचना भी की है।[2] ये हिन्दी के प्रसिद्ध आचार्य कवि केशवदास से भिन्न हैं। इनका पूर्ण विवरण जैन गुर्जर कवियों में देखा जा सकता है। उत्तमचंद कोठारी (जलगाँव) ने अपनी सूची में इनकी एक रचना 'नेमिराजुल बारहमास सं० १७२६ का उल्लेख किया है जिसकी प्रति दिगम्बर जैन छोटा मंदिर में उपलब्ध है। इस प्रकार इनकी चार कृतियों का पता चल पाया है जिनके आधार पर ये कुशल कवि प्रतीत होते हैं।

(श्रीधर) केशवऋषि—लोकागच्छीय रूपसिंह के शिष्य बताये गये हैं। इनकी गद्य रचना दशाश्रुतस्कंध बालावबोध सं० १७०९ का उल्लेख मिलता है।[3] इनकी एक रचना साधु वंदना बताई गई है जिसके

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई-जैन गुर्जर कवियो भाग २ पृ० ३६६-६९ और ३५४ प्र० सं०, भाग ३ पृ० १३२८ और १३३३ प्र० सं०।
२. वही, भाग ५ पृ० २२ न० सं०।
३. वही, भाग २ पृ० ५९०, भाग ३ पृ० १६२४ प्र० सं० और भाग ४ पृ० १६८-१६९ न० सं०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंत में लिखा है —

'रूपसिंह व्रतिवर शिष्य श्रीधर (केशव) कहइ जयकार जयकरु।' इससे लगता है कि इनका नाम केशव और श्रीधर दोनों था। मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने एक केशव का उल्लेख १७वीं शती में भी किया है और साधुवंदना नामक रचना का विवरण दिया है।[1] इनकी दूसरी रचना 'लोकाशाह नो सलोको' का भी वर्णन किया गया है। १८वीं शती में भी केशव (श्रीधर) के साथ साधुवन्दना का उल्लेख किया गया है। यह सब शंकास्पद है। आपकी एक अन्य रचना 'चउवीस जिन स्तव' के अंत में भी कवि ने अपना नाम केशव ही दिया है, यथा—

जिनराज वीरो जयकरू रे, नित्यप्रति यह नाम,
गणिकेशव कहइ तेहनइ रे, नित्यप्रति सुखनो धाम।[2]

प्राप्त उद्धरणों में इसका रचनाकाल न होने से यह पता नहीं चलता कि ये १७वीं शती के कवि हैं। साधुवन्दना का आदि-अन्त आगे दिया जा रहा है—

आदि—पढमनाह सिरी रिसहदेव, पहु केरा पाय।
सुरनर इंदि नरंद नमी, सेवय सुहदाय।
अजिय अमिय कंदप्प जेण जीतो बलवंत।
सुहकर सामी वंदीयइ, अे संभव गुणवंत।

अंत इम साधुवंदन करी आणंद दुख निकंदन सुखकरु।
मल भविकरंजन असुखभंजन,पापगंजन सुखकरु।[3]

इसकी भाषा कृत्रिम रूप से प्राचीन प्राकृताभास शैली की गढ़ी गई है। इसलिए भाषा के आधार पर कवि का कालक्रम निश्चित करना अवैज्ञानिक है। प्रतीत होता है कि एक केशव (श्रीधर) हैं एक लोकागच्छीय केशवऋषि हैं। परन्तु दोनों का समय क्या है यह भी निश्चित नहीं हो पाता है।

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो भाग ३ पृ० १०९४ (प्र० सं०)।
२. वही भाग ३ पृ० १५२३ (प्र० सं०)।
३. वही भाग ३ पृ० १५२२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुशलो जी--लोकागच्छीय आचार्य श्री भूधर जी के शिष्य हैं। इनका जन्म सं० १७६७ और मृत्यु सं० १८४० में हुआ था। इनका जन्म सेठों की रीयाँ (मारवाड़) में हुआ। इनके पिता का नाम लाधूराम जी चंगेरिया और माता का नाम कानूबाई था। इन्होंने सं० १७९४ फाल्गुन शुक्ल सप्तमी को आचार्य भूधर से दीक्षा ली थी। आचार्य जयमल्ल जी इनके गुरुभाई थे। आप प्रभावशाली संत, शास्त्रज्ञ विज्ञान् और कवि थे। इनकी रचनाओं राजमती संञ्झाय, साधुगण की संञ्झाय, दशारणभद्र को चोढालियो, धन्ना की ढाल, नेमनाथ जी का सिलोका, विजयसेठ विजया सेठानी संञ्झाय के अलावा अनेक स्तवन और उपदेशपरक पदादि प्राप्त हैं। सीताजी को आलोयणा कुशलो जी की रचना कही गई है। पता नहीं यह कुशल की, कुशलसिह की या कुशलोजी की रचना है, पाठ मिलान करनेपर ही यह स्पष्ट हो सकता है। लोकागच्छ के रामसिह के शिष्य कुशल की रचना सीता आलोयणा और दशार्णभद्र चौढालिउ की चर्चा पहले की जा चुकी है इसलिए ये रचनायें इनकी नहीं हो सकतीं। शेष दो-तीन रचनायें जैसे राजमती संञ्झाय, धन्ना की ढाल, विजयसेठ विजया सेठानी संञ्झाय इनकी रचनायें हो सकती हैं। इनकी सूचना डॉ० नरेन्द्र भानावत और शान्ता भानावत ने अपने लेख 'राजस्थानी कवि-३' में दी है।[1] परन्तु कुशल, कुशलो के व्यक्तित्व और कृतित्व का स्पष्ट निरूपण नहीं किया है।

केसर-आपकी एक रचना 'चंदनमलयागिरि चौपई' (सं० १७७६) है जिसका आदि--

सानिध कारी सारदा, समरूं हुं सुप्रभात,
जोडि कला द्यो जुगति सुं, मया करेज्यो मात।
कहाँ चंदण मलयागिरी, कहां सायर कहां नीर।
कहिसु तिणकी बारता, सुणसीसहु बड़वीर।, और

रचनाकाल—संवत १७७६ तरे जी लाहे नगर चोमास।
महाजन सहु सुषीया वसे जी दिनदिन लील विलास।

1. डॉ० नरेन्द्र भानावत, राजस्थानी कवि-३ 'लेख संकलित' राजस्थान का जैन साहित्य।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ढाल इग्यारमी जी कवि केसर कर जोड़,
जे सुणस्ये भल भाव सुंजी ते घर संपति कोडि ।[1]

केसर कुशल--आप तपागच्छीय वीरकुशल के प्रशिष्य एवं सौभाग्य कुशल के शिष्य थे । आपकी प्रमुख रचना जगडु प्रबंध चौपाई अथवा रास (२६ कड़ी, सं० १७६०, श्रावण, सांतलपुर में लिखी गई हैं । इसका मंगलाचरण इन पंक्तियों से प्रारंभ हुआ है--

पास जिणेसर पय नमी, प्रणमी श्री गुरु पाय ।
जगड़ूसा सुरला तणा, गुण गातां सुखथाय ।
राजा करण मरी करी पहोतो सरग मझार ।
कंचनदान प्रभाव थी, पग पग रहे मनोहार ।
मानव भवजो पामीअे, तो सही दीजे अन्न ।
देवलोक थी अवतर्यो, जगड़ूसा धनधन्न ।

अर्थात् महादानी कर्ण ही जगड़ूसा के रूप में इस भव में अवतरा था ।

अंत--सतर नभ षट श्रावणमास अेह संबंध कर्यो उल्लास ।
शांतलपुर चोमासुं रही, श्रावकजन ने आदरे कही ।
पंडित मोहे प्रवर प्रधान, वीर कुशल गुरु परम निधान ।
सौभाग्यकुशल सद्गुरु सुपसाय, तास शिष्य केसर गुणगाय ।[2]

इसमें जगड़ूसा के दान की कथा के साथ कई अन्य ऐतिहासिक प्रसंगों का भी यत्रतत्र उल्लेख है । मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने इसका रचनाकाल १७०६ लिखा था जो पाठ से भी लक्षित होता है परन्तु ठीक तिथि १७६० ही लगती है क्योंकि सौभाग्य कुशल का समय इसी के आसपास निश्चित होता है । यही अभिमत नवीन संस्करण (जैन गुर्जर कवियो) के संपादक श्री जयन्त कोठारी का भी है ।

श्री मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने इनकी दूसरी रचना 'बीसी' बताई है किन्तु इसमें गुरु परंपरा नहीं है इसलिए कुछ शंकास्पद

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई--जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० ५३३-३४ प्र० सं० और भाग ५ पृ० २९३-२९४ (न० सं०) ।
२. वही, भाग २ पृ० १५८ और १७४ (प्र० सं०) तथा भाग ५ पृ० १९६-१९७ न० सं० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवश्य है, जब तक अन्यथा सिद्ध न हो जाय तब तक इसे केसर कुशल की कृति मानकर इसका आदि और अंत नमूने के तौर पर दिया जा रहा है —

आदि - सीमंधर जिनराज सुहंकर, लागा तुम सुं नेहा वो,
सलोने साई दिल सौं दरसन देह। ....
तुमही हमारे मन के मोहन, प्यारे परम सनेहा वो,
सलोने ....।"

अंत भाग भोग जिनराज प्रभु की, भगति मुगति मनभाई।
केसर कुशल सदा सुखसंपदा, दिनदिन अति अधिकाई।[1]

केसर कुशल (II) तपागच्छीय विजयप्रभसूरि के प्रशिष्य और ये हर्षकुशल के शिष्य थे। चूँकि इनकी गुरु परम्परा अलग है इसलिए भिन्न व्यक्ति और कवि होंगे। इनकी एक ही रचना का पता है: वह है '१८ पापस्थानक स्वाध्याय' (१९ ढाल सं० १७३० शुचिमास १५, गुरु) कवि ने रचनाकाल बताते हुए लिखा है—

गगन तत्व मुनि इंदु संवच्छर, सूची शुद्ध पूनिम सारी जी।
गुरुवारइ श्री गुरु सुपसाई, स्यापो होरइ जयकारी जी।

गुरु परम्परा का उल्लेख स्वयं कवि ने इस प्रकार किया है—

तपगच्छपति गुरु गुण रयणायर श्री विजयप्रभ सूरिंदा जी।
आगमाकारी विविध पटधारी, हरषकुशल मुनिंदा जी।
हितकारी श्री गुरु उपगारी ज्ञानदृष्टि दातार जी।
लही उपदेश केसर मुनि भाषइ भणी अे अधिकार जी।

इसका आदि इस तरह हुआ है -

श्री जिनवर जिणेसरुजी, भाख्युं भविजन काज।
दोष अठारह आकरा जी, समझी कीजइ त्याग।
भविकजन ! भावे निजमन भाव।
मंगलमाला पामीइ जी जीवदया अधिकार।
हरषकुसल गुरु वादंता जी, केसी गुरु नी वाणि।[2]

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १२०४, १२०८ (प्र० सं०) और भाग ५ पृ० १९६-१९७ (न० सं०)।

२. वही, भाग ३ पृ० १२७५-७६ (प्र० सं०) और भाग ४ पृ० ४३४, ४३५ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

केशर विमल - तपागच्छ के शांतिविमल आपके गुरु थे। केसरविमल के शिष्य दानविमल ने अपनी गुरुपरम्परा बताते हुए कहा है कि वह तपागच्छीय आनन्दविमल > विजयविमल > वानरर्षि गणि > आनंदविजय > हर्षविमल > शांतिविमल > केशरविमलका शिष्य है। मोहनलाल दलीचंद देसाई ने भी इन्हें शांतिविमल का शिष्य बताया है।[1] लेकिन कविकृत सूक्तमाला की साक्षी से वह कनकविमल का शिष्य और शांति विमल का सहोदर सिद्ध होता है। सूक्तमाला में कवि ने लिखा है—

विख्यातास्तद्राज्ये, प्राज्ञा श्री शांतिविमल नामानि,
तत्सोदरा वभूवु: प्रज्ञो श्री कनक विमलाख्या,
तेषामुभौ विनेयौ, विद्वत्कल्याणविमल इत्याद्य,
तत्सोदरो द्वितीय केशर विभाभिधोवरज: ।

इनकी दो रचनाओं का विवरण प्राप्त है। एक है 'सूक्तिमाला अथवा सुक्तिमुक्तावली' सं० १७५४ जिसका रचनाकाल कवि ने संस्कृत में लिखा है, यथा—

वे देंद्रियर्षिचंद्रे (सं० १७५४) प्रमिते श्री विक्रमागछते वर्षे,
अग्रंथी सूक्तमाला, केशर विमलेन विबुधेन।[2]

इसका प्रारम्भ भी संस्कृत श्लोक में ही है, यथा—

सकल सुकृत वल्लीवृन्द जे मूर्त्तिमाला,
जिनमनसि निधाय श्री जिनेन्द्रस्य मूर्ति।
ललितवचन लीला लोकभाषा निबद्धैरिह,
कतिपय पद्ये सूक्तमाला तनोमि।

कवि ने अपनी भाषा को 'लोकभाषा' कहा है जिसका तात्पर्य तत्कालीन प्रचलित काव्यभाषा की लोकरूढ़ शैली से है। इसके प्रारम्भिक दो श्लोक ही संस्कृत में है जिनसे उनके संस्कृत ज्ञान का अनुमान हो जाता है पर आगे के ३७ छंदों की भाषा लोकभाषा ही है। भाषा का नमूना देखने के लिए सूक्तिमाला के अन्त की कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो भाग २ पृ० ४४२-४५, भाग ३ पृ० १३८७ प्र० सं०।

२. वही भाग ५ पृ० १३४-१३५ न० सं०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भवविषय वणा जे चंचला सौख्य जाणी,
प्रियतम प्रिययोगा भंगुरा चित्त आणी।
करमदल खपेई केवलज्ञान लेई,
घनघन जन तेई, मोक्षसाधें जिकेई।[1]

यह रचना (सत्तरमा शतक) प्राचीन गुर्जरकाव्य में प्रकाशित है। इनकी दूसरी रचना 'वंकचूल रास सं० १७५६ में पूर्ण हुई जिसका आदि आगे प्रस्तुत है—

त्रिभुवननायक गुणतिलो, प्रणमुं आदि जिणंद,
जग जन तिमिर निवारवा उदयो पूनिम चंद।

इसमें वंकचूल राजा के दृष्टांत से यम-नियम, व्रत-संयम का संदेश दिया गया है—

नियम तणा व्रत साध जेजे, शिवरामा तस जोवे रे,
भोग अने उपभोग तणा जे, नियमव्रत आराधे रे।
श्री वंकचूल तणि परि ते नर, सरग तणा सुपसाधे रे,
विनय करी गुरु पाय नमीजे, राजऋद्धि सुख लीजे रे।

रचनाकाल—संवत सतरे छप्पने गायो, श्री वंकचूल नरेसो रे,
सुंदर मंदिर मति बंदिर, श्री संघ तणे आदेसो रे।

इसमें भी कवि ने अपने को शांतिविमल का सहोदर बताया है, यथा—

तेह तणे राजे जयवंता, श्री शांतिविमल कविराया रे,
तास सहोदर इण परसंगे, केशरविमल गुणभाया रे।[2]

इससे साफ ज्ञात होता है कि कवि शांतिविमल का भाई था पर यह अनिश्चित है कि शांतिविमल उसके गुरु थे या गुरुभाई ?

क्षमा प्रमोद—आप रत्नभ्रमसूरि के शिष्य थे। इनकी रचना निगोद विचारगीत (४८ कड़ी) सत्यपुर या साँचौर में पूर्ण हुई थी। इसका मंगलाचरण निम्नवत् है –

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कविओ भाग ५ पृ० १३४-१३५ न० सं०।

२. भाग ५ पृ० १३७ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रह उठी नमीयें सदा, शासननाथ सधीर,
त्रिशलानन्दन जगतिलो वरसुखदायक वीर।
पंचमअंगे प्रगट छे करु निगोद विचार,
सद्दवहतां सूधे मने, सही हुवे सुखकार।

इसके अन्त का 'कलश' आगे प्रस्तुत है—

वीर जिणवर सयल सुखकर सत्यपुर वर सोहअे।
सेवे सुरासुर दीप्तिभासुर भविक जन मन मोहअे।
निज गुणे गर्जित कुमति वर्जित रत्न समुद्र सूरीसअे।
मन सुद्ध गावे सही पावे, क्षमा प्रमोद जगीस अे।[1]

क्षमासागर—जिनधर्म सूरि के समय में इन्होंने 'शत्रुंजय बृहत्सव' (२ ढाल) को सं० १७३१ चैत्रशुक्ल ५ को पूर्ण किया। इसका प्रारम्भ इस ढाल से हुआ है—

"हठीला वयरी नी"
दाणा दीही मनमइ हुंती रे, जात करेवा खांत रे, डुंगर भलो।
देस सोरठ मइ शोभतउ रे लाल।
सोरठ दे स सोहामणउ रे, तीरथ जिहां बहुभांत रे, डुंगर भलो।

रचनाकाल—संवत सतर इकत्रीस मैं बलि चैत्री हो सुदि पंचमी जाण।
श्री जिनधर्म सूरीसरु, जिण भेट्या हो सकलइ मंडाण।
अहम्मदाबाद खंभाइती, विमला दे ही आसबाइ खास।
संघ साथइ इम प्रेम सुं, ववराव्या हो छठम नइ उल्लास।

अन्त—मन नी आस्या सहू फली, रंगइ गाया हो शेत्रुंज गिरराय से।
क्षमासागर मुनिवर भणइ, बलि होज्यो सेवतो तुन पाय से।[2]

क्षेम विजय—तपागच्छीय देवविजय के शिष्य शांतिविजय के ये शिष्य थे। इन्होंने कल्पसूत्र बालावबोध सं० १७०७ वैशाख शुक्ल गुरुवार को महेमदाबाद में लिखा। प्रारम्भ—

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १५२७-२८ प्र० सं० भाग ५ पृ० ३७२ (न० सं०)।
२. वही भाग २ पृ० २८३ और भाग ४ पृ० ४४५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री तपगण गगनांगण दिनमणि यः परास्त कुमति तिमिरो भरा,
श्री अकबर नृप पूजिता हीर विजय सूरयोऽभूत ।

इससे हीरविजय के पश्चात् विजयसेन, विजयतिलक, विजयाणंद, विजयराज, देवविजय और शांतिविजय आदि आचार्यों की गुरु परपंरा बताई गई है ।

रचनाकाल—वर्षेमुनि गगन गिरि क्षमा मिते(१७०७) राधमास सितपक्षे गुरु पुष्प राजिषष्ठ्या महमदाबाद वर नगरे' कहकर बताया गया है ।[1] गद्य का नमूना नहीं है ।

क्षेमहर्ष–आप खरतरगच्छीय सागरचन्द्र शाखान्तर्गत विशालकीर्ति के शिष्य थे । इनकी रचना चन्दनमलयागिरि चौपई' (१३ ढाल सं० १७०४ मसकोट) प्रकाशित हो चुकी है । इसका प्रकाशन सवाई भाई रायचन्द, अहमदाबाद ने किया है । इसके प्रारम्भ में चौबीस जिनवरों और माँ शारदा की स्तुति है, यथा—

जिणवर चउवीसें नमी, वली विशेष जिनवीर ।
वर्त्तमान शासनधर्णी, प्रणमुं साहस धीर ।
सरसवचन रस वरसती वीणा पुस्तक धार ।
भक्त प्रणमुं भारती, हंसगमनि हितकार ।

यह रचना शील का माहात्म्य प्रकट करती है—

शील अधिक संसार मां, जिणवर भाखे अेम,
अवर भणे हुंति अधिक, मेरु तणे परे जेम ।

× ×

तिणें हवे शील सराहसुं, चंदन नी परे चंग ।
सतियां मांहे शिरोमणी, मलयागिरि मनरंग ।
किणे दीपे पुरवर किणे, किसी परें संबंध अेहवु,
थयो थिकी हवे मूल थी, मांद्रीने कहीये तेह ।

अंत - बारमी ढाल मां अे कही जी, पूरव भव तणी बात ।
क्षेमहर्ष कहे हवे सुणो जी, संयम लीधे जेणे भांत ।[2]

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० ५९०, और भाग ३ पृ० ११२३ (प्र० सं०) भाग ४ पृ० १६२-१६३ (न० सं०) ।

२. वही, भाग ३ पृ० १२३-१२४, ११४० (प्र० सं०) और भाग ४ पृ० १४३-१४४ न० सं० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसमें १२ ढालों में इनके पूर्वभव की कथा का वर्णन है और अन्त में इनके संयम लेने का प्रसंग उल्लिखित है। इसके अलावा 'पुण्यपाल श्रेष्ठि चौपई'(पद्य ३५१ सजावलपुर) और 'पार्श्वनाथ स्तवन'(७४गाथा) का भी उल्लेख मिलता है।[1] इन रचनाओं का विवरण-उद्धरण नही मिल पाया।

खरगसेन/खंगसेन–इनकी एक रचना त्रिलोकदर्पण कथा सं० १७१३ का उल्लेख मिला है जिसका विषय लोकविज्ञान बताया गया है।[2] श्री कामताप्रसाद जैन ने इनका नाम खरगसेन लिखा है और बताया है कि आप लाभपुर(लाहौर)में रहते थे। ये जैन श्रावक नियमों के अच्छे ज्ञाता थे। इन्होंने जिनेन्द्र भक्ति से प्रेरित होकर वहीं 'त्रिलोक दर्पण' की रचना की थी जिसमें तीनों लोकों का वर्णन करते हुए जिन चैत्यों का वर्णन किया है। आदिपुराण, उत्तरपुराण, हरिवंशपुराण और त्रिलोकसार का अध्ययन करके कवि ने यह स्वतन्त्र रूप से ग्रंथ निर्मित किया है। उस समय आगरे में चतुर्भुज वैरागी नामक प्रसिद्ध विद्वान् थे जो प्रायः लाहौर आया करते थे, कवि ने जैन सिद्धान्त का ज्ञान उनसे भी प्राप्त किया था और यह रचना करके कवि को बड़ा आत्मतोष हुआ था। कवि इसे 'मुक्ति स्वयंवर की जयमाल' कहते हैं। रचना साधारण है, पंजाब में रची जाने पर भी भाषा में पंजाबीपन नहीं के बराबर है। कुछ नमूने देखिये—

सकल मनोरथ पूरे भये, अलग रूप है जैसो थए।
जैसो दम पायो संतोष, तैसो सब कोई पावौ मोष।

रचनाकाल—संवत्सर विक्रम तैं आदि सत्रह सै तेरह सुषस्वाद।
चैत्र सुकुल पंचमी प्रमाण, यह त्रिलोकदर्पण सुपुराण।[3]
रच्यौ बुद्धि अनुसार प्रमाण, देषि ग्रंथ पाई विधिजाण,
अपणौ आव सफल कर लियौ, बोधबीज हृदय में कियो।

चतुर्भुज वैरागी का उल्लेख कवि ने इन पंक्तियों में किया है—

चतुरभोज वैरागी जाण, नगर आगरे मांहि प्रमाण।
तिन बहुतौ कियौ उपगार, दरव सरूप दिए भण्डार।

---

१. अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० १०६।
२. सम्पादक कस्तूरचन्द कासलीवाल, अनूपचन्द राजस्थान के शास्त्र भण्डारों की ग्रंथ सूची भाग ३ पृ० ९२।
३. श्रीकामताप्रसाद जैन—हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास पृ० १५४-१५५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कवि ने रचना-स्थान इस प्रकार कहा है -

एही लाभपुर नगर में श्रावक परम सुजाण।
सब मिलि कै चरचा करैं, जाको जो उनमान।
षड्गसेन तिनमैं रहै, सबकी सेवा लीन।
जिन वाणी हिरदै बसै, ज्ञान मगन रस चीन।[१]

कवि ने अपना नाम षड्गसेन लिखा है। इस तरह इनके षड्गसेन, खरगसेन और खंगसेन तीन नाम मिलते हैं पर इन तीन नामों में व्यक्ति एक ही है जिसने त्रिलोक दर्पण की रचना की थी। चतुर्भुज का उल्लेख नाटक समयसार में भी हुआ है। ये कविवर बनारसीदास की अध्यात्म मंडली के एक सदस्य थे। इनका जन्म स्थान नारनौल (बागड़ देश) था। इनके पिता का नाम लूणराज और दादा का नाम मानूसाह था। इनकी शिक्षा आगरा में सम्भवतः चतुर्भुज वैरागी के सान्निध्य में ही हुई थी। इन्होंने शाहजहाँ के शासनकाल में अपनी रचना त्रिलोक दर्पण का निर्माण किया था। यह दोहा चौपाई में पद्य-बद्ध कृति है। इसके अन्त में कवि का परिचय दिया गया है जिसके आधार पर उपरोक्त सूचनायें प्राप्त हुई हैं।[२]

खीममुनि—ये कानमुनि के शिष्य थे। इन्होंने 'पंचमहाव्रत संञ्झाय' (पाँच ढाल) की रचना की है जिसका प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है—

सकल मनोरथ पूरवे रे, संखेसरा जिनराय।
तेह तणा सुपसाय थी रे, करुं पंचमहाव्रत संञ्झाय रे।
मुनिजन अे पहलूं व्रतसार।

अन्त—संयम रमणी सुं जो राता, तेहने अेह भव परभव सुखशाता।
पांचे व्रत नी भावना कही, ते आचारांग सूत्र थी लही।
श्री कान मुनि उवझाय तणो, जग मांहि जस महिमा घणो।
तेहनो शिष्य खिममुनिय कहे, अेह संञ्झाय भणे ते सुखलहे।[३]

१. कामताप्रसाद जैन—हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास पृ० ११३।

२. सम्पादक अगरचन्द नाहटा, कस्तूरचन्द कासलीवाल, नरेन्द्र भानावत, मूलचन्द सेठिया और विनयसागर——राजस्थान का जैन साहित्य पृ० २११ प्राकृत भारती, जयपुर।

३. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १४३१-३२ प्र० सं०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किसी अज्ञात कवि ने खिमऋषि पारणां (८३ कड़ी सं० १७८२ से पूर्व) लिखी है जिससे ज्ञात होता है कि खिमऋषि ने सात वर्ष तक गुरु की गहन सेवा की, सत्संग एवं विद्याध्ययन किया तत्पश्चात् कठिन तपश्चर्या की, यथा—

नेऊं वरस पुरुं आइ, वरस त्रीसमइ संयम ठाइ,
सात वरस गुरु सेवा कीद्ध पछइ अभिग्रह तपसुप्रसिद्ध ।

इसके प्रारम्भ में पारणा की विधि तथा पारणा में ग्रहण की जाने वाली वस्तुओं का उल्लेख है, यथा—

कांग कोद्रव कुलथी जाणइ, करबउ कइर ते बखाणइ ।
कपूरीआं कुठवड़ी देइ, ते खिम ऋषि पारणा करेइ ।[1]

कांग, कोदो, कुलथी बड़े मोटे अन्न हैं जिनका अब उत्पादन भी प्रायः कृषक नहीं करते न खाते हैं। इसलिए यह पारणा एक कठिन कार्य है।

खुशाल—आपकी एक रचना 'नेमिबारमासा (सं० १७९८ भाद्र ११ गुरु) का पता चला है जो प्राचीन मध्यकालीन बारमासा संग्रह भाग १ में छपी है जो चंद खुशाल के नाम से छपी है। लगता है कि खुशालचन्द की जगह चन्द खुशाल हो गया है। खुशालचन्द काला नामक प्रसिद्ध कवि हो गये हैं पता नहीं यह किसकी रचना है? इसका उद्धरण उपलब्ध न होने से अनिश्चय की स्थिति है।[2] नाम से ही रचना का विषय और काव्य विधा का ज्ञान हो जाता है। इससे अनुमान होता है कि इसमें राजुल के विप्रलंभ भाव का वर्णन होगा।

खुशालचन्द काला—काला गोत्रीय खुशालचन्द के पिता का नाम सुंदरदास और माता का नाम सुजानदे था। इनकी प्रारंभिक शिक्षा इनके जन्म स्थान जयसिंहपुरा (जहांनाबाद) में हुई। बाद में ये भट्टारक देवेन्द्र कीर्ति के साथ सांगानेर गए और वहीं लक्ष्मीदास चांदवाड से जैन शास्त्रों का अभ्यास किया। इसकी अधिकतर रचनायें

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १५३२ प्र० सं०, भाग ५ पृ० ३१९-३२० (न० सं०)।

२. वही, भाग ३ पृ० १४६८-६९ प्र० स० और भाग ५ पृ० ३६०(न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन पुराणों पर आधारित हैं और प्राय सांगानेर में ही रचित हैं। हरिवंश पुराण १७८०, यशोधर चरित्र १७८१, पद्मपुराण १७८३, व्रत कथा कोष १७८७, जंबू स्वामी चरित, उत्तरपुराण १७९९, सद्भाषितावली १७७३, धन्यकुमार चरित, वर्द्धमानपुराण, शांतिनाथपुराण और चौबीस महाराज पूजा[1] आदि आपकी उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। ये सभी भाषाप्रयोग एवं काव्यकला की दृष्टि से पठनीय हैं।

डॉ० प्रेमसागर जैन ने इनका जन्मस्थान सांगानेर बताया है और इनकी माता का नाम सुजानदे के स्थान पर अभिधा बताया है और अपने इस कथन का आधार व्रतकथाकोश, प्रशस्ति को बताया है। इसमें १६ कथाएँ हैं, अक्षयनिधि व्रतकथा, षोडशकारणव्रतकथा, मेघमाला व्रतकथा, ज्येष्ठ जिनवर व्रतकथा, आदित्यवार व्रतकथा, सप्तपरमस्थान व्रतकथा, मुकुट सप्तमी व्रतकथा, सुगंधदससी व्रतकथा, लब्धिमुक्तावली व्रतकथा इत्यादि। इसका रचनाकाल सं० १७८७ के बदले सं० १७८३ बताया है[2] संदर्भित पद्य यह है—

और सुणौ आगे मन लाय, मैं सुंदर को नंद सुभाय;
सिहतिया अभिधा मम माय, ताहि कूरिवंभै उपजूं आय।[3]

लगता है कि सिहतिया पाठ अशुद्ध है वह सुजान ही है क्योंकि अभिधा शब्द तो नाम का पर्याय ही है, यह नाम न होगा। यह निश्चित है कि वे दिल्ली (जहानाबाद) के जयसिंहपुर नामक मुहल्ले में रहते थे पर जन्मस्थान के संबंध में कुछ भी निश्चय पूर्वक नहीं ज्ञात हो सका है। उत्तरपुराण की प्रशस्ति में कवि के परिचय से भी यह स्पष्ट नहीं हैं। इनकी रचनाएँ काव्यत्व की दृष्टि से पठनीय और मार्मिक हैं

यथा—तुम प्रभु अधम अनेक उधारे, ढील कहा हम वारो जी।
तारन तरन विरुद सुन आयो और न तारण हारो,
तुम बिन जनस मरण दुख पायौ कभी न आवै पारो जी।

× × ×

---

१. सम्पादक अगरचन्द नाहटा इत्यादि राजस्थान का जैन साहित्य पृ० २२०-२१ पर प्रकाशित लेख - राजस्थानी पद्य साहित्यकार-६ लेखपाल डॉ० गंगाराम गर्ग।

२. सम्पादक—कस्तूरचन्द कासलीवाल—:राजस्थान के शास्त्र भण्डारों की सूची भाग ३ पृ० ८५।

३. सम्पादक कस्तूरचन्द कासलीवाल—प्रशस्ति संग्रह पृ० २५७ (हिन्दी जैन भक्तिकाव्य पृ० ३३४ पर उद्धृत)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मै विनती करहुँ त्रिभुवनपति, मेरो कारिज सारो जी
चंद खुस्याल सरन चरनन की सो भवपार उतारो जी ।[1]

चौबीस स्तुतिपाठ में स्तुतियाँ भक्तिभावपूर्ण हैं। कवि प्रभु के प्रति अपना प्रेमभाव व्यक्त करता हुआ लिखता है—

तुम सम अवरज को नहीं प्रभु शिवनायक सुखधाम;
अविनासी पद देत हो प्रभु फिर नहीं जग सों काम।
दाता लषि मैं जाचियो जी कीजे मोहि हूं पार,
भव दुष सौ न्यारौ रहौं प्रभु राषो सरण अधार।
चंद करै या विनती जी सुणिज्यौ त्रिभुवन राई,
जन्म जन्म पाऊं सही प्रभु तुम सेवा अधिकाई।[2]

यह संभवनाथ की विनती है जो दिगम्बर जैन पंचायती मंदिर बड़ौत के ज्ञानभण्डार (गुटका नं० ४७) में सुरक्षित है। उत्तरपुराण भाषा (सं० १७८९ मगसिर सुदी १०) की प्रशस्ति के ५३ पद्यों में खुशालचंद का परिचय है।[3]

धन्यकुमारचरित्र सं० १७८१ के पश्चात् की कृति प्रतीत होती है। यह ब्रह्म नेमिदत्त के धन्यकुमार चरित पर आधारित है। पाँच सर्गों में यह रचना पूर्ण हुई है। इसमें धन्यकुमार का चारित्रिक संघर्ष प्रमुखता पूर्वक चित्रित है। दोहा चौपाई छंदों में रचित यह एकार्थ काव्य है। इसकी भाषा सरल किन्तु प्रवाह पूर्ण है। यशोधर चरित भाषा (१७८१ कार्तिक शुक्ल ६) इसकी १७९६ कार्तिक शुक्ल पडिवा, शनिवार की कुशलो कृत प्रतिलिपि उपलब्ध है।[4]

पद्मपुराण की सूचना तो ग्रंथसूची[5] में है किन्तु कोई विवरण या उद्धरण आदि नहीं है। उक्त विवरण से यह ज्ञात होता है कि श्री काला द्वारा रचित साहित्य गुण और परिमाण दोनों ही दृष्टियों से समृद्ध है और वे १८वीं शती के अच्छे कवियों में सम्मानित स्थान के अधिकारी हैं।

१. डॉ० प्रेमसागर जैन हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि पृ० ३३४-३३५
२. वही
३. डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल और अनूपचन्द—राजस्थान के जैन शास्त्र भंडारों की ग्रंथसूची भाग ४ पृ० १४५।
४. वही पृ० १९१।
५. वही पृ० १४९।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खेडिया जगा-जगोजी - आपकी वचनिका 'राठोड रतन महेश दासोतरी वचनिका (सं० १७१५) चारणी शैली की रचना है। इसकी भाषा का नमूना देखिए—

गणपति गुणे गहिरं, गुण ग्राहक दान गुण देयणें,
सिद्धि रिद्धि सुबुधि सधीरं, सुडालादेव सुप्रसन्नं।

इसमें सुडालादेव (गणेश) की वन्दना है। कवि जैनेतर राजस्थानी चारण है। इसकी अन्तिम पंक्तियां निम्नांकित हैं—

पष वैसाषह तिथि नवमः पनतोत्तरै वरस,
वार शुक्रलडीआ वदहः हींदू तुरुक बहस।
जोड़े भणौ खिडीय जगो रासो रतनरसाल।
सुरा पुरां सांभलोः भट मोटा भूपाल।
दलीराउ बांकाः उजैणी रा सका, च्यारजुग रहसी
कवी बात कहसी।[1]

यद्यपि कवि चारण है किन्तु वचनिका के प्रतिलिपिकर्त्ता तथा सुरक्षाकर्त्ता जैन साधु एवं जैनशास्त्र भण्डार हैं[2]। हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्येहासकार मिश्रबन्धुओं ने इनका उल्लेख गद्य लेखकों में किया है।[2]

खेतल--खेताक अथवा खेता —आप खरतरगच्छ के यति थे और जिनराजसूरि के शिष्य दयावल्लभ के शिष्य थे। इन्होंने सं० १७४३ दहखास में बावनी (६४ पद्य), सं० १७४८ में जिनचन्द्र सूरि छन्द, सं० १७४८ में चित्तौड़ गजल और सं० १७५८ में उदयपुर ग़जल नामक रचनायें की।[3] गजलों की भाषा खड़ी बोली है। खड़ी बोली के प्राचीन पद्य प्रयोग और गजल विधा के हिन्दी में प्रयोग की दृष्टि से इन ग़जलों का ऐतिहासिक महत्व है। इसके अतिरिक्त इनमें उक्त दोनों स्थानों की भौगोलिक, प्राकृतिक एवं ऐतिहासिक सूचनाएँ भी उपलब्ध हैं। अन्य रचनायें मरुगुर्जर भाषा में है। गजलों का परिचय आगे दिया जा रहा है —

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० २१७५।
२. मिश्रबन्धु—मिश्रबन्धु विनोद पृ० ४६१ (प्र० सं०)।
३. अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० १०८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्तौड़ गजल (६३ कड़ी, सं० १७४८ श्रावण कृष्ण १२)

आदि— चरण चतुर्भुज लाइ चित ठीक करे चित्त ठौड़,
च्यारू दिसि चहुं चक्कर में, आखो गढ़ चित्तौड़।
गढ चित्तौड़ है वंका कि मानुं समंद मैं लंका कि,
वेडछ पूर तल बहतीक, अर गंभीर भी रहती क।

रचनाकाल खरतर जती कवी खेताक, आखै मौजस्यूँ अेताक,
संवत सतरै सै अडताल, श्रावण मास ऋतुवरसाल।
विधि पख बारमी तारीख, कीनी गजल पठीओ ठीक।[1]

यह गजल फार्वस गुजराती सभा त्रैमासिक वर्ष ५ अंक ४ में प्रकाशित है।

उदेपुर गजल (८० कड़ी सं० १७५७ मागसर वदी)

आदि— जपुं आदि इकलिंग जी नाथ दुवारै नाथ,
गुण उदीयापुर गावतां, संता करो सनाथ।

इसमें एकलिंग और नाथद्वारे के नाथ (श्रीकृष्ण) की वंदना है।

रचनाकाल संवत सत्तर सत्तावन, मिगसर मास धुरि पख धन्न,
कीन्हीं गजल कौतुक भाज, लायक सुनउ जसु मुख लाज।

इसमें उदयपुर के राणा अमरसिंह द्वितीय और उनके द्वारा निर्मित जयसमुद्र ताल का वर्णन है। कवि ने अन्त में लिखा है—

फते जध हर पूजइ रिधू, अमरसिंह जी राना,
उदयापुर ज्युं अनूप, अजब कायम ठमठाना।
वाडी तालाब गिर बाग वन, चाक्रवत्ति ढुलते चमर
अनभंग जंग कीरति अमर, असरसिंह जुग जुग अमर।
× × × ×
खरतर जती कवी खेताक, आखै मौजस्यूँ अेताक,
राणा अमर कायम राज, कीर्ति पसरी संपदा पाज।[2]

यह गजल 'भारतीय विद्या' वर्ष १ अंक ४ में प्रकाशित है। इनकी एक अन्य रचना 'जैनयती गुण वर्णन' ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में छपी है। यह रचना 'खेतसी' के नाम से छपी है।[3] इस प्रकार इनका

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १६६९ प्र० सं० और भाग ५ पृ० ६९-७० न० सं०।
२. वही
३. ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह—(जैनयती गुण वर्णन) पृ० २६०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नाम खेतल, खेताक, खेता, (खेतो) खेतसी आदि मिलता है। पता नहीं खेतसी और खेता भिन्न हैं या खेतल, खेताक आदि एक ही हैं। कवि ने गजलों में अपना नाम खेतल या खेताक ही दिया है। जैन गुर्जर कवियों के नवीन संस्करण में खेता या खेताक नाम ही दिया गया है। कवि खड़ी बोली, व्रज और मरुगुर्जर भाषाओं में रचनाक्षम था। उसकी नवीन उद्‌भावनाशक्ति और नव-नव काव्य प्रयोग की क्षमता भी प्रशंसनीय है।

नन्दी सूची के अनुसार इनका मूल नाम खेतसी ही था। इनका दीक्षा नाम दयासुंदर था। इन्होंने सं० १७४१ फाल्गुन वदी ७ रविवार को जिनचंद सूरि से दीक्षा ली थी। ये अमरसिंह द्वितीय (सं० १७५५-६७) के समसामयिक थे। जैनयती गुणवर्णन का छन्द उदाहरणार्थ प्रस्तुत है—

केइतो समस्त न्याय ग्रंथ में दुरुस्त देखें,
फारसी में रस्त गुस्त पूजै छत्रपती है।
किस्त करैं तप की प्रशस्त धरैं योग ध्यान,
हस्त के बिलोकिवे कूं सामुद्रिक मस्त हैं।
पूज के गृहस्त के वस्त्र के जु ग्राहक है,
चुस्त हैं कला में, हस्त करामात छती हैं।
खेतसी कहत षट्दर्शन में खबरदार,
जैन में जबरजस्त ऐसे मस्त जती हैं।[1]

खेतसी नामक कई कवियों में एक साई शाखा के चारण कवि भी थे। जिन्होंने जोधपुर के राजा अभयसिंह के आश्रय में 'भाषा भारथ' की रचना सं० १७८० में की थी। इसकी भाषा डिंगल है। ये अच्छे विद्वान् थे। कविता में ये अपना नाम 'सीह' देते थे। दूसरे खेतसी दामोदर के शिष्य थे, उन्होंने 'धन्नारास' की रचना की है। धन्नारास सं० १७३२ वैराट गढ़मेवाड़ में रचा गया। श्री नाहटा ने कवि का नाम 'खेता' बताया है।[2] इसका आदि देखिये—

प्रथम नमुं प्रभू पास जिण पोहवि मांहि प्रसिद्ध।
इन्द्र पदमावति पुरवें नामें करें नवनिधि।

---

१. ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह पृ० २६०।

२. अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० ११३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रचनाकाल– संवत १७ वतीस में किधा बैसाख मास,
चतुर तणा मन रिझीये, सांभलता से सहि पोहचे आस।'

इसमें धन्ना के पुन्यवंत चरित्र का गान किया गया है।

श्री देसाई ने लोकागच्छीय खेतो या खेतसी के दामोदर का शिष्य और अनाथी मुनि नी ढाल (सं०, १७४५) का कर्त्ता बताया था।[1] परन्तु यह सूचना गलत लगती है। नवीन संस्करण (जैन गुर्जर कवियो) के संपादक ने बताया है कि उनका नाम खेम था, वे नागौरी तपागच्छ के साधु थे। अतः खेतसी से उनका कोई संबंध नहीं है। अतः खेम का विवरण अलग से दिया जायेगा। इस प्रकार कम से कम तीन खेतसी या खेताक का पता निश्चित रूप से चलता है जिनकी रचनाओं का यथा प्राप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है।

खेम—नागौरी तपागच्छ (अहिपुर) रायसिंह>खेत्रसिंह या खेतसी के शिष्य थे। इन्होंने अनाथी ऋषि संधि अथवा ढाल अथवा संज्झाय की रचना सं० १७४५ कल्याणपुर में की थी। इसके अलावा इषुकार सिद्ध चौपई, सोलसत वादी, भृगापुत्र संज्झाय भी इनकी प्राप्त रचनायें हैं।'[1] नाहटा (अगरचन्द) ने इन्हें चूहड़ का शिष्य बताया है, शेष विवरण पूर्ववत् है। खेम ने अपनी रचनाओं में अपने को खेतसी का शिष्य बताया है। सोलसतवादी (१९ बूडा मेड़ता) के अन्त में कवि ने लिखा है—

सोल सती गुण गाइया, मेड़ता नगर मझार हो, ब्रह्म।
अहिपुर गच्छ मुनि खेतसी शिष्य खेम महासुखगार हो।[2]

इसी प्रकार मृगापुत्र संज्झाय में भी वह कहता है--

गछ नागोरी दीपता गुरु खेमसिंह गुणधार हो,
मुनि खेम भणे कर जोड़ने तिकरया सुधा प्रमाण हो।

उद्धरणों से स्पष्ट होता है कि मुनि खेमही अनाथी ऋषि संधि के भी रचनाकार हैं यथा--

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० २८६, भाग ३ पृ० १२८२ प्र० सं० और भाग ५ पृ० १ न० सं०।
२. श्री अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० ११४

८

अन्त —श्री कल्याण नागोरी गच्छ पती रे, सिष रायसिंध रिषिराय,
सिष सोभाकर दीपै खेतसी रे, चूहड़ सिख सुखदाय।
तस चरणांबुज सेवक खेमो भणइ रे कल्याणपुर सुखकार,
सतरह सइ पैतालइ सुगुरु गुण गायन इ रे सफल करऊअवतार।

इससे स्पष्ट होता है कि मुनि खेम नागौरी तपागच्छ के रायसिंह>खेत्रसिंह या खेतसी के शिष्य हैं। यह रचना खेता या खेतसी की नहीं है। खेतसी रचनाकार खेम के गुरु थे जो लोकागच्छीय खेतसी (दामोदर शिष्य) से भिन्न थे और खरतरगच्छीय (दयावल्लभ शिष्य) खेतल या खेतसी से भी भिन्न थे। उपरोक्त अवतरण में 'हड़चँ सिख सुखदाय' के चूहड़ शब्द से शायद नाहटा जी को भ्रम हुआ है। यह चूहड़ सिख का विशेषण है न कि व्यक्तिवाजक संज्ञा। अनाथी कवि का प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है--

वंदिय वीर जिणोष जगीस, नित प्रणमुं तस गौतम सीस,
प्रणमुं सुगुरु कंठ नितसेव, जिण उपकार कीयो गुरुदेव।

इषुकार सिद्ध चौपाई '१७४७ उदयपुर, चार ढाल) उत्तराध्ययन पर आधारित है।

उत्तराध्ययन चवदभइ, भिन्न छ अे अधिकार,
अलप अकल गुण छे छणा कहूँ बात अणुसार।

अंतिम पंक्तियाँ—

धुर च्यारे ढाल भवां तणी, इषुकारी सिद्ध थी अधिकार,
च्यार ढाल संयम तणी, गुण गाया सूत्र अणुसार।
सतरै सैतालै सभे, उदयापुर मझार,
मुनी खेम भणे सिद्धांत ना, गुणमाया कोड़ि कल्याण।

सोलसतवादी का आदि—

ब्रह्मचारी चूड़ामणी, जिनशासन सिणगार हो, ब्रह्म
सतवादी सोले तणा गुण गाथां भवपार हो।[1]

खेमचन्द--तपागच्छीय चन्द्रशाखा के मुक्तिचन्द्र आपके गुरु थे। इन्होंने 'गुणमाला चौपई' की रचना सं० १७६१ नागरदेश में की।

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ५९१-५९२ भाग ३ पृ० १२८२, १३३६-३७ प्र० सं०, भाग ५ पृ० ४५-४७ न०सं०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसकी सं० १७८८ की प्रति जैन सिद्धांत भवन, आरा में उपलब्ध है। इसमें गोरखपुर के राजा गजसिंह और सेठपुत्री गुणमाला की कथा है।[1] गोरखपुर का वर्णन देखिये —

पूरब देस तिहां गोरषपुरी जांणै इलिका आंणि नैधरी।
बारह जोयण नयरी विस्तार, गढ़ मढ़ मंदिर पेलि पगार।

युवती गुणमाला के रूप गुण का वर्णन भी कवि ने मनोयोगपूर्वक किया है —

यथा— कंचू पहरि जड़ाव की कीधी कुचोपरि छांह,
सोभा अति अंगिया तणी, जेहनी बडीयाँ बाँह।
× × × ×
पेटइ पोइणि पत्रह तिसौ उपरी त्रिवली थाय,
गंगा यमना सरसती तीनो बैठी आय।
नाभिरत्न की कुंदली जंघा त कदली खाँभ।
मानव गति दीसै नहीं, दीसै कोई रंभ।[2]

विवाह के पश्चात् उसकी माँ ने गुणमाला को पातिव्रत धर्म की शिक्षा दी जिसका निर्वाह उसने प्राणप्रण से किया। इसमें मध्यकालीन समाज का सजीव चित्रण मिलता है—

खेमचन्द ने गुणमाला चौपई की रचना सं० १७६१ से पूर्व ही की होगी। उसी के आसपास इन्होंने '२४ जिनस्तव' भी लिखा क्योंकि सं० १७६१ की इसकी प्रतिलिपि खेमचन्द के शिष्य मुनि वीरचन्द्र द्वारा लिखित गुलाब विजय भण्डार, उदयपुर में उपलब्ध है। इसके अन्त की कुछ पंक्तियाँ उदाहरणार्थ दी जा रही हैं —

विजयप्रभ सूरि राय, सूरि शिरोमणि रे, सु०
श्री विजयरत्नसूरींद, मुनिवर नोधणी रे, सु०
मुगतिचंद गुरु सीस, षेमचंद इम भणइ रे,
गाया जिन चौबीस, ऊलट अति धणइ रे।[3]

१. श्री नेमिनाथ शास्त्री—हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन।
२. श्री कामता प्रसाद जैन—हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास पृ० १६२-६३।
३. मोहनलाल दलीचन्द देसाई-जैन गुर्जर कविओ भाग ६ पृ० २५५ प्र०सं०, भाग ५ पृ० २५० न०सं०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खेमहर्ष –ऐतिहासिक जैन काव्यसंग्रह में 'जिनरतन सूरि गीतानि' के अन्तर्गत 'खेमहर्ष' के दो गीत संकलित हैं। इसमें पहला गीत सात कड़ी का है क्रम संख्या दो पर छपा है और क्रमसंख्या ३ पर इनका दूसरा गीत प्रकाशित है, यह मल्हार राग में निबद्ध नौ कड़ी का गीत है। इसकी अन्तिम कड़ी उदाहरणार्थ प्रस्तुत है --

वाणी सुधारस वरसइ सुणिवा कुं जन मन तरसइ;
इम खेमहरष गुण बोलइ, पूज्य जी के कोई न तोलई ।९।

इनके सम्बन्ध में अन्य विवरण नहीं प्राप्त हुआ पर ये जिनरत्नसूरि की परम्परा के साधु होंगे।[1] इससे पूर्व रूपहर्ष का पहला गीत संकलित है जो राजविजय के शिष्य थे, शायद ये भी उन्हीं के शिष्य हों।

गजकुशल—तपागच्छीय दर्शनकुशल के शिष्य थे। इन्होंने सं० १७१४ में 'गुणावली कुणकरंड रास की रचना दानधर्म के विषय में की है। इसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ निम्नांकित हैं—

सकल मनोरथ पूरवे श्री संखेसर पास,
परता पूरण प्रणमीइं लहीई लीलविलास, सफल मनोरथ आस।
तप उज्वणो विधी स्युं कीजे, दानसुपात्रे दीजे रे,
राग द्वेष मन मां ना णीजे मनुअ जनमफल लीजे रे।

रचनाकाल --संवत सत्तर चौदोत्तरा वरसे काती मास वखाणे रे।
सुदि दसमी शुभ दिन गुरुवारे रास चढ्यो परिणामे रे।

गुरुपरम्परा–श्री तपगच्छे तेज विराजे, दिन दिन अधिक दिबाजे रे,
विजयप्रभ सूरीसर राजे, रास कीयो हितकाजे रे।
तस गछ पंडित माहे प्रधान, विनयकुशल बुध जांण,
वादी गंजण केसरी समवड, सहुको करे वषाण।

इन्हीं विनयकुशल के योग्य शिष्य दर्शन कुशल का कवि शिष्य था, उनको प्रणतिपूर्वक नमन करके कवि कहता है—

चरित अने वलि जूनी चोपई कीधो रास में जोई,
अधिको आछो जो मैं भाख्यो, मिच्छा दुक्कड़ सोई।

---

१. ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्त–मनवंछित मे सम्पद पामे, रसवन्ता अेह मुणींदा,
गजकुशल पण्डित कहे मुजने, नित-नित सुख आणंदा ।[1]

गजविजय—आप तपागच्छीय विजयप्रभसूरि के प्रशिष्य एवं प्रीतिविजय के शिष्य थे। आपने सं० १७७९ आशो शुक्ल ७ सोमवार को फलौधी में 'जयसेन कुमार चौपाई' पूर्ण की। रचनाकाल निम्नवत् बताया है--

संवत सतरगुण्यासीइं मास आसोज मझार के,
तिथि सातम शुक्ल गिणोअे, उदधिसुत कह्यो वार के,
संवत सतर गुणरासीई अे ।
गुण्यासीइं अे वरसमांहे, नगर फलवरधी सही,
श्री शांतिनाथ जिणंद मूरति तास पसाइं अे कही ।[2]

रात्रि भोजन-निषेध विषय पर यह रचना की गई है। इनकी एक दूसरी रचना गुणावली सं० १७८४ का भी नामोल्लेख हुआ है किन्तु विवरण-उद्धरण अप्राप्त होने से यह निश्चय नहीं कि यह इन्हीं की रचना है।

मुनिपति रास (सं० १७८१ फाल्गुन शुक्ल ६) का रचनाकाल इस प्रकार है--

"संवत सतेरसें इकयासी वर्षे फागण छठि" और गुरुपरम्परा विस्तार पूर्वक बताई गई है जिससे ज्ञात होता है कि आप तत्कालीन तपगच्छ प्रधान विजयक्षमा सूरि>विजयदेव>विजयप्रभ>प्रीतिविजय के शिष्य थे। कोटीकगच्छ चन्द्रकुल, वैरीशाखा में सुधर्मा स्वामी की परम्परा के साधु थे।

इसका आदि देखिए–प्रणमुं जिनशासन धणी चोवीसमो जिनचंद,
अलिय विघन दूरे हों, आपे परमानंद ।

× × ×

अे सहू प्रणमी भाव सुं कहिसुं मुनिपति चरित्र,
सांभलता सवि सुख लहे; जय सौभाग्य पवित्र ।

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० १५३-१५४; भाग ३ पृ० १२०२ (प्र० सं०) भाग ४ पृ० २६१, २६२ (न० सं०)।
२. वही भाग २ पृ० ५५३-५५४ (प्र०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्त—ढाल अे पूरी थइ उगणतालीसमी, मुनिपति रासे चित्त रमीरे।
गजविजय कहें मुनिपति मुनिजिम, मन विरमज अमेरे।[1]

गुणकीर्ति—आपकी एक रचना चतुर्विंशति छप्पय (सं० १७७७ आषाढ़ वदी १४) उपलब्ध है जिसका आदि और अन्त आगे दिया जा रहा है।

आदि— आदि अन्त जिनदेव, सेव सुरनर तुझ करता,
जय जय ज्ञान पवित्र, नाम लेतहि अघ हरता।
गुरु निरग्रन्थ प्रणम्य करि, जिन चउवीसो मन धरउं,
गुनकीर्ति इम उच्चरइ, सुभ वसाइ रु देला तरउ।

अन्त— श्री मूलसंघ विख्यात गछ, सरसुतिय बखानउ,
तिहि महि जिन चउवीस, एह शिक्षा मन जानउ।
पराय छइ प्रसादु, उत्तंग मूलचंद प्रभु जानी,
साहिजहाँ पति साहि, राजु दिल्ली पति आनी।

यह रचना शाहजहाँ के शासनकाल की है। रचनाकाल इस प्रकार कहा है—

सतरह सइ रु सतोत्तरा वदि असाढ़ चउदसि करना,
गुनकीर्ति इम उच्चरइ, सकल संघ जिनवर सरना।[2]

इनकी एक दूसरी रचना 'शीलरास'[3] का भी उल्लेख है किन्तु इसका रचनाकाल सं० १७१३ बताया गया है। दोनों रचनाओं में काफी बड़ा अन्तराल होने के कारण आशंका होती है कि ये गुणकीर्ति और चतुर्विंशति छप्पय के कर्त्ता गुणकीर्ति एक ही हैं अथवा दो।

गुणविलास—आप खरतरगच्छ के साधु सिद्धिवर्द्धन के शिष्य थे। इनका जन्मनाम गोकुलचन्द था। इन्होंने सं० १७९२ में 'चौबीसी' की

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १४४३-४५ (प्र० सं०) और भाग ५ पृ० ३०२ ३०४ (न० सं०)।
२. कस्तूरचन्द कासलीवाल, अनूपचन्द—राजस्थान के शास्त्र भण्डारों की ग्रंथ सूची भाग ४ पृ० ५३ व ६०१।
३. वही भाग ४ पृ० ५६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रचना जैसलमेर में पूर्ण थी।[1] इसका प्रारम्भ इन पंक्तियों से हुआ है—

अब मोहि तारो दीनदयाल,
सबही मत में देषे जिततित, तुमही नाम रसाल।

यह रचना राग देवगांधार में निबद्ध है। कवि संगीतज्ञ भी है। इसकी अन्तिम पंक्तियाँ राग धन्यासी में निबद्ध है, यथा—

संवत सतर सताणवै वरसे, माघ सुकल दुतीया अे,
जेसलमेर नयर में हरषे, करि पूरन सुख पाये।
पाठक श्री सिधिवरधन सद्गुरु, जिहिं विधि राग बताये,
गुणविलास पाठक तिहिं विधि सौं श्री जिनराज मल्हाअे।
इहि विधि चौबीसे जिन गाअे।

इस कृति के चौबीस स्तव विभिन्न रागरागनियों में बँधे हैं।[2] यह 'चौबीसी बीसी संग्रह' पृ० ४९७-५०७ पर प्रकाशित है।

आपने समयसुंदर कृत कल्पसूत्र पर कल्पलता नामक टीका की प्रति सं० १७६५ में शुद्ध की थी। सिद्धिविलास नाम के भी एक कवि सिद्धिवर्द्धन के शिष्य बताये गये हैं जिन्होंने सं० १७९६ माघ शुक्ल १० को चौबीसी लिखी। पता नहीं कि ये दूसरे कवि हैं या गुणविलास का ही दूसरा नाम सिद्धिविलास भी था। इसका निश्चय दोनों 'चौबीसी' का पाठावलोकन करके ही किया जा सकता है।[3] इनका एक नाम गोकुलचन्द भी था, सिद्धिविलास भी हो सकता है।

गुणसागर—आपकी एकमात्र रचना 'चंदनबाला चौपाई' सं० १७२४ का उल्लेख मिलता है पर इसका विवरण-'उद्धरण अनुपलब्ध है।[4]

गोड़ीदास—तपागच्छीय श्रावक कवि थे। इनकी रचना नवकार रास अथवा राजसिंह राजवती रास (सं० १७५५ आसो शुक्ल १०,

१. अगर चन्द नाहटा—परंपरा पृ० ११०।
२. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० ५८४ और भाग ३ पृ० १४६९ (प्र० सं०)।
३. वही भाग ५ पृ० ३५५-३५६ (न० सं०)।
४. वही भाग २ पृ० २२८ (प्र० सं०) और भाग ४ पृ० ३४६ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भौम, वटपद्र बडोदरा) का प्रारम्भ इन पंक्तियों से हुआ है--

सारद सुभगति दायिणी, सारद चंद वदन्न,
सारद सोभाकारिणी, सारद सदा प्रसन्न।
श्री गुरुना सुपसाय थी, निर्मल बुद्धि रसाल,
रास रचूँ नवकार नो, जिम होवे मंगलमाल।[1]

नवकार मन्त्र का माहात्म्य वर्णन करता हुआ लेखक लिखता है--

जिम विषधर बिष ऊतरे, गुणतां मन्त्र विशेष,
तिम नवपद नां ध्यान थी, पाप न रहे विशेष।
राजसिंह रतनवती पाम्या सुख अपार,
तास चरित सुणज्यो सहू, पहिला भवथी सार।

रचनाकाल—संवत सत्तर पंचानबे आसो सुदि दसमी कुजवार रे,
बटपद्र पास पसाउले, रास रच्यो नवकार रे।[2]

इस कवि ने गोड़ी पार्श्वनाथ के पास यह रचना की और स्वयं को गोड़ीदास कहा या वस्तुतः इसका नाम ही गोड़ीदास था यह भी एक कौतूहल का विषय है। इसकी यह पंक्ति इस सन्दर्भ में विचारणीय है--

प्रभु पास गोड़ीदास पभणे सकल संघ मंगल करू,

सम्भावना यही है कि श्रावक कवि का यह नाम ही होगा क्योंकि यह नाम नयविमल कृत जम्बूकुमार रास की प्रतिलिपि कर्त्ताओं के संदर्भ में भी आया है यथा—सुश्रावक पुण्यप्रभावक संघवि गोड़ीदास[3]—इस रचना के अन्त में लिखा है--

ग्रन्थ साष वृंदारवृत्ति पंचकथा सुविचार,
त्रण्य कथा इहभव तणि दो परभव सुषकार।
ढाल त्रेवीसमी मेवाडे कही रास रच्यो नवकार हो,
गोडी गिरुओ रे पास पसाउले रे संघ सयल जयकार।[4]

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० ४२४-४२७ प्र० सं०।

२. वही भाग ३ पृ० १३७७ (प्र० सं०)।

३. वही भाग ४ पृ० ३९१ (न०सं०)।

४. वही भाग ५ पृ० १५८-१६१ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गंगमुनि (गांगजी)—आप लोंकागच्छ के रूप ऋषि>जीव>वरसिंह >जसवन्त>रूपसिंह>दामोदर>कर्मसिंह>केशव>तेजसिंह>कान्ह> नाहर>देवजी>नरसिंह>लखमीचन्द के शिष्य थे। आपकी रचना 'रत्नसार तेजसार रास' (४ खण्ड ३८ ढाल ८०९ कड़ी सं० १७६१ ज्येष्ठ शुक्ल ६ गुरु, हालार) का प्रारम्भ इस दूहे से हुआ है—

श्री शांति जिनेसर जयकरू, प्रणमूं तेहना पाय।
नाम जपंता जेहनो, पातिक दूरि पलाय।

इस कथा द्वारा दान का महत्व दर्शाया गया है, यथा—

दाने पर सुणयो कथा सांभलता सुख होय,
आलस निद्रा परिहरी, सांभलिजो सहु कोय।[1]

रचना में उपरोक्त विस्तृत गुरु परम्परा बताई गई है। रत्नसार काशी के भूपाल जितशत्रु के पुत्र बताये गये हैं, यथा—

देसां सिर अति दीपतो कासी देस विसाल,
नगरी भली वाणारसी जितशत्रु भूपाल।

इसका रचनाकाल इस प्रकार बताया है—

संवत सतर अेकसठा बरसे, जेठ मासै मनि हरषे रे,
शुक्ल छठि गुरुवारे परबै, चरित्र रच्यो अे वर्षे रे।[2]

अन्त—चौथे षंडे आठ मी ढाले; अेह दान तणां गुण जाणो रे,
गंग मुनी कहे जे धर्म करसे, ते लहेसे कोडि कल्याण रे।

इनकी दूसरी रचना जंबू स्वामी स्वाध्याय (४ ढाल सं० १७६५ श्रावण शुक्ल २) का रचनाकाल देखिये—

संवत (सत्तर) पांसठे मास श्रावण शुदि बीज,
गुण गाया राजपुर, मीठा जांण अमीय रे।

इसका आदि और अन्त दिया जा रहा है—

आदि—श्री गुरुपद पंकज नमी समरी सारद नाम,
जंबू कुमर गुण गावतां, सीझे वंछित काम।

अन्त—गुरु लखमीचन्द चर्ण प्रभावे गंगमुनी कर जोड़ कहैं,
जे भाव भण से अथवा सुणसें ते मनवंछित सुखलहै।

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कविओ भाग ५ पृ० २१८ (न०सं०)
२. वही भाग ५ पृ० २१९ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इनके अलावा इनकी दो और लघु कृतियाँ प्रकाशित हैं। पहिली है – गौतम स्वामी स्वाध्याय (६ कड़ी सं० १७६८ भाद्र कृष्ण ५ बुध मंगरोल) और दूसरी है सीमंधर विनती (कड़ी १३, सं० १७७१ भाद्र शुक्ल १३, कुंतलपुर)। ये दोनों लघु कृतियाँ लोकागच्छ प्रतिक्रमण सूत्र में प्रकाशित है। इनकी एक रचना 'धन्नानो रास' में (१७ ढाल) धन्ना सेठ की कथा कही गई है। यह इतनी प्रसिद्ध है कि समस्त हिन्दी भाषी क्षेत्र में किसी विशेष धनी, दानी पुरुष को लोग धन्नासेठ कहते हैं; इसकी अंतिम पंक्तियाँ ये हैं—

सही सत्तर मी ढाल मां दुख दारिद्र दूर गमाया रे,
लिखमीचंद पसाउले, अेम गंगमुनी गुण गाया रे।[1]

गंगविजय—आप तपागच्छीय विजयदेव>लावण्यविजय>नित्य-विजय के शिष्य थे। आपने गजसिंह कुमाररास और कुसुम श्रीरास नामक दो उल्लेखनीय रचनायें की हैं।

गजसिंह कुमार रास (३ खण्ड सं० १७७२ कार्तिक कृष्ण १० गुरु) का आदि—

पास पंचासरो सेवीइ, प्रति उगमते भांण,
वामानंदन पूजीइं दिन चढ़ते मंडाण।

यह कथा दान-धर्म के दृष्टांत रूप में कही गई है, यथा—

दान प्रबन्धे गजसिंह मुनीनो, छे अेहनो संबंध जी,
तिहां थकी में जोई कीधो, सरस मीठो अे खंध जी।

रचनाकाल—संवत संयम नग युग्मने वर्षे, कात्ति मास वदि पक्षे जी,
गुरुवारि तिथि दसमी दिवसे, पूर्ण कीधो सुप्रत्यक्षे जी।[2]

कुसुम श्री रास—(५५ ढाल १७७७ कार्तिक शुक्ल १३ शनि, मातर) का आदि—

पुरुषादाणी पास जी तेतीसमो जिनचंद,
सुखसंपति जिन नाम थी, पामै परम आणंद।

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० ४५९-६२, भाग ३ पृ० १४०७ (प्र० सं०) और भाग ५ पृ० २१७-२२० (न० सं०)।
२. वही भाग २ पृ० ५१७-५२१, भाग ३ पृ० १४३४ (प्र० सं०) और भाग ५ पृ० २८४-२८७ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसमें रानी कुसुमश्री के शील (चरित्र) का वर्णन किया गया है—

सीयल तणो महिमा घणों करतां नावे पार,
कुसुम श्री राणी तणो कहिस्युं चरित्र उदार।

कथा के अन्त में राजा वीरसेन और रानी कुसुमश्री ने राज-पाट त्यागकर संयम धारण किया; इस प्रकार जैन प्रबन्धों का परिपाटी विहित अन्त इसका भी हो गया और कवि ने कहा—

राज महोत्सव करी दम्पती, आण्या गुरु ने पासे जी
परहरी राज्य मणिमाणक्य बहु, संग्रम लइ उल्लासे जी।

रचनाकाल--संवत संयम नग सागर वर्षे, कार्तिक मास सूद पक्षे जी,
तेरस नै दिवसैं सुभयोगै, वार थावर सुप्रत्यक्षे जी।

रास की अन्तिम कड़ी इस प्रकार है--

श्री विजयदेव सूरीसर सेवक, श्री लावण्यविजय उवझाया जी,
श्री नित्यबिजय कविराज पसाई, गंगविजय गुणगाया जी।[1]

यह रास 'आनंदकाव्य महोदधि' मौक्तिक भाग १ में प्रकाशित है।

धासी—आपके पिता का नाम बहाल सिंह था। इन्होंने अपने मित्र भारामल के आग्रह पर सं० १७८९ में अपनी रचनाओं का संग्रह 'मित्रविलास' के नाम से तैयार कर उन्हें भेंट किया था। इसका प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है—

मित्रविलास महासुख दैन, बरनुं वस्तु स्वभाविक ऐन,
प्रगट देखिए लोक मझार संग प्रसाद अनेक प्रकार।
शुभ अशुभ मन की प्रापति होय, संग कुसंग तणो फल सोय।
पुद्गल वस्तु की निरणय ठीक, हमकूं करनी है तहकीक।

इसमें फारसी शब्द 'तहकीक' तहकीकात का कविगढंत रूप है। इसके रचनाकाल से संबंधित पंक्तियाँ आगे दी जा रही हैं—

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कविओ भाग ५ पृ० २८४-२८७ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिगनिधि सतजान हरि को चतुर्थ ठान,
फागुण सुदि चौथ मान निज गुण गायो है ।[1]

इसी छन्द के ऊपर की पंक्तियों में कवि ने अपने पिता और मित्र दोनों का उल्लेख किया है ।

चत्तर या चतुर—आप गुजराती लोकागच्छ के जसराज>रूपराज>धरमदास>भाऊ के शिष्य थे । आपने सं० १७०१, ७१ ? में चन्दनमलयागिरि चौपाई (कथा) की रचना की । इसमें सती मलया का गुणगान किया है । कवि ने कहा है—

कठिन महावरत राख ही व्रत राखीहि सोइ चतर सुजाण,
अनुकरमइ सुख पामीया जी, पाम्यो अमर विमाण ।
गुणवन्ता साधन सु ।
गुण दान तप सील भावना च्यारे रे धरम प्रधान,
सूधइ चित्त जे पालइ जी, से पासी सुख कल्यान ।
सतियाना गुण गावता जी जावह पातिग दूर,
भली भावना भावइं जी, जाइ उपसरग दूर ।

रचनाकाल--संमत सत्रासइ इकोत्तरइ जी कीधो प्रथम अभास ।
जे नर नारी सांभलो जी तस मन होइ उलास ।

लगता है कि काव्य रचना का यह प्रारंभिक अभ्यास था अर्थात् चत्तर की यह प्रथम रचना है । इसमें गुजराती गच्छ के जसराज से लेकर भाऊ तक की वन्दना की गई है ।

वीर वचन कहइ वीर ज हो तस पाटे धरमदास,
भाऊ थिवर वर वाणीयइ जी पंडित गुणहि निवास ।
तस सेवक इम वीनवइ जी चतर कहई चितलाय,
गुणभणता गुणता भावसूं जी तस मन वंछित थाय ।[2]

श्री मोहनलाल देसाई ने गुरुपरम्परा इस प्रकार बताई है जसराज>रूपराज>सोभा>मोल्हाजी>पीथा>वीर जी>धर्मदास>भाऊ के शिष्य चतुर या चतर (चत्तर) थे । कस्तूरचन्द कासलीवाल ने

१. कस्तूरचंद कासलीवाल--राजस्थान के जैन शास्त्र भंडारों की ग्रंथ सूची भाग ५ पृ० ४२ ।

२. वही भाग ४ पृ० ५३ और २२३-२२४ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रचनाकाल १७०१ और नाहटा ने १७७१ और १७०१ दोनों तथा देसाई ने १७७१ बताया है। यह भ्रम रचनाकाल में आये शब्द 'इकोत्तरइ' के कारण है जिसका दोनों अर्थ लगाया जा सकता है। नाहटा[1] और देसाई[2] रचना स्थान राखीनगर बताते हैं जबकि कस्तूरचन्द कासलीवाल ने ग्रंथ सूची में विक्रमपुर बताया है। रचनाकाल के बाद कवि ने राखी नगर का उल्लेख किया है—

राषी नगर सुहावणो जी, वसइ तिहां श्रावक लोक,
देवगुरानां रागीया जी, लाभइ सघला थोक।

इसके मंगलाचरण के दो पाठांतर मिले—

(i) स्वस्ति श्री विक्रमपुरे, प्रणमौं श्री जगदीश,
तन मन जीवन सुखकरण पूरत जगत जगीस'।

(ii) गोयम गणधर पय नमी, लबधितणो भंडार;
जसु प्रणमइं सवि पाइयइ, स्वर्ग मोक्ष पद सार।

दोनों पाठों में ये पंक्तियाँ समान रूप से उपस्थित हैं—

कहां चंदन कहां मलयागिरी, कहां सायर कहां नीर।

लेकिन अगली पंक्ति भिन्न है। एक जगह है—

कहिये वाकी वारता, सुणो सबै वर वीर

और दूसरी जगह है—

जिउं जिउं पडइं अवच्छडी, तिउं तिउं सहइ शरीर।

कस्तूरचन्द कासलीवाल ने इसकी अन्तिम पंक्तियाँ इस प्रकार दी है—

दुख जु मन में सुख भयो, भागौ विरह विजोग,
आनन्द सौं च्यारौ मिले, भयो अपूरब जोग।
कच्छवि चन्दन छाया, कच्छव मलयागिर तेव,
कच्छ जोहि पुण्य बल होइ, दिढ़ता संयोगो हवइ एव।

इसी के आसपास क्षेमहर्ष ने भी चंदनमलयागिरि चौपाई की रचना की है।

---

१. अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० ११४।
२. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० ५१५-५१६ (प्र० सं०) और भाग ५ पृ० २८०-२८१ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चतुरसागर—तपागच्छीय धर्मसागर > पद्मसागर > कुशलसागर > उत्तमसागर के शिष्य थे। इनकी रचना 'मदनकुमार रास' (२१ ढाल) सं० १७७२ मागसर शुक्ल ३, मंगलवार को सीउरी में पूर्ण हुई थी।

आदि—नामें नवनिधि संपजे, मरुदेवी मात मल्हार।
प्रणमू तेह भावें सदा, तुं वल्लभ जुग आधार।

इसमें शील का महत्व बताया गया है, यथा—

शील थकी जो सुष लह्यो; मदनकुमार जयसुंदरी नार।
तेहनो जस जग विस्तर्यो, कीरति वाध्यो अपार।

रचनाकाल—संवत सत्तर बहोत्तरा वरषे,
मृगसिर शुदि त्रीज भृगुवार छाया।
तपागच्छे श्री विजयप्रभ पाटे,
श्री विजयरत्न सूरि सवाया रे।

कवि ने धर्मसागर पाठक की 'कल्पकिरणावली' का उल्लेख किया है जिसे पाठक ने हरिविजय के आदेश पर लिखा था। उन्होंने पद्मसागर के विरुद में कहा है कि उन्होंने दिगम्बरवादी को पराजित किया था। रचनास्थान का उल्लेख निम्न पंक्ति में मिलता है—

पाटणवारें बहुला गांम ज तो, पिण मुख्य छे सीउरी सवाई,
भटेसरीआ जिहां राज्य करे, तिहां धर्मी श्रावक सुखदाई रे।

इसी सीउरी के श्रावकों के आग्रह पर कवि ने यह रचना की थी, यथा—

कवी चतुरसागर इणि परिजंपे, ढाल एकबीस करी कहवाई,
भणि गणि सांभले जे नर कहस्ये,
तस घर नवनिधि ऋद्धि थाई रे।[1]

चंद्रविजय—१८वीं शती में ही इस नाम के कम से कम तीन कवियों का पता लगता है। जिनका क्रमशः वर्णन किया जा रहा है जिनमें से दो चंद्रविजयों की रचनायें सं० १७३४ की ही रची हुई हैं।

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १४३४-३६ (प्र० सं०) और भाग ५ पृ० २८८-२९० (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चंद्रविजय I—प्रथम चंद्रविजय तपागच्छीय ऋद्धिविजय के प्रशिष्य और रत्नविजय के शिष्य बताये गये हैं। इनकी रचना 'जंबुकुमार रास' सं० १७३४ पौष शुक्ल ५, मंमलवार को कोरडादे में रची गई थी।

आदि—वामानंदन पास जी त्रिभुवन नो आधार,
चरण कमल नमतां थका लहीइ सुख अपार।
प्रथम गणधर वीर नों पृथ्वीनंदन जाण,
गौतम गोत्र गौतम नमुं, जस नामइ कोडि कल्याण।
हंसवाहन हसतीवदन कविजन नी आधार,
सारद मुझ मया करी, देजो बुद्धि अपार।

कथा के विषय वस्तु में कवि जंबुकुमार के त्याग का महत्व वर्णन करता है, यथा—

नवाणुं कोडि सोवन तजी, धन ते जंबुकुमार।
आठ कन्या प्रभवा सहित, लीधो संयमभार।

रचनाकाल और काल—नइउ देस मांहि भलो कोरडादे नयर सुखवास;
बसइ श्रावक पुन्यवंत जिहां, जे पूजइं रे जिनवर श्री पास।
संवत सत्तर चौत्रीसमइ, पोस मास सुखकार,
सुदि पांचम मंगल दिनइ, मन पायो रे अति हर्ष अपार।[1]

जंबुकुमार का जैसा काव्योचित सरस वृत है उससे अधिक मर्मस्पर्शी चरित्र स्थूलिभद्र का है।

चंद्रविजय II दूसरे चंद्रविजय ने स्थूलिभद्र कोशा बारमास, नामक बारहमासा (१३ ढाल ६७ कड़ी) सं० १७३४ के आस पास ही लिखा था। केवल गुरुपरंपरा अलग है। इन्हें तपागच्छीय लावण्यविजय का प्रशिष्य और नित्यविजय का शिष्य बताया गया है। इन्होंने अपनी गुरुपरंपरा इस प्रकार बताई है—

श्री तपागच्छ तखत सोहे श्री विजयदेव सूरींद रे,
तस सीस मांहे प्रधान सुंदर, वाचक सति सुखकंद रे।
श्री लावण्य विजय उवझाय सेवक, श्री नित्यविजय बुध शिष्य,
कहे श्री चंद्रविजय नेह धरी ने, सहुमन अधिक जगीस रे।

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० ३०३, ३०५, (प्र० सं०) भाग ५ पृ० ५ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसलिए इन्हें इस गुरु परंपरा के आधार पर भिन्न मानना तर्क संगत है। कोशा को समझाते हुए स्थूलभद्र सील का महत्व बताते हैं–

इम करि कह्या पछी बोले थूलिभद्र अणगार रे,
सील निज मने धरि तुं सुंदरी, अे संसार असार रे।
इम कोशा कामिनी सुणि तु देसना।[1]

यह रचना प्राचीन मध्यकालीन बारमासा संग्रह भाग १ में प्रकाशित है। रचना के अन्त में भी विजयसेन, लावण्यविजय, नित्यविजय की गुरुपरंपरा दुहराई गई है, इसलिए इस शंका के लिए आधार नहीं बनता कि जंबूकुमार रास के कर्त्ता चंद्रविजय और स्थूलिभद्र कोशा बारमास के कर्त्ता चन्द्रविजय एक व्यक्ति हो सकते हैं।

चंद्रविजय III—तीसरे चन्द्रविजय ने धन्ना शालिभद्र चौपाई (५० कड़ी) बनाई है। रचना में रचनाकाल इन्होंने नहीं दिया है किन्तु गुरुपरंपरा से इनका रचना समय १८ वीं शती ही निश्चित होता है। इनकी गुरुपरंपरा इस प्रकार है तपागच्छीय हीरविजय सूरि > कल्याण विजय > साधुविजय>जीवविजय। विजयप्रभ और जीवविजय का समय १८वीं शती ही है। इसका प्रारंभ देखिए—

वर्द्धमान जिन गुणनिलो, उपसम रस भंडार।
भूरिभगति भावइं करी, प्रणमी सुखदातार।
निज गुरु ध्यान धरी मुदा, धन्नानुं अधिकार।
ग्रन्थ मांहि निरखी अने, पभणिसु हुं विस्तारि।

इसमें दान का माहात्म्य समझाने के लिए धन्ना शालिभद्र की कथा दृष्टांतस्वरूप वर्णित है—

दान सुपात्रि भविक जन, दया धरी सुध भाव।
तेह थीं वंछित पामीइं, भवजलनिधिरेतरवा बड़नाव।
धन्नानि सालिभद्र मुनि तणुं अेह चरित्र बोल्यु रसाल।
जेह भणइ नइं वली सांभलइ, तेह पामइरे सवि सुष सुविशाल।[2]

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १३२७-२८ (प्र० सं०) और भाग ६ पृ० १० (न० सं०)।

२. वही भाग २ पृ० ३०२-३०३, भाग ३ पृ० १२९२-९३ (प्र० सं०) और भाग ५ पृ० ७१-७२ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चंपाराम—आपने भद्रबाहुचरित्र नामक काव्य की रचना ढूढाण प्रदेश (राजस्थान) में शताब्दी के अंतिम वर्ष सं० १८०० श्रावण शुक्ल १५ को १३२५ छंदों में पूर्ण की। इसका प्रारंभ निम्न दोहे से हुआ है-

जैवंतो वरनौ सदा, चौबीसूँ जिनराज।
तिन वंदत वंदक लहै, निश्चय थल सुखदाय।

आगे यह चौपाई है—

ऋषभ अजित संभव अभिनंदन, सुमति पद्म सुपारिस चंद्र।
पुष्पदंत शीतल जिनराय, जिन श्रीहांस नमूं सिरनाय।...

यह रचना रत्ननंदि विरचित भद्रबाहु चरित (संस्कृत) की वचनिका है। इसके अन्त में लिखा है—'इति श्री आचार्य रत्ननंदि विरचित भद्रबाहु चरित संस्कृत ग्रन्थ ताकी बाल बोध वचन का विषै स्वेतांबर मत उत्पत्ति... ...लुंकामत की उत्पत्ति नाम वर्णनों नाम चतुर्थ अधिकार पूर्ण भया। इति।" इससे लगता है कि इसमें जैन संप्रदायों की उत्पत्ति का सांप्रदायिक दृष्टि से वर्णन किया गया है। स्त्री मोक्ष के संबंध में वे लिखते हैं—

"अथानंतर जे जीव तिस ही भव विषै स्त्री कूं मोक्षगमन कहै है,
ते जीव आग्रह रूप ग्रह करि ग्रस्त हैं अथवा तिनकूं वाय लगी है।
कदाचि स्त्री परयाय धारि अर दुर्द्धर घोर वीर तप करै,
तथापि स्त्री कूं तद्भव मोक्ष नाही।"

इससे दुख होता है कि इतना प्रगतिसोची जैनधर्म कभी स्त्री मुक्ति के सम्बन्ध में बड़ा कठोर रुख रखता था। रचनाकाल में प्रदेश ढूढ़ाण पर राजा जगत सिंह का शासन था—

देश ढूँडाहड मध्य पुरमाधव सुअरस्थान,
जगतसंध ता नगरपति पालन राज महान।

देखिये व्यंजनलोप के लोभ से 'सुधर स्थान' 'सुअर स्थान' में बदल गया पर रूढ़ि नहीं छूटी। कवि ने आगे अपना परिचय दिया है—

तहां बसै इक वैश्य शुभ हीरालाल सुजान,
श्रांति श्रावग न्याति मैं खंडेलवाल शुभ जानि।

कवि चम्पाराम ढूढाड़ प्रदेशान्तर्गत माधवपुर निवासी खंडेलवाल वैश्य हीरालाल के पुत्र थे और वहीं यह रचना हुई थी। रचनाकाल इस प्रकार बतलाया है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रावण सुदि पूनिम सु रविवार अर्थ रस जानि।
मद ससि संवत्सर विषै भयौ ग्रंथ सुख खानि।

पाठकों से कवि ने निवेदन किया है कि इसके गुण ग्रहण करें, कृपया दुर्गुणों का त्याग कर दें, क्योंकि --

सन्त सदा गुन ही ग्रहैं, दुर्जन औगुण लेय।
सुख तै तिष्ठौ भूमि परि मो पर कृपा करेय।

इसकी अन्तिम पंक्तियाँ निम्नांकित हैं--

चर थिर चवगति जीवत निति होहुं सुखी जग थान।
टरो विघन दुष रोष सब वधौ धर्म भगवान।[1]

जगतराम (जगतराय)--इनके पितामह भाईदास सिंघल गोत्रीय अग्रवाल थे और गुहाना के निवासी थे। उनके दो पुत्र थे, रामचन्द्र और नन्दलाल। ये लोग वहाँ से आकर पानीपत में रहने लगे थे। कवि काशीदास और अगरचन्द नाहटा ने जगतराम को रामचन्द्र का पुत्र बताया है किन्तु पद्मनन्दि कृत 'पंचविंशतिका' की प्रशस्ति में इन्हें नन्दलाल का पुत्र कहा गया है। जो हो जगतराम आगरा आ गये थे और मुगल दरबार में किसी अच्छे पद पर प्रतिष्ठित थे। लोग उन्हें जगतराम की जगह जगतराय कहने लगे थे। काशीदास इनके आश्रित कवि थे। सम्यक्त्व कौमुदी में जगतराम का परिचय दिया है--

सहर गुहाणावासी जोइ, पाणीपंथ आइ है सोय।
रामचन्द्र सुत जगत अनूप, जगतराय गुणग्राहक भूप।

नाथूराम प्रेमी ने इनकी छन्दोबद्ध रजनाओं में आगमविलास, सम्यक्त्व कौमुदी भाषा और पद्मनन्दि पंचविंशतिका का उल्लेख किया है। छन्दरत्नावली और ज्ञानानंद श्रावकाचार का रचयिता भी इन्हें बताया जाता है। सम्भवतः श्रावकाचार गद्यग्रंथ है। आगमविकास एक संग्रह पद्यबद्ध कृति है। यह संग्रह सं० १७८४ में मैनपुरी में किया गया था। यह संग्रह जगतराय को द्यानतराय के पुत्र लालजी से प्राप्त हुआ बताया जाता है। सम्यक्त्वकौमुदी का रचयिता इनके आश्रित कवि काशीदास को कहा जाता है, लेकिन इसकी प्रशस्ति के अन्त में

---

१. सम्पादक डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल और श्री अनूपचन्द-- राजस्थान के जैन शास्त्र भंडारों की ग्रन्थ सूची भाग ३ पृ० २१४-१६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्पष्ट रूप से लिखा है—'इति श्रीमन् महाराज श्री जगतराय जी विरचितायां सम्यक्त्व कौमुदी कथायां अष्टम् कथानकम् सम्पूर्णम् ।' इससे तो जगतराम ही इसके कर्त्ता प्रमाणित होते हैं । यह सम्भावना है कि सं० १७२१ में जगतराय ने यह रचना की हो और सं० १७२२ में कवि काशीदास ने इसकी प्रतिलिपि की हो । इसमें अनेक जिनभक्तों की कथाएँ हैं । सम्यक्त्व कौमुदी कथा भाषा का रचनाकाल डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल ने सं० १७७२ माघ शुक्ल १३ बताया है ।[1] अन्य रचनाओं से इसका रचनाकाल मेल नहीं खाता, इसलिए शंकास्पद है । पद्मनन्दी पंचविंशतिका के रचनाकार पुण्यहर्ष और अभयकुशल थे । सं० १७२२ में उन लोगों ने इसकी रचना जगतराय के लिए की थी । प्रशस्ति में लिखा है 'कीना भाषा एह जगतराय जिहि विधि भाषी ।' हो सकता है कि जगतराय ने लिखाया हो और उन दोनों ने इसे लिखा हो । आगरा निवासी नवाब हिम्मतखान के कथनानुसार जगतराय ने छन्दरत्नावली की रचना सं० १७३० कार्तिक शुक्ल पक्ष में आगरा में पूर्ण की थी । यह महत्वपूर्ण ग्रन्थ है । इसमें छन्दों का विवेचन किया गया है । इसमें सात अध्याय हैं जिनमें से छठें अध्याय में फारसी छन्दों का और सातवें अध्याय में तुकों के भेदोपभेद वर्णित हैं । काशी नागरी प्रचारिणी सभा के खोज विवरण से उनकी एक कृति 'जैन पदावली' का भी पता चलता है जिसमें २३३ पद हैं । उसके एक पद की दो पंक्तियाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं—

प्रभु बिन कौन हमारौ सहाई ।
और सबै स्वारथ के साथी, तुम परमारथ भाई ।

तुलसी के इस दोहे से इसका कितना भावसाम्य है—

हरे चरहिं तापहि बरे फरे पसारहिं हाथ,
तुलसी स्वारथ मीत सब परमारथ रघुनाथ ।

वे बहुपठित विद्वान् थे । उनके पदों में कई आध्यात्मिक फागु हैं जिनमें नाना रूपक बाँधे गए हैं, यथा—

सुध बुध गोरी संग लेय कर, सुरुचि गुलाल लगा रे तेरे ।
समताजल पिचकारी, करुणा केसर गुण छिरकाय रे तेरे ।[2]

१. सम्पादक डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल और अनूपचन्द—राजस्थान के जैन शास्त्र भंडारों की ग्रन्थ सूची भाग ४ पृ० २५२ ।

२. डॉ० प्रेमसागर जैन—हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि पृ० २५१-५८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन पदावली के अलावा उनका एक पदसंग्रह भी प्राप्त है। उसमें उन्होंने अपना नाम राय जगराम लिखा है--

त्रिभुवनपति जगराम प्रभु, अब सेवक कौ द्यौ सेवा पद परसन की।
या, जो जगराम बनै सुमरन तौ अनहद बाजा बाजै।

इनकी एक लघुकृति 'लघुमंगल' नाम से ज्ञात है जिसमें मात्र १३ पद्य हैं। इसमें तीर्थंकर के जन्म कल्याणक का वर्णन किया गया है। एक उदाहरण--

सुरपति धनिंद्र पठाइयो, नगर रच्यौ विस्तारो जी,
नौ बारा जोजन तणों, कनक रतन मई सारो जी।[1]

इसमें तीर्थंकर की माँ के गर्भवती होने पर इन्द्र ने नगर की नई रचना के लिए कुबेर को आदेश दिया है कि वह विस्तृत नगर पूर्णतया कनक और रत्नजटित हो। जगतराम ने अपनी लगन, स्वाध्याय और अध्यवसाय से पांडित्य और पद-प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। यदि उन्होंने केवल प्राचीन कृतियों का भाषान्तर ही किया होता तो भी अपनी विद्वत्ता से प्रभावित कर जाते पर उन्होंने तो शास्त्रीय ग्रन्थ, मौलिक पद आदि अनेक प्रकार की रचनाएँ करके अपने वैशिष्ट्य की छाप छोड़ी है।

जगन—ये लोकागच्छ के ऋषि सेखा के शिष्य थे। इन्होंने सं० १७६१ में 'सुकोशल चौपई' की रचना की। संभवतः इनका पूरा नाम जगन्नाथ था। इनकी स्वलिखित हस्तप्रत प्राप्त है।[2] एक जगन्नाथ कवि ने संस्कृत में सुखनिधान की रचना की थी जिसकी पं० दामोदर ने प्रतिलिपि सं० १७१४ फाल्गुन सुदी १० मौजाबाद या मोजमाबाद के आदीश्वर चैत्यालय में लिखी थी। पर यह रचना सं० १७०० की है अतः इस जगन्नाथ तथा सुकोशल चौपई के कर्त्ता जगन्नाथ या जगन के एक होने की संभावना बड़ी क्षीण है।

जगजीवन—आगरे के प्रसिद्ध धनिक श्रेष्ठि संघवी अभयराज आपके पिता थे। वे धनवान के साथ दानी और दयावान भी थे।

१. डॉ० प्रेमसागर जैन—हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि पृ० २५१-५८।
२. मोहनलाल दलीचन्द देसाई–जैन गुर्जर कवियो भाग ३ पृ० १४०६ (प्र०सं०) भाग ५ पृ० २१४ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उनकी कई पत्नियों में, मोहनदे संघहृन, सर्वाधिक रूपवती और गुणवती थीं। उनकी भगवान् जिनेन्द्र में बड़ी श्रद्धा थी। इन्हीं की कोख से जगजीवन का जन्म हुआ। इन्होंने सं० १७०१ में ही 'बनारसी विलास' का संग्रह किया था। उसके 'संग्रहकर्त्ता परिचय' के अन्तर्गत लिखा है--

नगर आगरे में अगरवाल आगरी,
गरग गोत आगरे में नागर नवल सा।
संघही प्रसिद्ध अभयराज राजमान नीके,
पंचबाला नलिनि में भयो है कँवल सा।
ताके परसिद्ध लघु मोहनदे संघहृन,
जाके जिनमारग में विराजत जस धवल सा।
ताही को सपूत जगजीवन सुदृढ़ जैन,
बनारसी बैन जाके हिय में सबल सा।[1]

उस समय देश में जहाँगीर का शासन था, चारों ओर सुख-शांति विराजमान थी। परिवार धर्मप्राण था। ऐसे अनुकूल वातावरण में जगजीवन जी अपने अध्यवसाय से नामी विद्वान् हुए। उन्होंने स्वयं लिखा है--

समै जोग पाइ जगजीवन विख्यात भयौ,
ज्ञानिन की मंडली में जिसको विसास है।

वे धर्म और विद्वत्ता के साथ राजनीतिक क्षेत्र में भी पर्याप्त प्रभावशाली थे। प्रसिद्ध उमराव जाफर खाँ ने उन्हें अपना मंत्री नियुक्त किया था। पं० हीरानन्द ने पंचास्तिकाय टीका में लिखा है-

ताको पूत भयो जगमानी, जगजीवन जिनमारग मानी।
जाफर खाँ के काज सँभारे, भया दिवान उजागर सारे।[2]

वे बनारसीदास के भक्त थे। उनकी बिखरी रचनाओं को 'बनारसी विलास' में संकलित करने का महत्वपूर्ण कार्य उन्होंने सम्पन्न किया। उनके समयसार की टीका की। इनके अलावा मौलिक रचनाओं में 'एकीभाव स्तोत्र' और अनेक भक्तिभावपूर्ण पद उल्लेखनीय हैं। एकीभाव स्तोत्र भक्तिप्रधान काव्य है। एक उदाहरण लीजिए--

---

१. बनारसी विलास—संग्रहकर्त्ता परिचय पृ० २४१

२. डा० प्रेमसागर जैन--हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि पृ० २१२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सकल लोक का तूं भगवान, बिना प्रयोजन बंधु समान।
सकल पदारथ भासक भास, तो में बसे अबन्ध विलास।

× × ×

जाके हिए कमल जिनदेव, ध्यानाहूत विराजित एव।
ताके कौन रह्यौ उपगार, निज आतमनिधि पाई सार।

कवि मध्यकालीन संतों की शैली में निर्गुण प्रभु और गुरु की स्तुति बड़े प्रेमभाव से करता है--

जामण मरण मिटावो जी, महाराज म्हारो जामण मरण।
भ्रमत फिर्‌यो चहुँगति दुख पायो, सोही चाल छुड़ावो जी।
बिनही प्रयोजन दीनबन्धु तुम सोही विरद निबाहो जी।
जगजीवन प्रभु तुम सुखदायक, मोकूँ सिवसुखद्यावो जी।

गुरुवंदना की दो पंक्तियों को उद्धृत करके यह विवरण समाप्त कर रहा हूँ--

बड़ उजाड़ में बैठक जिनकी पलक न एक विडारी,
मोह महा अरि जीते पल में लागी अलख सूं तारी।[1]

उपरोक्त विवरण एवं उद्धरणों से प्रकट होता है कि जगजीवन जी प्रभावशाली पुरुष, दृढ़ जैन और यशस्वी साहित्यकार थे। वे जैन साहित्य और साहित्यकारों के संरक्षण में लगे रहते थे।

जनतापी-तापीदास--(जैनेतर) आपकी रचना 'अभिमन्यु आख्यान' (सं० १७०८ आसो कृष्ण २ शुक्रवार) का आदि इन पंक्तियों से हुआ है--

विधनहरण विद्यादातार, ते पूज्यनें प्रथम नमस्कार।
स्वामी! तू छे गिरुउ देव, मनवंछित फल आपो सेव।

इस आख्यान की कथा महाभारत के द्रोणपर्व में दी गई अभिमन्यु कथा पर आधारित है। जनतापी ने अपनी रचना का रचनाकाल इस प्रकार बताया है--

संवत सतर आठज वर्षे, अश्वन मास उत्तम कृष्ण पक्षे।
तिथि द्वितीयानि शुक्रवार, स्वाति नक्षत्र ते दिन सार।

१. डा० प्रेमसागर जैन--हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि पृ० २११-२१४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंत–'छि गुज्जर खंड मांहि वास, भृगुकच्छ अे नर्बदानि पास ।
जनतापी कहि बोल्यु जेह, हरि समर्पण कीधुं तेह ।

कवि भरुच का बन्धारा था; उसने लिखा है —

कविता कुल बंधारा मांहि, हरि आधारे बाल्यो ताहि ।[1]

इसका रचनाकाल शंकास्पद है क्योंकि इसका निम्न पाठ अस्पष्ट है—

शाके पनर चोदोत्तरे (चुमोतरे) सीधु, अश्वन मास संपूरण कीधुं ।

इससे शकसंवत् १५१४, १५३४ दोनों का भ्रम होता है । इसलिए तिथि अस्पष्ट है ।

जयचंद – ये कीर्तिरत्न सूरि शाखान्तर्गत विजयरंग के शिष्य थे । इन्होंने कवित्त बावनी सं० १७३० सेरुणा, सवैया बावनी सं० १७६३, ऋषभदेव स्तवन, नवकार बत्तीसी सं० १७६५ बीलावास के अतिरिक्त कई स्तवन, संज्झाय और गीत आदि लिखे हैं ।[2]

इसी समय जयचंद नामक दो विद्वानों के अस्तित्व का पता लगता है जिनमें से एक ने 'माता जी की वचनिका' नामक गद्यरचना सं० १७७६ कुचेरा में की थी । यह रचना राजस्थानी शोध संस्थान से प्रकाशित परंपरा में छपी है ।[3] दूसरे जयचंद विनयरंग के शिष्य और बावनी, बत्तीसी आदि के लेखक हैं । वचनिका वाले जयचंद मूलतः गद्यकार प्रतीत होते हैं पर इनकी वचनिका से कोई उद्धरण नमूने के रूप में नहीं प्राप्त हो सका अतः इनकी रचना-क्षमता का अनुमान संभव नहीं है किन्तु विनयरंग शिष्य जयचंद की इतनी कृतियां उपलब्ध हैं जिनसे उनके सशक्त रचनाकार होने का अनुमान पुष्ट होता है ।

जयकृष्ण - आपकी रचना 'रूपदीप पिंगल' (सं० १७७६ भाद्र शुक्ल २) का आदि निम्नांकित है--

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० २१७३ प्र०सं०

२ अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० ११०

३. सम्पादक अगरचन्द नाहटा— राजस्थान का जैन साहित्य पृ० २३२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सारद माता तुम बड़ी बुधि देहि दर हाल,
पिंगल की छाया लियै बरनूं बावन चाल।
गुरु गणेश के चरण गहि हिये धारकै विष्णु,
कुंवर भवानी दास का जुगत करै जै कृष्ण।
प्राकृत की बानी कठिन भाषा सुगम प्रतिक्ष,
कृपाराम की कृपा सूं कंठ करै सब शिष्य।

यह रचना रीतिकालीन शास्त्र परंपरा की है। इस पर कृपाराम का प्रभाव है। यह जैनेतर कवि प्रतीत होते हैं। अंतिम दोहा—

गुण चतुराई बुधि लहै भला कहैं सब कोय,
रूप दीप हिरदै धरै सो अक्षर कवि होय।
रचनाकाल-संवत सत्रहसै बरसे और छहत्तर पाय,
भादो सुदी दुतीया गुरु भयो ग्रंथ सुखदाय।[1]

जयरंग या जैतसी--आप खरतरगच्छ की जिनभद्रसूरि शाखा में नयरंग>विमलविनय<धर्ममंदिर>पुण्यकलश (वाचक) के शिष्य थे। इनका जन्म नाम जैतसी और दीक्षानाम जयरंग था। अमरसेन वयरसेन चौपई सं० १७०० दीपावली, जैसलमेर, चतुर्विध संघनाममाला श्रावण, सं० १७०० जैसलमेर, दसवैकालिक गीत सं० १७०७ बीकानेर, उत्तराध्ययन गीत सं० १७०७, कयवन्ना रास, सं० १७२१ बीकानेर, जैसलमेर पार्श्व वृहत्स्तवन सं० १७३६, चौबीस जिनस्तवन (गाथा ६५) सं० १७३९, दस श्रावकगीत और पार्श्वछंद आदि आपकी प्राप्त रचनाएँ हैं। आपके शिष्य तिलकचंद्र और चरित्रचंद्र भी अच्छे विद्वान् और रचनाकार थे।[2]

आपकी कुछ विशेष रचनाओं का विवरण और उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

दशवैकालिक सर्व अध्ययन गीत अथवा संज्झाय (सं० १७०७ बीकानेर)

आदि-धरम मंगल महिमानिलो, धरम समो नहि कोय।
धरमइ सूधइ देवता, धरमें शिवसुख होय।

१. डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल - राजस्थान के जैन शास्त्र भंडारों की ग्रंथ सूची भाग ३ पृ० ८८-८९

२. अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० ९७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रचनाकाल-संवत सतर सतोतरमे समैजी, बीकानेर मझार।
पाठक पुन्यकलस शिष्य जैतसी जी, गीत रच्या सुखकार।

यह संज्झाय मोटु संज्झायमाला संग्रह, संज्झायसंग्रह (प्रकाशक ए०एम०कम्पनी) और जैन विविधढाल संग्रह में प्रकाशित है। एक 'दशवैकालिक चूलिकागीत' भी प्राप्त है। शायद यह चतुर्विध संघ नाममाला के साथ जोड़ा गया गीत है।

अमरसेन वयरसेन चौपाई २७७ कड़ी सं० १७०० (१७१७) दीपावली, जैसलमेर)

आदि-जिनमुषकमल विलासिनी, समरुं सरसति माय,
अमर वयर चरित कह्य, दान पूजा दीपाय।
रचनाकाल-संवत सतरइ देवाली दिनइ रे, जेसलमीर मझार।
श्री जिनरत्नसूरि विजयराजइ रे, श्री संघ जयकार।

यह रचना दान के दृष्टान्त स्वरूप अमरसेन वयरसेन का चरित्र चित्रण करती है।

कयवन्ना रास अथवा चौपाई (३१ ढाल ५६२ कड़ी सं० १७२१, बीकानेर)

आदि-स्वस्ति श्री सुख संपदा दायक अरिहंत देव,
सेव करुं सूधे मने नाम जपूं नितमेव।
रचनाकाल-(१७२१) संवत सतर से अेकवीसें, बीकानेर सुजगीसे बे।

इसमें कयवन्ना मुनि के दीर्घकालीन संयमपालन का वर्णन किया गया है।

अंत—साधु गुण गाता हो हीयडो उलस्यें, त्रीसमी ढाल रसाल।
बे कर जोडी हो जयरंग इम कहे, करु वंदना त्रिकाल।
चारित्र पालो हो......

यह रचना सवाईचंद रायचंद अहमदाबाद और प्राचीन राससंग्रह भाग २ में प्रकाशित है।[1]

दस श्रावक गीत—इसके रचनाकाल का विवरण नहीं मिला। इसके आदि और अंत की कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

आदि-वाणियगामी गाथापति रे, आणंद·····सोह रे;
सिवनंदा तस भारजा रे, सगुण सती मनमोहो रे।

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैनगुर्जर कविओ भाग ४ पृ० २७-३३ न०सं०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धनधन महावीर जी पूजा पधारिया जी,
धनधन आणंद श्रावक काज सुधारिया जी।

अंत–धनधन श्रावक श्राविका, इम पाले पाले व्रतनी आखड़ी जी।
भावन तेहनी भावतां मनरीझे हो रीझे जीव घड़ी घड़ी जी।
वीर श्रावक गुण गाइया, लाल मागु हो मागुं समकित उलसी जी।
पुन्यकलस सुपसाउलै इम बोलो हो बोलो रंगभरि जैतसी जी।[1]

जयसागर–दिगम्बरीय मूलसंघ, सरस्वतीगच्छ के विद्यानंद > मल्लीभूषण 7 लक्ष्मीचंद्र 7 वीरचंद्र 7 प्रभाचंद्र 7 वादीचंद्र 7 महीचंद्र के शिष्य थे। इनकी एक रचना 'अनिरुद्ध हरण' (४ खण्ड सं० १७३२ मागसर शुक्ल १३ भृगुवार, सूरत) प्राप्त है जिसका प्रारंभिक मंगलाचरण इन पंक्तियों से हुआ है--

समरति सारदा स्वामिनी, प्रणवि नेमिजिनंद।
कथा कहूं अनिरुद्ध नी मनेधरी आनंद।
वाविसमों जिनवर हवो तेहने वरिसार;
नारायण सुत जाणीयें काम काम अवतार।
तेह तणो सुत अनिरुद्ध हवो, रूपवंत गुणवंत;
तेह तणां गुण वर्णवुं सांभलज्यो सहु संत।

उपरोक्त गुरु परंपरा जयसागर ने इस रचना में बताई है। गुरु परंपरा के पश्चात् उन्होंने रचना का समय और स्थान इन पंक्तियों में बताया है--

हाँसोटे सिंधपरा शुभ ज्ञातें, लिख यूँ पत्र विशाल जी।
जीवंधर छीता तणे वचनें, रचयूँ जूजूयें ढाल जी।
संवत सतर बत्रीस मांहें मागसिर मास भृगुवार जी।
सुदि तेरसि रचना रचिये पूर्ण ग्रंथ थयो सार जी।
सूरत नयर मांहि तम्हों जांणो, आदि जिन गेहें सार जी।
पद्मावती मुझ प्रसन्न थइनें नित्ये कर्यो जयजयकार जी।

रचनास्थल हाँसोट और सूरत बताया गया है परंतु सूरत ही रचनास्थल प्रतीत होता है। इसके अंत में कवि ने लिखा है--

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई--जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० १६५-१६९, भाग ३ पृ० १२०५-०७, और पृ० १५२२ (प्र० सं०) तथा भाग ४ पृ० २७-३३ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनिरुद्ध हरण जे में कर्युं, दुखहरण अे सार;
सांभलता सुख ऊपजे, कहे जयसागर ब्रह्मचार।[1]

इनसे पूर्व भी एक ब्रह्म जयसागर (सं० १५८०-१६५५) हो चुके हैं जो भट्टारक रत्नकीर्ति के प्रमुख शिष्य थे। दूसरे एक और जयसागर उपाध्याय हैं जो खरतरगच्छीय जिनराजसूरि के शिष्य थे। इनकी एक रचना २४ जिन स्तोत्र (१४ गाथा) का उल्लेख किया जा चुका है।[2] मोहनलाल दलीचन्द देसाई कृत जैन गुर्जर कवियो के नवीन संस्करण में एक जयसागर को १८ वीं सती में दर्शाया गया है परन्तु न तो उनकी गुरु परंपरा बताई गई है और न रचनाकाल दिया गया है, केवल उनकी एक रचना २४ जिनस्तवन (१५ कड़ी) का उल्लेख कर दिया गया है। लगता है कि ये पूर्ववर्णित खरतरगच्छीय जयसागर ही हैं जिनकी २४ जिनस्तवन को पहले १४ और इसमें १५ कड़ी का बता कर इनका स्वतंत्र और भिन्न रूप से उल्लेख कर दिया गया है। इसका आदि और अंत मिलान करने के लिए दे दिया जा रहा है।

आदि-पहिलउं पणमुं आदि जिणंद, जिणि दीठइ मन परमाणंद।
पूजऊं अजितनाथ जिनराय, झलहलंत कंचणमय काय।

अंत-चंदन केसर नइ कप्पूरीइं जे जिन पूजइ नवरस पूरइं;
सो नरवर चिंतामणि तोलइ, भगतिइं श्री जयसागर बोलइं।[3]

जयसोम—जशसोम इनके गुरु थे। इनकी गुरु परम्परा इस प्रकार बताई गई है—

तपागच्छ के ५६वें पाट पर प्रतिष्ठित आनन्दविमल सूरि की परम्परा में सोमनिर्मल>हर्षसोम (पाठक)>यशसोम के आप शिष्य थे। अपनी रचना 'बारभावना नी १२ संज्झाय अथवा भावना बेली संज्झाय (१३ ढाल सं० १७०३ शुचिमास १३ शुक्ल मंगलवार, जैसलमेर) में कवि ने गुरु का उल्लेख इस पंक्ति में किया है--

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई--जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० २९१-२९३ प्र० सं० और भाग ४ पृ० ४५३-४५५ न० सं०।
२. डा० शितिकंठ मिश्र-हिन्दी जैन साहित्य का वृहद् इतिहास खण्ड १ पृ.२३८
३. श्री मोहनलाल दलीचन्द देसाई--जैन गुर्जर कविओ भाग ५, पृ० ४१९ न० सं०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री जशसोम विबुध वैरागी, जसु जस चिहूं खंड चावो,
तास शिष्य कह भावना भणतां घर-घर होये वधावो रे।

इससे पूर्व की पंक्तियों में कवि ने विजयदेव, विजयसिंह आदि से अपनी गुरुपरम्परा गिनाई है। विजयदेव सूरि का आचार्य पदस्थापन सं० १६५८ में स्वर्गवास सं० १७१३ में हुआ था, अतः कवि का रचनाकाल १८वीं शती का पूर्वार्द्ध ही रहा होगा। भावनाबेलि का रचनाकाल इस प्रकार बताया है--

भोजन नभ गुण वरस सुचि सित तेरस कुजवार,
भगत हेतु भावना भणी, जैसलमेर मझार।[1]

यह रचना संज्झाय पद संग्रह[2] पृ० ९७-११४ और जैन संज्झाय माला भाग १ तथा अन्यत्र से भी प्रकाशित हो चुकी है। इसके अतिरिक्त जयसोम ने १४ गुणस्थानक संज्झाय आदि पद्य ग्रन्थों के अलावा कर्मग्रंथ पर तीन बालावबोध— कर्मविपाक बालावबोध, कर्मस्तव बालाबवोध और बंधस्वामित्व कर्मग्रन्थ बालावबोध तथा षष्टिशतक बालावबोध और संबोध सत्तरी बालावबोध नामक गद्य रचनाएँ की हैं। बंधस्वामित्व कर्मग्रंथ बालावबोध को लेखक ने 'टबार्थ' कहा है। इसकी प्रशस्ति संस्कृत में है--

बंध स्वामित्वेस्मिन् टवार्थं लिखनाद् यदर्जितं सुकृतं
तेनस्तु कर्मवंधा निधिकारी भव्यसंदोह। इत्यादि

इससे लगता है कि जयसोम मरुगुर्जर के साथ ही संस्कृत भाषा के भी जानकार थे। वे गद्य-पद्य दोनों विधाओं में रचनाकुशल थे। इनकी गद्य रचनायें प्रकरण रत्नाकर भाग ४ में भीमसिंह माणेक द्वारा प्रकाशित हैं। उक्त ग्रंथ न मिलने के कारण इनके गद्य उदाहरण नहीं प्राप्त हो सके, कवि की काव्य क्षमता का नमूना देने के लिए बारभावना के आदि की पंक्तियाँ उद्धृत कर रहा हूँ—

भाव बिना दानादिकां जाणे अलूणं धान;
भाव रसांग मल्याथकी, त्रूटे करम निदान।

---

१. श्री मोहनलाल दलीचन्द देसाई–जैन गुर्जर कविओ भाग ४, पृ० ७५-७८ न० सं०।

२. अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० ११०-१११

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इनकी दूसरी पद्य रचना १४ गुण ठाण स्तवन अथवा स्वाध्याय (६१ कड़ी सं० १७१६) का प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है--

चन्द्रकला निर्मल सुहझाणी, आराहुं अरिहंत गुणखाणी।
चउदस गुणठाणा सहनाणी, आणी तेह नमुं सुअनाणी।

अन्त--तपगच्छपति विजयदेव मुनीसर कवि जससोम गुणवरिआरे,
तास सीस जयसोम नमइ तरु जे समरस गुण भरिआ रे।[1]

जयसौभाग्य--इनकी एक कृति 'चौबीसी' अथवा चतुर्विंशति जिन स्तुति सं० १७८७ से पूर्व रचित प्राप्त है। यह रचना 'जैन गुर्जर साहित्य रत्न भाग १' में प्रकाशित है। इसका उद्धरण उपलब्ध नहीं हो सका।[2]

जसवन्त सागर--आप तपगच्छीय कल्याणसागर के प्रशिष्य और जशसागर के शिष्य थे। आपने सं० १७४० में भावसप्तिका, सं० १७५७ में जैन सप्तपदार्थी, १७५८ में प्रमाण वादार्थ, वादार्थ निरूपण, सं० १७५९ में जैन तर्क भाषा, सं० १७६० में गणेश कृत ग्रहलाघव पर वार्त्तिक, सं० १७८२ में यशोराज राजपद्धति की रचना की। इनके हाथ की लिखी विचारषट्त्रिंशिकावचूरि सं० १७१२ और भाषा-परिच्छेद सं० १७२९ की प्रतियां भी प्राप्त हैं। ये कृतियाँ विवेकविजय भंडार उदयपुर में सुरक्षित हैं। मरुगुर्जर (हिन्दी) भाषा में लिखित इनकी एक रचना 'कर्मस्तवनरत्न' (सं० १७५८ से पूर्व) की अन्तिम पंक्तियों से इनकी गुरुपरम्परा पर प्रकाश पड़ता है इसलिए उन पंक्तियों को उद्धृत कर रहा हूँ--

इय सयल वेदी दुखछेदी सीमंधर जिनदेवमणी,
विनव्यो भगति भलीय जुगति भावना मन मैं घणी।
कल्याणसागर सुगुरु सेवक जशसागर गुरु गुणनिला,
कवि कहै जसवंत सुणो भगवंत तारि तारि त्रिभुवन तिला।[3]

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई--जैन गुर्जर कविओ भाग २, पृ० १२६-१२८, ५९१; भाग ३, पृ० ११८२-११८३ और १६२५-२६ (प्र०सं०) और भाग ४, पृ० ७५-७८ (न० सं०)।
२. वही भाग ३, पृ० १४६५ (प्र०सं०) और भाग ५ पृ० ३३७ (न०सं०)।
३. वही भाग २ पृ० ४४७; भाग ३ पृ० १३९४ (प्र० सं०) और भाग ५ पृ० १८८ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसकी प्रति० सं० १७५८ की अजबसागर द्वारा लिखित उपलब्ध है अतः रचना इससे कुछ पूर्व की होगी। आपकी अन्य रचनाओं का अधिक विवरण या उद्धरण नहीं प्राप्त हो सका।

जितविमल--आपने ऋषभपंचाशिका बालावबोध सं० १७४४ में लिखा।[1] इनकी न तो गुरुपरम्परा दी गई है न इनका रचना का विवरण या उद्धरण दिया गया है।

जिनउदय (जिनोदयसूरि)--खरतरगच्छ, वेगड़शाखान्तर्गत जिनसुन्दर सूरि के शिष्य थे। इन्होंने अपनी रचना सुरसुन्दरी सुरकुमार या अमरकुमार रास सं० १७६९, श्रावण मास में लिखी। कवि ने रचनाकाल बताते हुए लिखा है--

संवत उगणोत्तर श्रावण मासे, अेह रच्यो उलासै,
वेगड़ खरतर गच्छ विराजै, गुणसमुद्र सूरि गाजै।
वर्त्तमान गुरुगच्छ बडइ, श्री जिनसुंदर सूरिंदा,
श्री उदैसूरि कर जोड़े गावै, सुष सम्पत्ति सदा।[2]

इनकी दूसरी रचना '२४ जिन सवैया' सं० १७६२ के उपरान्त लिखी गई होगी।

आदि--नाभिराय जू का नंद मरुदेवा कुखि चंद,
नयरि विनीता विंद जाको जन्म जानीयै।
× × ×
ऋषभ जिनंद इंद सेवे सुरनर चंद,
उदै सूरि वन्दे वृन्द उपम बखानिये।

कवि ने अपना नाम सर्वत्र उदैसूरि ही लिखा है। श्री अगरचन्द नाहटा ने भी इनका नाम उदयसूरि ही दिया है।[3] परन्तु श्री मोहनलाल दलीचंद देसाई ने कहीं जिनउदय और कहीं जिनोदय भी दिया है।[4] इसका अन्तिम छन्द निम्नांकित है--

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई--जैन गुर्जर कविओ, भाग २ पृ० ५१२; भाग ३, पृ० १६३२ (प्र० सं०) और भाग ५, पृ० ४५ (न० सं०)।
२. वही भाग ५, पृ० २६९ (न० सं०)।
३. अगरचन्द नाहटा--परंपरा पृ० १०८।
४. मोहनलाल दलीचन्द देसाई--जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० १८६-१८७ (प्र० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाप कौ तापनिवारक को हिय ध्यान उपावन कौ विरची सी,
पुण्यपथ पावन को गृह श्री शुद्ध ग्यान ज्ञान जगावन के परची सी।
ऋद्धि दिवावन कौ हरि सी यह बुद्धि वधावन कौ गिरची सी,
श्री जिनसुन्दर सूरि सुसीस कहै उदैसूरि सु जैनपचीसी।[1]

सं० १४२२ में जिनेश्वर सूरि ने वेगड़ शाखा का प्रवर्त्तन किया था। उनके पाट पर क्रमशः जिनशेखर>जिनधर्म>जिनचंद सूरि> जिनमेरु सूरि>जिनगुण सूरि>जिनेश्वर सूरि>जिनचंद सूरि>जिन-समुद्र सूरि>जिनभद्र सूरि की परम्परा में गुण समुद्र सूरि और जिन-सुंदर सूरि हुए, जिनके शिष्य प्रस्तुत कवि उदयसूरि हुए। ये पाट पर नहीं विराजे बल्कि मात्र आचार्य थे अतः इनका वर्णन पट्टावली में नहीं किया गया है।

जिनचन्द सूरि--खरतरगच्छीय जिनराज सूरि के प्रशिष्य और जिनरंगसूरि के शिष्य थे। इनकी रचना 'मेघकुमार चौपाई' सं०१७२७ उपलब्ध हैं।[2] उसका विवरण-उद्धरण दिया जा रहा है--

मेघ कुमार चौपाई (४७ ढाल सं० १७२७ कार्तिक शुक्ल ५)

आदि-ॐकार स्वरूपमय, परम महातमवंत,
करुणासागर अलख गति महावीर भगवंत।
कलिमल अनल निवारिवा सावन जलधर धार;
करम भरम रजभर हरण, प्रवल पवन परचार।
अभिग्रह धारक अेहवउ मुनिवर मेघकुमार,
तासु चरित बखाणिसुं सुणहु भविक सुखसार।

इसमें सं० १०८० में दुर्लभराज द्वारा जिनेश्वर सूरि को खरतर उपाधि से भूषित करने के प्रसंग से लेकर जिनदत्त 7 जिनचंद 7 (अकबर प्रबोधक) 7 जिनसिंह 7 जिनराज 7 जिनरंग तक का सादर स्मरण किया गया है। रचनाकाल कवि ने इन पंक्तियों में बताया है—

संवत सतर सइ समइ अे, सत्तावीस बखाण;
भणतां सुणतां सांभल्यां अे, कीरति लाछि मिलाय।[3]

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कविओ भाग ५ पृ० २६९ (न०सं०)
२. अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० १०९
३. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कविओ भाग ३, पृ० १२५८-६० (प्र० सं०) और भाग ४, पृ० ३७२-३७४ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इनकी भाषा परिष्कृत और प्रवाहपूर्ण है, प्रमाणस्वरूप एक दोहा देखिएं--

संकट तरुवर भंजिवा जोरावर गजराज,
मदन करी कुंभ भेदिवा कंठीरव जिनराज।

जिनचंद सूरि II--खरतरगच्छ के जिनराजसूरि के आप प्रशिष्य एवं जिनरत्नसूरि के शिष्य थे। जिनरत्न सूरि को सं० १७०० में आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया गया और सं० १७११ में उनका स्वर्गवास हुआ था। जिनचंदसूरि इन्ही के पट्टधर थे। इनकी दो रचनाओं का विवरण प्राप्त है। प्रथम रचना, ९६ जिनवर स्तवन (२३ कड़ी ५ ढाल, सं० १७४३) 'अभयरत्न सार' में प्रकाशित है। द्वितीय रचना 'गोड़ी पार्श्वनाथ स्तवन' सं० १७२२ वैशाख कृष्ण अष्टमी को पूर्ण हो गई थी। इसके आदि और अन्त की पंक्तियाँ आगे दी जा रही है;

आदि–अमल कमल जिम धवल विराजइ गाजइ गउडी पास;
सेवा सारइ जेहनी सुरवर मन धरीय उल्लास।
सोभागी साहिबा मेरा बे अरे हाँ सुग्यांणी साहिबा मेरा बे।

अन्त-संवत सतरइ से बावीसइ वदि बइसाख बखांण,
आठम दिन भलइ भाव सुं म्हारी यात्र चढ़ी परमाण।
सांनिधकारी विघन निवारी पर उपगारी पास,
श्री जिनचंद जुहारतां मेरी सफल फली सहुआस।[1]

आपको सूरिपद सं० १७११ में प्राप्त हुआ था और सं० १७६३ में स्वर्गवास हुआ। श्री देसाई ने इनके गुरु का नाम जिनराजसूरि बताया है किन्तु इन्होंने सर्वत्र अपने गुरु का नाम जिनरत्नसूरि ही लिखा है और यही पट्टपरंपरा भी पट्टावलियों में प्राप्त होती है। आपकी 'गोड़ी पार्श्व स्तवन' नामक रचना 'स्तवनसंग्रह' में छपी है।

जिनदत्त सूरि--आपकी एक रचना 'धन्ना चौपाई' सं० १७२५ का उल्लेख मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने किया है। एक धन्ना चौपाई के रचयिता कमलहर्ष कहे गये हैं जिनका विवरण यथास्थान दिया जा

1. मोहनलाल दलीचन्द देसाई--जैन गुर्जर कविओ भाग ३, पृ० १३३३ (प्र० सं०), भाग ५, पृ० ४४ और ४०७ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चुका है। इनकी गुरु परंपरा भी स्पष्ट नहीं है न रचना का कोई विवरण-उद्धरण दिया गया है।[१]

जिनदास--आप अंचलगच्छ के कल्याणसागर सूरि के श्रावक शिष्य थे। आपने व्यापारीरास, पुण्यविलास रास और जोगी रास रचा है जिनका विवरण-उद्धरण दिया जा रहा है। व्यापारी रास (सं० १७१९ मागसर ६, मंगलवार) का आदि--

स्वर्गतणां सुख ते लहे, जे करे जीव यतन्न;
आप समोवउ लेखवे, वे प्राणी धन्य धन्य।
युग व्यापारी जीवडो वंदर चोराशी लाख,
पोठीडा शुं परवर्या नवनव नवलि भाख।
हाट श्रेणी हीरे भर्या, मांहे माणेक लाभंत,
सांचा लहेशो शोधी करी; कूड़ाकांचलहंत।

रचनाकाल--संवत सतर सोहामणो ओगणीसमो अति सारो रे,
मागसिर छठ भृगुवासरे, अेह रच्यो अधिकारो रे।

गुरुपरंपरा--श्री अंचल गच्छे राजीओ कल्याण सागर सूरिराया रे,
कर जोड़ी जिनदास कहे अमें प्रणमुं ते गुरुपायां रे।

यह रचना भीमसी माणेक ने प्रकाशित की है। इसकी अन्तिम पंक्तियाँ देखिये--

त्रिविध संसार तेणी परे, जिम अे त्रण्ये व्यापारी रे,
दोसी वैरागर जीविया हार्यो जे जूठ जूआरी रे।[२]

जोगीरास सं० १७६७, रचनाकाल सम्बन्धी उद्धरण उपलब्ध न होने के कारण रचना-समय निश्चित नहीं है क्योंकि इसकी सं० १७०६ की हस्तप्रत प्राप्त है। पुण्य विलासरास का भी रचनाकाल अज्ञात है। इसमें जिनदास नामक साधु को रचयिता कहा गया है इसलिए यह भी अनिश्चित है कि जिनदास श्रावक थे अथवा साधु।

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई--जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० २४३ (प्र०सं०) भाग ४ पृ० ३५७ (न० सं०)।

२. वही भाग २, पृ० १८७, भाग ३, पृ० १२१४ (प्र० सं०) और भाग ४, पृ० २८५ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिनदेवसूरि - आपकी एक कृति 'नंदिषेणमुनि चौपाई' सं० १७२५ का मात्र नामोल्लेख मिला है।[1] सम्बन्धित अन्य सूचनायें नहीं हैं। नवीन संस्करण (जैन गुर्जर कवियों) में इनका नाम भी नहीं मिला।

जिनभक्तिसूरि--जीवन समय सं० १७७०-१८०४, आपको सूरिपद १७८० में मिला था।

आपका एक स्तवन 'आदिनाथ स्तवन' (११ कड़ी) स्तवन संग्रह पुस्तक सं० ३५-१२ पर प्रकाशित है जिसके आदि-अन्त की पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं--

आदि—सुणि सुणि सेत्तुंज गिरि-सामी जगजीवन अन्तरजामी,
हुं तो अरज करूं सिर नामी कृपानिधि वीनति अवधारो।

अंतिम पंक्ति–जयकारी ऋषभ जिणंदा पहसधमर परम आनंदा,
वंदे श्री जिनभक्ति सुरिंदा।

यह 'अभय रत्नसार' में भी प्रकाशित है। आपकी दूसरी प्राप्त रचना 'होरी' है जो रागवसंत में निबद्ध है इसका प्रारम्भ -

माई रंग भरी खेलइ गढ़े माल,
हम मीति मिलइ अश्वसेन लाल।

और अन्त--

अइसइ पारस प्रभु जी अंगण आय,
जिनभक्ति रमइ जिनवर सुहाय[2]।

जिनरत्न सूरि--आप खरतरगच्छीय जिनराजसूरि के पट्टधर थे। आपका जन्म लूणिया तिलोकसी की पत्नी तारादेवी की कुक्षि से हुआ था। जन्मनाम रूपचन्द था, इन्हें सं.१७०० में आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया गया था। सं० १७११ में इनका स्वर्गवास हुआ। जिनचन्द्र सूरि इनके पट्टधर शिष्य थे। चौबीसी[3] इनकी प्रसिद्ध रचना है। इसका रचनाकाल निश्चित रूप से नहीं मालूम है। चौबीसी में कवि ने गुरु-परम्परा का उल्लेख इस प्रकार किया है--

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई–जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० २४३ (प्र०सं०)
२. वही भाग ५ पृ० ४१९ (न० सं०)
३. अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० १०६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री जिनराज सूरि खरतरगछ, सहु गुरुनइं सुपसावइ,
राति दिवस मुझ गुण समरीजइ, अेह भाव मन आवइ।
श्री जिनरतन तणी प्रभु सांनिधि, दिन दिन अधिकइ दावइ।
आरति रौद्र ध्यान दुइ परिहरि, धरम ध्यान नित ध्यावइ।[1]

इस चौबीसी का प्रारम्भ प्रथम जिन के नमन से हुआ है, यथा—

समरि समरि मन प्रथम जिन; युगला धरम निवारण सामी,
निरखी जइ ते सफल दिनं।
उपशम रससागर नितनागर, दूरि करइ पातक मलनं,
श्री जिनरतन सूरि मधुकर समं।[2]

जिनरंगसूरि—आप खरतरगच्छीय जिनराजसूरि के शिष्य थे। आपके पिता श्री सॉंकरसिंह श्रीमाल जाति के सिन्धूड़वंशीय श्रेष्ठी थे। आपकी माता का नाम सिन्दूर दे था। आप नैसर्गिक प्रतिभावान एवं स्वरूपवान थे। सं० १६७८ फाल्गुन कृष्ण सप्तमी के दिन श्री जिनराज सूरि ने इन्हें दीक्षित किया और रंगविजय नाम दिया। सम्राट् शाहजहाँ ने जब इनकी ख्याति सुनी तो बुलवाया और इनके सत्संग से प्रभावित हुआ। दारा ने इन्हें युगप्रधान पद दिया। सं० १७१० में इन्हें यह पद बड़े उत्सव के साथ गालपुर में प्रदान किया गया और इनका नाम जिनरंग सूरि पड़ा। ये बड़े विद्वान् थे और काव्य रचना में निष्णात् थे। श्री राजहंस, ज्ञानकुशल और कमलरत्न ने इनके सद्गुणों की स्तुति में कई गीत लिखे हैं जो ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में छपे हैं। आपने प्रबोध बावनी (सं० १७३८), सौभाग्य पंचमी (सं० १७३७), धर्मदत्त चौपाई (किशनगढ़) और रंगबहुत्तरी आदि कई रचनायें की हैं जिनमें से प्रबोधबावनी और रंगबहुत्तरी की भाषा हिन्दी है, शेष में रूढ़ और परम्परित मरुगुर्जर भाषा का प्रयोग किया गया है।[3] इनके अलावा इनके कई स्तोत्र जैसे चतुर्विंशति जिनस्तोत्र, चिन्तामणि पार्श्वनाथ स्तवन और नवतत्त्व बाला-

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कविओ भाग ३, पृ० १२१२ (प्र० सं०)।

२. वही भाग ४ पृ० १७० (प्र०सं०)।

३. अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० १०८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्तवन आदि प्राप्त हैं। इनमें से कुछ रचनाओं का परिचय और उदाहरण आगे प्रस्तुत किया जा रहा है।

प्रबोधबावनी या अध्यात्मबावनी (सं० १७३१ मागसर शुक्ल २, गुरुवार)

रचनाकाल—शशि गुन मुनि शशि संवत शुकल पक्षि;
मागसिर बीज गुरुवार अवतारी है।
खल दुखुद्धि कौं अगम भांति भांति करि
सज्जन सुबुद्धि कौं सुगम सुखकारी है।

इसमें आत्मा को सम्बोधित करके उसे संसार से मुक्त होने के लिए कहा गया है। अध्यात्म के साथ इस रचना में काव्यत्व भी उत्तम कोटि का है; प्रमाणस्वरूप एक उदाहरण प्रस्तुत है—

ऊंकार नमामि सोहै अगम अपार,
अति यहै तत्तसार मंत्रन को मुख्य मान्यो है।
इनही ते जोग सिद्धि साधवै की सिद्धि जान,
साधुभये सिद्ध तिन धुर उरधानो है।
पूरन परम परसिद्ध परसिद्ध रूप,
बुद्धि अनुमान याकौ बिबुध बखान्यो है।
जपैं जिनरंग ऐसो अक्षर अनादि आदि,
जाको हेव सुद्धि तिन याको भेद जान्यो है।[1]

रंगबहत्तरी को प्रास्ताविक दोहा या दूहाबन्ध बहत्तरी भी कहा जाता है। इसमें ७२ दोहे हैं जिनमें नीति, भक्ति और अध्यात्म विषयों पर कवि की सुंदर अभिव्यंजना है। इसका सम्पादन श्री अगरचन्द नाहटा ने और प्रकाशन 'वीरवाणी' में हुआ है। उदाहरणार्थ इसके कुछ दोहे उद्धृत किए जा रहे हैं—

धरम ध्यान ध्यावै नही, रहे जु आरत मांहि,
जिनरंग वे कैसे तरे जिन रंगस्ता नाहि।
अपना भार न उठ सकै और लेत पुनि सीस,
सो पैड़े क्यों पहुँचिहैं जपि जिनरंग जगदीश।
दसूं द्वार का पिंजरा आतम पंछी मांहि,
जिनरंग अचरिज रहतु है गये अचम्भौ नांहि।
धर्म की बात रुचे नहीं पाप की बात सुहाई,
जिनरंग दाखां छाड़िकै काग निबौरी खाइ।

१. डा० प्रेमसागर जैन—हिन्दी जैन भक्तिकाव्य और कवि पृ० २६७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और अन्त में यह दोहा है--

जिनरंग सूरि कही सही, गछ खरतर गुण जाणा,
दूहाबंध बहत्तरी वाचें चतुर सुजाण।

सौभाग्यपंचमी (सं० १७३८, विजयदशमी, बुधवार) यह रचनाकाल मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने दी है।[1] लेकिन प्रेमसागर जैन सं० १७४१ बताते हैं। यह सूचना उन्होंने कामता प्रसाद जैन कृत हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास के आधार पर दिया है लेकिन उन्होंने भी अपने कथन का कोई प्रमाण नहीं दिया है न तो कामताप्रसाद जैन ने और न तो मिश्र बन्धुओं ने इस रचनाकाल से सम्बन्धित कोई उद्धरण दिया है। पता चला है कि यह रचना दिल्ली से प्रकाशित हो गई है, पर मुझे देखने में नहीं आई, अतः इसका उद्धरण-विवरण नहीं दिया जा सका।

जिनरंग उदार विचारों वाले कवि थे। वे जैन, शैव और इस्लाम आदि धर्मों में विरोध नहीं मानते थे। उन्होंने एक जगह तीनों के प्रति सम्मान भाव व्यक्त करते हुए लिखा है--

शैव गति जैनी दया मुसलमान इकतार,
जिनरंग जौ तीनों मिलैं तो जिउ उतरै पार।

चतुर्विंशति जिन स्तोत्र--चौबीस तीर्थङ्करों की भक्ति से सम्बन्धित पद्यों का संकलन है। चिन्तामणि पार्श्वनाथ स्तव (१५ पद्य) के बारे में कहा गया है कि भगवान पार्श्वनाथ का यह स्तव चिन्तामणि के समान फलदायी है।

नवतत्त्वबाला स्तवन में नवतत्त्वों का विवेचन है। यह श्राविका कनका देवी के लिए लिखा गया था। इसका भी दिल्ली से प्रकाशन हो चुका है।

इनकी एक छोटी रचना 'नेमिराजुल स्वाध्याय' (११ कड़ी) भी उपलब्ध हुई है जिसका आदि इस प्रकार है--

प्रणमी सद्गुरु पाय गायसुं राजीमती सतीजी,
जिन से सीयल अभंग प्रतिबोध्यओ देवर जतीजी।

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो भाग २ पृ० २७३; भाग ३ पृ० १२७७ (प्र० सं०) और भाग ४ पृ० ४४१ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्त--जे पालइ तप शील सुरतरु सम जिनवर कह्यो जी,
जिनरंग सूरि कहइ अेम अविचल पद राजुल लायओ जी ।[1]

जिनलब्धि सूरि--ये खरतरगच्छ की आद्यपक्षीय शाखा के जिनहर्ष सूरि के शिष्य थे । इन्होंने सं० १७५० में जयतारण में 'नवकार माहात्म्य चौपई' की रचना की ।[2] इसका विवरण दिया जा रहा है । नवकार माहात्म्य चौपई (सं० १७५० विजया दसमी, गुरुवार, जयतारण) । इसमें कवि ने अपनी गुरुपरम्परा बताते हुए कहा है कि खरतरगच्छ की आचारजिया शाखा के जिनचंद > जिनहर्ष का वह शिष्य है । रचनाकाल इस प्रकार बताया है--

संवत सतर पचासा वरसइ विजयदसमि दिन दरसइ बे,
सुगुरुवार विराजइ सरसइ ही, चौमासा भल चरसै बे ।
सहर जयतारणि मांहे सुखदाई, विमलनाथ वरदाई बे ।
सुनिज जाइ तास सवाई, चोबीस वीर चित्त लाई बे ।

× × × ×

श्री जिनलब्धि कहै चित्त लाइ, सारन षडावश्यक नी पाई बे,
एणै गुणै जे सुणइ सुणावै, चिर दोलिति थियां थावे बे ।
श्री नवकार तणा गुण गाया ।[3]

जिनवर्द्धमानसूरि--ये खरतरगच्छ की पिप्पलक शाखा के जिनरत्न के शिष्य थे । इन्होंने धन्ना चौपई (३१ ढाल सं० १७१०, आसो सुदी ६, खभात) और सुक्ति मुक्तावली (सं० १७३९ उदयपुर) की रचना की ।[4] धन्ना चौपाई को श्री मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने पहले मतिसार की रचना बताया था और अपने कथन की पुष्टि में ये पंक्तियाँ उद्धृत की थी—

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई--जैन गुर्जर कवियो भाग ५ पृ० ४०६ (न० सं०) ।
२. अगरचन्द नाहटा—परम्परा पृ० १०९ ।
३. मोहनलाल दलीचन्द देसाई--जैन गुर्जर कवियो भाग ३ पृ० १३७० (प्र० सं०) और भाग ५ पृ० १२५ (न०सं०) ।
४. अगरचन्द नाहटा--परंपरा पृ० ११० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ये सम्बन्ध रच्यौ मतिसारें नवम अंग अणुसारे जी,
भविमण जण नै वांचण सारै, विसतरजे जगि सारै जी।[१]

परन्तु इसी के ऊपर कवि ने अपना नाम और अपनी गुरु परम्परा स्पष्ट रूप से दी है और अपने को जिनवर्द्धन सूरि>जिनचन्द सूरि> जिनरत्न सूरि का शिष्य बताया है, यथा--

तस पट श्री जिनरत्न विराजै, दिन-दिन अधिक दिवाजै जी
जस दरसण मिथ्यामति भाजै, गुण गण करि गुरु गाजै जी।
तस शिष्य जिन व्रधमान जगीसै, आसो सुदि छठि दिवसै जी
संवत सतर दाहोत्तर बरसै, खंभाइत मन हरसै जी।[२]

ऊपर के उद्धरण में मतिसार का अर्थ मति के अनुसार होगा। इसी शब्द के कारण शायद देसाई जी को यह भ्रम हुआ होगा कि कोई मतिसार कवि है जिसकी यह रचना है किन्तु अन्त साक्ष्य से ही यह स्पष्ट होता है कि इसके कर्त्ता वर्द्धमान (व्रधमान) हैं और उनके गुरु जिनरत्न तथा प्रगुरु जिनचंद सूरि।

जिनविजय (i) जैनियों में जिनविजय नाम भी बड़ा लोकप्रिय है। १८वीं शती में कम से चार जिनविजय कवि तो मुझे मिले हैं, हो सकता है कि कुछ और अप्राप्त हों। उनका परिचय क्रमशः दिया जा रहा है।

जिन विजय (i) ये तपागच्छीय कल्याणविजय>धनविजय— विमलविजय>कीर्तिविजय के शिष्य थे। इनकी चौबीसी (चौबीस जिन स्तवन सं० १७३१ मागसर शुक्ल १३ बुधवार, फलौंधी) प्रमुख रचना है। इनकी अन्य रचनायें हैं जयविजय कुँवर प्रबन्ध और दश दृष्टांत ऊपर दश स्वाध्याय।[३]

चौबीसी का आदि – सगबीसे ढाले करी थुणस्युं जिन चौबीस,
साभलज्यो सहु चतुर नर श्रवणे विस्वा बीस।

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो भाग २ पृ० ८०-८१ (प्र० सं०)।

२. वही भाग ३ पृ० ११४४ (प्र० सं०), और भाग ४ पृ० १६९-१७० (न० सं०)।

३. अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० ११२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रचनाकाल—मागसिर वदि तेरस दिने, अनुराधा बुधवार।
ससि मुनि तिअ शुभ संवते, स्तवन कर्यो सुखकार।

यह चौबीसी 'चौबीसी तथा बीसी' संग्रह में सा प्रेमचन्द केवलदास द्वारा प्रकाशित है। जयविजय कुँवर प्रबन्ध (सं० १७३४ दशाडा) का आदि—

आदि आदि जिणेसरु, पय प्रणमी सुविलास,
युगलाधर्म निवारियो कीन्हों धर्म प्रकाश।

इसमें नेमिनाथ, धरणी और पद्मावती के पश्चात् सरस्वती की वन्दना की गई है। गुरु परम्परा इस प्रकार कवि ने बताई है—

तप गछपती नितु सेवीअे रे, श्रीविजयप्रभ सूरि।
तस राज्ये पंडितवरुरे, नामे सुख भरपूर रे।
कीर्तिविजय बुधराय नो रे, सीस कहे जयकार।
जिनविजय कहें सांभलो रे, अे बीजे अधिकार रे।[1]

रचनाकाल—संवत सतर चोतरीसा वरसे नयर दसाडा मांहिने,
रास रच्यो में समकित ऊपरि, श्री शांतिनाथ सुपसाइ रे।

यह रचना प्रतिक्रमण सूत्र की वृत्ति पर आधारित है।

दस दृष्टांत ऊपर दश स्वाध्याय (सं० १७३९, उसमानपुर)

आदि – श्री जिनवीर नमी करि जी, पूछे गौतम स्वामी;
भगवन नर भव ना कह्या जी, दस दृष्टान्त ना नाम
सुणो जिउ दश दृष्टान्त विचार।

रचनाकाल—चंद सात त्रिय नव संवत्सरे दश दृष्टान्त विच्यार,
श्री गणधर भाष्या सूत्र थी रे, लहज्यो बहू विस्तार।[2]

यह रचना जैन सत्यप्रकाश वर्ष १२ अंक ९ पृ० २४२ से २४९ पर छप चुकी है।

जिनविजय II—तपागच्छ के देवविजय आपके प्रगुरु तथा जशविजय गुरु थे। धन्ना शालिभद्र रास सं० १७२७, हरिबल चौपाई और

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई जैन गुर्जर कवियो भाग ४ पृ० ४४२-४३ (न० सं०)।
२. वही भाग २ पृ० २९७-२९९ भाग ३ पृ० १२८८-९० (प्र० सं०) और भाग ४ पृ० ४४२-४४५ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणावली रास नामक तीन कृतियाँ प्राप्त हैं। इनमें से प्रथम शंकास्पद है और द्वितीय शायद जिनविजय की कृति है पर इन दोनों के उद्धरण नहीं मिले; केवल गुणावली रास का विवरण-उद्धरण उपलब्ध है। यह निर्विवाद रूप से इनकी रचना है। इसके आदि की पंक्तियाँ निम्नांकित हैं--

सकल सुखदायक सदा, त्रेवीसमो जिनचंद,
प्रणमुं पास संखेसरु नामे परमाणंद।

रचनाकाल-संवत सतर अेकावना वरसे विजयदशमी बहु नेहिं;
सूरति बंदिर मां रास रच्यो अे, साह विजयसिंध माणक जी गेहेरे।

अर्थात् यह रचना सं० १७५१ आसो शुक्ल १० सूरत में साह विजयसिंध के घर पर पूर्ण हुई थी। इसमें २७ ढाल ४८७ कड़ी है, यथा--

कहे जिनविजय मुनि धन्यासीइ सत्तावीसमी ढाल,
झबरवाडी पास पसाईं घरि घरि मंगलमाल रे।[1]

एक पद्य रचना 'पंच महाव्रत संज्झाय' और तीन गद्य रचनाओं का भी नाम मिला परन्तु उनके उद्धरण नहीं प्राप्त हुए। गद्य रचनायें हैं-षडावश्यक सूत्र बालावबोध सं० १७५१ दिवाली, सूरत; दंडकस्तवन सं० १७५२ और जिवाभिगमसूत्र बालावबोध १७७२। इनके गद्य-नमूने नहीं प्राप्त हो सके परन्तु इतना तो निश्चित हुआ कि ये पद्यकार के साथ ही गद्यकार भी थे।

जिनविजय III ये भी तपागच्छ के कवि थे और सत्यविजय पन्यास / कर्पूरविजय / क्षमाविजय के शिष्य थे। आपके पिता राजनगर निवासी श्रीमाली वणिक श्रीधर्मदास और माता लाडकुँवर थीं। आपका जन्मनाम खुशाल था। सं० १७५२ में इनका जन्म, १७७० कार्तिक कृष्ण ६ बुधवार को अहमदाबाद में दीक्षा और सं० १७९९ श्रावण कृष्ण १० मंगलवार को पादरा में स्वर्गवास हुआ था। आपने कर्पूरविजय गणिरास और क्षमाविजय निर्वाणरास लिखा, इनके अलावा आपने अन्य कई स्तवन, गीत और काव्य रचनायें की हैं जिनका विवरण दिया जा रहा है। 'कर्पूरविजय गणिरास' (९ ढाल सं० १७७९ विजयादशमी शनिवार, बड़नगर) का आदि--

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई--जैन गुर्जर कवियो भाग ४ पृ० ३७९ (न०सं०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रणमी मेरे पास जिन, पुरिसादाणी देव,
चरण कमल नित जेहना, सेवें चहुविधि देव ।[1]
कमलमुखी कमले स्थिति कमल शी कोमल काय;
वाणीरस मुजनेदियो, शारद करि सुपसाय ।

कवि अपने गुरु क्षमाविजय की वंदना करता हुआ लिखता है--

तास चरण सुपसाय लहीने, बड़नगर रही चोमासो रे;
पास पंचासर साहिब संनिधि, सफल कीउ अभ्यास रे ।

रचनाकाल-निधि मुनि संयमभेदी संवत्सर, विजयदशमी शनिवारे रे;
गणि जिनविजय कह गुरुनामे, श्री संघने जयकारे रे ।

यह रास जैन ऐतिहासिक रसमाला भाग १ में प्रकाशित है ।

क्षमाविजय निर्वाण रास (१० ढाल सं० १७८६ के बाद)

आदि—स्वस्ति श्री वरदायिनी, जिन पद पद्मनिवास;
सुरवर नरवर सेवता सा श्री द्यो उल्लास ।
जिन सारद चरणे नमी थुणस्युं मुनि महिराण,
क्षमा विजय पन्यासनो सांभलज्यो निर्वाण ।

अन्त— सुगुण सोभागी सहिगुरु सांभले रे, जनकसुता जिमि राम,
काम हुँ रति ने धाम हुँ पंथी ने रे, व्यापारी मनी दाम ।
(मिलाइये--कामहि नारि पियारि जिमि अरु लोभी के दाम ।)
तुलसी

यह रचना भी जैन ऐतिहासिक रासमाला भाग १ में प्रकाशित है ।
[विहरमान जिन] वीसी (सं० १७८९ राजनगर)

आदि—सुगुण सुगुण सोभागी, जम्बू द्वीप माँ होजी ।

अन्त--सत्तर नव्यासी, राजनगर चोमासी;
मुनि दीपविजय ना कहेण थी कीधी बीशी ।

यह चौबीसी बीसी संग्रह पृ० ७२२-७३७ पर छपी है ।

पंचमी स्तव (ढाल ६२ सं० १७९३ पार्श्वजन्म दिने भाद्रवद १०, पाटण)

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई--जैन गुर्जर कवियो भाग ५ पृ० ३०५ (न० सं०) ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदि—सुत सिद्धारथ भूप नो रे सिद्धारथ भगवान ।
बारह परषदा आगले रे भाषे श्री वर्द्धमानरे,
भवियण चित्त धरो ।

इसका रचना विवरण इस कलश में देखिए—

इय वीर लायक विश्वनायक सिद्धि दायक संस्तव्यो ।
पंचमी तप स्तवन टोडर गुंथीजिन कहे ठव्यो ।
पुण्य पाटण क्षेत्र मां रे सत्तर त्राणु वत्सरे,
पार्श्वजन्म कल्याणक दिवसे सकल भविमंगल करे ।[1]

मौन एकादशी स्तव अथवा संज्झाय (१७९५ राजनगर) का कवि ने रचनाकाल–'वाण नन्द मुनिचन्द वरसे' लिखकर बताया है ।[2] यह भी प्रकाशित है ।

चौबीसी (१) आदि—नाभिनरेश नंदना हो राज,
चंदन शीतल वाणी, वारि माहरा साहिबा ।

यह चौबीसी बीसी संग्रह में प्रकाशित है ।

चौबीसी (२) आदि—प्रभ जिणेसर पूजवा
सहियर म्हारी अंग ऊलट धरी आवी ।

अन्त—क्षमाविजय जिन वीर समागम, पाम्यो सिद्धि निदान जी ।

यह भी प्रकाशित है, चौबीसी बीसी संग्रह पृ० १८९-२२३ ।
पंचमहाव्रत भावना संज्झाय (५ ढाल)

प्रथम महाव्रत उपदिशे, सुणो गोयम गुणधारी रे ।

इनके अतिरिक्त अनेक स्वाध्याय संज्झाय आदि लिखे हैं जिनकी संख्या काफी है । ये सभी संज्झाय संग्रह में प्रकाशित हैं ।[3]

जिनविजय (IV) तपागच्छीय विजयसिंह सूरि>गजविजय>हित विजय>भाण विजय आपके गुरु थे । आपके 'श्रीपाल चरित्र रास'

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई–जैन गुर्जर कवियो भाग ५ पृ० ३०६-३०७ (न० सं०) ।
२. वही, भाग २ पृ० ५६३-६६, भाग ३ पृ० १४५१-५२ (प्र० सं०) ।
३. वही, भाग ५ पृ० ३०४-३०९ (प्र० सं०) ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(४१ ढाल सं० १७९१ आसो सुदी १० गुरुवार, नवलखबंदर) का आदि निम्नांकित है--

स्वस्ति श्री शोभा सुमतिदायक वीर जिणंद,
कामित पूरण कामघट प्रणमु परमाणंद।

अन्त--अे श्रीपाल चरित्र बखाण्यो, सद्गुरु ने सुपसाये रे;
नवलष बंदर में मनरंगे नवलष पास पसाइं रे।

रचनाकाल--सत्तर से अेकाणुं वरसे, आसो शुदी तिथि प्यारी रे।
विजयदशमी गुरुवार अनोपम रचना कीधी सारी रे।

श्रीपाल चरित्र का दृष्टान्त देकर सिद्धचक्र की आराधना का महत्व समझाया गया है--

तस सतीर्थ्य पण्डित जिनविजये, रास रच्यो हित आंणी रे,
भाव धरी सिद्धचक्र आराधो, लाभ अनंतो जांणी रे।

इससे गुरुपरम्परान्तर्गत गजविजय, हितविजय और भाणविजय की अभ्यर्थना की गई है।

नेमिनाथ शलोको (७२ कड़ी सं० १७९८ दीपावली प्रेमापुर, अहमदाबाद) की प्रारम्भिक पंक्तियाँ आगे उद्धृत की जा रही हैं--

वाणी वरसति सरसति माता, कविजन त्राता कीरतिदाता।
इक्ष्वाकुवंस जिनवर बावीस, मुनि सुब्रत नेमि दोय हरिवंश।
वावीसमो जिनवर नेमिकुमार, बाल ब्रह्मचारी राजुल नारि।
परणाया नही पिण प्रीतडी पाली, कहिस्युं सलोको सूत्र संभाली।

रचनाकाल--सतर अठाणुं दीवाली टाणुं,
सहर ने पासे प्रेमापुर जाणुं।
संभव सुख लहरी कुशल कल्याणी,
मोती मां ऊजल कवि जिनवाणी।[1]

धनाशालिभद्ररास--(४ खण्ड ८५ ढाल २२५० कड़ी सं० १७९९ श्रावण शुक्ल १० गुरुवार सूरत) का आदि देखिए--

अैंद्र श्रेणिनत क्रम कमल, स्वस्ति श्री गुणधाम,
वीर धीर जिनपति प्रते, प्रेमें करूं प्रणाम।
वसुधा में विद्या विपुल वरदाता नित्यमेव,
समरुं चित चोपे करी ते प्रतिदिन श्रुतमेव।

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई-जैन गुर्जर कवियो भाग ५ पृ० ३५०-५१ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसमें दान के दृष्टान्त स्वरूप धनाशालिभद्र का चरित्र चित्रित किया गया है।

धन्य शाह धर्माग्रणी पद पद मंगल माल;
शालिभद्र पिण दान थी सुख पाम्यो श्री कार।

इसके उपरांत विस्तारपूर्वक गुरुपरम्परा का वर्णन किया गया है और अन्त में लिखा है--

च्यार उल्लासे अधिक विलासे दान कल्पद्रुम गायो,
बुध जिनविजय कहें विस्तारियो, शत शाषाइं सुछायो रे।

यह रचना भीमसिंह माणक और शाह लखमसी जैसिंह भाई द्वारा प्रकाशित की गई है। आपने श्रीपालचरित में धन्ना शालिभद्र रास में अपने समकालीन मेदपाट के राजा जगतसिंह का उल्लेख किया है और बताया है कि वे विजयसिंह सूरि का सम्मान करते थे, यथा—

मेदपाटपति राणा जगतसिंह प्रतिबोधी जश लीधो,
पल आखेटक नियम करावी, श्रावक सम ते कीधो रे।

इन पंक्तियों के ठीक ऊपर विजयसिंह की चर्चा है--

तस पट्ट श्री विजयसिंह गुरु भत्ति जन कैरव चंदा,
गुण मणि रोहण भूधर ऊपम, संघ सकल सुखकंदा।[1]

इसी प्रकार का उल्लेख श्रीपाल चरित्र में भी किया गया है।

जिनसमुद्रसूरि (महिमसमुद्र) आपका जन्म श्रीमाल जातीय हरराज की भार्या लखमा दे की कुक्षि से हुआ था। आपका दीक्षा नाम महिमसमुद्र था। सं० १७१२ में बेगड़गच्छ के आचार्य जिनचन्द सूरि के स्वर्गवासी होने पर आपको उनके पट्ट पर अभिषिक्त किया गया था। सं० १७४१ कार्तिक शुक्ल १५ को वर्द्धनपुर में आपका स्वर्गवास हुआ। आप १७वीं शती के अन्तिम दशक से १८वीं शती के चौथे दशक तक रचनायें करते रहे। कहा जाता है कि आपने जीवन के तीन दशक साधुचर्या में व्यतीत किए अर्थात् दीक्षा के समय (सं० १६८२) आप ८ या १० वर्ष के बालक रहे होंगे। अतः अनुमान होता है कि आपका जन्म सं० १६७०-७२ में हुआ होगा।

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई--जैन गुर्जर कवियो भाग २ पृ० ५६७-७३; भाग ३ पृ० १४५४ (प्र०सं०) और भाग ५ पृ० ३५०-३५४ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आपकी प्रथम रचना नेमिनाथ फागु सं० १६९७ में और अन्तिम रचना 'सर्वार्थसिद्धि मणिमाला' (वैराग्य शतक की वृत्ति) सं० १७४० में रची गई है इस बीच आपने वसुदेव चौपाई, ऋषिदत्ता चौपई (जिसे क्षमासुंदर ने पूर्ण की थी), उत्तमकुमार चौपई (नवरस सागर सं० १७३२ काती वदि १२ बुधवार), रुकमणि चरित्र, हरिबल चौपाई (सं० १७०६ ज्येष्ठ वदि, पाहड़पुर) गुणसुन्दर चौपाई, इलाची कुमार चौपाई १७५१ आसोज सुदि १०, वीरोतरा ग्राम शत्रुञ्जयरास गाथा ६३ सं० १७२३ वैशाख सुदि १०, प्रवचन रचनावेलि, तत्वप्रबोधन नाममाला सं० १७३० कार्तिक शुक्ल ५, कल्पसूत्र बालावबोध, कालिकाचार्य कथा, कल्पांतर वाच्य, सतरहभेदी पूजा सं० १७१८ सूरत, गाजीपुर में, राठौड़ बंशावलि, मनोरथमाला बावनी, ईश्वर-शिक्षा गाथा ५४, शत्रुंजय गिरनार मंडण स्तवन ५९ गाथा सं० १७२४ आसाढ़, श्री सीमंधर स्तवन गाथा ५९, आतमकरणी संवाद गाथा १७७-४२ (रस रचना चतुष्पदिका सं० १७११ मुलतान, गजल गाथा, साधुवंदना, शत्रुंजय स्तवन गाथा ४८ सं० १७१९, पार्श्वनाथ रास सं० १७१३ गाजीपुर, गुणसागर प्रबोधचन्द्र शुद्ध प्रकाश (अपूर्ण), रत्नसेन पद्मावती (अपूर्ण)। अन्य कई स्तवन, फाग, छत्तीसी आदि जैसलमेर शास्त्र भण्डार में प्राप्त है।[1] अगरचन्द नाहटा ने सर्वार्थसिद्धि गणि-माला को अन्तिम रचना बताया है किन्तु उन्होंने रचनाओं का जो विवरण दिया है उसमें इलाची कुमार चौपाई का रचनाकाल सर्वार्थ-सिद्धि के बाद सं० १७५१ बताया गया है। लगता है कि कुछ अशुद्धि किसी स्तर पर हो गई है। पट्टावली में लिखा है कि जिनसमुद्र सूरि ने सवा लाख श्लोक प्रमाण नवीन ग्रन्थ रचना की थी। आपके रचित फारसी भाषा के भी कई स्तवन प्राप्त हैं। आपकी कुछ रचनाओं का विवरण और उद्धरण उदाहरणार्थ आगे दिया जा रहा है।

शत्रुंजय गिरनार मंडण स्तवन (गाथा ५९ ढाल ३, सं० १७२४ शुचिमास, सोमवार)

आदि—श्री सेत्रुंज गिरनार बे मंडण दीनदयाल,
श्री आदीश्वर नेमिनो तवण सुणो सुरसाल।

अन्त—इम सिद्धगिरि गिरनार भूषण विगत दूषण जिनवरो,
नाभेय नाम सुधेय श्री शैवेय दुख आपद हरो।

---

१. अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० ९४-९५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

युग नयन भोजन प्रतिम १७२४ वछर मास शुचि शशि दिनयरो।
जिनचंद वेगड़ सीस श्री जिनसमुद्र सूरि सुहंकरो।[1]

तत्त्व प्रबोध नाम माला (सं० १७३० कार्तिक शुक्ल ५, गुरुवार)

रचनाकाल —संवत सतरह से वरस, वीते ऊपर त्रीस;
कार्तिक सित पंचमि गुरो, ग्रन्थ रच्यो सुजगीस।

नेमिनाथ बारमासी (१५ कड़ी) आदि—

श्री यदुपति तोरण आया, पसु देख दया मन लाया।
प्रभु श्री गिरनारि सिधाया, राजल रांणी न विराया, हो लाल।
लाल लाल इम करती।

अन्त— सखी री नेमि राजुल गिरवरि मिलीयां,
दुख दोहग दूरइं टलीया।
जिणचन्द परम सुख मिलीया,
श्री जिनसमुद्र सूरि मनोरथ फलीया, हो लाल।[2]

सीमंधर स्तवन (गाथा ५९) तथा अन्य कई छोटी रचनाओं के विवरण प्राप्त हैं किन्तु आपके अनेक रास तथा चौपाइयों के खण्डित अंश ही प्राप्त हैं जिनके पूरी प्रतियों के अन्वेषण न होने के कारण सबका विवरण देना तथा उनके आधार पर आपके रचनासामर्थ्य का अनुमान लगाना सम्भव नहीं है। फिर भी रचनाओं की विस्तृत सूची देखकर यह निश्चय होता है कि आपकी रचना क्षमता असाधारण थी।

जिनसुखसूरि—आप खरतरगच्छीय जिनरत्न के प्रशिष्य और जिनचन्द्र सूरि के पट्टधर शिष्य थे। आपका जन्म सं० १७३९ मागसर शुक्ल १५ को हुआ था। आपके पिता का नाम रूपसी और माता का नाम सुरूपा था। आपकी दीक्षा सं० १७५१ माह शुक्ल ५ पुण्यपालसर में हुई थी और आपका दीक्षा नाम सुखकीर्ति था। आपको सूरिपद सं० १७६२ में प्राप्त हुआ। सं० १७८० जेठ वदी १०, रिणीनगर में आपका स्वर्गवास हुआ था। आपकी दो रचनाओं का विवरण-उद्धरण आगे दिया जा रहा है।

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो भाग ४ पृ० ३४२ (न० सं०)।
२. वही भाग ३ पृ० १२२६-२७ (प्र० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चौबीसी (सं० १७६४ आषाढ़ कृष्ण ३ खंभात) का आदि—

आदि करण आदै नमुं आदीसर अरिहंतु,
दुखवारण वारण हरी जग गरुओ जयवंत।
रिषभ अम्हारी विनंति।[1]

अन्त—सतरै सें चौसठे संवत वदि आषाढ़ वदी जै,
समकित बीज तीज तिथि वाचौ, तिम जिणराज तवीजै री।
श्री जिनरतन चिन्तामणि सरिखौ, दिन दिन सब सुखदाई,
श्री जिनचंद ज्युं वाचौ, प्रसिद्ध अधिक प्रभुताई री।

जैसलमेर चैत्य परिपाटी (४ ढाल सं० १७७१)

इसमें बताया गया है कि जैसलमेर की स्थापना जैसल ने की थी और सं० १२१२ में वहाँ एक चैत्य की स्थापना की गई, यथा—

संवत बारे से बारोत्तरे ओ जेसलगढ़ जाण,
थाप्यो सेठै कीरतथंभ, ज्यूं मोटो चैत्य मंडाण।

रचनाकाल—इम महाआठ प्रासाद मांहे बिबि पैंतालीस सैं;
चौरासी ऊपर सरब जिनवर वंदतां चित्त ऊलसै।[2]

जिनसुन्दरसूरि—ये खरतरगच्छ की बेगड़शाखा के आचार्य जिनसमुद्र सूरि के पट्टधर थे। आपकी 'प्रश्नोत्तर चौपइ' (६ खण्ड, १३६ ढाल, ३६८६ श्लोक) की रचना सं० १७६२ आदो कृष्ण १, आगरा में पूर्ण हुई। इसके ३ और ४ खण्ड सिन्ध प्रान्त के गाजीपुर में बनाए गए थे।[3] इसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ निम्नांकित हैं—

श्री श्रुतदेव नमी करी प्रणमी प्रवचन मात।
गुण गाता माता तणां, अलिय विघन सहु जात।
प्रणमु वलि सद्गुरु तणा, पय पंकज नितमेव,
कीड़ी थी कुंजर करे, तिण करु सांची सेव।
प्रणमु वलि माता-पिता, जिण दीधो अवतार।
पालि पोसी मोटो कर्यो, अे तिणनो उपगार।

× × ×

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो भाग ५ पृ० २२७-२२९ (न० सं०)।

२. वही, भाग २ पृ० ५१६-१७; भाग ३ पृ० १४३३-३४ (प्र० सं०) भाग ५ पृ० २२७-२२९ (न० सं०)।

३. अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० १०८।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

किण विध श्री महावीर जी, किण विध गौतम स्वाम।
किण विध प्रश्नोत्तर कह्या, ते सुणज्यो अभिराम।

कवि ने प्रथम खण्ड पूरा किया सं० १७६२ श्रावण कृष्ण द्वादशी, शुक्रवार को और द्वितीय खण्ड उसी वर्ष श्रावण शुक्ल सोमवार को, इसका तीसरा खण्ड सिन्धु देश में लिखा गया, यथा—

गछपति युगवर चंद विराजे, तेह्ने पाटे छाजेजी
सिन्धु देश सवा लाख कहियें नयरपुर तिहां लहिये जी।

चौथे खण्ड के अन्त में लिखा है—

सिंध लवालक्ष देश बड़ा हे मुनि दिल विच भावंदा हे,
सुन्दर नगर गाजीपुर नीको, ग्रहणे गांठे करी सोभंदा हे।

इसकी भाषा में दिल, विच, भावंदा, सोभंदा आदि शब्द स्थानीय प्रभाव के सूचक हैं। अन्त में रचनाकाल का उल्लेख इस प्रकार किया गया है—

संवत सतरे सें बासठे, आगरा नयन मझार।
आसोज बद अेकम दिनें, अेह कह्यो अधिकार।

कवि जिनसुन्दर सूरि ने अपनी गुरुपरम्परा का निर्देश इन पंक्तियों में किया है—

ससी गछ खरतर गुणनिलो, विरुद बेगड़ श्रीकार;
श्री श्रीमाल कुल सेहरो साह हरराज सिरदार।
तेह तणो सुत जाणीये महिमा समुद्र बखांण;
श्री जिसचंद पाटे जयो, चौद विद्या गुण जाण।

× × ×

श्री जिनसमुद्र सूरींद ने पाटे सुन्दर सुरींद,
प्रश्नोत्तर कीधी चौपइ मन धरी अधिक आणंद।[1]

मुक्तिविजय द्वारा लिखित इसकी प्रतिलिपि इस विवरण का आधार है।

जिमसोम—आपकी एकमात्र एक कृति 'स्नात्रविधि'[2] का उल्लेख

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० ४६२-६६ (प्र० सं०) और और भाग ५ पृ० २२४-२२७ (न ०सं०)।
२. वही, भाग ३ पृ० १६४० (प्र०सं०) और भाग ५ पृ० ३१६(न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने किया है किन्तु न तो इस रचना के सम्बन्ध में और न रचनाकार के सम्बन्ध में कोई विवरण या उद्धरण दिया है।

जिनहर्ष—आप बोहरा गोत्रीय जिनहर्ष सूरि और आद्यपक्षीय जिनहर्ष सूरि के भिन्न कविवर जिनहर्ष उर्फ जसराज हैं। जसराज इनका मूलनाम था। श्री अगरचन्द नाहटा इनकी गुरु परंपरा बताते हुए लिखते हैं कि ये खरतरगच्छ के आचार्य जिनकुशल सूरि के प्रशिष्य क्षेमकीर्ति द्वारा प्रवर्तित क्षेमशाखा में जिनराज सूरि के शिष्य थे।[1] इनकी दीक्षा सं० १६९० के आस पास हुई। इनका जन्म सं० १६७५ के लगभग वे बताते हैं। इनका जन्मस्थान मारवाड रहा होगा क्योंकि सं० १७०४ से १७३५ तक की रचनाएं मारवाड़ में ही रचित हैं, सं० १७३६ में वे पाटण गये और शारीरिक व्याधि के कारण वहीं रह गये। वहीं पर सं० १७६४ में इनका स्वर्गवास हुआ। सं० १७३६ से ६३ तक की रचित रचनाएँ वहीं की है इसलिए इनकी रचनाओं को भाषा के आधार पर स्पष्ट रूपसे दो भागोंमें देखा जा सकता है। प्रथम भाग की रचनाओं पर मारवाड़ी और द्वितीय भाग की रचनाओं पर गुर्जर का प्रभाव प्रत्यक्ष है : इस प्रकार आप मरुगुर्जर के सच्चे प्रतिनिधि कवियों में आते हैं। श्री नाहटा ने इनके बड़े ग्रन्थों की सूची में सत्तर से अधिक कृतियों का नामोल्लेख किया है। इनकी अनेक छोटी कृतियों का सम्पादन भी श्री नाहटा जी ने किया है। इनकी बड़ी रचनाएँ कई जगहों से प्रकाशित हैं। उनकी बताई गुरु परंपरा के समर्थन में 'उपदेश छत्रीसी' की एक पंक्ति मिलती है, यथा—

> ऐसो जिनराज जिनहरख प्रणमि उपदेश
> की छतीसी कहूं सवइ अे छतीस जू।

श्री मोहनलाल दलीचन्द देसाई इनकी गुरु परंपरा कुछ दूसरे प्रकार से बताते हैं और प्रमाण स्वरूप पचासों रचनाओं के उद्धरण भी देते हैं इसलिए इसे ही प्रमाणिक समझना उचित होगा। वे इन्हें खरतरगच्छ के गुणवर्द्धन 7 सोमगणि 7 शांतिहर्ष का शिष्य बताते हैं। आगे जिन रचनाओं के उद्धरण दिये जा रहे हैं उनसे इनका शांतिहर्ष का शिष्य होना प्रमाणित होता है। विद्याविलास रास में सोमगणि का

१. अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० ९३-९४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नाम है पर शांतिहर्ष का नहीं है पर इस अपवाद के अलावा अन्य सभी कृतियों में कवि ने शांतिहर्ष को गुरु माना है।

रचनाओं का विवरण 'विद्याविलास रास' से ही शुरू करते हैं। इसमें गुरु परंपरा से संबंधित पंक्तियाँ पहले देखिये—

श्री खरतरगछ गयण दिणंदा, श्री जिनरत्न सूरींदा जी;
तासु पसाइ चरित सुखकंदा, नीसुणज्यो नरवृंदा जी।
वाचक गुणवर्द्धन सुखदाया, श्री सोमगणि सुपसाया जी;
इय जिनहरष पुण्य गुण गाया, तीस ढाल सुख पाया जी।[1]

रचनाकाल—सतरें इग्यारोत्तर वरसे श्रावण सुदि मन हरसे जी,
बुधवार नवमी तिथि अवसें कीध चउपई सरसे जी।

अर्थात् यह रचना सं० १७११ श्रावण शुक्ल ९ बुधवार को पूर्ण हुई थी। कुछ आख्यान जिनहर्ष को विशेष प्रिय हैं जिन पर उन्होंने एकाधिक रचनाएँ की हैं। ऐसी रचनाओं में चंदनमलयागिरि सं० १७०४ और सं० १७४४ हैं। आपने श्रीपाल आख्यान पर भी आधारित दो रास लिखे हैं। आगे उनकी कतिपय रचनाओं का विवरण-उद्धरण दिया जा रहा है।

चंदनमलयागिरि चौपाई (३७२ कड़ी, सं० १७०४ वैशाख शुक्ल ५, गुरुवार) का आदि—

सरसति मतिदाइक नमु, त्रिकरण शुद्धि त्रिकाल;
रिद्धि सिद्धि दाता सकल सेवक जन प्रतिपाल।
चंदन नृप मलयागिरि सायर नीर कुमार,
सांभलिज्यो सहुको जणा तासु प्रबंध विचार।

रचनाकाल—संवत सत्तर चीडोत्तरइ सुभजोग नइ गुरुवार
वैशाख सुद पाँचमि दिनइअे कीधउ अधिकार।

अन्त—अनुक्रमे नृप सुख भोगवी छेहउइ तजि भंडार,
नृपनारि चंदण दीख ले सफल करइ अवतार।

उपदेश छत्रीसी सवैया की चर्चा पहले की गई है। इसकी भाषा हिन्दी है और यह जिनहर्ष ग्रंथावली में प्रकाशित है। इसका रचना-

१. मोहनलाल दलीचंद देसाई—जैन गुर्जर कविओ भाग ४ पृ० ८२-१४२ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काल इस पंक्ति में उल्लिखित है—

कहि जिनहरख संवत गुण शशि भक्ष,
कीनि हैं तु सुणत स्याबासि मोकुं दीजियो।[1]

सम्मेतशिखर गिरि स्तवन (सं० १७१४ चैत्र शुक्ल ४) यह जैन प्रबोध पृ० ३३४ और जिनहर्ष ग्रंथावली में प्रकाशित है।

मंगलकलश चौपाई (२१ ढाल सं० १७१४ नभ श्रावण वदी ९ गुरुवार)

संवत सतरे सइं चवदोतरइं रे प्रथम असीत नभमास,
नवमी तिथि दिवसइं गुरुवासरे सुप्रसादइं श्री पास।

इसमें भी गुरुपरंपरान्तर्गत इन्होंने स्वयं को सोमजी के शिष्य शांतिहर्ष का शिष्य बताया है, यथा—

वाचक श्री गुणवरधन गणि जस निरमलो रे तासु सीस गुणवंत।
गणि श्री सोम सुसीतल सोम ज्यूँ रे साधु गुणे सोभंत।
शांतिहर्ष तसु सीस बखाणीये रे इम जिनहरष कहंत।
ढाल अेह इकवीसमी राग धन्यासिरी रे आदरज्यो गुणवंत।[2]

नंद बहुत्तरी अथवा विरोचंद मेहतानी वार्त्ता (सं० १७१४ कार्तिक, बिलहावास)

अन्त—पुण्य पसाये सुख लह्यो सीझै वंछित काज,
कीनी नंद बहुत्तरी संपूरण जसराज।
सतरे सै चवदोत्तरे कातिग मास उदार,
कीनी जसराज बहुत्तरी विलहावास मझार।

प्रारंभ में 'श्री गणेशाय नमः अथ वीरोचंद मुहताँरी वार्त्ता लिख्यते' लिखा है। आगे की पंक्ति है—

सबे नयर सिरसेहरो, पुर पाडली प्रसिद्ध,
गढ़मढ़ मंदिर सप्रीत त्रुंइ, सुभर भरे संमंध।

यह जिनहर्ष ग्रंथावली में छपी है। इनकी भाषा पर राजस्थानी का प्रभाव अधिक है।

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कविओ भाग ४, पृ० ८४न०सं०
२. वही भाग ४ पृ० ८५ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुसुम श्री रास (सं० १७१५ मागसर कृष्ण १३)

मृगापुत्र चौपइ अथवा संधि (१० ढाल सं० १७१५ माह वद १० शुक्र, साँचोर)

आदि—परतख प्रणमुं आदि जिणंद, वंछित पूरण सुरतरु कंद।
अलख अगोचर अमम अमाय, भयभंजण भगवंत कहाय।

रचनाकाल—इम वांण ससि मुनिचंद वच्छर माघ बहुल मनोहरु।
दसमी सुतिथि कविकर अनूपम सयल मनवंछित करु।[1]

मत्स्योदर चौपाई (सं० १७१८ भाद्र शुक्ल ८ बाहड़मेर)

आदि—प्रह उठी प्रणमुं सदा जगगुरु पास जिणंद,
नामइ नवनिधि संपजइ आपइ परमाणंद।

रचनाकाल—गिरि शशि भोजन वछरा अे, भाद्रवा सुदि सुठी चार,
संपूरण चोपइ कही अे आठम तिथीवार।

गुरु परंपरा और रचना स्थान के लिए निम्न पंक्तियों का अवलोकन करें—

श्री जिनचंद सूरि जिरंजीवो अे खरतरगछ सिणगार;
सुगुरु सुपसाउले अे, बाहड़मेर मझार।
श्री गुणवर्द्धन गणिवरु अे वाचक पदवीधार,
वाणारस परगडा अे श्री सोम सुषकार।
तास सीस रलीयामणा अे शांतिहरष गुणजान,
कहे जिनहरष सुअे तेत्रीसमी ढाल बखांन।

जिन प्रतिमा दृढ़ करण हुंडी रास (६७ कड़ी सं० १७२५ मगसर), आहारदोष छत्तीसी (सं० १७२७ आषाढ़ वदी १२) और वैराग्य छत्रीसी (३६ कड़ी सं० १७२७) आदि इनकी प्राप्त रचनायें हैं। काव्य प्रतिभा की परख के लिए नववादी संज्झाय (११ ढाल १७२९ भाद्र कृष्ण २) के कुछ दोहे प्रस्तुत हैं—

पढ़न पढ़ावन चातुरी तीनो बात सहल;
काम दहन मनवसकरन गगन चरण मुश्कल।
ग्यान गरिबि गुरुवचन नरम बात नरतोष,
अेता कबहुं न छोड़िये सरधा सियल संतोष।

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० ८१-११९ तथा ५९२-९३, भाग ३ पृ० ११४४-११८० और १५२१-२२, १६३७ (प्र० सं०), भाग ४ पृ० ८२-१४२ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह भी जिनहर्ष ग्रन्थावली में प्रकाशित है।

दोहा बावनी अथवा मातृका बावनी (सं० १७३० आषाढ़ शुक्ल ९) का आदि—

ॐ यह अक्षर सार है ऐसा अवर न कोइ;
सिद्ध सरूप भगवान सिव, सिरसां वंदु सोइ।

शुकराज रास (७५ ढाल १३७६ कड़ी सं० १७३७ मागसर, शुक्ल ४, पाटण) इस बड़े रास ग्रंथ में कवि ने अपनी गुरु परंपरा बताते हुए कहा है—

खरतरगछ गयणांगण चंद समोवडिरे, श्री जिनचंद सुरींद।
वाचक शांतिहरख गणीवर सुपसाउले रे, कहे जिनहरष मुणिंद।

आप पद्य के साथ अच्छे गद्य लेखक भी थे। आपकी अनेक गद्य रचनाओं के विवरण उपलब्ध हैं जिनकी चर्चा यथास्थान की जायेगी। आपने मूल गद्य रचनाओं पर पद्यात्मक रचनायें भी की हैं जैसे 'दशवैकालिक सूत्र १० अध्ययन गीत' (१५ ढाल १७३७ आसो शुक्ल १५) और ज्ञातासूत्र स्वाध्याय (१७३६ फाल्गुन कृष्ण ७, पाटण) इत्यादि।

समकित सितरी स्तवन (७ ढाल सं० १७३६ भाद्र शुक्ल १०, पाटण)

यह पंच प्रतिक्रमणसूत्र पृ० ५५० और जिनहर्ष ग्रंथावली में प्रकाशित है) जिनहर्ष श्रेष्ठ और सरस कवि थे। अनेक परवर्ती कवियों ने आपके काव्य गुणों की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। महिमाहंस, कवियण आदि के गीत प्रकाशित हैं। महिमाहंस का गीत ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में 'जिनहर्ष सूरि गीतम्' शीर्षक से पृ० ३०० पर प्रकाशित है।[१] कवियण की दो पंक्तियाँ देखिए—

धन जिनहरष नाम सुहामणु धनधन अे मुनिराय।
नाम सुहावइ निस्पृह साधु नुं कवियण इम गुणगाय।[२]

जसराज का व्यक्तित्व आकर्षक एवं तपोमय था। आपने गच्छ के ममत्व का भी त्याग कर दिया था। इसके कारण तपागच्छीय वृद्धिविजय जी काफी प्रभावित हुए थे और इनकी बीमारी के समय बड़ी सेवा-सुश्रूषा की थी, इनका हस्तलेख भी सुंदर होता था। इनकी हस्तलिपि का एक चित्र ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह पृ० २६० पर

१-२. ऐतिहासिक जैन काव्यसंग्रह ३००-३०१ और २६१-६३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशित है। 'जसराज बावनी' इनकी श्रेष्ठ रचना है। इसे ऊंकार बावनी, मातृका बावनी और कवित्त बावनी भी कहा जाता है यह रचना सं १७३८ फाल्गुन कृष्ण ७ गुरुवार को पूर्ण हुई थी। इसके आदि में ऊंकार का वंदन है इसीलिए इमें ऊंकार बावनी कहते हैं। वे कहते हैं कि ऊंकार कामधेनु के समान है। इसे छोडकर मतिमंद छेड़ दूहने जाते हैं—

कामदुधा करतें जू विडार के, छेरि गहें मतिमंद जि कोई।
धर्म्म कूं छोर अधर्म्म करें जसराज उणें निज बुद्धिविगोई।

रचनाकाल—
संवत सत्तर अठतीसे मास फागुण में बहुल सातम दिनकर गुरु पाअे है।
वाचक शांतहरष ताहु के प्रथम शिष्य भलेके अक्षर पर कवित्त बनाये है।

इसमें उन्होंने मोक्ष के लिए ज्ञान को आवश्यक बताया है न कि बाह्याडंबर को—

क्षौर सुसीस मुड़ावत हैं केइ लंब जटा सिर केइ रहावें।
लुंचन हाथ सूं केई करैं रहैं मून दिगम्बर केइ कहावै।
राख सूं केइ लपेटि रहें केइ अंग पंचागिन माहें तपावें।
कष्ट करें जसराज बहुत पै ग्यान बिना शिवपंथ न पावें।[1]

यह रचना जिनहर्ष ग्रंथावली और जैन सत्यप्रकाश तथा अन्यत्र भी प्रकाशित है। आपने सभी तीर्थङ्करों की स्तुति में चौबीसी लिखी है जो २५ पद्यों की सरस रचना है किन्तु आपका कविमन विशेष रूप से नेमि राजीमती प्रसंग में रमा है और इन्होंने इस विषय पर दो सुंदर रचनायें—नेम राजीमती बारहमास सवैया तथा 'नेमि बारहमास' लिखा है। नेमि बारहमास का एक पद्य नमूने के तौर पर प्रस्तुत है—

घन की घनघोर घटा उनई विजुरी चमकंति झलाहलिसी।
विचि गाज अगाज अवाज करंत सु, लागत मो विषवेलि जिसी।
पपीया पीउ पीउ रटत रयण जु दादुर मोर वदै ऊली सी।
ऐसे श्रावण में, यदु नेमि मिलैं, सुखहोत कहै जसराज रिसी।

प्रथम रचना 'नेमि राजीमती सवैया' में कवि ने बताया है कि

---

१. अगरचन्द नाहटा—जिनहर्ष ग्रंथावली, प्रका० शार्दूल राजस्थात रिसर्च इन्स्टीच्यूट बीकानेर सं० २०१८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वियोगिनी बाला राजीमती के[1] विरह का अन्त संसार त्याग और दीक्षा में पर्यवसित हो जाता है। वह संयमनाथ से पाणिग्रहण करके शिवपुर में अपने पति से मिलती है इसमें फाल्गुन मास का वियोग वर्णन देखिए—

फागुन में सखिफाग रमें सब कामिनि कंत बसंत सुहायो।
लाल गुलाल अबीर उड़ावत तेल फुलेल चमेल लगायो।
चंग मृदंग उचंग बजावत, गीत धमाल रसाल सुणायो।
हूं तो जसा नहि खेलूँगी फाग वैरागी अज्यूं मेरो नाह न आयो।[2]

श्रीपाल रास अथवा चौपाई (४९ ढाल सं० १७४० चैत्र शुक्ल ७ सोमवार, पाटण) यह केशर मुनि द्वारा संपादित और प्रकाशित है। इसमें नवकार मंत्र का माहात्म्य श्रीपाल के जीवन-दृष्टांत द्वारा समझाया गया है। दूसरा श्रीपाल रास (२७१ कड़ी सं० १७४२ चैत्र कृष्ण १३ पाटण) प्रथम रास का आदि निम्नवत् है—

श्री अरिहंत अनंत गुण धरिये हीयडे ध्यान,
केवल ज्ञान प्रकाशकर दूरिहरण अग्यांन।

दूसरे का आदि चउवीसे प्रणमुं जिनराय, जास पसायइ नवनिधि पाय।
सुयदेवा धरि रिदय मझारि, कहिस्युं नवपद नउ अधिकार।
यत्र जंत्र छइ अवर अनेक, पिणि नवकार समउ नहि एक।
सिद्ध चक्र नवपद सुपसायइं, सुख पाम्या श्रीपाल नररायइ।

रचनाकाल—सतरै बयालीसै समै, वदि चैत्र तेरसि जाण,
ए रास पाटण मां रच्यौ, सुणता सदा कल्याण।

इसकी कुल पद्य संख्या २८७ है। इसका अन्त इस प्रकार है—

श्रीपाल चरित्र निहालनइ सिद्धचक्र नवपद धारि।
ध्याइयइ तउ सुख पाइयइ जगमां जस विस्तार।
श्री खरतरपति प्रगट श्री जिनचन्द्रसुरीस,
गणि शांति हरष वाचक तणो कहइ जिनहरष सुसीस।[3]

---

१. डा० प्रेमसागर जैन—जैन हि० जैन भक्तिकाव्य और कवि पृ० २३३-२३९
२. डा० लालचंद जैन—जैन कवियों के ब्रजभाषा प्रबन्धकाव्यों का अध्ययन पृ० ७४।
३. सम्पादक कस्तूरचन्द मासलीवाल—राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डार की ग्रन्थसूची भाग ४ पृ० ३६५-६६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रथम चन्दनमलयागिरि रास की चर्चा पहले की जा चुकी है। द्वितीय चन्दनमलयागिरि रास (२३ ढाल ४०७ कड़ी सं० १७४४ श्रावण शुक्ल ६ गुरुवार, पाटण) का आदि—

सकल सुरासुर पयकमल सेवइ धरि आणंद।
त्रिभुवनपति सम्पति करण प्रणमुं पास जिणंद।

रचनाकाल—युग ब्रह्मा मुख जलनिधि जी चंद्र संवच्छर जाणि।

रत्नसिंह राजर्षिरास (३७ ढाल ७०९ कड़ी सं० १७४१ पोष वदी ११, पाटण)

हरिश्चन्द्र रास (३५ ढाल ७०० कड़ी १७४४ आसो शुक्ल ५, पाटण)

अमरसेन वयरसेन रास (सं० १७४४ फाल्गुन शुक्ल २ बुधवार पाटण)

इन सभी रचनाओं में कवि ने अपने को शांतिहर्ष का शिष्य बताया है।

अवंति सुकुमाल स्वाध्याय अथवा चौपई (१३ ढाल १०२ कड़ी सं० १७४१ वैशाख शुक्ल ८ शनिवार, राजनगर) के दो पाठांतर रचनाकाल सम्बन्धी मिले हैं जिनके अनुसार संवत् १७४१ निश्चित है परन्तु माह तिथि भिन्न हैं, दूसरे पाठानुसार सं० १७४१ आषाढ़ शुक्ल अष्टमी को रचना पूर्ण हुई बताया गया है।

उपमिभव प्रपंचारास (१२७ ढाल २९७४ कड़ी सं० १७४५ ज्येष्ठ शुक्ल १५ पाटण) बड़ी रचना है और यह सिद्धर्षि कृत इसी नाम की प्रसिद्ध प्राकृत रचना पर आधारित है। इसका रचनाकाल 'बाणयुग रिषिचन्द वच्छरे ज्येष्ठ पूनिम दीस' कहकर बताया गया है।

कुमारपाल रास इनकी रचनाओं में ऐतिहासिक महत्व की रचना है। यह १३० ढाल २८७६ कड़ी की बृहद् रचना है और सं० १७४२ आसो शुक्ल १० रविवार को पाटण में पूर्ण हुई थी। इसके आरंभ की पंक्ति प्रस्तुत है—

श्री सरसति भगवति नमुं बुद्धि तणी दातार,
मूरख ने पण्डित करे करतां न लावे बार।

इसमें कवि ने क्षेम शाखा का भी उल्लेख किया है, यथा—

खरतरगछ मांहि…खेम शाखा मांहे राजा हो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह रचना कई स्थानों से प्रकाशित है। डाह्याभाई लल्लूभाई और मोहनलाल दलसुखराम ने इसे प्रकाशित किया है। इसमें प्रसिद्ध चालुक्य नरेश कुमारपाल का जीवन वृत्त वर्णित है। रचना काव्य सौष्ठव की दृष्टि से भी पठनीय है।

उत्तमचरित्रकुमार रास (२९ ढाल, ५८७ कड़ी सं० १७४५ आसो सुद ५, पाटण)

आदि - चरण जिणेसर चित्त धरुं, करुं सदा गुण ग्राम,
भावउ भाजे भव तणी, लीजें ते तस नाम।

रचनाकाल—भुत वेद सायर शशी, आशो सुदी पंचमी दिवसे रे,
उत्तम चरित्र कुमार नों में रास रच्यो सुजगीस रे।

हरिबल लछी रास (३२ ढाल ६५९ कड़ी सं० १७४६ आसो सुद १ बुध, पाटण) यह आनन्द काव्यमहोदधि मौक्तिक ३ में प्रकाशित है।

वीशस्थानक रास अथवा पुण्यविलास रास (१३२ ढाल, ३२८७ कड़ी सं० १७४८ वैशाख शुक्ल ३) का आदि—

सकल सिद्धि सम्पति करण हरण तिमिर अज्ञान,
त्रणे कालनां जिन नमुं आणी भाव प्रधान।
चार भेद जिन धर्मना दान शील तप भाव,
सुखाराम अमृत जलद, भवदुख-सायर-नाव।

इसकी कथा विचारामृत ग्रन्थ से संग्रहीत है, यथा—

ग्रंथ विचारामृत संग्रही अेह रुओ मन भावो,
अधिको ओछो जे कोइ भाख्यो पण्डित तेह शोधावो रे।

यह भीमसी माणक द्वारा प्रकाशित रचना है।

मृगांकलेखा रास (४१ ढाल सं० १७४८ आषाढ़ कृष्ण ९, पाटण)

रचनाकाल—सतर अड़तालीस में आसाढ़ वदि नुमि दीस,
अे रास पाटण में रच्यो ढाले इकतालीस।

अमरदत्त मित्रानन्द रास (३९ डाल ८५० कड़ी सं० १७४९ फाल्गुन वदी २, सोम, पाटण)

रचनाकाल —निधि वेद रिसि शशिवच्छरइ, वदि बीज फागुण मास,
शशिवार पाटण नयरमइं अ मइं कीधउ रास।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऋषिदत्ता रास (२४ ढाल ४५७ कड़ी सं० १७४९ फाल्गुन कृष्ण १२ बुध, पाटण)

सुदर्शन शेठ रास (सं० १७४९ भाद्र शुक्ल १२ शुक्रवार पाटण)

इसकी कथा योगशास्त्र की टीका से ली गई है। कवि ने लिखा है—

योगशास्त्र नी टीका मांहि छइ रे, अेह अवल अधिकार,
ते जोई मइ रास कीयउ भलइ रे, सांभलिजो नरनार।[1]

अजितसेन कनकावती रास अथवा चौपइ (४३ ढाल ७५८ कड़ी सं० १७५१ महा वदि ४)

रचनाकाल—निशिपति बांण वारिधि शशि वरसै,
चौथ अंधारी माह नी हरसै हो।

महाबल मलयसुन्दरी रास (१४२ ढाल ३००६ कड़ी सं० १७५१ आसो शुदी १, शनि, पाटण)

यह रचना आगमिया गच्छ के जयतिलक सूरि कृत मलयसुन्दरी रास पर आधारित है।

गुणकरंड गुणावली रास (२६ ढाल सं० १७५१ आसो वदी २ पाटण)

२० विहरमान जिन स्तव (२० गरबा १३७ कड़ी सं० १७५५ बीजा वैशाख शुक्ल ३) यह जिनहर्ष ग्रन्थावली में संकलित है।

सत्यविजय निर्वाण रास (सं० १७५६ महा सुदी १० पाटण) यह जैन ऐतिहासिक रास माला भाग १ में प्रकाशित है।

शत्रुंजय माहात्म्य रास (९ खण्ड, ७० ढाल ६४५० कड़ी सं० १७५५ आषाढ़ कृष्ण ५, बुधवार, पाटण)

रत्नचूड रास (३१ ढाल ६२७ कड़ी सं० १७५७ आसो शुक्ल १३ शुक्रवार, पाटण)

अभयकुमार (श्रेणिक) रास अथवा चौपाई (११ ढाल सं० १७५८ श्रावण शुक्ल ५, सोम, पाटण)

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कविओ भाग ४ पृ० ११६ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शीलवती रास (४८० कड़ी सं० १७५८ भाद्र शुक्ल ८ पाटण)

रत्नशेखर रत्नवती रास (३६ ढाल ७७० कड़ी सं० १७५९ माह शुदी २)

रात्रिभोजन परिहारक रास (अमरसेन जयसेन) – यह भीमसिंह माणेक और सवाई भाई रायचंद द्वारा प्रकाशित कृति है।

रत्नसार रास (३३ ढाल ६०४ कड़ी सं० १७५९ प्रथम श्रावण कृष्ण ११ सोमवार, पाटण)

जंबूस्वामी रास (४ अधिकार ८० ढाल १६५७ कड़ी सं० १७६० जेठ वदी १०, बुध, पाटण)

श्रीमती रास (नवकार के महत्व पर १३ ढाल सं० १७६१ माघ शुक्ल १०, पाटण)

आराम शोभा रास (२१ ढाल ४२९ कड़ी सं० १७६१ जेठ शुक्ल ३, पाटण)

यह रास आरामशोभा के शील का महत्व बताती है। जयंत कोठारी ने संपादित करके कथामंजूषा श्रेणी पु० २ में प्रकाशित किया है।

वसुदेव रास (५० ढाल ११६ कड़ी सं० १७६२ आसो सुद २ रविवार पाटण),

इन बृहदाकार रासो में कवि ने सर्वत्र स्वयं को शांतिहर्ष का शिष्य बताया है। इनमें यत्रतत्र सुंदर काव्यात्मक स्थल हैं और जैनधर्म संबंधी सदुपदेश हैं। इनके अलावा इन्होंने संज्झाय स्वाध्याय, स्तवन आदि नाना छोटी-छोटी रचनाएँ भी की हैं इनमें वयर स्वामी ढालबंध संज्झाय अथवा भास (१५ ढाल सं० १७५९ आसो शुक्ल १), स्थूलभद्र स्वाध्याय (१७ ढाल १५१ कड़ी सं० १७५९ आसो सुद ५ मंगल, पाटण), नर्मदासुंदरी स्वाध्याय (२९ ढाल २१४ कड़ी सं० १७६१ ज्येष्ठ शुक्ल ३, पाटण) इत्यादि विशेष उल्लेखनीय है।

सीता मुद्रडी, महावीर छंद, पार्श्वनाथ छन्द आदि छोटी रचनाएँ जिनहर्ष ग्रंथावली में संग्रहीत हैं। आपने नाना काव्य रूपों में सैकड़ों छोटी बड़ी रचनायें की हैं। ये रचनायें बावनी, छत्तीसी, पचीसी, बीसी, प्रहेलिका, समस्या पूर्ति आदि नाना रूपों में उपलब्ध हैं। उदाहरणार्थ सुगुरु पचीसी, ऋषि बत्तीसी, चौबोली कथा दूहा चार मंगल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गीत आदि ये सभी कृतियां प्रकाशित हैं। आपने अपनी रचनाओं में लोकगीतों और प्रचलित देसियों का सुंदर उपयोग किया है। ये जनता के कवि थे और इनकी वाणी में लोकहित के भाव लोकवाणी रूप में व्यक्त हुए हैं। आपकी सभी रचनाओं का विवरण उद्धरण देने के लिए वृहदाकार ग्रंथ की अपेक्षा है।

जैसा कह चुके हैं आपने केवल पद्यबद्ध रचनायें ही नहीं की हैं बल्कि आप कुशल गद्य लेखक भी हैं। आपकी कुछ गद्य कृतियों का भी संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है—

दीपालिका कल्प बालावबोध सं० १७६३ सोम सुंदर सूरि के शिष्य जिनसुन्दर सूरि की रचना दीपालिका कल्प पर वार्तिक (गद्य) है। इसकी गद्यभाषा का नमूना नहीं मिला। दूसरी गद्य रचना है (स्नात्र) पूजा पंचासिका बालावबोध—यह मूलतः शुभशील गणि कृत पूजा विधि पर आधारित कृति पर बालावबोध है।[1] इस विवरण से स्पष्ट है कि जिनहर्ष अपने समय के प्रमुख साहित्यकार थे। इनके रचनाओं की संख्या गुणवत्ता और विस्तार को देखते हुए इन्हें 'कविवर' कहना समीचीन है।[2]

जिनेन्द्रसागर—आप तपागच्छ के आचार्य जसवन्तसागर के शिष्य थे। आपने गच्छ के आचार्य विजयक्षमा सूरि के सम्बन्ध में एक 'शलोको' लिखा है जिससे ज्ञात होता है कि उनका जन्म मारवाड़ के पाली निवासी चतुरो जी की पत्नी चतुरंग दे की कुक्षि से हुआ था। उनका जन्म नाम खिमसी था। विजयरत्न सूरि ने उन्हें दीक्षित किया और नाम विजयक्षमा रखा। सं० १७७३ भाद्र शुक्ल अष्टमी को उन्हें आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया गया। उस समय मारवाड़ के शासक अजित सिंह थे। इसका आरंभ निम्न पंक्तियों से हुआ है—

सरसति सांमिणी पाअे जी लागुं, अमिय संमाणि वाणी जी मागुं
विजयक्षमा सूरि नो कहुं सलोको, अेक मन थइ सांभलो लोको।

इन्होंने कई स्तवन, चौबीसी और ढूंढक पच्चीसी आदि रचनायें की हैं जिनका संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है।

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई – जैन गुर्जर कवियो भाग ४ पृ० ८२-१४२ (न० सं०)।

२. सम्पादक अगरचन्द नाहटा—जिनहर्ष ग्रंथावली।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चिंतामणि पार्श्वनाथ स्तवन (५ कड़ी सं० १७८१ चैत्र शुक्ल १५ डुंगरपुर)[1]

ऋषभ स्तव (५ कड़ी सं० १७८० फाल्गुन शुक्ल ९) का आदि—
पूजो ऋषभ जिणेसर भाव धरि सुविशाल, पूजो।

अन्त—संवत् १७ असीया वरसे सुदि फागण नेमि रसाल, पूजो।

स्तवनों में सीमंधर स्तव, अनंत जिन स्तव, शांतिनाथ चक्रवर्त्ती रिद्धि वर्णन स्तवन और पर्युषण स्तुति विशेष उल्लेखनीय हैं।

चिंतामणि पार्श्वनाथ स्तव की प्रथम पंक्ति है—

गिरिपुर नगरे सोहे हो,
मनमोहन भवियण ना सदा श्री चिंतामणि पास।

अंत–संघ सवाई गिरिपुर नो हो प्रभु पास पसाई,
दीपतो नित प्रणमे प्रभु पास।
सतर सै अेकयासीये हो
सुद चैत्री पुनम ने दिन जिणेन्द्र सागर गुण गाय।

अनंतजिन स्तव की अंतिम कड़ी इस प्रकार है—
अेह नाटिक जिणें दीठु रे होस्यें धन धन धन्य ते गृहपति;
जसवंत सीस जैनेन्द्र ते नाटिक, जेवण उच्छक छे अति ९ प्रभु।

पर्युषण स्तुति का आदि—

वरस दिवस मांहे सारज मास, तिण मांहे बली भाद्रव मास।
आठ दिवस अती खास, परब पजुसण करिये उल्लास।[2]

लेखक ने गुरुपरंपरा का उल्लेख इस पंक्ति में किया है—

श्री विजयरत्न सूरी गणधार, जसवंतसागर सुगुरु उदार,
जिनेन्द्रसागर जयकार।

इन स्तवनों में शांतिनाथ स्तवन महत्वपूर्ण हैं। इसे शामजी मास्तर ने 'सज्जन सन्मित्र' में पृ० ५८१-५८४ पर प्रकाशित किया है। इसकी अंतिम पंक्तियाँ उद्धृत की जा रही हैं—

१. अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० ११२।
२. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो भाग ५ पृ० ३११-३१३ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तपगच्छनायक वंदी अेरे, विजयक्षमा सूरिराय।
कांतिसागर पंडितवरु रे, तास तणे सुपसाय।
तास तणे सुपसाय कहाया, समर्थ शांति जिनेश्वरध्याया।
जसवंतसागर पंडितराया, शिष्य जिनेश्वरसागर गुणगाया।[1]

ढूंढक पचीसी (२५ कड़ी, नाडुल) का आदि—

श्री श्रुतदेवी प्रणमी कहस्युं जिनप्रतिमा अधिकार रे;
नवि माने तस वदन चपेटा, माने तस सिणगार रे।
श्री जिन प्रतिमा स्यूँ नही रंग तेहनो क दिन कीजे संग।

अंत—ढुंढण पचवीसी में गाई, नगर नाडुल मझारि रे,
जसवंत सीस जिनेन्द्र पयंपे, हितकारण अधिकार रे।

मौन अेकादशी स्तव (३१ कड़ी) 'जिनेन्द्र भक्ति प्रकाश' में प्रकाशित है।

सिद्धचक्र स्तवन और अष्टापद स्तवन जैनप्रकाश में प्रकाशित है। इन्होंने अधिकतर स्तवन ही लिखे हैं और रचनायें भक्तिप्रधान किन्तु[2] सामान्य कोटि की हैं।

जिनेश्वरदास—इन्होंने सं० १७६१ में 'नेमिचंद्रिका' की रचना की, जिसके नाम से ही प्रकट है कि यह नेमिराजुल पर आधारित है।[3]

जीतविजय—तपागच्छीय हीरविजयसूरि>वरसिंध ऋषि>जीवविजय आपके गुरु थे। आपने हरिबलरास की रचना सं० १७२६ पौष शुक्ल २, शनिवार को पूर्ण की जिसमें हरिबल ऋषि की जीवदया का वर्णन किया गया है। ये धीवर जाति के थे किन्तु अपनी जीवदया के व्रतपालन से ऋषि कहे गये—

हरिबल धीवर जाति तो, गुरुमुषि जिणव्रत लीध,
दया प्रभावइ देवता, सानिध सधले कीध।

रचनाकाल-भाषा भुज संयम वर्षे, संवत संख्यादी धीरे;
पोष शशि बीजा शनिवारे, हरिबल चोपई कीधी रे।

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कविओ भाग ५ पृ० ३१३ (न०सं०)
२. वही भाग २ पृ० ५५५-५५७, भाग ३ पृ० १४४५-४६ (प्र०सं०)।
३. सूची—उत्तमचंद कोठारी (पार्श्वनाथ शोधपीठ)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुरुपरंपरा–हीरविजयसूरि गच्छपति, सीस संयमगुण भरीयो रे,
वरसिंघ ऋषि पंडित भला, उपशम रसनो दरियो रे।
शिष्य शिरोमणि तेहना जीवविजय गुरुराया रे।
हरिबल ऋषिना भाव सुं जीतविजय गुणगाया रे।[1]

यह रचना पडिक्रमण सूत्र वृत्ति से ली गई हैं। यह जैन संघ में लोकप्रिय कथा है और 'हरिबल माछी रास' नाम से कई रचनायें मिलती हैं जिनमें हरिबल धीवर की मछलियों के प्रति अपार करुणा की मार्मिक व्यंजना की गई है। जीतविजय ने लिखा है—

पडिक्रमण सूत्र वृत्ति मांहे भाष्यो अधिकारो रे;
जीतविजय विबुधे कही चोपइ संबंध विस्तारो रे।

इसका प्रारंभ इन पंक्तियों से हुआ है—

सुखदाई समरुं सदा पुरिसादाणी पास,
जगवल्लभ जिनवर नमुं, अहनिसि पूरइ आस।[2]

जीवण—आपने मंगलकलश चौपाई अथवा चरित्र की रचना सं० १७०८ आसो शुक्ल पक्ष में अंबका नामक स्थान में पूर्ण की। अन्यत्र इसका रचनाकाल सं० १७७८ भी बताया गया है किन्तु मोहनलाल दलीचंद देसाई सं० १७०८ ही ठीक मानते हैं। इसके प्रारंभ की कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

पणमवि सीमंधर प्रमुख विहरमान जिनराइ।
तिमिर बिदारण अघहरण, सेव्यां आनंद थाइ॥
श्री सरस्वती बलबली नमों, देहि वुधि मोहि मांय।
पंच प्रमिष्ट सिमरों सदा, सुभमति के वरदाय।[3]

एक जीवो जीवणदास धोलका के जैनेतर साधु जिन्होंने सं १७९८ के आसपास राधाकृष्ण बारमास लिखा, इसकी भाषा मरुगुर्जर है इसकी प्रारंभिक पंक्तियाँ देखिए—

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई–जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० २४६-४७ (प्र० सं०)।

२. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कविओ भाग ४ पृ० ३६६-३६८ (न० सं०)।

३. वही भाग ५ पृ० ४०१-४०२ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सखि आविलो कारतक मास प्रभू घर आविया,
में तो कीधलो सोल सणगार वालो मन भाविया।
जीरे मन राखे बीसवास वालो तेहने मले;
प्रभु राखो चरण निवास, जीवो विनती करे।[1]

इसमें विप्रलंभ शृंगार के बजाय संयोग का वर्णन है। यह विशेषता इसलिए है कि कवि को मिलने का पूर्ण विश्वास था। विश्वास अवश्य फलदायी होता है। इससे पूर्व चतुरंग चारण ने कृष्ण बारमासा[2] लिखा। इस काल में गुर्जर भाषा में सरसकाव्य प्रचुर भाषा में लिखा गया। यह उसका उत्कर्ष काल था जैन कवियों के अलावा अनेक जैनेतर कवि इसी समय गुजरात में हुए जिनमें प्रेमानंद, शामलभट्ट आदि को राष्ट्रीय कवियों की कोटि में गिना जाता है।

जीवराज—ये पूज्य गोविंद के अनुयायी थे। इन्होंने सं० १७४२ में चित्र संभूति संज्झाय की रचना बीकानेर में की। यह रचना ५० कड़ी की है। यह सं० १७४२ या ४६ से लिखी गई। रचनाकाल बताते हुए जीवराज ने लिखा है—

संवत सतर वियाल वरषे कुमार मास उल्हास अे
अेकम सोमै अेह तवीया, राग ढाल विलास अे।
पूज श्री गोविंद प्रसादै विक्रमनयर मझार अे,
जीवराज अप्पइ संघ केरी वीनती अवधार अे।

इसमें रचनाकाल सं० १७४२ बताया गया है पर अन्य प्रतियों में बियाल की जगह 'छियाल' भी मिलता है इसलिए यह निश्चित नहीं है कि रचना १७४२ या १७४६ की है। इसका प्रारम्भ इन पंक्तियों से हुआ है—

प्रणमुं सरसति सामणी मांगु वचन विलास,
साधु तणा गुण वर्णवुं करज्यो बुद्धि विकास।
सद्गुरु सेवो प्राणी तम्हें चित्तसंभूति परि जोय;
गाव चरावइ गुवालिया, ब्रह्म भिखु सुत दोय।[3]

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० २१८४ प्र.सं.
२. वही भाग ३ पृ० २१८३ (प्र० सं०)।
३. वही, भाग २ पृ० ३६२, भाग ३ पृ० १३३२ (न० सं०) और भाग ५ पृ० ४० (न०सं०)।

१२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवविजय—तपागच्छ के विजयसिंहसूरि>गजविजय>गुणविजय> ज्ञानविजय के आप शिष्य थे। आप अच्छे गद्य लेखक थे। आपने जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति बालवबोध सं० १७७०, प्रज्ञापना सूत्र बालावबोध १७८४, अध्यात्मकल्पतरु बालावबोध १७९०, ६ कर्मग्रंथ बालावबोध १८०३ और जीव विचार बालावबोध की रचना की है। इन बालावबोधों के गद्य का नमूना नहीं प्राप्त हुआ। कुछ विवरण प्राप्त है। अध्यात्मकल्पद्रुम मूलतः मुनि सुंदर सूरि का ग्रंथ है। गुरुपरंपरा प्रशस्ति के संस्कृत छन्दों में है—

यथा—श्रीमत्तपगणपतयः पूज्य श्री विजयदेव सुरीन्द्राः
असंस्तेषां पट्टे सूरि विजयसिंहाख्या।...इत्यादि

आगे ऊपर दी गई गुरुपरंपरा बताई गई है। इसी प्रकार ६ कर्म ग्रंथ बालावबोध के आदि की पंक्ति भी संस्कृत में है, यथा—

प्रणिपत्य जिनवीरं वृत्यनुसारेण जीवविजयाह्व,
वितनोति स्तूबाकार्थं, कर्म्मग्रंथे सुगमरीत्या।

जीवविचार बालावबोध की भी दो पंक्तियाँ देखिए—

श्री मज्जीव विचाराभिध प्रकरणे विनिर्मित स्तबुकः
श्री जीवविजय विदुषा स्वल्पमतीनां विबोधकृते।"[1]

जीवसागर—तपागच्छ के कुशलसागर>हीरसागर>गंगसागर आपके गुरु थे। आपने अपनी रचना 'अमरसेन वयरसेन चरित्र' (सं० १७६८ श्रावण कृष्ण ४ मंगल) की अंतिम पंक्तियों में उपरोक्त गुरु-परंपरा का उल्लेख किया है। कवि ने कुशलसागर से पूर्व विजयरत्न, विजयप्रभ, विजयदेव, विजयसेन और हीरविजय का भी सादर स्मरण किया है और हीरविजय को अकबर प्रतिबोधक के रूप में प्रणाम किया है, यथा—

पातिसाह प्रतिबोधक सुंदर सोहनगुरु अवतार रे
हीरविजय सूरि हीरो साचो जैन तणो सिणगार रे।

इसका रचनाकाल इन पंक्तियों में बताया गया है—

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो भाग ३ पृ० १६४३-४४ (प्र० सं०) और भाग ५ २७८-२८ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भवत्यष्टि तीरथ बरस जाणो मास श्रावण चंग रे
वदि चोथि भृगुवार जाणो कह्यो प्रबंध अभंग रे।[1]

इसमें त्यष्टि का अर्थ यदि विश्वकर्मा १ लिया जाय तो सं० १७६८ बनता है।

जैकृष्ण—आप संभवतः जैनेतर कवि हैं और रीतिकालीन हिन्दी के प्रसिद्ध आचार्य कवि कृपाराम के शिष्य हैं। आपने 'रूपदीपपिंगल' नामक छंदशास्त्र संबंधी एक रचना की है जो सं० १७७६ भाद्र शुक्ल द्वितीया को पूर्ण हुई। इसकी प्रारंभिक पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

सारद माता तुम बड़ी बुधि देहि दर साल,
पिंगल की छाया लियै बखूँ वावन चाल।
गुरु गणेश के चरण गहि हियै धारि कै विष्णु,
कुंवर भवानीदास का जुगत करै जैकृष्ण।

इससे मालूम होता है कि कवि कुँवर भवानीदास का आश्रितथा और उनके लिए ही इस ग्रन्थ की रचना उसने की थी। आगे कृपाराम के प्रति आदर व्यक्त करते हुए लिखा है–

प्राकृत की बानी कठिन भाषा सुगम प्रतिक्ष,
कृपाराम की कृपा सूंकंठ करैं सब शिष्य।

रचनाकाल—संवत सत्रह सै बरसै और छहत्तर पाय
भादो सुदी दुतिया गुरु भयो ग्रन्थ सुखदाय।

इसका अंतिम दोहा निम्नांकित है—

गुण चतुराई बुधि लहै भला कहै सब कोइ
रूपदीप हिरदै धरै सो अक्षर कवि होइ।[2]

जोगीदास मथेण—ये जोशीराय मथेण के पुत्र थे। इन्होंने 'वैद्यकसार' नामक हिन्दी पद्य ग्रंथ सं० १७९२ में बीकानेर के महाराजकुमार जोरावर सिंह के लिए बनाया। इसमें कवि ने अपने पिता का

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो भाग २ पृ० ४७१-७२ प्र०सं० और भाग ५ पृ० २६७-३६९ न०सं०।

२. डा० कस्तूरचंद कासलीवाल—राजस्थान के जैन शास्त्र भंडारों की ग्रंथ सूची भाग ३ पृ० ८८-८९।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उल्लेख किया है जो एक अच्छे कवि थे और बीकानेर के महाराज अनूपसिंह द्वारा सम्मानित थे।

बीकानेर वासी विशद धर्मकथा जिह धाम
स्वेतांबर लेखक सरस जोशी जिनको नाम।

अधिपति भूप अनूप जिहि, तिनसों करि सुभभाय
दीय दुसालो करि करै-कह्योजु जोशीराय।

जिनिवह जोशीराय सुत, जानहु जोगीदास;
संस्कृत भाषा भनि सुनत भो भारती प्रकाश।

जहाँ महाराज सुजान जय, बरसलपुर लिय-आन,
छन्द प्रबंध कवित्त करि, रासो कह्यौ बखान।

इससे स्पष्ट होता है कि जैन कवियों ने केवल धर्म दर्शन या अध्यात्म और सांप्रदायिक रचनायें ही नहीं कीं अपितु जनोपयोगी विषयो जैसे वैद्यक, ज्योतिष, भाषा, छंद, अलंकार आदि नाना विषयों पर भी पद्यबद्ध उत्तम रचनायें की हैं।[1] जोशीराय मथेण की चर्चा आगे यथास्थान की जा रही है।

जोधराज गोधीका—आपके पिता अमरराज या अमरसिंह सांगानेर (राजस्थान) के रहने वाले थे। इनके विद्यागुरु हरिनाम मिश्र छंद, व्याकरण और ज्योतिष आदि कई विषयों के पारंगत विद्वान् थे। उस समय सांगानेर के शासक का नाम भी अमरसिंह था। कवि ने अपने पिता, राजा और गुरु की प्रशस्ति की है। इन्होंने कई सुंदर रचनायें की हैं जिनका परिचय आगे दिया जा रहा है।

प्रीतंकर चरित्र (सं० १७२१) यह रचना ब्रह्म नेमिदत्त कृत प्रीतंकर चरित पर आधारित हैं। इसमें भगवान जिनेन्द्र के परमभक्त महाराज प्रीतंकर का चरित्र चित्रित है।[2] कवि ने लिखा है—

मूलग्रंथ करता भए नेमिदत्त ब्रह्मचार;
तसु अनुसार सुजोध कवि करी चौपईसार।

---

१. सम्पादक अगरचन्द नाहटा—राजस्थान का जैन साहित्य पृ० २७८।

२. सम्पादक डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल और अनूपचन्न—राजस्थान के जैन शास्त्रभंडारों की ग्रंथसूची भाग ४ पृ० १८३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसमें चौपाई छंद की प्रधानता है। काव्यत्व सामान्य कोटि का है।[1]

सम्यक्त्व कौमुदी (सं० १७२४ फाल्गुन कृष्ण १३, शुक्रवार)[2] यह इसी नाम की मूल संस्कृत रचना का भाषानुवाद है। यह अनुवाद कवि ने अपने मामा कल्याण के लिए की थी। इसका प्रारंभ देखिए—

परम पुरुष आनंदमय चेतनरूप सुजान;
नमूं शुद्ध परमात्मा जग परकासक भान।
परम ज्योति आनंदमय सुमति होई आनंद,
नाभिराज सुत आदि जिन बंदौ पूरणचंद्र।

अंत--वंदौ सिव अवगाहना अर वंदौ सिव पंथ;
असहृदेव बंदौ विमल, वंदौ गुरु निरग्रन्थ।

धर्म सरोवर (सं० १७२४ आषाढ़ सुदी पूर्णिमा) आपकी मौलिक कृति है। इसमें विविध सुभाषितों द्वारा जैनधर्म का निरूपण हुआ है। इसमें तीर्थंकरों की स्तुतियां हैं, यथा--

शीतलनाथ भजो परमेश्वर अमृत मूरति जोति वरी।
भोग संजोग सुत्याग सबै, सुखदायक संजम लाभकरी।[3]

आपके 'कथाकोश' का उल्लेख नाथूराम प्रेमी और कामताप्रसाद जैन ने किया है।

ज्ञान समुद्र (सं० १७२२ चैत्र शुक्ल १०) की लेखक द्वारा लिखित प्रति प्राप्त है।

प्रवचन सार (सं० १७२६) आचार्य कुन्दकुंद के प्रवचनसार का भाषानुवाद है।

चित्रबन्ध दोहा की सं० १७२६ की प्रति प्राप्त है अतः रचना कुछ पहले की होगी। जैन लेखकों में चित्रबन्ध काव्य की परंपरा पुरानी है किन्तु ऐसी रचनायें कम उपलब्ध हैं, अतः इसका महत्व है। आपकी

---

१. डा० लालचन्द जैन—जैन कवियों के ब्रजभाषा प्रबन्धकाव्यकाव्यों का अध्ययन पृ० ९०-९१।

२. डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल—राजस्थान के जैन शास्त्रभंडारों की ग्रंथ-सूची भाग ४ पृ० २५२।

३. प्रेमसागर जैन—हिन्दी जैन भक्तिकाव्य और कवि पृ० २४७-२५१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक अन्य रचना पद्मनंदि पंचविंशतिका भाषा (सं० १७२४) इसी नाम के ग्रंथ का भाषानुवाद है।[1] इन अनुवादों और मौलिक ग्रंथों के अलावा जोधराज जी ने बड़ी संख्या में विनय, भक्ति से युक्त सरस पद लिखे हैं। आपका एक पद नमूने के रूप में आगे लिखा जा रहा है—

जै जै एक अनेक सरूप, जै जै धर्म प्रकासक रूप।
वरन रहित रस सहित सुभाव, जै जै सुध आतम दरसाव।
जै जै देव जगत गुरु राज, जै जै देव सकल सवाँरन काज।
जै जै केवल ज्ञान सरूप, मोह तिमिर खंडन रविरूप।
जब लग जीव भ्रमौ संसार, पाय सरूप लयौ अधिकार।
जब लग मन बच काय करेय,जिनवर भगति हिय न धरेय।[2]

जोशीराय मथेन—आपकी चर्चा जोगीदास मथेण के सम्बन्ध में की जा चुकी है। आप बीकानेर के महाराज अनूपसिंह द्वारा सम्मानित कवि थे। आपने सुजाणसिंह रासो सं० १७६७-६९ के मध्य लिखा जिसमें महाराज सुजानसिंह द्वारा वरसलगढ़ पर विजय का वर्णन है। 'वरदा' पत्रिका के जून सन् १९७३ के अंक में यह प्रकाशित है।[3]

ज्ञानकीर्ति—विनयदेवसूरि>विनयकीर्तिसूरि>विजयकीर्ति सूरि> के शिष्य थे। इन्होंने गुरुरास (१९ ढाल) की रचना सं० १७३७ माघ शुक्ल ६ को खंभात में की। इस रास के प्रारंभ की पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

आदिनाथ आदि नमुं आप अविचल शर्म,
नीति पंथ प्रगटाइ के, वारिउ युगलाधर्म।

गुरुपरंपरा के अन्तर्गत ब्रह्म ऋषि द्वारा प्रवर्त्तित ब्रह्मामती गच्छ के उपरोक्त आचार्यों का बंदन किया गया है, इसके संदर्भ में कवि ने लिखा है—

विजयकीरति सूरि वंदिइ गुणगिरिउ गुरुराज रे,
नामें जेहने नवनिधि थाइं, सीझे सधलाकाज रे।

---

१. अगरचन्द नाहटा—राजस्थान का जैन साहित्य—पृ० २१७-२१८।

२. डा० प्रेमसागर जैन—हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि पृ० २४७-२५१

३. संपादक अगरचन्द नाहटा—राजस्थान का जैन साहित्य पृ० २७८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रचना-काल—सायर गुण ऋषि चंद्र संबच्छरि,
माघ मासि सुदि जाणु रे।
थंभणनयरे संघ आदेशे
छट्टि दिन चढ्यो प्रमाण रे।

इस रास की अंतिम पंक्तियाँ निम्नांकित हैं--

भणता गुणतां संपति थाइ, दुख दालिद्र सब जाई रे।
नवनिधि सिद्धि घणेरी आई, हृदइं हर्ष न माई रे।[1]

ज्ञानकुशल—आप तपागच्छीय विजयकुशल के प्रशिष्य और कीर्ति कुशल के शिष्य थे। आपने (शंखेश्वर) पार्श्वनाथ प्रवंध (४ खंड ५६ ढाल १८८५ कड़ी) का निर्माण १७०७ मागसर कृष्ण ४, मोहीग्राम में किया।

आदि--पणमि पयकमल वर विमल निअ गुरु तणा;
थुणिसु पहु पासना सुगुण सोहामणा।

१८वीं शती में भी मरुगुर्जर की प्राचीन प्राकृताभास शैली का निर्वाह करने के लिए कवि ने प्रणमि के बदले पणमि, पद के लिए पय, निज के स्थान पर निअ का प्रयोग किया है –

आदि दस भवि भणिसु हुं पहू पास ना,
बिंब उतपत्ति पुण तित्थ नी थापना।

रचना के विस्तार के बारे में कवि ने लिखा है—

च्यारिवरखंड ब्रह्मांड परि विस्तरे,
ढाल सुविशाल स्युं रंग रस बहुतरे।
करिसु इम पार्श्व प्रबंधनी वर्णना,
सुणह भो भविजना ऊधं आलस बिना।

इसका प्रथम खण्ड १७०७ के आषाढ़ में और सम्पूर्ण खण्ड उसी वर्ष मागसर मास में पूर्ण हुआ।

रचनाकाल —संवत सतर सतोतरे (१७०७)मगसिर वदि चौथे गायो रे।
शांतिनाथ सुपसाउले परमानंद परिध्रता पायो रे।

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० ३०६ भाग ३ पृ० १२९६ (प्र०सं०) और भाग ५ पृ० २६-२७ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसमें तपागच्छ की परम्परा का विस्तृत ब्यौरा दिया गया है। महावीर के पट्ट पर सुधर्मा से लेकर सौधर्म्म, कौटिक, चन्द्र गच्छ, वनवासी, वद्रगच्छ का विवरण देता हुआ कवि बताता है कि महावीर की परम्परा में चौवालीसवें पट्ट पर सं० १२८३ में जगच्चंद्र ने प्रतिवादी पर विजय प्राप्त करके शक्तिकुमार राणा से 'तपा' की विरुद प्राप्त की। इसी परम्परा में अकबर प्रतिबोधक जगतगुरु हीर विजय और विजयसेन, विजयदेव (जहाँगीर को प्रभावित करने वाले) और विजय सिंह हुए, इन्हीं के शासनकाल में मेदपाट (चित्तौड़) में जहाँ राणा जगतसिंह राजा थे, कवि ने इस रचना का प्रारम्भ किया।

कवि कुशलमाणिक्य>सहजकुशल>लक्ष्मीरुचि>विवेक कुशल> विजयकुशल>कीर्तिकुशल का शिष्य था। इस प्रकार तपागच्छ की परम्परा का संक्षिप्त परिचय जानने के लिए इस रचना का ऐतिहासिक महत्व है। इसमें काव्यगुण भी पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। अनुप्रास, शब्दमैत्री और लय आदि काव्यगुणों से यह अलंकृत है। इसकी अंतिम पंक्तियाँ आगे दी जा रही हैं—

अे प्रबन्ध बांचे सुणे, तस सेवें बहु सुलताणां रे,
घरि नवनिधि ऋधि वृद्धि बढ़े, निति उत्सव कोडि कल्याणा रे।
घृति मति गति वर कांतिकला, लक्षण गुण प्रभुता राजे रे।
विजय विद्याजय चातुरी, वाधे भाग्यादिक लाजे रे।[1]

ज्ञानधर्म--आप खरतरगच्छीय राजसार के शिष्य थे। आपने सं० १७३५ विजयादसमी को दामन्नक चौपाई लिखी। इसका उद्धरण और अन्य विवरण प्राप्त नहीं है।[2]

ज्ञाननिधान--खरतरगच्छीय कीर्तिरत्न शाखा में कुशलकल्लोल के प्रशिष्य तथा मेघकलश के शिष्य थे। इन्होंने विचारछत्तीसी की रचना सं० १७१९ वैशाख १२ शुक्रवार को की। यह सिद्धान्त सम्बन्धी

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई——जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० १७४-७९ (प्र० सं०) और भाग ४ पृ० १५३(न० सं०)।
२. वही भाग ३ पृ० १२८१ (प्र० सं०) और भाग ५ पृ० १६ (न० सं०) तथा अगरचन्द नाहटा परंपरा पृ० १०८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विचार ग्रंथ संग्रह रूप में गद्य रचना है किन्तु इसके गद्य का नमूना नहीं प्राप्त हुआ।[1]

ज्ञानविजय--आप तपागच्छीय विजय ऋद्धि सूरि के प्रशिष्य और हस्तिविजय के शिष्य थे। आपकी दो रचनाओं का उल्लेख मिलता है चौबीसी और मलयचरित्र। मलयचरित्र का रचनाकाल सं० १७८१ बताया गया है पर संदर्भित उद्धरण नहीं है न अन्य विवरण ही प्राप्त हुआ है। चौबीसी (सं० १७८० दीपावली अहमदाबाद) के अन्त में २४वें तीर्थंकर महावीर का स्तवन किया गया है। इससे सम्बन्धित कुछ पंक्तियाँ उद्धृत कर रहा हूँ--

चौबीसमो चित्त धरो रे नामे श्री महावीर रे,
जिन गाऊँ बलिहारी।

× × ×

राजनगर रलियामणु रे जां भला जिन आवासरे
श्री विजयवृद्धि सूरीश्वर रे रुडा रह्या चोमासरे।

रचनाकाल--संवत् १७८० सीइं रे आछो ते आछो मास रे,
दीवाली दिन रुयडो रे ते दिन मन ने उल्लास रे।

× × ×

श्री विजय ऋद्धि सूरिसरु रे, गछपति गुरु गुणधाम रे।
हस्तीज्ञान सुख पामस्ये रे, सास्वतां शिवसुख ठाम रे,
जिनजाऊं बलिहारी।[2]

जैन गुर्जर कवियों के नवीन संस्करण के सम्पादक श्री कोठारी ज्ञानविजय को मलयचरित्र का कर्त्ता मानने के प्रति शंका व्यक्त करते हैं।

ज्ञान विमल—(नयविमल) आप तपागच्छीय विनयविमल के प्रशिष्य एवं धीर विमल के शिष्य थे। आपके पिता भिन्नमाल निवासी ओसवाल वैश्य श्री वासवशेठ थे, इनकी माँ का नाम कनकावती था।

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई--जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १६२५ (प्र० सं०) भाग ४ पृ० २८५ (न० सं०)।

२. वही, भाग २ पृ० ५३७, भाग ३ पृ० १४३३, (प्र० सं०) भाग ५ पृ० ३१०-११ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इनका जन्म सं० १६९४ और जन्म नाम नाथूमल था। आपको धीरविमल ने सं० १७०२ में दीक्षित किया और नयविमल दीक्षानाम पड़ा। इन्होंने अमृतविमल गणि और मेरुविमल गणि के पास विद्याभ्यास किया। १७२७ में पंडित पदवी के पश्चात् सं० १७४८ में आचार्य पद की प्राप्ति इन्हें विजयप्रभसूरि की आज्ञा से संडेर में हुई। तब इनका नाम ज्ञानविमल पड़ा। इनकी सद्प्रेरणा से १७७७ में सूरत के सेठ प्रेमजी पारेख ने सिद्धाचल की संघयात्रा निकाली; जिसका अच्छा वर्णन सुखसागर कृत प्रेमविलासरास में मिलता है। सं० १७८२ में ८९ वर्ष की अवस्था में ये खंभात में स्वर्गवासी हुये जहाँ पर भक्त श्रावकों ने इनका स्तूप बनवाया है। वहाँ के शास्त्रभंडार में इनके हस्तलिखित अनेक ग्रंथ सुरक्षित हैं। इनकी हिन्दी की कुछ रचनाओं का विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

साधुवंदना अथवा गुरुपरंपरा (१४ ढाल सं० १७२८ कातिक कृष्ण १० गुरुवार, सांचौर) का आदि—

शासननायक गुणनिलो सिद्धारथ नृपचंद;
वर्द्धमान जिन प्रणमतां लहिअे परमाणंद।
अंग इग्यार पयन्न दस, तिम उपांग वली बार;
छेद सूत्र षट्भाषीया, मूल सूत्र तिमचार।

यह रचना नंदीअनुयोगद्वार पर आधारित है, यथा—

नंदी अनुयोग द्वार वली अे पणयालीस सूत्र,
तस अनुसारि जे कह्या प्रकरण वृत्ति ससूत्र।

तपागच्छ की परंपरा का उल्लेख करते हुए कवि ने जगतचंद्र का नमन किया है—

पाट परंपर जे वली आयो, तपाविरुदउपायो जी,
जगतचंद्र सूरिसर गायो, ललिता दे नो जायो जी।

इस परपम्परा में विजयदान, हीरविजय, विजयसेन, विजयसिंह, विजयप्रभ, आणंदविमल, हर्षविमल, जयविमल, कीर्तिविमल, विनयविमल आदि गुरुओं और धीरविमल तथा लब्धिविमल नामक गुरुबंधुओं की वंदना की गई है। रचनाकाल इस प्रकार बताया है—

संवत संयम भेद बखाणो वसु भुज वरिस बखाणो जी।

यह दयाविमल जी जैन ग्रंथमाला नं० १० में प्रकाशित रचना है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पार्श्व जिन स्तवन--(८५ कड़ी सं० १७२८) की अन्तिम पंक्तियाँ दे रहा हूँ।

इम विश्वभंजन दुरितखंडन पास जिनवर संथुण्यो।
सइ सतर संवत सिद्धि लोचन वर्ष हर्ष घरी धणो।
श्री विनय विमल कविराज सेवक धीर विमल पंडित वरो।
तस चरण पंकज रेणु मधुकर नयविमल जयजय करो।

नरभव दश दृष्टान्त स्वाध्याय (२१ ढाल २७२ कड़ी सं० १७३४ से पूर्व) कवि ने इसकी भाषा को 'प्राकृत' कहा है। चूँकि तीर्थंकरो; गणधरो ने प्राकृत में प्रवचन किया था इसलिए जैन साधुओं में प्राकृत के प्रति लगाव १८वीं शती तक दिखाई पड़ता है और वे प्राकृतभास मरुगुर्जर का प्रयोग करते रहे। इस रचना के प्रारम्भ में तीन पंक्तियाँ संस्कृत में हैं उन्हीं में कवि ने अपनी रचना को प्राकृत में लिखने का उल्लेख किया है, यथा--

विप्राक्षा धान्यानि दुरोदरं य, रत्नेदुपानं किमुचक्रवेधः।
कूर्म्मे मुडां स्यात्परमाणु रूपं, दृष्टांतमेतन्मनुजत्व लाभे।
अंते दशपि दृष्टांताः सोपनया प्राकृतभाषायां लिख्यते।

इनकी प्राकृत भाषा के नमूने के तौर पर इसके आगे का दूहा दे रहा हूँ -

प्रेमे पास जिणंद ना पदपंकज प्रणमेवि,
सानिधकारी सारदा श्री सद्गुरु समरेवि।

कवि जैन धर्म की श्रेष्ठता का बखान करता हुआ कहता है—

जैन धर्म जिम धर्म मां ओषध मां जिम अन्न,
दाता मां जिम जलधरु, जिम पंडित मां मन्त्र।

यह रचना प्राचीन स्तवन रत्नसंग्रह भाग २ में प्रकाशित है।

शांतिजिन स्तवन (८१ कड़ी सं० १७३६ आषाढ़ कृष्ण ९ शुक्रवार, दहिओदरपुर)

रचनाकाल —संवत संयम भेदस्यु अे, मुनि गुण वरसनु मान।
लह्यो इणि भेदस्यु० अे।

मास आसाढ़ तणी कही अे,
वदी नवमी भृगुपुत्र वारइ जिन संथुण्यो अे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसे प्राचीन स्तवन रत्नसंग्रह भाग १ पृ० ९३ पर प्रकाशित किया गया है।

जंबुरास—(३५ ढाल ६०८ कड़ी सं० १७३८ मागसर शुक्ल १३ बुधवार, थिरपुर)

आदि—प्रणमी पास जिणंदना चरणकमल सुखकार।
जम्बू स्वामी तणो कहूं सरस कथा अधिकार।

अन्त—धन धन जम्बू मुनिवर राय, हुं प्रणमुं तस पाया बे।
कंचन कोड़ी कामिनी छोड़ी, संयम सुं मन लाया बे।

रचनाकाल—वसु कृशानु जलनिधि ससी वर्षइं अेह रच्यो सुप्रमाणे बे।
मार्गशीर्ष सित तेरस दिवसे, शशी सुतवार बखाणे बे।
कुशल विजय पंडित संवेगी, तास कहण थी कीधो बे।
जंबू स्वामी तणों लिखलेशे, अेह सम्बन्ध मिं सीधो बे।

इसकी अनेकानेक प्रतियाँ अनेक ज्ञानभंडारों में उपलब्ध होने से इसकी लोकप्रियता प्रमाणित होती है।

(जिन)पूजा विधिस्तवन (सं० १७४१ विजयादसमी बुधवार, समी)

रचनाकाल—चन्द्र वेद भोजन वरिस विजयदसम बुधवार।
पूजाफल रचना रची, समी सहर मझार।

यह भी प्राचीन स्तवन रत्नसंग्रह भाग १ में प्रकाशित है।

बारव्रत ग्रहण (टीप) रास (८ ढाल २०६ कड़ी सं० १७५० चौमास अहमदाबाद)

आदि—प्रणमी पेमे पास ना पद पंकज अभिराम,
नवनिधि ऋधि सिधि संपजे जेहनुं समरे नाम।

सूरिजी ने यह रचना राजनगरवासी वच्छराज सुत लालचन्द के लिए लिखी थी।

रचनाकाल—संवत नभ बाण मुनि विधु अे (१७५०) वरसे,
रह्या चोमास, पुरे नवावास मां अे।
संवेगी मुनि परिवर्या अे श्री ज्ञानविमल सूरींद,
रह्या उल्लास मां अे।

इसे वकील केशवलाल प्रेमचंद मोदी ने संपादित-संशोधित करके दयाविमल जी जैन ग्रंथमाला अंक ११ में जंबुस्वामी रास के साथ प्रकाशित किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीर्थमाला--(ढाल ८, सं० १७५५ ज्येष्ठ शुक्ल १०) इस तीर्थ-माला में कवि ने कई तीर्थों के भ्रमण का विवरण दिया है जैसे सिद्धपुर महशाणा, अहमदाबाद, सूरत आदि का भौगोलिक दृष्टि से अच्छा वर्णन किया है।

रचनाकाल –संवत सतर पंचावने सुं सफल मनोरथ सिद्ध, सा।
ज्येष्ठ शुक्ल दसमी दिने, सु अे तीरथमाला कीध, सा।

यह प्राचीन तीर्थ संज्झाय पृ० १३२-१४० पर प्रकाशित है।

रणसिंह रार्जाष रास (३८ ढाल ११२२ कड़ी, सं० १७६५ से पूर्व)

आदि--सकल समिहित सुरलता सींचन नव जलधार;
श्री शंखेश्वर पास जी, प्रणमी प्राण अधार।

अन्त—अे रणसिंह नरिंद ने हित हेतें हो करी उपदेश माल;
तेह संबंध प्रकासीउं, सुणी समझो हो भवि बालगोपाल; साधु।

इस रास में भी तपागच्छ के विजयप्रभ की परम्परा में विमलशाखा के विनयविमल और धीरविमल की अभ्यर्थना है। इन प्रमुख रचनाओं के अलावा इन्होंने चन्द्रकेवली रास अथवा आनंद मंदिर रास (१११ ढाल २३९४ कड़ी सं० १७७० माह शुक्ल १३, राधनपुर); अशोकचन्द्र रोहिणी रास (३१ ढाल सं० १७७४ मागसर शुक्ल ५ सूरत (सैदपुर); सुसढ़ रास २२ ढाल, आदि अनेक रासों की रचना की है। इनमें से प्रथम रास भीमशी माणक द्वारा और दूसरा रास आनंद काव्य महोदधि मौक्तिक १ में प्रकाशित है। आपने अनेक स्तुतियाँ और स्तवन आदि लिखे हैं जिनमें वीस स्थानक स्तवन (८१ कड़ी १७६६ पौष कृष्ण ८ बुधवार, सूरत) प्राचीन स्तवन रत्नसंग्रह भाग १ में प्रकाशित है। अेकदश गणधर स्तवरूप देववंदन 'देववंदन माला' में प्रकाशित है। मौन अेकादसी नो देववंदन भी देववंदनमाला में ही प्रकाशित है। दिवाली देववंदन, कल्याण मंदिर स्तोत्र, दस विधयतिधर्म स्वाध्याय, सुदर्शन केवली श्रेष्ठि संज्झाय आदि कई रचनायें आपकी उपलब्ध हैं। इनमें से कल्याणमंदिर स्तोत्र और यतिधर्म भी प्रकाशित हो चुकी है। सुदर्शनकेवली संज्झाय प्राचीन सज्झाय संग्रह तथा पदसंग्रह में भी प्रकाशित है। आठ गुण पर संज्झाय (स्वोपज्ञ टब्बा सहित) और कई छोटे मोटे संज्झाय आपने लिखे हैं। पंदर तिथि अमावस्यानी १६ स्तुति और शांतिजिन जन्माभिषेक कलश प्राचीन स्तवन रत्नसंग्रह भाग १ में प्रकाशित रचनायें हैं। कल्पसूत्र व्याख्यान भास अथवा ढालबद्ध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१७ ढाल) में जैन परम्परा का विवरण है। इसमें सोहम गणि, जंबु स्वामी, शय्यंभव, संभूतविजय, थूलभद्र, आर्य सुहस्ती, इन्द्रदिन्न, वयरसेन के अलावा वज्रसेन, समंतभद्र, मानतुङ्ग, जयानंद, उद्योतन सूरि, सर्वदेव सूरि, यशोभद्र और अजितदेव आदि का सादर स्मरण किया गया है। इस प्रकार यह पट्टावली की दृष्टि से एक अवलोकनीय ग्रन्थ है। इनकी 'चौबीसी' चौबीसी बीसी संग्रह में प्रकाशित हो चुकी है।

आपने गद्य साहित्य भी पर्याप्त मात्रा में लिखा है। सीमंधर स्वामी ने विनति यति प्रतिक्रमण सूत्र पर बालावबोध (१७४३ सं० राधनपुर) पाक्षिक क्षामण बालावबोध (१७७३ माघ शुक्ल ८), लोकनाल बालावबोध, सीमंधर जिन स्तवन ३५० गाथा पर बालावबोध, सकलार्हत पर बालावबोध, आठ योग दृष्टि विचार संज्झाय नो वालावबोध इत्यादि आपकी उल्लेखनीय गद्य रचनायें हैं। इनमें से अन्तिम बालावबोध की मूल रचना यशोविजय कृत है। इन गद्य रचनाओं के उद्धरण उपलब्ध नहीं हैं। आनन्दघन २२ स्तवन बालावबोध कुमारपाल देसाई द्वारा प्रकाशित है।

चैत्यवंदन, देववंदन प्रत्याख्यान भाष्यमय बालावबोध (सं० १७५८, सूरत) पुष्ट गद्य रचना है।[1]

शत्रुंजय मंडन युगादि देव स्तवन (७ कड़ी) छोटा सा किन्तु भावपूर्ण भजन है। इसका आदि देखिये--

गोकुल जास्यां धेनु चारास्यां जल जमुना नो पास्यां,
माहरा मोहण लाल गोकल क्यारे जास्यां,
गोकल जास्यां गौ चरास्यां कीटे रव जास्यां।[2]

इनकी अधिकतर रचनाओं में जैनसिद्धान्त, जैनतीर्थ, व्रत-उपवास, देववन्दन-पूजन स्तवन आदि की व्यंजना है पर यह रचना उन सबसे भिन्न सहज और सरस भावपूर्ण भजन है। इनकी रचनाओं में सिद्धांत कथन के साथ-साथ सरस और लयात्मक स्थल भी पर्याप्त मात्रा में

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई--जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० ३०८-३३८ तथा ४९२ और भाग ३ पृ० १३०१-१३१२ (प्र० सं०) तथा भाग ४ पृ० ३८२-४१८ (न०सं०)।

२. वही पृ० ४०४-४०६ (न० संस्करण)।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

सुलभ हैं। आपका रचना क्षेत्र बड़ा विस्तृत है जिसमें विविधता के भी दर्शन होते हैं।

ज्ञानसमुद्र—जिनहर्ष सूरि अथवा गुणरत्न सूरि के शिष्य थे। आपकी रचना ज्ञान छत्रीसी (सं० १७०३) का प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है—

जिनवर देव न जाणीअे, सेव्या नही सुसाध,
भगवंत धरम न भेदिओ, इम भव भमियउ अगाध।

अन्त--संवत सतर तिडोत्तरा समैं, श्री जिनहर्ष सूरीसो जी,
वाचक श्री गुणरतन वखाणीई, न्यानसमुद्र निज सीसोजी।
कीधी अेह छत्तीसी कारणे, श्रावक समकित धारोजी,
सुविहित आग्रह चोथ साह रे, दोसी वंस उदारो जी।[1]

यह रचना कवि ने चोथ साह के आग्रह पर लिखी लेकिन यह स्पष्ट नहीं होता कि वह जिनहर्ष का अथवा गुणरत्न का शिष्य है। श्री मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने जैन गुर्जर कवियों के भाग २ में ज्ञानसागर और ज्ञानसमुद्र को एक समझ लिया था, किन्तु नबीन संस्करण के सम्पादक श्री कोठारी जी का कथन है कि ये दोनों दो भिन्न-भिन्न व्यक्ति हैं। उन्होंने दोनों का विवरण-उद्धरण भी अलग-अलग दिया है। इसलिए उनका कथन ही मान्य प्रतीत होता है।[2] ज्ञानसागर का विवरण आगे दिया जा रहा है।

ज्ञानसागर I—इस नाम के वस्तुतः कई अच्छे कवि अन्य जैन लेखक हो गये हैं इसलिए इस नाम को लेकर कई शंकायें उठी हैं। उनकी चर्चा क्रमशः आगे की जायेगी।

प्रस्तुत ज्ञानसागर अंचलगच्छ के गजसागरसूरि>ललित सागर> माणिक्य सागर के शिष्य थे। इन्होंने 'शुकराजरास' की रचना (४ खण्ड ९०५ कड़ी) सं० १७०१ शुचिमास कृष्ण १३ सोमवार को पाटण में पूर्ण की; जिसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ निम्नांकित हैं—

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई--जैन गुर्जर कविओ भाग ४ पृ० ७१ (न०सं०)।

२. वही भाग २ पृ० ७९ (प्र०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सकल सिद्धि दातारवर, श्री युग आदि जिणंद,
शेत्रुंजय सिरसेहरो, प्रणमु ं परमाणंद ।
ब्रह्माणी वरदायका, त्रिभोवन जग विख्यात,
प्रणमु ं हुं श्रुत देवता, कवि जन केरी मात ।

गुरु परम्परान्तर्गत इन्होंने ललितसागर और माणिक्यसागर का सादर वंदन किया है—

तस सीस दिनदिन दीपता श्रुतनिधि गुण गंभीर,
माणिक्यसागर सद्गुरु, प्रणमु साहस धीर ।
गुरुप्रसाद कविजन कवैं, काव्य छंद प्रस्तार,
सरसव ने मेरु करैं, अे मोटो उपगार ।

रचनाकाल—संवत सत्तर अेकोत्तरे श्री पाटण नयर मझारि रे,
सूची कृष्णपक्ष तेरस दिनि, नक्षत्र पुष्य शशिवार रे ।

रचना का स्रोत बताते हुए ज्ञानसागर ने लिखा है—

श्री शुकराज चरित्र मैं नथी दीक्षा नो अधिकारो रे,
में श्राद्ध विधि थी आंणीओ दीक्ष्यानो विस्तारो रे ।

अर्थात् रचना तो शुकराज चरित पर आधारित है किन्तु उसमें दीक्षा प्रकरण नहीं था उसका विस्तार लेखक के श्राद्धविधि के आधार पर किया है ।

आपकी दूसरी रचना धम्मिलरास (३ खण्ड १००६ कड़ी, सं० १७४१ कार्तिक शुक्ल १३ गुरुवार) की प्रारम्भिक पंक्तियाँ अग्रलिखित हैं—

स्वस्ति श्री सुखदायका, त्रिभुवन माता जेह,
प्रणमु ं हूं निति प्रेम सु ं, धुरि सरसति धरि नेह ।

इसमें कबि ने अनेक छंदों-अलंकारों का नाम गिनाया है; इससे वह काव्य शास्त्र का ज्ञाता प्रतीत होता है, यथा—

काव्य कुंडलीया कवित्त वर, श्लोक सवाया भेऊ,
गाता गूढ़ा गीत बहु, यमक रुपक भेय जेऊ ।
छंद वस्तु ने छप्पया, दुग्धक दोधक भांति,
अडयल-भडअल आरया चौटीआ चौपइ जाति ।
छूआ हूमेला परधड़ी, अऊर पदादि अनेक,
भेद न लहूं अेहना भला, वली मात्रादि विवेक । इत्यादि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रचनाकाल – संवत कंथु संख्या घो अेके महाव्रत महावीर ने जाणो रे,
सुचि कार्तिक तेरसि रेवति गुरुवार सिद्धियोग बखाणो रे।

आपकी अन्य रचनाओं का विवरण-उद्धरण आगे संक्षेप में दिया जा रहा है—इलाची कुमार चौपाई अथवा रास (१६ ढाल १८७ कड़ी सं० १७१९ आसो सुदी २, बुधवार, शेखपुर)। इसमें विधिपक्ष के गुणरत्न सूरि का भी उल्लेख किया गया है किन्तु वह गुरु रूप में बराबर माणिक्य सागर की ही वन्दना करता है।

माणिक्यसागर मुझ गुरु ज्ञान दृष्टि दातार,
प्रणमुं हुं पय तेहना, वाणी हुई विस्तार।

अथवा—ललितसागर बुध लावण्यधारि, तस शीष्य प्रथम सुखकारी बे,
माणिक्यसागर मुनि सुप्रकारी, मुझ गुरु ज्ञानदातारी बे।
ते गुरु तणा लही सुपसाय, ये इलाची पुत्र ऋषि गाया रे।

इससे स्पष्ट होता है कि अनेक ज्ञानसागरों में प्रस्तुत ज्ञानसागर माणिक्यसागर के शिष्य और इलाचीकुमार चौपाई के रचयिता हैं। इसका रचनाकाल इस प्रकार कहा गया है—

संवत सतर उगणीसा वरसे, सेषपुरे मन हरषे बे,
वली ऋषि मण्डल मांथी लीधुं, अे अधिकार में सीधु बे।

अर्थात् यह रचना ऋषिमण्डल से ली गई है। यह रचना 'अलाचीकुमार नो रास तथा बारभावना अने अठार पाप स्थानकादिनो संग्रह' में प्रकाशित है। आपने बहुत से रास लिखे हैं जिनमें से कई प्रकाशित हो चुके हैं अतः सभी रासों का व्यौरा देना स्थान सीमा के कारण सम्भव नहीं है फिर भी कुछ के उल्लेख किए जा रहे हैं।

शांतिनाथ रास अथवा चरित्र—यह उत्तराध्ययन पर आधारित रास है। इसे शांतिनाथ रास अथवा चरित्र अथवा चौपाई भी कहा गया है अर्थात् इस समय तक आते आते रास, चरित्र और चौपाई का शास्त्रीय भेद मिट चुका था। रास का आकार भी चरित्र या प्रबन्ध की तरह विस्तृत हो गया था। यह रचना ६२ ढाल १४३५ कड़ी की है और सं० १७२० कार्तिक कृष्ण ११ रविवार को पाटण में पूर्ण हुई थी। कवि ने हेमसूरि कृत शांतिचरित्र से शांतिनाथ का चरित्र अवतरित किया है। चित्रसंभूति चौपाई (३९ ढाल ७४५ कड़ी सं०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७२१ पौष, शुक्ल १५ गुरुवार, शेखपुर) उपदेश चिंतामणि से लिया है। यह भी हेमसूरि की ही रचना पर आधारित है।

धन्ना अणगार स्वाध्याय अथवा ढालिया (५९ कड़ी सं० १७२१ श्रावण शुक्ल २, शुक्रवार वसगाँव) का आदि इस प्रकार है--

करम रूप धरि जीववा, धीर पुरुष महावीर,
प्रणमु ं तेहना पयकमल, अेकचित्त साहसधीर।

रचनाकाल--रही चोमासि सतर अेकबीसे, श्री खसगाम मझारिजी,
श्रावण सुदि तिथि बीज तिणइ दिनि, भृगुनन्दन भलइ
दिनवार जी।

यह मोटुं संज्झाय माला संग्रह में प्रकाशित है, और साराभाई नवाब के जैन संज्झाय संग्रह में भी छपी है।

रामचन्द्र लेख (५ ढाल सं० १७२३ आसो शुक्ल १३) में हनुमान द्वारा रामचन्द्र की मुद्रिका को सीता के पास पहुँचाने का वर्णन किया गया है—

लेष मुद्रिका हनुमंत जाइ, दीयां सीतानिं सुषदाई हो।

आषाढ़भूति रास अथवा चौपाई प्रबन्ध, ढाल (१६ ढाल २१८ कड़ी सं० १७२४ पौष कृष्ण द्वितीया, चक्रापुरी)

आदि--सकलऋद्धि समृद्धि कर त्रिभुवन तिलक समान,
प्रणमुं पास जिणेसरु, निरुपम ज्ञाननिधान।

यह रचना तिलकसूरि कृत पिंडविशुद्धि की टीका और उपदेश चिंतामणि पर आधारित है। यह लोकप्रिय रचना है, इसकी अनेक प्रतियाँ प्राप्त होती हैं।

परदेशी राजा रास (३३ ढाल ७२१ कड़ी सं० १७२४ ? ३४ ज्येष्ठ शुक्ल १३, रविवार चक्रपुरी) यह कथा रायपसेणीसूत्र से ली गई है। कवि ने रचना काल इस प्रकार बताया है--

श्री चक्रापुरी गाम मां संवत् सत्तर चौबी (त्री) सेरे।

इसमें चौबीसे और चौत्रीसे दोनों का घपला होने से एक दशक का अंतर रचकाकाल में पड़ गया है।

नंदिषेण रास अथवा चौपाई (१६ ढाल २८३ कड़ी सं० १७२५ कार्तिक कृष्ण ८, मंगलवार राजनगर अहमदाबाद) गौतम के पूछने पर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वयं महावीर ने महानिशीथ में वर्णित नंदिषेण चरित्र का उपदेश किया। कवि ने यह रचना भी हेमसूरि कृत वीरचरित से लिया है। रचनाकाल सम्बन्धी दो पाठ मिलते हैं--'संवत सत्तर सइ पंचवीसई, राजनगर कुजवारइ और संवत सत्तर पंचवीसा वरसइ कार्तिक वदि कुजवारइ; पर दोनों से कोई भ्रम नहीं उत्पन्न होता अतः सं० १७२५ रचनाकाल निश्चित है।

श्रीपाल (सिद्धचक्र) रास अथवा चौपाई (४० ढाल सं० १७२६ आसो कृष्ण ८ गुरुवार शेखपुर, अहमदाबाद) यह रत्नशेखर सूरि कृत श्रीपालचरित्र पर आधारित है। इसमें श्रीपाल के चरित्र का उदाहरण देकर सिद्ध चक्र का माहात्म्य दर्शाया गया है। यह रचना भी प्रकाशित हो चुकी है। आर्द्र कुमार चौपाई अथवा रास, स्वाध्याय या ढाल (१९ ढाल ३०१ कड़ी, सं० १७२७ चैत्र शुक्ल १३ सोमवार लघुवटपद्र) का आदि :—

दोहा--सकल सुरासुर जेहना भावे पूजे पांय,
ऋषभादिक चउबीस हुं ते प्रणमुं जिनराय।

यह चरित्र सूयगडांग वृत्ति और उपदेश चिंतामणि पर आधारित है। इसे जगदीश्वर प्रेस बम्बई से प्रकाशित किया गया है।

सनतचक्री रास (३१ ढाल सं० १७३० माग० कृष्ण १, मंगल चक्रापुरी) यह उत्तराध्ययन की वृत्ति पर आधारित है और जैन ज्ञानदीपक सभा से प्रकाशित है।

शांब प्रद्युम्न रास और चौबीसी अथवा चतुर्विंशति जिनस्तवन अप्रकाशित कृतियाँ हैं जबकि स्थूलभद्र नवरसो (नवरस गीत) और अर्बुद ऋषभ स्तव अथवा आबू चैत्य परिपाटी प्रकाशित हैं। अन्तिम रचना जैनयुग सं० १९८६ में प्रकाशित है। इनके अलावा महावीर स्तवन, पार्श्वनाथ स्तवन, स्थूलभद्र संज्झाय, राजीमती गीत, वैराग्य गीत आदि कई अन्य कृतियाँ भी उपलब्ध हैं।[1] श्री देसाई ने श्रीपाल रासको माणिक्य सागर की कृति कहा था परन्तु वस्तुतः यह ज्ञानसागर की रचना है।[2] ज्ञानछत्रीसी को ज्ञानसागर की रचना कहा गया था

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई--जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० ५७-८० और २९४ तथा भाग ३ पृ० ११२७-३७ (प्र०सं०)।
२. वही भाग ४ पृ० ३७-६४ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर जैसा पहले वर्णित है वह ज्ञान समुद्र की कृति है। इसी प्रकार नलायण-नलदमयंती चौपाई क्षमालाभ शिष्य ज्ञानसागर की और नेमिचन्द्रावला रविसागर शिष्य अन्य ज्ञानसागर की रचनायें हैं जिनका विवरण आगे दिया जायेगा।

इस प्रकार कई ज्ञानसागरों की अनेक कृतियों में परस्पर घालमेल हो गया है। इनकी एक छोटी रचना 'समस्या वंध स्तवन (छः कड़ी) को ज्ञानसागर के शिष्य की रचना समझा गया था पर श्री जयंत कोठारी का कथन है कि इसके कर्त्ता ज्ञानसागर हैं और वे ही आर्द्र कुमार रास के भी कर्त्ता हैं, इसका एक उद्धरण प्रमाणस्वरूप देकर यह प्रसंग पूर्ण किया जा रहा है—

लीनो रे मन मेरो जिनसे, उदधि सुतापति नंदन वनिता—
अहनीस रहे ज्युं प्रेम मगन से। लीनो रे ।
आद्य अक्षर सु ' न्यानसागर को। साहिब म जन सेबो धनसे।
लीनो रे मन मेरो जिन सें।[1]

ब्रह्मज्ञानसागर (दिगम्बर काष्ठा संघ के श्री भूषण आपके गुरु थे। एक ब्रह्म ज्ञानसागर १७वीं विक्रमीय में हो चुके हैं जिनकी कृति हनुमान चरित्र का विवरण मरुगुर्जर जैन साहित्य का वृहद् इतिहास खण्ड दो के पृष्ठ १९८ पर दिया जा चुका है। प्रस्तुत ब्रह्म ज्ञानसागर को मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने १८वीं शती के कृतिकारों में परिगणित किया है परन्तु इसका कोई ठोस आधार नही है। रचनाओं के रचनाकाल सम्बन्धी उद्धरण अप्राप्त है। आपकी कई व्रत कथाएँ मिलती हैं। रचनाओं का विवरण दिया जा रहा है।

अनन्त चतुर्दशी कथा (५४ कड़ी, सं० १७८९ के पूर्व)

आदि श्री जिनवर चौबीसे नमुं सारद प्रणमी अघ निगमुं।
भावे गणधर प्रणमुं पांय, भावे वंदु सद्गुरुराय।

इसमें कवि ने अपने को श्री भूषण का शिष्य कहा है—

श्री भूषण पद समरी सही, कथा ज्ञानसागर मुनि कही।

सुगंध दसमी व्रत कथा, रत्नत्रय व्रत कथा, सोलकारण व्रत कथा निर्दोषसप्तमी कथा, आकाश पंचमी कथा आदि आपकी व्रत कथा

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई-जैन गुर्जर कवियो भाग ५ पृ० ३९७ न०सं०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्बन्धी कुछ प्रमुख रचनायें हैं। इनमें से आकाश पंचमी कथा की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत कर रहा हूँ—

आदि—श्री जिनशासन पय अनुसरूं, गणधर निजगुरु वदन करूं।
साध संतना प्रणमु पाय, जेहथी कथा अनोपम थाय।
समवशरण मां श्रेणिक भूप, सुणतो जिनवर कथा स्वरूप।
आकाश पंचमी विकथा विचार, उपदेशत श्री वीरकुमार।

अन्त—काष्ठासंघ सरोज प्रकाश, श्री भूषण गुरु धर्म निवास।
तास शिष्य इम बोले सार, ब्रह्मसागर कहे मनरंग।[1]

इन व्रत कथाओं के अतिरिक्त आपकी एक रचना 'नेम राजुल बत्तीसी' भी उपलब्ध है जिसमें राजुल के प्रबोधन के बहाने नेमिनाथ से जैनतत्व दर्शन का उपदेश दिलाया गया है। इसकी अन्तिम पंक्तियाँ देखिये—

बात कही दस बीस राणी राजुल ने सारी,
नेमिकुमार कही नेम विविध दृष्टांत तत्वं विचारी।
आदर विनय विवेक सकल यूं समझायो,
नेमनाथ दृढ़चित्त कबहुं राजुल बस की नायो।
राजमती प्रतिबोध के सुध भाव संजम दीयो,
ब्रह्म ज्ञानसागर कहे वाद नेमि राजुल कीयो।[2]

इस प्रकार जैन परंपरा का यह सरस अंश जैनशास्त्र का वाद विवाद बन कर रह गया है, काव्यपक्ष उपेक्षित हो गया है।

निसस्याष्टमी व्रतकथा (६४ कड़ी) में लेखक ने अपना नाम ज्ञान-समुद्र दिया है परन्तु श्रीभूषण को ही गुरु बताया है, यथा—

काष्ठा संघ कुलाँ वरचंद श्रीभूषण गुरु परमानंद।
तस पद पंकज मधुकरतार ज्ञानसमुद्र कथा कहै सार।[3]

आपकी 'श्रवणद्वादशी कथा' का आदि अंत भी दिया गया है। इस प्रकार ये मुख्यरूप से व्रतकथा लेखक हैं। ये कथायें पहले से प्रचलित

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो भाग ३ पृ० १५३२-३५ (प्र०सं०)।
२. वही, भाग ५ पृ० १७९-१८२ (न०सं०)।
३. वही पृ० ४१३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं। दिगम्बर मौलिक रचना से बचते हैं और सर्वत्र हिन्दी का प्रयोग पहले से करते आ रहे हैं इसलिए इनकी रचनाओं में हिन्दी का स्वच्छ रूप प्रयुक्त है, यथा—

श्रावण द्वादशी कथा की यह पंक्ति—
"नवीन चार प्रतिमा कीजिये,
कलश छत्र घंटा दीजिये।" इत्यादि

ज्ञानसागर II—खरतरगच्छीय जिनरत्नसूरि के प्रशिष्य और क्षमालाभ के शिष्य थे। इन्होंने नलदमयन्ती चौपइ सं० १७५८ में और कयवन्ना चौपइ सं० १७५४ में लिखी।[1]

नलदमयंती चौपइ या चरित्र (सं.१७५८ ज्येष्ठ शुक्ल १० बुधवार) आदि—

प्रणमुं पारसनाथ ना चरण कमल सुखकार।
सारद ने सद्गुरु वली बुद्धि सिद्धि दातार।

इसमें सती शिरोमणि दमयंती की कथा है। गुरु परंपरा इस प्रकार दी गई है—

श्री खरतरगछ नो धणी अे, श्री जिनराज सूरिंद,
पाट महिमा घणो अे, श्री जिनरतन सुरिंद।
तासु सीस पाठक जयउ अे, श्री क्षमालाभ गुणखांनि,
प्रतपे महीयले अे दिन दिन चढ़ते वान।
तासु शिष्य वाचक कहे अे, ज्ञानसागर सुपवित्त,
कारण निज आतमा अे, सतीय तणो सुचरित्त।[2]

इसको रमणलाल शाह ने संपादित कर 'बे लघु रास कृतियों' में प्रकाशित किया है।

कयवन्ना चौपई (३३ ढाल सं० १७६४ विजयादसमी गुरुवार) श्री नाहटा ने रचनाकाल १७५४ बताया था जो ठीक नहीं लगता क्योंकि कवि ने स्वयं रचनाकाल इस प्रकार बताया है—

---

१. अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० १०८।

२. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो भाग ३ पृ० १४०२-४ (प्र० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संवत सतरइं चउसठइं अें, आसू सुदि गुरुवार,
विजयदशमी दिने अे, अेह रच्यो अधिकार।[1]

इसमें पूर्व कथित गुरु परंपरा का कवि ने उल्लेख किया है और कृतपुन्य या कयवन्ना के चरित्र के माध्यम से दान का महत्व समझाया है।

ज्ञानसागर III –उद्योतसागर के शिष्य थे। इन्होंने '२१ प्रकारी पूजा' और 'अष्टप्रकारी पूजा' नामक रचनाएँ की हैं। दोनों रचनायें प्रकाशित हैं। इनका रचनाकाल भ्रामक है। प्रथम रचना का समय सं० १८४३ दिया गया है। इसलिए यहां विवरण नहीं दिया जा रहा है।[2]

अष्टप्रकारी पूजा का समय सं० १७४३ है, इसमें आठ प्रकार की जिन पूजा का विवरण है, यथा—

गंगा मागध क्षीर निधि, ओषध मंथित सार,
कुसुमे वासित शुचि जलें करो जिन स्नात्र उदार।

अर्थात् स्नान से प्रारंभ करके वस्त्र देना, लूण उतारना, आरती मंगलदीप दान आदि का विधि विधान समझाया गया है।[3]

नवीन संस्करण (जैन गुर्जर कवियो) में इसकी चर्चा नहीं है अतः शायद यह कवि १९ वीं शताब्दी का है।

ज्ञानसागर IV—महोपाध्याय धर्मसागर संतानीय हर्षसागर के प्रशिष्य थे। इन्होंने जिन तिलकसूरि कृत धन्यकुमार चरित अथवा दानकल्पद्रुम पर बालावबोध लिखा है जिसकी गद्य भाषा का नमूना नहीं मिला है।[4]

ज्ञानसागर V — आचलगच्छीय कल्याणसागर 7 अमरसागर> विद्यासागर सूरि के शिष्य थे। जब ये अपने गुरु विद्यासागर सूरि के

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई–जैन गुर्जर कवियो भाग ५ पृ० १९२-१९४ (न० सं०)।
२. वही भाग ३ पृ० १३३२-३३ (प्र०सं०)।
३. वही भाग २ पृ० ३६६ (प्र०सं०)।
४. वही भाग ३ पृ० १६४८ प्र०सं० और भाग ५ पृ० ३७४ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पट्टधर हुए तब नाम उदयसागर पड़ा। एक अन्य उदयसागर सूरि भी हो गये हैं जो विजयगच्छीय विजयमुनि7 धरमदास7 खेमराज7 विमलसागर सूरि के शिष्य थे। इन्होंने 'मगसी पार्श्वनाथ स्तव' (५९ कड़ी) लिखा है। (देखिये जैन गुर्जर कवियो भाग २ पृ० ५८८ और भाग ५ पृ० ३७१ नवीन संस्करण)

प्रस्तुत ज्ञानसागर उर्फ उदयसागर कल्याण जी की पत्नी जयवंती की कुक्षि से सं० १७६३ में पैदा हुए थे। इनकी दीक्षा १७७७, आचार्य पद १७९७ में और स्वर्गवास सं० १८२६ में हुआ। अर्थात् ये १८वीं १९ विक्रमीय के रचनाकार साधु थे। इन्होंने १८०४ में स्नात्र पंचाशिका नामक (संस्कृत) ग्रंथ लिखा। इनकी १८वीं शती की कुछ मरुगुर्जर कृतियाँ प्राप्त हैं जिनमें समकित नी संज्झाय, भावप्रकाश संज्झाय गुणवर्मा रास और कल्याणसागर सूरिरास विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं, इनका विवरण दिया जा रहा है। इनके अलावा स्थूलिभद्र संज्झाय, चौत्रीश अतिशय नो छंद, शीयल संज्झाय, षडावश्यक संज्झाय आदि अनेक छोटी रचनायें भी उपलब्ध हैं। प्रायः सभी रचनाएँ प्रकाशित है। इन्होंने गद्य में लघुक्षेत्र समास बालावबोध भी लिखा है।

समकित संज्झाय (५ ढाल सं० १७८६, बुरहानपुर)

कलश—इम स्तव्या श्री जिन वीर स्वामी, समकित रूप कही करी,
बुरहानपुर चौमास रसगां (रसांग) मुनि शशि वरषें करी।
श्री अंचल गछपति तेज दिनपति, श्री विद्यासागर सूरी,
तस शिष्य प्रणमें ज्ञानसागर दीजिइं समकित वरू।

यह विधिपक्ष जिनपूजा स्तवन संग्रह में प्रकाशित है।

भावप्रकाश संज्झाय (९ ढाल सं० १७८७ आसो मास गुरुवार, बुरहानपुर)

आदि—श्री सद्गुरु ना प्रणमी पाय, सरस्वति स्वामिनी समरी माय।
छअे भावनों कहुं सुविचार, अनुयोगद्वार तणे अनुसार।

यह रचना कस्तूरचन्द के आग्रह पर लिखी गई और श्री जिनपूजा स्तवन संग्रह में प्रकाशित है। रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है—

सत्तर नयभद्द आश्विन सिद्धियोग गुरुवासरे,
श्री सूरि विद्या तणो विजयी ज्ञानसागर सुखकरे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणवर्मा रास अथवा चरित्र (६ खण्ड ९५ ढाल ४३७१ कड़ी, सं० १७९७ आषाढ़ शुक्ल २ सूरत) का आदि--

सुख सम्पत्तिदायक सदा, पायक जास सुरिंद,
प्रणमु पास जिनेसरु गोड़ी सुरतरु कंद।

इसमें विधिपक्ष की परम्परा का अपेक्षाकृत विस्तार से वर्णन किया गया है और आर्य रक्षित से लेकर जयसिंह, धर्मघोष, मेरुतुङ्ग, जयकीर्ति, सिद्धान्तसागर, भावसागर, कल्याणसागर, अमरसागर तक की वन्दना की गई है।

रचनाकाल--संवत नय निधि मुनि शशि (१७९७) सुरति रही चोमास,
अषाढ़ शुदि द्वितीय सिद्धिजोगे, पूरण कीध अे रास रे।

इसमें गुणवर्मा के चरित्र चित्रण के साथ उन श्रेष्ठियों, श्रीमन्तों की भी प्रशंसा है जिन्होंने जैन संघयात्राओं, दीक्षा समारोहों और साधुओं के चातुर्मास आदि पवित्र कार्यों में पर्याप्त धन खर्च किया। इनमें कपूरचन्द, खुशालचन्द, गोड़ीदास, जीवनदास और धर्मचन्द आदि उल्लेखनीय व्यक्ति हैं। यह जैन धर्म प्रसारक वर्ग द्वारा प्रकाशित है[1]।

कल्याणसागर सूरि रास[2]—यह सं० १८०२ की रचना है। यह श्रावण शुक्ल ६, मांडवी में पूर्ण हुई थी। इससे ज्ञात होता है कि अंचलगच्छ के चौसठवें पट्ट पर कल्याणसागर सूरि विराजमान थे। उनके शिष्य अमर सागर और प्रशिष्य विद्यासागर हुए थे। यह रचना शाह गेलाभाई तथा देवजीभाई माणेक द्वारा प्रकाशित है। इनकी अन्य रचनायें, जिनका नामोल्लेख किया जा चुका है, प्रायः १९वीं विक्रमीय की हैं इसलिए उनका विशेष विवरण यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

ज्ञानहर्ष—ये खरतरगच्छीय साधु रचनाकार थे। इनकी गुरु परम्परा का पता नहीं चल सका। इन्होंने जिनचन्द्र सूरि गीतादि लिखे हैं इसलिए इनकी गुरु परम्परा जिनचन्द्र से सम्बन्धित अवश्य

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो भाग २ पृ० ५७४-५७८ और भाग ३ पृ० १२-१४ तथा १४५५ (प्र० सं०)।
२. वही भाग ५ पृ० ३२९-३३६ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होगी। इन्होंने दुर्जनदमन चौपाई (सं० १७०७ पूगल), दाम्मनक चौपइ (सं० १७१० नोखा) लिखा।[1] इनकी रचनाओं का विस्तृत विवरण उद्धरण श्री मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने नहीं दिया है, केवल दाम्मन्नक चौपाइ का उल्लेख किया है।[2]

ब्राह्मण यति—आपने सं० १७६५ से पूर्व 'हरिवाहन चौपाई' की रचना की। इसके अतिरिक्त इनके तथा इनके कृतित्व के संबंध में अन्य सूचना उपलब्ध नहीं हो सकी।[3]

टीकम—आप ढूढाड प्रदेश के कालख ग्रामवासी थे। इन्होंने सं० १७१२ में 'चतुर्दशी चौपई' की रचना इसी ग्राम के जिनमंदिर में की थी।[4] आपकी दूसरी रचना 'चंद्रहंस की कथा' है जो सं० १७०८ में लिखी गई थी, कवि ने रचना काल इस पंक्ति में बताया है--

संवत आठ सतरा सै वर्ष करता चौपइ हुवो हर्ष।
जेठ मास अर पाखि अंधियार, जाणौ दोइज अर रविवार।

प्रारंभ-ओंकार अपार गुण; सबही अक्षर आदि,
सिद्ध ताको जप्या, आखिर एह अनादि।

बाद में कवि ने लिखा है--

टीकम तणी वीनती सहु; लघु दीघु संवारै जुलेहु।
मनधर कृपा एह जो करै, चंद्रहंस नेमिसुख लहै।
रोग विजोग न व्यापै कोई, मनधर कथा सुणै जो कोई।[5]

रचनाओं के रचनाकाल से स्पष्ट है कि आप १८वीं शती के प्रथम दशक के रचनाकार थे। चंदहंस कथा की जोशी स्यौजीराम द्वारा लिखित सं० १८१२ की प्रतिलिपि प्राप्त है।

१ अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० १०७।
२. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो भाग ३ पृ० ११९२ (प्र० सं०) और भाग ४ पृ० १७० (न० सं०)।
३. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० ४६६प्र०सं० और भाग ५ पृ० २२९ (न०सं०)।
४. अगरचन्द नाहटा—राजस्थान का जैन साहित्य पृ० २११।
५. डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल—राजस्थान के जैव शास्त्रभंडार की ग्रन्थ-सूची भाग ३ पृ० ८२-८३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्वविजय—आप तपागच्छ के प्रसिद्ध आचार्य यशोविजय के शिष्य थे। इन्होंने सं० १७२४ वसंत पंचमी गुरुवार को पूयाणी शहर में 'अमरदत्त मित्रानंद नो रास' (४ खंड ३४ ढाल ८३१ कड़ी) की रचना पूर्ण की। इसका प्रारंभ मां शारदा की बंदना से हुआ है, यथा—

पहिलुं प्रणमुं शारदा, वरदाता विख्यात,
आनंद धरी आदर करी, मया करेयो मात।

इसमें शारदा के साथ ऋषभ, शांति, नेमि और महावीर के अलावा गौतम गणधर आदि की भी बंदना की गई है। दान का महत्व बताने के लिए अमरदत्त मित्रानंद की कथा दृष्टांत स्वरूप कही गई है—

दाने दोलत पामीइं, बने सुख श्रीकार,
भावे भवियण साथ ने, देयो सरस आहार।
दान तणा परभाव थी अमरदत्त मित्रानंद,
सुख विलसी संसारना, पाम्या परमानंद।

यह कथा शांतिनाथ चरित्र से ली गई है। रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है—

वेद नयण ऋषि बिधु संख्याइ अे संवत्सर सार जी,
मास वसंत पूर्णी तिथि पंचमी उत्तम सु गुरुवार जी।
रेवती नक्षत्रे विजय मुहूर्ते बलि चोथो रवियोग जी,
निर्मल उज्वल पक्ष अनोपम शुभ मलिया संयोग जी।

गुरु परंपरान्तंगत विजयदेव > विजयप्रभ > नयविजय > जसबिजय उपाध्याय का सादर वंदन किया गया है। गुरु यशोविजय के लिए कवि ने लिखा है—

तस सीस वाचक वृन्द विभूषण दूषणरहित ते सोहे जी,
श्री जसविजय उवझाय शिरोमणि भवियण नां मनमोहे जी।[1]

चौबीसी—अथवा चतुर्विंशति जिनभास अथवा गीत का आदि—

ऋषभ जिणंद मया करी रे, दरिसन दाखो देव,
अलजों छइ मनमा घणो रे, करवा ताहरी सेव।
जिणेसर तुम स्युं अधिक सनेह।

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो भाग ४ पृ० ३४० (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञानपञ्चमी स्तुति का आदि—

पंचरूप करी सुरपति प्रभुनिं मेरुशिखर लेइ आवइंजी,
अंत—श्री जसविजय पाठक पद सेवक, तत्वविजय जयकारीजी ।[1]

तत्वहंस--आप तपागच्छीय विजयहंस> मेधाऋषि> विजय> तेजहंस> तिलकहंस के शिष्य थे। आपने उत्तमकुमार चौपइ (५१ ढाल) सं० १७३१ कार्तिक शुक्ल १३ गुरुवार को मढाहड में लिखी। इसमें दान का महत्व समझाया गया है। कवि ने लिखा है—

धन सुपात्रे दीजिये, पामी जो भवपार;
साधु ने दीजी सुझतो लाभोलच्छि अपार।
दाने रुडा दीसीये, दान बड़ो संसार;
दान थवी सुख सासता, लाभा उत्तम कुमार।

इसमें ऊपर दी गई गुरु परंपरा बताई गई है और प्रारंभिक पंक्तियाँ निम्नाङ्कित हैं—

सरसति सामणि पाय नमी, पामी वचनविलास,
मन वचन काया करी, हूँ छुं ताहरो दास।

यह रचना सकर्मण शेठ के पुत्र मोहणहरख के आग्रह पर की गई थी। कवि ने इसका रचनाकाल इन पंक्तियों में बताया है—

संवत् सतरैं इकतीसा नो काती शुदि तेरसि दिन सार,
सिद्ध योग कीयो रास संपूर्ण शुभ नक्षत्र गुरुवार।
मढाहड नगरमां सरस संबंध अे तत्वहंस कह्यो मनरंगे,
धन्यासिरि मांहि ढाल इकावनमी सुणजो सहुमनचंगे रे।[2]

तिलकचंद--खरतर गच्छ के नयरंग7 विमल विनय7 धर्ममंदिर7 पुण्यकलश> जयरंग आपके गुरु थे। आपकी एक रचना 'केशी परदेशी संबंध' (सं० १७४१, जालौर) का पता चला है जिसकी

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो भाग ४ पृ० ३३८-३४१ (न०सं०) और भाग २ पृ० २२४-२२८ और भाग ३ पृ० १२३३ (प्र० सं०)।

२. वही भाग २ पृ० २७५-२७७ (प्र०सं०) और भाग ४ पृ० ४३९-४४१ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंतिम पंक्तियों में रचना संबंधी आवश्यक सूचनाएँ हैं, अतः उन्हें ही आगे उद्धृत किया जा रहा है—

रायपसेणी सूत्र थकी रच्यो अे संबंध सुविशाल,
संवत-सतर अेकताले समें नगर जालोर मझार।
खरतर गच्छ जिनचंदसूरि राजीयें श्री जिनभद्रसूरि साष,
वाचक श्री नयरंग शिष्य सुंदरु विमल विनय मृदुभाष।
वाचनाचारिज श्री धर्ममंदिर वैरागी व्रतधार,
महोपाध्याय पदवीयें परगडा पुन्यकलश सिरदार।
तस पाटे पाठक जयरंग भला तस चरणे चंचरीक,
तिलकचंद कहे अे आपने श्री संघ ने गंगलीक।[1]

तिलकविजय--आप तपागच्छ के लक्ष्मी विजय के शिष्य थे। आप की रचना *बारव्रत संज्झाय* (१२ ढाल) सं० १७४९ से पूर्व ही लिखी गई थी। कुछ पंक्तियाँ उद्धरण स्वरूप आगे दी जा रही हैं--

जी हो पहिला समकित उच्चरी लालापच्छे व्रत उच्चार।
जी हो कीजें लीजे भवतणोला लाहो हरष अपार।
सुगुण नर। अेवो अे व्रतवार, जिम पामो भवपार सु०।

अंतिम पंक्तियों में गुरु परंपरा दी गई है; यद्यपि इसमें रचनाकाल का उल्लेख नहीं है परंतु यह रचना विजयप्रभ के सूरित्वकाल में हुई है जिनका स्वर्गवास सं० १७४९ में हुआ था और वे सं० १७१० में आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुये थे अतः यह रचना भी इन्हीं तिथियों के मध्य किसी समय हुई होगी। संबंधित पंक्तियाँ देखिये—

तपगछनायक दायक व्रततणा श्री विजयप्रभ गणधार, सो०
वाचक लषिमीविजय सुपसाय थी, तिलकविजय जयजयकार, सो०।[2]

इसमें बारह व्रतों का माहात्म्य बताया गया है। यह रचना अप्रगट संज्झाय संग्रह' में प्रकाशित है।

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो भाग २ पृ० ३६१, भाग ३ पृ० १३३२ (प्र०सं०) और भाग ५ पृ० ३८ (न०सं०)।
२. वही भाग ३ पृ० १३४२-४३ (प्र०सं०) और भाग ५ पृ० ७२-७३ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिलक सागर – सागरगच्छीय राजसागर > वृद्धिसागर > कृपासागर के शिष्य थे। आपने 'राजसागर सूरि निर्वाण रास' राजसागर सूरि के निर्वाण वर्ष सं० १७२। के तुरन्त बाद लिखा था। राजसागर सूरि के निर्वाण पर हेमसौभाग्य आदि के रास भी लगभग उसी समय के हैं। यह रचना ऐतिहासिक गुर्जर काव्य संचय में प्रकाशित है। संचय के सम्पादक मुनि जिनविजय का विश्वास है कि यह रचना सूरि जी के निर्वाण के पश्चात् दो-तीन महीने के अन्दर ही रची गई होगी।

इस रास से सूरि जी के सम्बन्ध में कई तथ्यों का पता चलता है। उनका जन्म संवत् १६३७, उन्हें पंडितपद की प्राप्ति सं० १६७९ में हुई। आचार्य पद पर इनकी प्रतिष्ठा सं० १६८६ में और स्वर्गवास सं० १७२१ में हुआ। गुर्जर प्रदेश के सिंहपुर ग्रामवासी साह देवीदास की पत्नी कोड़ा की कुक्षि से आपका जन्म हुआ, लब्धिसागर से विद्याध्ययन किया और दीक्षित हुए, नाम मुगति सागर पड़ा। सं० १६८६ में विजयसूरि ने इन्हें अपना पट्टधर बनाया और इनका नाम राजसागर सूरि पड़ा। दिल्ली दरबार में इनका अच्छा मान-सम्मान था। सम्राट् जहाँगीर ने इन्हें सरोपा भेट किया था।

इस रास का प्रारम्भ इन पंक्तियों से हुआ है—

वर्द्धमान जिनवर प्रवर, वर्द्धमान गुणगेह,
सकल लोकबन सींचवा, अवल अषाढ़ो मेह।

राजसागर के आचार्य पद पर प्रतिष्ठित होने से सम्बन्धित पंक्तियाँ निम्न हैं—

सारद मात मया मुझ कीजइ, दीजइ वचन रसाला रे,
वाचक मुगतिसागर गुणमाला, गाता मंगल माला रे।
संवत सोल छआसीआ वरषे, हरषे जेठह मासे रे,
परषे शनि अनुराधा दोगइं, सरखे सूर प्रकासइ, रे।
देवविजय सूरीसर मोटा मोटूं कीधी काम रे,
आचारज पद देइ वाचकनि, राजसागर सूरि दीधू नाम रे।[1]

आचार्य पदवी प्राप्ति के पश्चात् आपने अहमदाबाद, खंभात, सूरत, बुरहानपुर आदि स्थानों में विहार करके श्रावकों को उपदेश

१. सं० मुषि जिनविजय—ऐतिहासिक गु० काव्यसंचय पृ० ५०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिया। पाटण और राधनपुर के धर्मसंघों ने आपके सत्संग एवं प्रवचन का लाभ उठाया। ८४ वर्ष की आयु में आपने निर्वाण प्राप्त किया। आपके जीवन की विभिन्न उपलब्धियों और तत्सम्बन्धी तिथियों का रास में उल्लेख है, यथा—

वरस अट्ठावीस जनम थी, पूरे थये प्रसंग।
पण्डित पदवी भोगवी चउदवरसलगिचंग।
उपाध्याय पदवी तणी सात वरस नी सिद्धि।
वरस पात्रीस लगि भोगवी आचारिज पद रिद्धि।
बरस चउरासी आउनी अंति घणी प्रसिद्धि।
लख चोरासी जीवनि खिमति खामण किद्धि।

इनकी मृत्यु पर निर्वाण आयोजन शांतिदास और अन्य लोगों ने मिलकर किया। वृद्धि सागर सूरि के सूरिकाल में इसे तिलकसागर ने लिखा। इसकी अन्तिम पंक्तियाँ अग्रलिखित हैं—

इंद कुंद दिन ऊजलू रे, मन नहि मयल लगार,
तिलकसागर सूर गिरि लंगि रे, जीवयो गणधार।[1]

तिलकसूरि—आप भीम सूरि के शिष्य थे। आपने बुद्धिसेन चौपइ की रचना सं० १७८५ जगरोटी (चंदनपुर हीरापुरी) में की।[2] आपकी गुरु परम्परा का विस्तृत उल्लेख मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने किया है और बताया है कि ये विजयगच्छीय क्षेमसूरि>पद्मसूरि>कल्याण-सागरसूरि>सुमतिसूरि>विजयसागरसूरि>भीमसूरि के शिष्य थे। इस परंपरा का उल्लेख तिलकसूरि ने अपनी रचना में स्वयं किया है, विववण आगे प्रस्तुत है--

बुद्धिसेन चौपइ (६० ढाल सं० १७८५ कार्तिक शुक्ल १२ गुरुवार, जगरोटी) इसके अन्त में दी गई गुरुपरम्परा ऊपर दी गई है। कवि ने लिखा है—

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो भाग २ पृ० १८३-१८४ (प्र० सं०), भाग ३ पृ० १२११ (प्र०सं०) और भाग ४ पृ० ३०६-३०७ (न० सं०)।

२. श्री अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० ११४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विजैकरण विजैराज जी रे, जिण कीधी गच्छनी थाप,
सब गच्छ मांहे दीपतो रे, दिनदिन बधतो रे तेज प्रताप।
धर्म धुरंधर धर्मदास जी रे, नाम सदा जयवंत,
षेमसूरि ज प्रगटो रे, अकबर रे आवी पाय नमंत।

इसी प्रकार भीमसूरि तक का उल्लेख करके कवि ने अपनी पूर्ण गुरु परम्परा का वर्णन किया है। रचनाकाल इस प्रकार कहा गया है—

संवत सतरै पच्चासींये रे कातिग मास वषांण।
शुकल पक्ष तेरसि भली शुभवारि भलौ गुरुजांण।
जगरोटी में दीपतो रे श्री वीर जिणंद,
चंदणपुर महिमा घणी रे पदपंकजरे सेवै सुरनर वृन्द।
हीरापुरी सुहामणो रे सुषसांता को थांन,
श्रावक तौ सुषीया वसै धनवंता रे धर्म तणे परिमाण।
चौपई तो बुधसेण तणी रे रची ढाल रसाल।
तिलकसूरि ते वर्णवीरे मति सुणँता रे होज्यो हर्ष विशाल।[२]

तेजपाल—लोकागच्छीय (गुजराती) तेजसिंह के प्रशिष्य और इन्द्रजी के शिष्य थे। इन्होंने 'रत्नपचीसी रतनचूड़ चौपई' (२५ ढाल ४७५ कड़ी) सं० १७३५ भाद्र १३ रविवार को अहमदपुर में पूर्ण की।

आदि--प्रेम धरी प्रणमुं प्रभु आदीश्वर अरिहंत,
श्री शारद मुझनइ सदा आपो बुद्धि अेकंत।
दान शील तप दाखीया भावसहीत भल भाय,
सरीखा छइं तउ पणि सुणो, दान सदा सुखदाय।

अर्थात् यह रचना दान के दृष्टांत स्वरूप रची गई है। रचनाकाल देखिए--

संवत आँख गुण सुंदरु, मकराकर हो शशि वर्ष वदीत,
तेरसि नभ मासइ तिहाँ, अरिमदपुरी हो रच्यो वार आदीत।[३]

२. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो भाग २ पृ० ५५८-५६० (प्र०सं०) और भाग ५ पृ० ३२०-३२२ (न०सं०)।
३. वही भाग ५ पृ० १०-११ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसके अंतिम छंदों में गुरुपरंपरा का निम्नवत् उल्लेख मिलता है—

गुजराति लोकागच्छ गाजतो, प्रभु तेजसिंह हो गणि अधिक प्रताप।
दिनदिन श्री गुरु दिल सूधइ सही समरइ हो तस नासइ संताप।
गुणनिधि गिरुआ श्री गुरुपूज्य इन्द्रजी हो सदा पूज्य पवीत्र,
अनुत्तर तेज कहइ इमे चतुर सुणो हो रत्न चरीत्र।

अमरसेन वयरसेन रास (४ खण्ड, सं० १७४४ माधव (वैशाख) शुक्ल ३, अहिमदपुर)

आदि—प्रथम जिणेसर प्रणमी ये, नाभि नरेसर नंद,
प्रणमु निजगुरु प्रेम सुं, सुरपति जी सुखकंद।

दान के महत्व को दर्शाने वाली यह रचना भी है, यथा—

दान सुपात्रे देयतां, दालिद्र नासइ दूरि,
दुख वियोग मिटइ दान थी हरिस्त्री बसइ हुजूर।
अमरसेन वयरसेन अति आप्यो दान उदार,
संपति लही भवि सांभलउ, वारु कथा विस्तार।
सोहग स्त्री वयरसेन नी प्रवरशील प्रतिपाल,
कवि चोजइ कवीता कहइ रमणी चरित्र रसाल।

रचनाकाल—
संवत वेद युग मुनि शशी माधव मास रे तृतीया शुक्ल सार।
अहिमदपुर आणंद मां कर्यो, रास रंगि रे प्रकाश जयकार।

अंत—पडिकमणा सूत्र वृत्ति देखिनइ, पुष्पमाला थी रे अेह जोई प्रबंध,
कविता चातुरी विस्तर करी श्री गुरु सांनिध रे अे रचियो संबंध।

× × ×

प्रवर पंडित पूज्य इन्द्रजी स्तव्यो चउथो रे खंड शिष्य तेजपाल,
भविक सुणो भल भाव सुं, अतिसुंदर अेकादशमी अे ढाल।[1]

इसके अतिरिक्त तेजपाल की एक अन्य कृति 'थावच्च्या मुनि संज्झाय' का भी उल्लेख तो मिलता है किन्तु उसका विशेष विवरण एवं उद्धरण प्राप्त नहीं हो सका।

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो भाग २ पृ० ३०५; भाग ३ पृ० १२९३-९४ (प्र० सं०) और भाग ५ पृ० १०-१२ (न०सं०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेजमुनि लगता है कि १८वीं विक्रमीय में लोकागच्छ में दो तेजपाल हो गये हैं। प्रस्तुत तेजपाल या तेजमुनि कर्मसिंह > केशव 7 महिराज > टोडर > भीमजी के शिष्य थे। मरुगुर्जर (हिन्दी) में इनकी कई रचनाएँ प्राप्त हैं जिनका विवरण आगे दिया जा रहा है। रचनाओं से उपरोक्त गुरुपरंपरा की पुष्टि होती है अतः यह स्पष्ट होता है कि ये इंद्रजी के शिष्य तेजपाल से भिन्न थे। इन दोनों के अतिरिक्त अंचलगच्छ में एक अन्य तेजसिंह हो गये हैं उनका भी संक्षिप्त विवरण आगे दिया जा रहा है।

प्रस्तुत तेजपाल या तेजमुनि ने 'चंदराजा नो रास' की रचना सं० १७०७ कार्तिक दीपावली सोमवार को राणपुर में चार खण्डों में पूर्ण की थी। रचना का आदि—

श्री जिनशांति नमुं सदा, सोलसमों जिनचंद;
असुख व्यथा आपद हरें, आपें परमाणंद।

इसमें राजा चंद के शील का गुणगान किया गया है, यथा—

सील प्रभावे सुख लह्यो चंद नरेसर राय;
धुर छेहां लागि सांभलो, चरित कहूँ सुखदाय।

राजा चंद ने सपरिवार-गुणावली, प्रेमला लच्छि, प्रधान सुमति और पुत्र शिवकुमार तथा पुत्री शिवमाला— संयम का पालन किया—

अे षट् जीवे संयम लीधो जिनवर जी ने पासे रे,
बात थई विमलपुरे, चंद राजा संजम लीधो रे।

गुरुपरंपरागत कवि ने लूकागच्छ के रूप 7 जीव 7 रूपसिंह 7 दामोदर 7 कर्मसिंह 7 केशव > महिराज > टोडर > और भीम जी का नाम स्मरण किया है।

रचना स्थान और रचनाकाल संबंधी पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं--

सोरठ देस देसा सिर सोहे, सहु देसां नो टीको रे,
नगर भलो गढ़ कोट संयुक्तो, नामे राणपुर नीको रे।
संवत सतरे सइ साते कार्तिक पर्व दीवाली वारु रे,
श्वेत पक्ष द्वितीयाइ सोहें, सोमवार छे वारु रे।
चंद प्रबन्ध सरस में कीधो, चोथउखण्ड उदारो रे,
भणसे गुणसे भाव स्युं, ते लहसी जयजय कारो रे।[1]

1. मोहनलाल दलीचन्द देसाई--जैन गुर्जर कवियो भाग ४ पृ० १४९-१५१ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आपकी दूसरी रचना 'जितारीराजा रास' (१५ ढाल सं० १७३४ वैशाख कृष्ण २ बुधवार सिरोही) रत्नसार नो रास के साथ बालमुनि कृपा चंद द्वारा प्रकाशित है।

आदि—प्रात ऊठी प्रणमुं सदा श्री जिनपास जिणंद,
तास पसाइं पामीइं सुखशांति आणंद।
मनि समरुं हुं सरस्वती आपइ अमृत वाणि,
सीस नमामुं निजगुरु गुणमणि केरा खांणि।

× × ×

शील तणां गुण वर्णवुं जे जग मांहि सार,
जीतारी नृप की कथा अति सुंदर सुखकार।

इसमें भी वही गुरुपरंपरा बताई गई है जो प्रथम रचना में बताई गई थी। इसलिए ये दोनों रचनायें एक ही तेजमुनि की हैं। रचनाकाल निम्नवत् है--

संवत सतर रामवेद संख्या निर्मल बइसाख मास,
बदी द्वितीया बुधवार वदी तो, सिरोही नयर उल्हास।

इनकी तीसरी रचना 'थावच्यानी संज्झाय' ३ ढालों में रचित है और इसे साराभाई नवाब ने जैन संज्झाय संग्रह में प्रकाशित किया है। इसमें भी उपरोक्त गुरुपरंपरा बताई गई है।

श्री जिनशासन मांहे सुंदरु रे ऋषि भीम जी सुखकार हो,
तेजपाल भणे भाव सुं रे, थावच्चो अणगार रे।
साधु सोभागी थावच्यो वंदीये रे।[1]

पहले तेजपाल के नाम जिस थावच्या संज्झाय का उल्लेख श्री देसाई ने किया है, संभवतः वह यही रचना हो, परन्तु भ्रम का पूर्णतया निराकरण तो दोनों के पाठ मिलान पर ही संभव है।

तेजसिंह—आंचलगच्छीय ज्ञानमेरु के प्रशिष्य और सुमतिमेरु के शिष्य थे। इन्होंने सं० १७३२ में नेमचरित सवैया की रचना की।[2]

---

१. देसाई, भाग २ पृ० १३०-१३४; भाग ३ पृ० ११८४-८५ (प्र०सं०)।
२. उत्तमचन्द कोठारी कृत रचना सूची--(प्राप्ति स्थान पार्श्वनाथ शोध संस्थान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आपकी कृति नेम राजीमती नो बारमासो (सं० १७६६ पौष शुक्ल १२ रविवार) कच्छ देश में राजा प्रागराय के राज्य में हुई। यह प्रकाशित है।[1]

उत्तमचंद कोठारी ने नेमचरित सवैया का कर्त्ता तेजसिंह को बताया है। किन्तु गुरुपरंपरा नहीं दी है इसलिए दोनों एक ही व्यक्ति हैं या भिन्न-भिन्न हैं-यह निश्चय नहीं है।

तेजसिंह गणि--लोंकागच्छ के रूपऋषि > जीव जी > वरसिंह > जशवंत > रूपसिंह > दामोदर > कर्मसिंह > केशव जी के शिष्य थे। इन्होंने दृष्टांतशतक नामक संस्कृत पद्यग्रंथ की रचना की है जिसमें उपरोक्त परंपरा बताई गई है। आपने नेमनाथ स्तवन सं० १७११ बडोदरा में लिखा। उसका आदि--

सद्गुरु ने चर्णे नमी समरुं गौतम स्वामि,
श्री गुरु नी सेवा करुं केशव जी शुभनाम।
तास पसाये गाइसु बीवसमो जिनराय,
सायल बरणे सोभतो, नेम प्रभू सुखदाय।

रचनाकाल--संवत इंद्र अश्व ससी सही दीवो सो प्रत्नसार अे,
श्री नेम प्रभू जी नी स्तुति कीधी, संघ सहु जयजयकार अे।

आपने 'ऋषभ जिन स्तवन' सं० १७२७ चैत्र शुक्ल १५, जालौर में पूर्ण किया।

संवत सतर सतावीसे चैत्र मासे हो तिथि पूनम जांण,
श्री पूज्य केसव नाम थी गणि तेजसिंघ हो सदा कोडि कल्याण।

इनके अतिरिक्त आपने शांति जिनस्तवन सं० १७३३, बुरहानपुर, वीर स्तवन सं० १७३३; २४ जिनस्तवन सं० १६३४ रतनपुरी, आंतरा नुं० स्तवन १७३५ नांदस और सीमंधर स्वामी स्तवन सं० १७४८ वीरमगाम में लिखा है।

शांति जिनस्तवन का रचनाकाल—

संवत सतर तेत्रीसा संवछर बुरहानपुर चोमास अे,

---

1. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो भाग २ पृ० ४६५ (प्र०सं०), भाग ५ पृ० २५७ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रचना में भाषा और छन्द प्रयोग शिथिल है। २४ जिन स्तवन की अंतिम पंक्तियाँ देखें--

संवत सतर चोत्रीसा वर्षे रतनपुरी माहे हरषे रे,
मुहता कोठारी ने साह सवाइ संघ सकल सुखदाई रे।
गणि तेजसिंह जी जिनगुण गाया, सहसमल जी कराया रे।

आंतरा नुं स्तवन का आदि—

आदि अनादि अधुना छे, अरिहंत धरु अभिधान।

रचनाकाल—संवत सतर पेतीस संवच्छर नांदस में चोमास अे,
कोटारी ठाकुरसी नी वीनती कीधी सुत उल्लास अे।[1]

इन्होंने अनेक स्तवन लिखे हैं जिनमें इनकी भक्ति भावना अभिव्यक्त हुई है परन्तु अभिव्यक्ति अशक्त है।

त्रिलोकसिंह--गुजराती लोंकागच्छ के जयराज जी आपके गुरु थे। इन्होंने धर्मदत्त धर्मवती चौपाई (४ खंड ३० ढाल सं० १७८८ आषाढ़ कृष्ण १३ सोमवार) लिखी है जिसकी प्रारंभिक पंक्तियाँ आगे दी जा रही हैं--

प्रथम नमुं चोबीस जिन तारण तरण जिहाज,
भविजन समरे भाव सुं सीझे वांछित काज।

दान की महिमा बताते हुए कवि ने लिखा है--

दान सील तप भावना चार सरिस अधिकार,
पिण इण जाग्या दान नो अति मोटो उपगार।
दाने दोलति जिम लही चंद्रधवल महाराय,
तिम वलि धर्मदत्त ग्रहपति, ते सुणज्यो चितलाय।

रचनाकाल—संवत सतरे अठयासी, आसाढ़ महीने विमासी हो,
नगर नगीनो नीको तिहां अविचल राज हिंदू को।

यह रचना बखतसिंह के राज्य में लिखी गई थी। कवि ने कहा है---

बखतसिंघ जी तिहां राजा, बाजे नित नौबत बाजा,

---

१. मोहनलाल दलीचंद देसाई--जैन गुर्जर कवियो भाग २ पृ० ३००-३०२, भाग ३ पृ० १२९१-९२ (प्र०सं०) और भाग ४ पृ० १९०-१९२ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुरुपरंपरा--लुंकागच्छ गुरु राजे, गुजराती अधिक दिवाजा,
जयराज जी गछनायक आचारिज बहुगुण लायक।
तास तणे परभावे मुनि तिलोकसिंह गुणभावे।
× × ×
वदि तेरस शशिवारे, संपूर्ण करी अधिकारा।[1]

दयातिलक—ये खरतरगच्छीय रत्नजय के शिष्य थे। इन्होंने सं० १७३६ में 'धन्नारास' (१७ ढाल) बनाया।[2]

धन्नारास में कवि ने उसका रचनाकाल इस प्रकार बताया है—

संवत मुनि गुण रिषि ससी काती नौ चौमास,
तिण दिन पूरी मइं करी अे चौपइ उल्लास।

इस पाठ से रचनाकाल १७३७ सिद्ध होता है, नाहटा जी ने क्यों १७३६ लिखा इसका प्रमाण नहीं मिलता; मोहनलाल दलीचंद देसाई ने रचनाकाल सं० १७३७, कार्तिक बताया है।[3] इसका प्रारम्भ महावीर और सारदा की वंदना से हुआ है, यथा--

वीर जिनेसर पाय नमी, प्रणमी निजगुरु पाय,
हंस गमणी चित्त में धरी, कहिसि कथा चितलाय।

इसमें दान की महिमा बताई गई है —

दान सील तप भावना, धरम ना मारग अेह,
इहां तउ दान बखाणिस्युं, दइणहार सिवगेह।

गुरु रत्नजय की वंदना करता हुआ कवि कहता है--

सकल विद्या करि सोभता, वाचक पदवी धार,
श्री रतनजय मुझ गुरु भला, भविक कमल दिनकार।

धन्नारास की अन्तिम पंक्तियों में भी दान देने पर जोर देते हुए दयातिलक लिखते हैं —

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई— जैन गुर्जर कवियो भाग २ पृ० ५८१-५८२ (प्र०सं०) और भाग ५ पृ० ३४१ (न०सं०)।
२. अगरचन्द नाहटा--परंपरा पृ० १०६।
३. मोहनलाल दलीचन्द देसाई--जैन गुर्जर कवियो भाग २ पृ० ३५०-३५१ और भाग ३ पृ० १३२५ (प्र०सं०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तस परसाद में करी अेह कथा परसिध,
दयातिलक कहे जे सुणै तिया घरि अविचल रिद्धि।
सालिभद्र घना पारइ दीजइ इणपरि दान,
परभव जाता ते लहइ अविचल कोडि कल्याण।[1]

इनकी अन्य दो कृतियों, भवदत्त भविष्यदत्त चौपई और विक्रमादित्य चौपई का भी उल्लेख मिलता है, जिनमें से प्रथम की रचना सं० १७४१ ज्येष्ठ शुक्ल ११ फतेहपुर में पूर्ण हुई, अन्य विवरण और उद्धरण उपलब्ध नहीं हुआ, दूसरी रचना का तो रचनाकाल भी उल्लिखित नहीं है।

दयामाणिक्य –खरतरगच्छीय जिनचंद्र सूरि >क्षमासमुद्र>भावकीर्ति>रत्नकुशल के शिष्य थे। इन्होंने रामचन्द्र की मूल कृति पर आधारित 'रामविनोद सारोद्धार' की रचना सं० १७९९ पौष शुक्ल ११ को पूर्ण की। इसकी अन्तिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं––

अे मांन तणौ परमांन सारंगधरहुं सारिया,
कहो जुं अे अनुमान, रामविनोद विनोद सुं।

यह वैद्यक की रचना है। सारंगधर की आयुर्वेदीय पद्धति पर आधारित है। इसमें गद्य का प्रमुखतया प्रयोग किया गया है, किन्तु गद्य का उद्धरण उपलब्ध नहीं है। रचना के अन्त में लिखा है—

इति रामविनोद वैद्यक ग्रन्थ सरोद्धार सम्पूर्ग सं० १७९९ शाके १६६४ पौष शुक्ल ११ कृ० ख० म० जिनचंद्र सूरि शिष्य वाचक क्षमासमुद्र शिष्य वाचक भावकीर्ति शिष्य पंडित रत्नकुशल मुनि शिष्य पंडित दयामाणिक्य मुनिना अेषा अजनि श्री कासमाबजार मध्ये।[2]

मोहनलाल दलीचंद देसाई ने जैन गुर्जर कवियो के प्रथम संस्करण में इसे खरतरगच्छीय पद्मरंग के शिष्य रामचन्द्र की रचना बताया था किन्तु नवीन संस्करण में इसको दयामाणिक्य की कृति कहा गया है। रामचन्द्र की मूल रचना का विवरण जैन गुर्जर कवियो के चौथे भाग पृ० १७१ पर स्वतंत्र रूप से दिया गया है।

---

१ मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो भाग ५ पृ० १८-१९ (न० सं०)।

२ वही, भाग ३ पृ० १२९९ (प्र० सं०) और भाग ५ पृ० ३६५-३६६ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दलपति--आपकी एक रचना 'बारमास' मरुगुर्जर में उपलब्ध है जिसकी भाषा में मरु का प्राधान्य है। यह जैन रचनाओं की भाँति ढालों में निबद्ध है और इसके प्रतिलिपिकार लब्धिसागर जैन हैं, किंतु यह कवि जैनेतर है।

बारमास का प्रारंभ इन पंक्तियों से हुआ है–

तात चरण प्रणमी करी, आयो पदमण पास
सीख दीयै ससनेह सुं, पाठवि प्रेम प्रगास।
सोल वरस री कामिनी, वीस वरस प्रीय वेश,
घर घरणी मूंकी करी क्युं चलो परदेश।

इसमें बारह महीनों में विरहिणी का विरह भाव वर्णित है। कार्तिक का विरह वर्णन देखिए--

काती विरह क वाण रा ताय उर लागो तीर,
प्रीउ जिण रा परदेश में, जकड़ी विरह जंजीर।

इसकी अन्तिम पंक्तियाँ अग्रलिखित हैं –

सीख करी ससनेह सुं पीउ चाल्या परदेश,
ढाल भणी अे तीसरी, दलपति वयण विशेष।

यह विप्रलंभ प्रधान सरस रचना है।

दयासार--आप जिनचंद्र सूरि के प्रशिष्य और धर्मकीर्ति के शिष्य थे। आपने आराम शोभा चौपइ (सं० १७०४, मुलतान) और आराम-नंदन पद्मावती चौपइ, शीलवती रास (सं० १७०५ फतहपुर), अमरसेन वयरसेन चौपइ (सं० १७०६, सीतपुर, विजयादसमी), और इलापुत्र चौपइ (सं० १७१० सुहावानगर) की रचना की। सिन्धप्रांत में इनका निवास अधिक हुआ।[२]

कवि ने अपनी रचनाओं में अपना नाम दयासार ही लिखा है किन्तु मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने दयासागर लिखा है। प्रमाण स्वरूप इलापुत्र चौपइ से उदाहरण प्रस्तुत हैं--

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो भाग ३ पृ० १२७१ (प्र०सं०)।

२. अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० १०७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वाचक धरमकीरति वउदावे, सीस तासु सुभ भावइ जी;
दयासार दिल चोखइ गावइ, मुनिवर गुणमनि उमाहइ जी।

गुरु वंदन के अलावा उस कृति का रचनाकाल बताते हुए भी वह अपना नाम दयासार लिखते हैं, यथा—

संवत सतर दाहोतर वरसइ, नभसुदि नवमी दिवसइ जी,
साधु संबंध कहता मन सरसइ, दयासार हरसइ जी।

अर्थात् इलापुत्र चौपइ सं० १७१० भादो शुक्ल नवमी को ११ ढालों में पूर्ण हुई थी। इसका प्रारंभ इस प्रकार हुआ है—

प्रणमी पारसनाथ नइ, प्रणमी श्री गुरु नाम;
सांनिधकारी समरता कामित पूरइ काम।
विविध धरम जिन वरणवइ, पिण भाव बिना सहु फोक;
भोजन स्वाद न को भजइ, लूण बिना जिम लोक।
नाना विधनाटक करत पाम्यउ पंचम न्यान,
इलापुत्र अणगार जिम धर्मउ भाव मन ध्यान।[1]

इसमें दान, शील, तप के ऊपर भावना का महत्व दर्शाया गया है। अन्य रचनाओं का उद्धरण प्राप्त नहीं हुआ।

दशरथ निगोत्या—आपने सं० १७१८ में 'धर्मपरीक्षा भाषा'[2] की रचना की। इसकी प्रति सं० १७१९ की लिखित प्राप्त है।

दानविजय I—आप तपागच्छीय विजयदान सूरि के प्रशिष्य और तेजविजय के शिष्य थे। आपने 'सप्तभंगी गर्भित वीर जिनस्तवन, चैत्री पूर्णिमा स्तवन अथवा देववंदन, मौन अेकादशी देववंदन; १४ गुणस्थान स्वाध्याय, कर्म संज्झाय और पडिकमण चौपइ तथा चौबीसी आदि की रचना की है। श्री देसाई ने ललितांगरास, कल्याणकस्तव को भी इन्हीं की रचना जैन गुर्जर कवियो के प्रथम संस्करण में बताया था, किन्तु नवीन संस्करण के संपादक की जयंत कोठारी ने इन रचनाओं को अन्य दानविजय की बताया है। इसलिए इनका विवरण

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो भाग ३, पृ० ११४३-४४ (प्र०सं०) और भाग ४ पृ० १४६-१४७ (न० सं०)।

२. सम्पादक कस्तूरचन्द कासलीवाल—राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थसूची भाग ४ पृ० १३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दूसरे दानविजय के साथ किया जायेगा। पहले प्रथम दानविजय की रचनाओं का संक्षिप्त विवरण-उद्धरण दिया जा रहा है।

सप्तभंगी गर्भित वीर जिनस्तव (सं० १७२७ वैशाख) का आदि--

सिद्ध सवे प्रणमी करी परमानंद स्वरूप,
परमेष्ठी पांचे सदानिहंश्चेसु अविरूप।

रचनाकाल--इम वीर जिणवर विश्वहितकर गाइउ जन शंकरो,
वैशाख मासि अचल लोचन संयम भेद संवत्सरो।

गुरु—श्री तपगछ राजा बहुत दिवाजा विजयराज सूरीसरो,
तस राजे थुणिऊं वीर सामी दानविजय कवि सुखकरो।[1]

चैत्री पूर्णिमा स्तव अथवा देववंदन का आदि—

नाभि नरेसर वंश चंद मरु देवी माता,
सुररमणी जस जास गाइ अवदाता।
× × ×
आदीसर प्रभुतणा अे प्रणमत सुरासुर वृंद;
मन मोज्ज मुख देखता दोन मिटे दुख द्वन्द।

अंत—चैत्री ऊछव जे करे ते लहइ भवदुख भंग रे, अे;
श्री विजयराज सूरीसरु दान अधिक उछरंग रे।

मौन अेकादशी देववंदन के संबंध में भी जयंत कोठारी शंका करते हैं किन्तु स्पष्ट आधार न पाकर इसका कर्त्ता इन्हें मानते हैं। इसकी प्रारंभिक पंक्ति यह है--

सकल नगर सिणगार गजपुरवर नयर;
राय सुदर्शन तास नारि देवी जिसि अपछर।

अंत--श्री न्यान कल्याण इणि परिकरता भव भय संकट भाजे;
ते नमि जिनवर प्रणमों प्रेमें, दान सकल सुख काजे।[2]

यह रचना देववंदन माला और चैत्य आदि संज्झाय भाग ३ में प्रकाशित है। कर्म संज्झाय (९ कड़ी) इस छोटी रचना के कर्त्ता भी

१. मोहनलाल दलीचंद देसाई—जैन गुर्जर कवियो भाग ४ पृ० ३७४ (न०सं०)।
२. वही भाग ४ पृ० ३७४-३७७ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यही हैं यह कहना कठिन है। दान छाप होने से इन्हीं की रचना समझा जाता है। इसकी अंतिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं--

दोश न दीजे देव ने रे करम वीरवणा होय;
मुनि दान कहे जग जीवड़ा रे धरम सदा सुखजोय रे।[1]

१४ गुण स्वाध्याय--(सं० १७४४ धनतेरस, रविवार) का आदि--

चन्द्रकला जिम निर्मली भगवती जिनमुख वास;
प्रणमी सरसति सामिणी, देज्यो वचन विलास।
गुण ढांणा चौदस तणो विवरी कहिसुं विचार,
सावधान थइ सांभलो, भविगण नि उपगार।

रचनाकाल--संवत सत्तर चोमालीस अश्विनी धन्नतेरस दिने सूर्यवारि,
चउद गुण ढाणनी बेलडी नीपनी, काउसग ध्यान वि अे संभारि।

पडिकमण चौपइ सं० १७३० आदि--

श्री तेजविजय कविपद अणसुरी पडिकमणानी सही खपकरी;
नाम थापना द्रव्यनि भाव, अनुपऊँग उपयोगी भाव।

रचनाकाल--

संवत् १७ संजम मोहनीय ढाय ३०, श्री विजयदान सूरीसर राय;
पंडित तेजविजय नो सीस, धनविजय कवियण सुजगीस।

चौबीसी-आदि--अकलपुरुष आदीसरु, जे जंगम सुरतरु सार, वाल्हा।
अंत--दान विजय प्रभु वीर जी रे, समरुं ऊंगत सूर।[2]

दानविजय II--आप तपागच्छीय विजयराज के शिष्य थे। इन्होंने दानदीपिका नामक कल्पसूत्र की टीका (संस्कृत) अपने शिष्य दर्शनविजय के लिए लिखी। अष्टापद स्तव और ललितांगरास इनकी मरु-गुर्जर की रचनायें हैं। कल्याणकस्तव और चौबीस जिन स्तुति भी इन्हीं की कृतियाँ समझी जाती हैं, अतः आगे इनका परिचय दिया जा रहा है।

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई--जैन गुर्जर कवियो भाग ५ पृ० ४०३-४०४ (न०सं०)।
२. वही भाग २ पृ० ४४५-४४७; भाग ३ पृ० १३८८-९२ (प्र०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अष्टापद स्तव-(सं० १७५६ वारेज) की अंतिम पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं-

संवत सतर ने वरस छपने, रही वारेज चौमास;
ऋषभ शांति जिनराज पञ्चे स्तवन रच्युं उल्लास।
तपगच्छपति श्री विजयराज सूरि तस पद सेवाकारी,
दानविजय कहे संघ ने होजे, अे तीरथ जयकारी रे।

ललितांगरास—(२७ ढाल ६८९ कड़ी सं० १७६१ मागसर कृष्ण १० रविवार, जंबूसर)

आदि-सकल कुशल कमला सदन, वदन कांति जिमचंद,
इन्द्र नील सम रुचिर तनु, प्रणमुं पास जिणंद।
कल्पलता कवि लोक ने करुणा कोमल चित्त;
सुखदाता श्रुत देवता, नमीइं सरसति नित्त।
श्री विजयराज सूरि वंदीइ, मुझ गुरु महिमा निधान
अधिक सरस अमृत थकी, जस गुण कथा विधान।

यह रचना भावदेव विरचित पार्श्व चरित्रपर आधारित है, यथा-

भावदेव सूरीश्वर निर्मित जिनपार्श्व चरित्र रे,
तेह तणे छे पहिले सर्ग, अे संबंध पवित्र रे।
तेह विलोकी रास रच्यो अे, धर्म पक्ष नो वारु रे;
सरसी अेह कथा छे सहिजे, रचना तो मतिसारु रे।

रचनाकाल और स्थान —

सत्तर से इकसठिं मागसिर, वदि दसमी रविवार रे,
श्री विजयमान सूरीश्वर राज्ये, रच्यो अे जयकार रे।
श्री जंबूसर नगर अनोपम, जहाँ पदम प्रभदेव रे;
श्रावक बहु तिहां समकिवता सियरे देवगुरु सेव रे।

कल्याणक स्तव (सं० १७६२, सूरत) आदि —

निज गुरु पय प्रणमी ने कहिस्युं कल्याणक तिथि जेह,
चयवन, जनम व्रत ज्ञान मुगति गति, पंचकल्याणक अेह।

अंत में रचनाकाल इन पंक्तियों में कहा गया है--

संवत सतर बासिठा वरसिं सूरत रहि चोमास रे,
कल्याणक तिथि तवन रच्युं अे, आणी मन उल्लास रे।
श्री विजयराज गुरु चरण निवासी, दानविजय उवझाय रे,
इम कहे कल्याणक तप करतां, ऋद्धि वृद्धि सुग थाय रे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चौबीस जिन स्तुति, आदि--

श्री ऋषभ जिणेसर केसर चरचित काय,
त्रिभुवन प्रतिपालें, बालक ने जिम माय।

अंत--श्री विजयराज सूरि चरण कमल सुपसाय,
कहे दान विजय इम मंगल करयो माय।[1]

जैन गुर्जर कवियों के प्रथम संस्करण में तेजविजय शिष्य धनविजय की रचनाओं के साथ इनका घालमेल हो गया था। नवीन संस्करण में उसे सुधारने का प्रयास किया गया है किन्तु अभी भी निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

दामोदर--अंचलगच्छ के दामोदर कवि ने सं० १७५६ में 'रसमोद श्रृंगार' नामक ग्रंथ लिखा। पता नहीं चला कि इनका ग्रंथ संस्कृत भाषा में है अथवा मरुगुर्जर में। धर्मचंद्र के एक शिष्य दामोदर ने 'चंद्रप्रभ चरित्र' सं० १७२७१, (?) (भूभृन्नेत्राचत शशधरांक) लिखा है जिसकी भाषा संस्कृत है। यह सं० १७२१ होगा और संभव है कि छपने में १ के स्थाथ पर ७ छप गया हो। जो हो, पर संभव है कि ये दोनों एक ही कवि हो। इनके संबंध में शोध की आवश्यकता है।

दिलाराम—इनके पूर्वज खंडेले में पहलगांव के रहने वाले थे किंतु बूंदी नरेश के अनुरोध पर वहीं बस गए थे। इनकी तीन रचनायें—'आत्मद्वादशी', व्रत विधान रासौ और दिलाराम विलास--प्राप्त हैं। आत्मद्वादशी में आत्मा का वर्णन है। व्रत विधान रासौ (सं० १७६७) में व्रतों का विधि-विधान बताया गया है। तीसरी रचना दिलाराम विलास (सं० १७६८) इनकी सभी लघु रचनाओं का संकलन है। इनकी कृतियाँ अप्रकाशित हैं किन्तु डॉ० कस्तूरचंद कासलीवाल का कथन है कि इनकी भाषा परिमार्जित है और उस पर हाड़ौती का प्रभाव परिलक्षित होता है।[2]

---

१ मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो भाग २ पृ० ४४५-४७, भाग ३ पृ० १३९२ (प्र०सं०) और भाग ५ पृ० १६३-१६४ (न०सं०)।

२. डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल (राजस्थानी पद्य साहित्यकार–लेख) राजस्थान का जैन साहित्य पृ० २११-२१२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दीपचंद—इस नाम के भी दो-तीन लेखक इसी शती में मिलते हैं एक दिगम्बर आम्नाय के दूसरे खरतरगच्छ के, (श्वेतांबर) तीसरे लोकागच्छीय।

ये गुजराती लोकागच्छीय दीपचंद रूपजी>जीवजी>धनराजजी की परंपरा में वर्द्धमान के शिष्य थे। इनकी सुदर्शनसेठ रास, गुणकरंड गुणावली चौपइ, वीर स्वामी रास और पांचम चौपइ तथा पुण्यसेन चौपइ का विवरण प्राप्त है। गुणकरंड गुणावली चौपइ (सं० १७५७ विजयदशमी) का आदि—

संपति सुखदायक सरस प्रणमुं श्री जिनपास;
तीर्थंकर तेवीसमो अविचल पूरण आस।

रचनाकाल— संवत सत्रे सतावनें वरसे, दुसरा हारै दीवसै जी;
सरस संबंध कह्यो मन सरसै, सुणिया भविजन हरसे जी।

गुरुपरंपरा —गिरिओ गछ गुजराती गाजै, वसुधापीठ विराजै जी।
धर सगली जांणै धनराज, इधकी जस आवाजै जी।

× × ×

निर्मल गुण भरी या बहु न्यांनी, मुनिवर श्री व्रधमान जी;
शिष्य तैहना ऋष दीप सुज्ञानी, धरै सदा गुण ध्यान जी।[1]

इसमें गुणावली के गुणों का वर्णन करता हुआ कवि लिखता है—

गुणवंत नार गुणावली, इधकै पुन्य अख्यात;
किण विध सिध कारज करी वसुधा हुइ विख्यात।
गुण तिणरा दाखुं गहिर, वचने सरस बणाय,
बुधि कल बल छल अे बहू, चतुर सुणो चितलाय।

इनकी दूसरी रचना सुदर्शन शेठ रास अथवा कवित्त अपेक्षाकृत अधिक ज्ञात आख्यान पर आधारित और प्रकाशित है। इसे कुंवर मोतीलाल रांका ने शीलरक्षा अर्थात् सुदर्शन सेठ चरित्र नाम से व्यावर से प्रकाशित किया है। शील का महत्व दर्शाते हुए कहा गया है—

दानशील तप भाव मोक्षपुर च्यारे मारग,
वीतराग मुख बयण जिनधरम अे न कह्यो-जग।
धारत मनुष्य जे अे धरम वसुधा जस शिवसुख वरे;
चहुं माहि वशेष विचारतां शील-धर्म-सर्व थी सरे।

1. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो भाग ५ पृ० १८४-१८८ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसमें रचनाकाल खंडित है। इसका प्रारंभ दिया जा रहा है—

बंदु श्री जिन (महा)वीर धीर संजम व्रतधारी;
उपगारी अणगार सकल भवि जन सुखकारी।

वीरस्वामीरास—यह महावीर के चरित्र पर आधारित है। इसका आदि—

श्री जिन वर्द्धमान पाअे प्रणमीइँ,
भाव सहित श्री गौतम नमीई।

× ×

त्रैलोक्य मध्ये सौख्यकारक आज शासन अेहनई
चउवीसमा वर्द्धमान स्वामी धवल गाऊं तेहनई।

पांचम चौपाई—इसमें पंचमी व्रतकथा तथा उसका माहात्म्य बताया गया है--

करुं वले कर जोड़ि कै प्रवचन मात प्रणाम,
तप महिमा पंचमी तणो कहूं भवीहित काम।[1]

श्री देसाई ने जैन गुर्जर कवियो के प्रथम संस्करण में रचनाकाल न होने के कारण सुदर्शन सेठ चौपइ और वीर स्वामी रास को १९वीं शती की रचना मान कर इसके अन्य वीरचंद नामक कर्त्ता का उल्लेख किया था। वस्तुतः दोनों एक ही हैं। इनकी पुण्यसेन चौपइ (सं० १७७६ भाद्र शुक्ल १० गुरुवार) की प्रारंभिक पंक्तियां प्रस्तुत हैं—

कारण शिव संपति करण, तारण भवदधि तीर,
विघन विदारण वंदीयै, विस्तारण बुधि बीर।

इसमें दान का महत्व बताया गया है, यथा—

दौलित बाधै दान थी धनै दालिद दूरि।
दाने सुख संपति दसा, प्रगटै जगि जस पूर।

रचनाकाल—संवत सतरे बरस च्छिहत्तर भाद्रव मास सजलतर जी,
सूदि दसमी तीथवार सूरागर सीधयोग सूहंकर जी।[2]

इसमें ऊपर बताई गुरु परंपरा भी दी गई है। अतः यह प्रस्तुत दीपचंद की ही रचना है।

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई---जैन गुर्जर कवियो भाग ३ पृ० १४४-१४७ तथा १३९३-९४ (प्र०सं०)।

२. वही, भाग ५ पृ० ४१४-४१५ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दीपचंद II—ये बेगर खरतरगच्छीय जिनसागर > जिनदेवेन्द्र > पद्मचंद > धर्मचंद के शिष्य थे। आपने सुरप्रिय चौपाई[1] की रचना सं० १७८१ वैशाख शुक्ल ३, सिन्धुदेश में पूर्ण किया। इसकी कवि की स्वलिखित हस्तप्रति प्राप्त है, किन्तु उद्धरण प्राप्त नहीं हो सका।

दीपचंद कासलीवाल—आप कासलीवाल गोत्रीय खण्डेलवाल वैश्य थे। अतः आप दीपचंद शाह और दीपचंद कासलीवाल नामों से जाने जाते हैं। ये लोग मूलतः सांगानेर निवासी थे, बाद में आमेर में बस गए थे। ये स्वभाव से सरल, सादगी पसंद और आध्यात्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। इन्होंने अनुभव प्रकाश (सं० १७८१), चिद्विलास (सं० १७७९) आतमावलोकन (सं० १७७४), परमात्म प्रकाश, ज्ञानदर्पण, उपदेश रत्नमाला और स्वरूपानंद नामक ग्रंथों की रचना की है। आपने राजस्थानी गद्य-निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान किया है। प्राचीन मरु या पुरानी हिन्दी में इतनी गद्य रचनाएँ कम लेखकों की प्राप्त हैं। इन कृतियों का साहित्यिक महत्व भले कम हो परन्तु प्रारम्भिक हिन्दी गद्य के विकास और प्रचार की दृष्टि से इनका बड़ा महत्व है। आपकी कृतियों का विषय प्रायः आध्यात्मिक चिंतन ही है। ढूढाहड़ प्रदेश के अन्य दिगम्बर जैन लेखकों की भाँति इनकी भाषा में भी ब्रजभाषा और राजस्थानी के साथ खड़ी बोली के प्रयोग मिले जुले हैं।[2] इनकी भाषा का एक नमूना प्रस्तुत किया जा रहा है—

जैसे बानर एक कांकरा में पड़े रोवै।
तैसे याके देह का एक अंग भी छीजै तो बहुतेरा रोवै।
ये मेरे और मैं इनका झूठ ही ऐसे जड़न के सेवन तै सुख मानै।
अपनी शिवनगरी का राज्य भूल्या, जो श्री गुरु के कहे शिवपुरी को संभालै, तो वहाँ का आप चेतन राजा अविनाशी राज्य करै।[3]

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो भाग ३ पृ० १४५२ (प्र०सं०) और भाग ५ पृ० ३१९ (न०सं०)।

२. डा० प्रेमप्रकाश गौतम—हिन्दी गद्य का विकास, अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर।

३. सम्पादक अगरचन्द नाहटा—राजस्थान का जैन साहित्य पृ० २४९।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जड़न, याके, छीजै, तै भूल्या आदि कुछ प्राचीन प्रयोगों को बाद करके देखा जाय तो १८वीं शती में हिन्दी (खड़ी बोली) गद्य का इतना पुष्ट प्रयोग कम ही दिखाई पड़ता है। अतः आप १८वीं शती के हिन्दी जैन गद्य लेखकों की पंक्ति में अग्रगण्य लेखक माने जायेंगे।

दीपविजय या दीप्तिविजय--ये तपागच्छीय विजयदान > राजविमल > मुनिविजय > देवविजय > भावविजय के शिष्य थे। श्री मोहनलाल दलीचंद देसाई ने इनकी तीन रचनाओं--कयवन्ना रास, मंगलकलश रास और शंखेसर जी नो सलोको का मरु गुर्जर कवियो में उल्लेख किया है, किन्तु नवीन संस्करण के संपादक ने बताया है कि तीसरी रचना इनके शिष्य देवविजय की है, अतः यहाँ उनकी दो कृतियों का परिचय दिया जा रहा है। कयवन्ना (कृतपुन्य) रास (सं० १७३५ आसो शुक्ल ५ बुध, सिरोही)

आदि--ब्रह्मसुता ब्रह्मवादनी कवियण केरीमाय;
हंसवाहनी हरखइं करी प्रणमुं हूं तस पाय।

रचनाकाल--दीधारी देउल चडे सा, नामें मंगलमाल तो;
संवत सतरे जाणीइं सा, पणत्रीसो हुइ सकाल तो।

कवि द्वारा बताई गई गुरुपरंपरा पहले दी जा चुकी है। इसमें दान का महत्व बताया गया है--

दान तणा गुण में कह्या सा, सीरोडी गाम मझार तो।
जस सौभाग्य वधे घणो सा, रास रच्यो उल्लास तो।

अंत में यह संस्कृत की पंक्ति देखकर अनुमान होता है कि कवि संस्कृत का भी जानकार है--

इत्थं महामुनेर्दानं देयं भा भविका मुदा,
कृतपुण्य कवद दृष्ट्वा निरंतर सुखप्रदं।[1]

मंगलकलश रास (सं० १७४९ आसो शुक्ल १५, ३ खण्ड)

प्रथम खण्ड का आदि--

प्रणमुं सरसति स्वामिनी कविजन केरीमाय;
वीणा पुस्तक धारिणी कवियण ने वरदाय।

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई--जैन गुर्जर कवियो भाग ५ पृ० १२-१४ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मंगल कलश कुमार नो रास रचुं मनरंग;
देज्यो वचन सोहामणु मुझ मन बहु उछरंग।

द्वितीय खण्ड के अंत में रचनाकाल इस प्रकार कहा गया है--

संवत सत्तरें जाणज्ये सा०, वरस ते उगणपच्चास तो;
आसो खुदि पूनम दिने सा०, अे मे कीधो रास तो।

इसमें भी उपरोक्त गुरु परंपरा बताई गई है। कवि ने अपना नाम दीप्तिविजय लिखा है और यह कृति कवि ने अपने शिष्य धीरविजय के पठनार्थ लिखी है--

गुरु नामि सुख उपजे, मति बुधि सघली आवे रे,
दीप्तिविजय सुख कारणि रास रच्यो सुभभावि रे।
निज सीस धीरविजय तणुं वाचवानुं मन जाणी रे,
रास रच्यो रलीयामणो मनमांहि ऊलट आणी रे।

यह प्रकाशित है, प्रकाशक हैं भीमशी माणेक। इसकी अंतिम पंक्तियों में रचनाकाल पुनः इस प्रकार कहा गया है—

संवत सतरइ जांणज्यो, बरस ने उगण पंचासो रे,
भणे गुणे जे सांभलइ, कवि दीप्ति नी फलज्यो आस।[1]

तीसरी रचना शंखेश्वर जी सलोको का विवरण इनके शिष्य देवविजय के साथ आगे दिया जायेगा।

दीप सौभाग्य--आप तपागच्छीय राजसागर सूरि की परंपरा में माणिक्य सौभाग्य के प्रशिष्य एवं चतुरसौभाग्य के शिष्य थे। आपने 'चित्रसेन पद्मावती चौपई' (३१ ढाल ६०७ कड़ी) सं० १७३९ भाद्र कृष्ण ९, मंगलवार को नगीनानगर में लिखा, इसका आदि देखिये—

प्रणमुं प्रेमे पास जिन श्री शंखेश्वर देव,
सुरनर वर किन्नर सदा, जेहनी सारें सेव।

इसमें चित्रसेन पद्मावती की कथा का दृष्टान्त देकर शील का महत्व समझाया गया है। कवि कहता है--

दानादिक सहु सारिखा, पिण उत्तम शील विशेष;
परणीजें ते गाइइं, ऊखाणों देख।

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० ४१५-४१७ और भाग ३ पृ० १३६५ (प्र०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रोग सोग वियोग नहिं, संकट श्वापद दुष्ट;
टले उपद्रव शील थीं, जाइ अठारे कुष्ट।
पालो शील अखंड नीत्य जो कउ शिवलील;
चित्रसेन पद्मावती, तिम पालो शुभ शील।

गुरुपरंपरा - पहले तपागच्छीय राजसागर के पट्टधर बुद्धिसागर का उल्लेख है--

पट्ट प्रभावक उदयो तेहने, मुनीगण हीयडें ध्यायो;
श्री वृद्धिसागर सूरीश्वर जयवंता, सकल सूरी सवायो रे।

इसके पश्चात् कवि ने प्रगुरु और गुरु का वंदन किया है—

तस गण मांहि पोढा पंडित माणक सौभाग्य बुध संत;
बहु श्रुतधारी जन मनोहारी, महियल मांहि महंत रे।
तस सीस चतुरसौभाग्य बुध, मुझ गुरु ज्ञान दातारी रे,
दीप सौभाग्य मुनि कहें तस शिस अे गुरु परम हितकारी रे।

रचनाकाल--
संवत निधि गुण मुनी ससी वरषे (१७३९) रुडे भाद्रपद मास रे,
असित पक्ष नवमी भृगुवारे, विजय मुहूर्त्त उल्हास रे।

रचना स्थान--बहुजन केरो आग्रह जाणी, नगिनानयर मझार रे,
रास रच्यो में गुरु सुपसाइ, श्री सरस्वती देवी अधारे रे।

अंतिम पंक्तियाँ--रंगे रास रच्यो रसदाई, कहें मुनि दीप उल्लासे,
कविता वक्ता श्रोता जननी, फलज्यो दिन दिन आसें रे।[1]

आपकी दूसरी रजना वृद्धिसागर सूरिरास सं० १७४७ के आस पास लिखी गई। अहमदाबाद के प्रसिद्ध नगरसेठ शांतिदास के गुरु राजसागर के पट्टधर वृद्धिसागर का स्वर्गवास सं० १७४७ आसो सुद ३ को हुआ था, उसके कुछ ही बाद यह लिखा गया होगा। यह ऐतिहासिक रास संग्रह भाग ३ में प्रकाशित है। उसके आधार पर वृद्धिसागर के संबंध में ज्ञात होता है कि वे बडोदरा राज्य के पाटण नामक नगर से १० मील दूर चाणसमा नामक ग्रामवासी श्रीमाल-वंशीय भीमजी की भार्या ममता दे की कुक्षि से सं० १६८० चैत्र शुक्ल ११ रविवार को उत्पन्न हुये थे; बचपन का नाम हरजी था।

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई – जैन गुर्जर कवियो भाग २ पृ० ३६९, भाग ३ पृ० १३३४ (प्र०सं०) भाग ५ पृ० ३३-३५ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सं० १६८९ में राजसागर सूरि से खंभात में दीक्षा ली और नाम हर्षसागर पड़ा। इन्हें सं० १६९८ पौष शुक्ल १५ गुरुवार को अहमदाबाद में आचार्य पद्वी दी गई और नाम वृद्धिसागर पड़ा। इन्होंने अपनी मधुर वाणी और उत्तम उपदेशों से अपने शिष्य समुदाय की वृद्धि की। शत्रुञ्जय, शंखेश्वर, तारंगा आदि तीर्थों की यात्रायें कीं। सं० १७४७ में बीमार पड़े और ६७ वर्ष की आयु भोगकर स्वर्गवास हो गये। कवि ने लिखा है—

तास सीस मनमोहन पंडित चतुर सौभाग्य बुध इन्द्र रे;
तस पद पंकज सेवक मधुकर दीप कहे सुखकंद रे।
श्री वृद्धिसागर सूरि पुरंदर जे पाम्या सरगावास रे,
गुण गुथीनइ भगतिइं कीधो तेह तणो अे रास रे॥[1]

रास का आदि—

सकल समहिति पूरणो सिद्धारथ कुल सूर,
त्रिसलानंदन नाम थी, ऋद्धि वृद्धि भरपूर।

इसमें रचनाकाल नहीं है किन्तु सं० १७:७ रचनाकाल मानने का पुष्ट आधार वृद्धिसागर का निधन संवत् है।

वृद्धिसागर का यशोगान करता हुआ कवि दीपसौभाग्य लिखता है—

संजम निरमल पाली नइं, तप जप करी शुभकाज,
श्री वृद्धिसागर सूरीश्वर, पाम्या सुरपुर राज।[2]

दुर्गदास या दुर्गादास—ये खरतरगच्छ की जिनचंद्र सूरि शाखान्तर्गत विजयाणंद के शिष्य थे। इन्होंने काव्यरूपों की दृष्टि से नया प्रयोग किया और लीक से हटकर गजल लिखी। इनकी प्रसिद्ध रचना 'मरोट की गजल' है जिसकी भाषा हिन्दी है और जो सं० १७६५ पौष कृष्ण पञ्चमी को पूर्ण हुई। रचनाकाल गजल में कवि ने स्वयं इन पंक्तियों द्वारा सूचित किया है—

संवत सतरे पेसठे, पोह वदी पांचम,
श्री गुरु सरसति सांनिधि, गजलकरी गुणरम्य।

---

१. ऐतिहासिक जैन काव्यसंग्रह पृ० ७६-७८।
२. जैन गुर्जर कविओ भाग ५ पृ० ३३-३५ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसमें मरोट नगर का वर्णन है, यथा—

कोट मरोट है बंका, बाजे सुजस का डंका,
भुरज तैंतीस हैं जाके, अतिगढ़ विषम हैं बांके ।

यह रचना उन्होंने दीपचंद के आग्रह पर की थी—

आग्रह दीपचंद उल्लास, कहता यति यूँ दुर्गादास ।
सुणकै दीजियो त्या वास, गजल खूब कीनी रास ।[1]

आपकी दूसरी रचना 'जंबुस्वामी चौढालियुं' (५ ढाल सं० १७९३ श्रावण शुक्ल ७, सोमवार, बाकरोट) का प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है—

पुरुषादांणी परम प्रभु, प्रणमु गोडी पास ।
महावीर महिमा निलो, गणधर गौतमजास ।

रचनाकाल —संवत सतरै त्रयाण बे सारी, सातम तिथि उजियारी जी ।
श्रावण मास भलो सुखकारी, शुभवेला सोमवारी जी ।

गुरु परंपरा आगे की पंक्तियों में दी गई है—

खरतर आचारिज गण धारी युगप्रधान उदारी जी,
श्री जिणचंदसूरि शाखा अम्हारी विजयाणंद गुरु गुणकारी ।
दुर्गदास तस शिष्य सुविचारी, बात कही अे प्यारी,
शिष्य प्रशिष्य जगरूप थानारी, चूपै अनुग्रह धारी ।[2]

देवकुशल—आपने गद्य रचनायें की हैं । वंदारुवृत्ति (अथवा षडावश्यक सूत्र) बालावबोध अथवा श्रावकानुष्ठान विधि टबार्थ (सं० १७५६) की प्रतिलिपि लेखक ने स्वयं सं० १७६६ से पूर्व ही की थी—

टबार्थेन कृत्वा बुध देवकुशल लि० पं० देवकुशलेन जीर्ण दुर्ग मध्ये सूत्र मध्ये टबार्थ क्रियते ।

आपकी दूसरी गद्य रचना कल्पसूत्र बालावबोध है जिसे श्री मोहनलाल दलीचंद देसाई ने जैन गुर्जर कवियो के प्रथम संस्करण में देवीकुशल की कृति बताया था किन्तु वंदारुवृत्ति बालावबोध की हस्तप्रत

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो भाग ५ पृ० २२९-२३० (न०सं०) ।
२. वही, भाग ३ पृ० १४१२-१३ (प्र०सं०) और भाग ५ पृ० २२९-२३० (न०सं०) ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में नाम देवकुशल दो बार स्पष्ट रूप से उल्लिखित है इसलिए नवीन संस्करण के संपादक ने 'देवी' को छापे की भूल मानकर इसे देवकुशल की रचना माना है।[1]

(श्रीमद्) देवचंद --आप खरतरगच्छ के प्रसिद्ध आचार्य युगप्रधान जिनचंद्रसूरि की परम्परा में दीपचंद के शिष्य थे। आपको गुरु परंपरा में जिनचंद सूरि के पश्चात् पुण्यप्रधान>सुमतिसागर>साधुरंग>राजसागर>ज्ञानधर्म और उनके शिष्य दीपचंद का क्रम है। आप बहुश्रुत विद्वान्, यशस्वी लेखक और तपोनिष्ठ प्रसिद्ध साधु थे। आपकी शिष्य मण्डली भी विस्तृत थी जिसमें मनरूप, विजयचन्द, रायचन्द आदि कई विद्वान् और सुलेखक थे। रायचन्द के आग्रह से किसी कवियण ने सं० १८२५ में एक रास लिखा जिससे देवचन्द के जीवनवृत्त पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। वह रास ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में प्रकाशित है और उसका विवरण तो १९वीं शती में यथास्थान दिया जायेगा किन्तु कुछ महत्वपूर्ण सूचनायें श्री अगरचन्द नाहटा के आधार पर यहाँ दी जा रही है।

श्रीमद् देवचन्द जी बीकानेर निवासी (लूणिया ग्राम) शाह तुलसीदास के पुत्र थे। इनकी माता का नाम धनबाई था। इनका जन्म सं० १७४६ में हुआ था। दस वर्ष की अवस्था में ये राजसागर सूरि से दीक्षित हुए। १९ वर्ष की अवस्था में आपने शुभचन्द्र रचित ज्ञानार्णव का मरुगुर्जर में पद्यानुवाद किया। आपने सं० १७६७ में द्रव्यप्रकाश, सं० १७७९ में आगमसार नामक गद्य ग्रंथ लिखे। बाद में ये गुजरात चले गये इसलिए इनकी पिछली रचनाओं पर मरु की अपेक्षा गुजराती का प्रभाव अधिक दिखाई देता है। सं० १८१२ में आपका अहमदाबाद में स्वर्गवास हुआ। आपकी समस्त रचनाओं का संग्रह 'श्रीमद् देवचंद' ३ भागों में अध्यात्म प्रसारक मण्डल पादरा द्वारा प्रकाशित किया गया है। आपकी चौबीसी, बीसी, स्नात्रपूजा और स्तवन आदि जैन समाज में पर्याप्त प्रचलित है।[2]

आपकी बड़ी दीक्षा जिनचंद्र सूरि द्वारा हुई और नाम राजविमल रखा गया। आपने अनेक प्रतिष्ठायें की और तमाम लोगों को जैन-

---

१. मोहनलाल दलीचंद देसाई—जैन गुर्जर कवियो भाग ३ पृ० १६३७ (प्र०सं०) और भाग ५ पृ० १६२ (न०सं०)।

२. अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० १०३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्मानुयायी बनाया। आपकी कुछ प्रमुख रचनाओं का विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है—

ध्यानदीपिका चतुष्पदी (५८ ढाल सं० १७६६ वैशाख कृष्ण १३, रविवार, मुलतान)

आदि — परम ज्योति प्रणमुं प्रगट सहजानंद सरूप,
वसतौ निज परिवार सूं, प्रणमु चेतन भूप।

रचनाकाल —संवत लेश्या रस ने वारो १७६६ ज्ञेय पदार्थ विचारोजी,
अनुपम परमातम पद धारो, माधव मास उदारो जी।

यह वही ध्यानदीपिका है जो देवचन्द गणि की प्रथम मरुगुर्जर काव्यकृति है और जो संस्कृत ग्रंथ ज्ञानार्णव का भावानुवाद है--

भविक जीव हित करणी धरणी, पूर्वाचारिज वरणी जी,
ग्रंथ ज्ञानार्णव मोहक तरणी भवसमुद्र जल तरणी जी।
संस्कृत वाणी पंडित जाणे, सरल जीव सुखदाणी जी,
ज्ञाता जन ने हितकर जाणी, भाषा रूप बखाणी जी।

यह रचना श्रीमद्देवचंद्र भाग २ में प्रकाशित है। आपकी दूसरी रचना 'द्रव्य प्रकाश भाषा' (स० १७६७ पौष कृष्ण १३, बीकानेर) भी भाग दो में प्रकाशित है। इसके अंत में कलश है जिसमें गुरुजनों का सादर स्मरण है—

इय सयल सुखकर गुण पुरंदर सिद्ध चक्र पदावली,
सवि लब्धि विद्या सिद्धि मंदिर, भविक पूजे मनरली।
उवझ्झायवर श्री राजसागर, ज्ञान धर्म सुराजता,
गुरु दीपचंद सु चरण सेवक, देवचंद सुशोभता।[1]

इसमें रचना स्थान का उल्लेख करते हुए देवचंद गणि ने लिखा है—

हिंदु धर्म बीकानयर, कीनी सुख चौमास,
तिहां अे निज ज्ञान मे, कीनो ग्रंथ अभ्यास।

अतीत जिन चौबीसी भी श्रीमद्देवचंद्र भाग २ में प्रकाशित है, इसमें २१ तीर्थंकरों का स्तवन प्राप्त है।

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो भाग ५ पृ० २४२ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अध्यात्म गीता की रचना लिंबडी में हुई थी और यह भी भाग दो में प्रकाशित है। इसका आदि देखिए—

प्रणमि अे विश्वहित जैन वाणि, महानंदतरु सिचवा अमृत पाणि;
महामोहपुर भेदबा वज्रपाणि, गहन भव फंद छेदन कृपाणि।

वीर जिनवर निर्वाण (अथवा दिवाली नुं स्तवन) दिवाली (दीपावली, भावनगर) इसके मंगलाचरण के दो श्लोक संस्कृत में हैं। इसकी अंतिम दो पंक्तियाँ दे रहा हूँ—

शासन नायक वीर जिनेसर, गुण गाता जयमालो,
देवचंद्र प्रभु सेवन करतां, मंगलमाल विशालो रे।[1]

यह भी श्रीमद् देवचंद्र भाग २ में प्रकाशित है।

आपने पद्य के साथ कई महत्वपूर्ण गद्य रचनाएँ भी की हैं जिनमें आगमसार, नयचक्रसार, गुरुगुणछत्रीसी बालावबोध, सप्तस्मरण बालावबोध आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनका संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है। आगमसार (सं० १७७६ फाल्गुन शुक्ल ३, भौमवार, मरोट) यह मरुगुर्जर गद्य की प्रारंभिक रचनाओं में महत्वपूर्ण है। इसमें लेखक ने अपनी गुरु परंपरा तथा ग्रंथ रचना के हेतु आदि पर प्रकाश डाला है। यह रचना प्रकरण रत्नाकर भाग १-२ और श्रीमद् देवचन्द भाग १ में प्रकाशित है। इसका प्रारंभ इस प्रकार है—

अथ भव्य जीव नैं प्रतिबोधवा निमित्तै मोक्षमार्ग नी
वचनिका कहै छै।
तिहां प्रथम जीव अनादि काल नौ मिथ्याती थौ।
काल लवधि पामी मे तीन करण करै छै।

…इत्यादि। इसके अंत में रचनाकाल इस प्रकार दिया गया है—

संवत सतर छिहोतरै मन सुद्ध फागुण मास,
मोटे कोट मरोट मां, वसतां सुख चौमास।

इसमें खरतरगच्छ के जिनचंद, ज्ञानधर्म, राजसागर आदि का उल्लेख करके लिखा है—

तास सीस आगम रुची जैन धर्म को दास,
देवचंद आनंदमय कीनौ ग्रंथ प्रकाश।

---

1. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो भाग ५ पृ० २३२-२५६ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसमें ज्ञान और धर्मतत्व की चर्चा है, भाषा पर जयपुरी राजस्थानी का विशेष प्रभाव है—

तत्वज्ञान मय ग्रंथ यह जो रचै बालावबोध;
निज पर सत्ता सब लखै श्रोता लहै सुबोध।[1]

यह ग्रंथ देवचन्द्र ने विमल दास की दो पुत्रियों भाईजी और अमाई जी के लिए लिखा था। सं० १७७५ में ज्ञानधर्म के स्वर्गवासी होने के कुछ समय पश्चात् ही यह रचना हुई थी।

नयचक्रसार गुजराती लोक भाषा में रचित प्रसिद्ध गद्य रचना है। इसका मंगलाचरण संस्कृत के तीन श्लोकों में आबद्ध है। यह मल्लवादि कृत द्वादशार नयचक्र पर आधारित है। आपके कृतित्व का परिचय देते हुए श्री देसाई ने अध्यात्मरसिक पंडित देवचंद्रजी नामक एक विस्तृत लेख लिखा है। वह श्रीमद् देवचंद्र जी विस्तृत जीवन चरित्र की प्रस्तावना में छपा है।

गुरु गुण छत्रीसी बालावबोध वज्रसेन शिष्य कृत प्राकृत मूलग्रंथ का बालावबोध है। आपने अपनी चौबीसी का स्वोपज्ञ बालावबोध लिखा है। इसका मूल श्रीमद्देवचंद भाग २ में प्रकाशित है। इनकी बीसी भी वहीं प्रकाशित है, इसका आरम्भ इस प्रकार हुआ है—

वंदो वंदो रे जिनवर विचरतां वंदो;
कीर्त्तन स्तवन नमन अनुसरतां, पूर्व पाप निकंदो रे।

इनके अतिरिक्त आपने अनेक संज्झाय और स्तवन लिखे हैं जिनमें प्रभंजना संज्झाय, साधुनी पाँच भावना संज्झाय, ठंठण मुनि संज्झाय, अष्ट प्रवचन मात संज्झाय, आठ रुचि संज्झाय, निजगुण चितवन मुनि संज्झाय, गजसुकमाल संज्झाय, द्वादशांगी संज्झाय आदि उल्लेखनीय हैं और ये सभी श्रीमद् देवचन्द भाग २ में प्रकाशित हैं। इनमें रुचि रखने वाले अध्येता वहाँ इन्हें देख सकते हैं। इसी प्रकार तीर्थों पर चैत्यपरिपाटी स्तवन भी आपने कई लिखे हैं जैसे शत्रुजंय चैत्र परिपाटी स्तवन, गिरनार स्तुति और सिद्धाचल स्तुति इत्यादि। नमूने के लिए शत्रुंजय चैत्य परिपाटी का आदि दिया जा रहा है—

१. सम्पादक डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल—राजस्थान के जैन शास्त्रभंडारों की ग्रंथसूची भाग ३ पृ० १४ और पृ० १७५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदि नमवि अरिहंत पभणंत गुण आगरा,
खविय कम्मट्ठगा सिद्ध सुह सागरा
तीस छग गुण जुआ धीर सूरीश्वरा,
वायगा उत्तम जाण वायण धरा।

इसकी भाषा प्राकृताभास मरुगुर्जर है और १८वीं शताब्दी में भी १४वीं शताब्दी की भाषा शैली का स्मरण कराती है।

इनकी गद्य शैली का एक नमूना विचारसार प्रकरण ग्रन्थ से दिया जा रहा है। इसके मूल में २०५ प्राकृत गाथायें हैं इसमें उनका गद्य में अर्थ दिया गया है। यह ग्रंथ सं० १७९६ कार्तिक शुक्ल १ नवानगर में पूर्ण किया गया था। २९७वीं गाथा का अर्थ इस प्रकार किया गया है—

अे विचार सार प्रकरण तेहना अधिकार छै। तिहां पहेलो अधिकार गुणठाणानो, बीजे अधिकार मार्गणानो छे। अे ग्रंथ राधनपुरवासी श्रद्धावंत शांतिदास नामे गृहस्थ तेणे उद्धार सर्व गुण ठाणे, तथा मार्गणाईं भाव सर्व संग्रह्या धारी विचारी चोखा कर्या[1]। गाथा ३०२ में रचनाकाल बताया है। यह श्रीमद् देवचन्द भाग १ में प्रकाशित है।

२४ दंडक विचार बालावबोध सं० १८०३ की रचना है। इसी प्रकार आपकी कुछ अन्य रचनायें भी १९वीं शती की सीमा में पड़ती हैं। इस प्रकार आप १८वीं शती के अंतिम सशक्त लेखकों और आचार्यों में अग्रगण्य हैं। आप सं० १७७७ में गुजरात गए, अतः परवर्ती रचनाओं की भाषा पर मरु की अपेक्षा गुर्जर का प्रभाव अधिक है। इनकी स्नात्रपूजा गद्य पद्य मिश्रित रचना है। इनकी नवपद पूजा अथवा सिद्धिचक्र स्तवन यशोविजय और ज्ञानविमल सूरि की पूजाओं के साथ त्रयी रूप में गिनी जाती है।[2]

देवविजय—इस नाम के तीन कवि समकालीन हैं जिनका विवरण क्रमशः दिया जा रहा है। प्रथम देवविजय तपागच्छीय उदयविजय

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो भाग ५ पृ० २५४-२५५ (न०सं०)।

२. वही, भाग २ पृ० ४७३-९६ तथा ५९४ और भाग ३ पृ० १४१७-२० तथा १६३९-४० (प्र० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के शिष्य थे। इन्होंने अपनी प्रसिद्ध ऐतिहासिक रचना विजयदेव सूरि निर्वाण सं० १७१३, खंभात में की थी। विजयदेव सूरि संज्झाय नामक एक रचना सौभाग्य विजय ने की है जो जैन ऐतिहासिक काव्य संचय में प्रकाशित है, जिसका विवरण यथास्थान दिया जायेगा। इन निर्वाणों संज्झाय द्वारा विजयदेव सूरि के सम्बन्ध में कुछ महत्त्वपूर्ण सूचनायें प्राप्त होती हैं, जो संक्षेप में यहाँ दी जा रही हैं।

विजयदेव का जन्म सं० १६३४ के ईडर निवासी ओसवालवंशीय थीरो की पत्नी लाडिम दे की कुक्षि से हुआ था। सं० १६४३ में विजयसेन सूरि से दीक्षित और सं० १६५६ में आचार्य पद तथा सं० १६७१ में सूरि पद पर प्रतिष्ठित हुए। सं० १६७४ में इन्हें जहाँगीर ने सम्मानित किया, मेवाड़ के राणा और जामनगर के जामसाहब से भी सम्मान प्राप्त थे। इन्होंने अनेक प्रान्तों में विहार किया, लोगों को उपदेश दिया, कई बिम्बों की स्थापनायें की और सं० १७१३ आषाढ़ में शरीर-त्याग किया। प्रस्तुत रचना उसी समय की गई। इसके मंगलाचरण की दो पंक्तियाँ उद्धृत की जा रही हैं—

श्री जीराउलि पास जी जी, प्रणमी त्रिभुवन भाण,
सरसति सामिणि चित धरीजी, गाऊँ सूरि निर्वाण।
रंगीला गछपति तु वसीओ मेरइ मनि।

अन्त श्री विजयसिंह सूरीसर केरा, सीस अनोपम कहीइ जी,
उदयविजय उवझाय शिरोमणि बुधि सुर गुरु लहीइ जी।

रचनाकाल—संवत सतर तेरोत्तर वरसइ, खंभनयर चौमास जी,
त्यारइ मइ अे गछपति गायो, पूरण पूगी आस जी।
श्री उदयविजय वाचक सुपसाइं, गायो तपगछ भाणजी,
देवविजय मुनि इम पयंपइ, नामइ कोडि कल्याण जी।[1]

आपकी दूसरी रचना भक्तामर स्तोत्र रागमाला भिन्न-भिन्न रागों में निबद्ध है और सं० १७३० पौष शुक्ल १३, सोमवार। शुक्रवार को पूर्ण हुई थी। यह भीमसिंह माणकमाला में प्रकाशित है। इसका आदि इस प्रकार है—

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो भाग ४ पृ० २५६-२५७ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राग जयजयवंती —भक्त अमरगन प्रणत मुगटमणि,
उलसत प्रभाअेन ताकूं द्युतिदेत है।
पाप तिमिर हरे सुकृत संचय करे,
जिनपद जूगवर नीके प्रनमेतु है।
जूगनिकी आदि ज तूं परत भव जल भ्रांति,
जय जयवंत संत ताके सांच सेतु है,
नाभिराय के नंद जगवंद सुखकंद,
देव प्रभुधरी आनंद जिनंद वंदेतु है।

अन्त— विजयदेव सूरिंद पटधर विजयसिह गणधार,
सीस इणि परि रंगे बोले, देवविजय जयकार।

रचनाकाल —सतर संवत त्रीस वरसे, पोस सूदि सितवार,
तेरस दिन मरुदेवी नंदन, गायो सब सुखकार।
ते नर लच्छी के भरतार।[1]

चंपक रास —(४८ ढाल सं० १७३४ श्रावण शुक्ल १३ घाणेरा) इसके प्रारम्भ का पृष्ठ नहीं है। इसमें गुरु परम्परान्तर्गत विजयदेव>विजयप्रभ>विजयरत्न>विजयसिंह>उदयविजय का वंदन किया गया है। साथ ही साधुविजय पुण्यविजय आदि गुरुभाइयों के साथ साध्वी राजश्री का भी उल्लेख किया गया है। इसकी अंतिम पंक्तियाँ उद्धृत की जा रही है—

ज्ञान विजय नइं वांचण सारइ, श्रोतानइं उपगारइं जी,
देवविजय कवि वयण विचारइं, घाणोरा नयर मझारइं जी।
संवत सतर चोत्रीसा वरषइं, श्रावण सुदि मन हरषइं जी,
तेरस दिन जलधर जल वरसइं, जय जय लच्छी वरसइं जी।

दूहा—अे चंपक नी चोपाई ढाल अड़तालीस;
गाथा दूहा वइसइ च्यालीस।[2]

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो भाग ४ पृ० २५६-२५७ (न० सं०)

२. वही भाग २ पृ० ३४९-५०, भाग ३ पृ० १३२३-२५ (प्र० सं०) और भाग ४ पृ० २५६-२५८ (न०सं०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसके सम्बन्ध में अगरचन्द नाहटा ने केवल इतनी सूचना दी है :- घाणेराव नगर में सं० १७३४ में चम्पकरास ४८ ढाल में लिखी।[1]

वाचक देवविजय II—ये तपागच्छीय विजयरत्न सूरि के शिष्य थे। इन्होंने नेमराजुल बारमास नामक तीन रचनायें की हैं। ये बारहमासे छप चुके हैं और इनमें यत्र-तत्र सरस स्थल भी हैं। प्रथम बारहमासा १७ कड़ी का है, इसका आदि—

ब्रह्माणी वर हुं मांगु, कर जोड़ी तुम पाय लागुं;
दारिद्र दुःख हवे मुज मांगु रे, नेम जिनेसर ने कहे जो।

अन्त — श्री विजयरत्न सूरि राया, वाचक देवे गुण गाया,
तुम नामें संपत्ति पाया रे, नेम जिनेसर ने कहे जो।[2]

यह जगदीश्वर छापाखाना से १९४० सं० में छप चुका है। इनका दूसरा बारमासा भी १७ कड़ी का है। इसका रचनाकाल सं० १७६० है—

अे तो संवत सत्तर साठें गायो में विरही माटें रे, सा
श्री विजयरत्न सूरिराया, ये तो देवविजय गुणगाया रे, सा०।

यह भी वहीं से प्रकाशित है। तीसरा बारमासा १२ पद्यों का है। इसे देवविजय ने सं० १७९५ में पोरबन्दर में लिखा था, इसका यह काव्यमय स्थल प्रस्तुत है —

आ फागुण आव्यो नास, नाह ना आव्यो रे,
अबील गुलाल ज तेह, सहु में छंठायो रे।
आ पीयु चाल्यो गिरनार, मुज ने छोड़ी रे,
आ शिवरमणी शुं रंग, प्रीत अेणे जोड़ी रे।[3]

इन बारहमासों के अलावा आपने शीतलनाथ स्तव और आत्मशिक्षा स्वाध्याय नामक स्तवन भी लिखा है।

शीतलनाथ स्तव (सं० १७६९, मांडीव का आदि--

१ अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० ११२।
२. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो भाग ५ पृ० २०८ (न०सं०)
३. वही भाग ५ पृ० २०९ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छोड़ी ते आवी थारां देस में मारु जी,····· इस देसी —
श्री सरसती चरणे नमी, साहेब जी प्रणमी सद्गुरु पाय हो,
झीणां माइजी सूं माहरो मन बस्यो।
सीतल जिनवर गायस्यूं सा, नामें नवनिध थाय हो।

रचनाकाल—संवत सतर उगणोत्तरे सार ही सा,
मांडवि मां चौमास हो,
सीतल जिनवर में स्तव्या सा०,
पूरो संघनी आस हो,

गुरुपरंपरा – श्री तपगछ मांहे सोभता सा०,
श्री विजयरत्न सूरिराया हो,
देवविजय सुख दीजिइं सा०,
तुम नामे सुख थाय हो,
पंडित देव इम विनवे सा।[1]

आत्मशिक्षा स्वाध्याय मात्र सात कड़ी की लघु कृति है। नमूने के लिए इसका आदि और अंत दिया जा रहा है—

आदि—जीवन चेतन चेतीइं पामीने नरभव सार रें,
सार संसार मां लहि करी चली लहि धर्म उदार रें।
अंत—श्री विजयरत्न सूरीस्वरु देवविजय चितधार रे,
धर्म थी शिवसुख संपजे, जिम लहो सुख अपार रे।
जीवन चेतन चेतीइं।[2]

देवविजय III—ये तपागच्छ के प्रसिद्ध सूरि हीरविजय की परंपरा में उपा० कल्याणविजय> धनविजय और कुंवरविजय> दीपविजय के शिष्य थे। इन्होंने रूपसेन कुमार रास (३६ ढाल सं० १७८७ महा, शुद ७, शुक्रवार, कडीनगर) की रचना की जो दान का महत्व दर्शाता है। इसके प्रारम्भ में महावीर, गौतम, सरस्वती की वंदना है तत्पश्चात् कवि ने दान के विषय में लिखा है –

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो भाग ५ पृ० २०९ (न० सं०)
२. वही, भाग ५ पृ० ४१६ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वीरे दान वषाणीऊ, धर्म धुरें सिरदार,
जिन पणि संयम अवसरि, साचवें दानाचार।
रूपसेन कुंयर तणी, दान कथा सहु कोइ।
सुणजो सकल श्रोतारुजन, जिनरुचिदान नीहोइ।

रचनाकाल – संवत सतर अठोतरे रे शुद सातम माहा मास,
कड़ी नगरे कवीवार अनोपम, रचीओ अे रास उल्लास।[1]

इनकी दूसरी कृति 'संखेश्वर सलोको' (सं० १७८४ महा सुद ५ शुक्र) का आदि—

देवी सरसति प्रणमु वरदाइ, ब्रह्मानि बेटी कवितानि माई।
अञ्झारि आदे कुमारी भाल, देज्यो वाणी कास्मीर वाली।
पास संखेश्वर सलोको कहीइं, पाप निवारी निरमल थइइं।
चंद्र प्रभु जिन आठमावारे, प्रतिमा भरावी तेहनो विचार।

सलोको की अंतिम पंक्तियाँ निम्नांकित हैं—

संवत सतर चोरासी वरसें, महा शुदि पांचम शुक्र उछाहें;
दीप गुरु चरण पसायें, कीधो सलोको मन उमायें।[2]

यह रचना सलोका संग्रह में प्रकाशित है।

जैन गुर्जर कवियो के प्रथम संस्करण में इनकी और विजयरत्नसूरि शिष्य देवविजय (II) की रचनाओं में घालमेल हो जाने के कारण दोनों का रचना-प्रसार उलझ गया था किन्तु नवीन संस्करण में सम्पादक जयंत कोठारी ने उसे सुलझाकर प्रस्तुत किया है, जिससे दोनों की रचनाओं का अलग अलग विवरण देना सम्भव हुआ।[3] नाम का जो भ्रम था अर्थात् प्रथम संस्करण भाग २ पृ० ४१७ पर जिसे दीपविजय बताया गया था वह भी स्पष्ट हो गया है और वह कवि दीपविजय नहीं बल्कि देवविजय हैं।

ब्रह्म देवा या देवजी – आप ब्रह्मचारी थे अतः देवा ब्रह्म कहे जाते थे। ये जयपुर के रहने वाले थे। उन्होंने सम्मेद शिखर विलास की रचना की है। उसमें वे लिखते हैं—

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो भाग ५ पृ० ३००-३०१ (न०सं०)।
२. वही भाग ५ पृ० ३००-३०२ (न० सं०)।
३. वही भाग २ पृ० ४१७, ५०१-५०२ और भाग ३ पृ० १४२४(प्र०सं०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री लोहाचारज मुनि धर्म विनीत हैं,
तिन कृत धत्ताबंध सुग्रंथ पुनीत है।
ता अनुसार कियो सम्मेद विलास है,
देव ब्रह्मचारी जिनवर को दास है।

इससे स्पष्ट है कि देव ब्रह्मचारी ने लोहाचार्य की रचना के आधार पर सम्मेद शिखर विलास की रचना की थी। श्री कामता प्रसाद जैन को शंका हुई कि देवाब्रह्म का नाम सम्भवतः केशरी सिंह होगा।[1] उनको यह शंका सम्भवतः इस पंक्ति के कारण हुई होगी—

केसरी सिंह जान, रहै लसकरी देहरै,
पंडित सब गुण जान, याकौ अर्थ बताइयौ।

केशरी सिंह भी जयपुर नगर के लश्करी मंदिर में रहते थे और उन्होंने लोहाचार्य के ग्रंथ सम्मेद विलास का अर्थ बताया था, न कि वे इसके लेखक थे और न देवाब्रह्म का नाम केशरीसिंह था।

देवा ब्रह्म ने अनेक पद और बिनतियाँ लिखी हैं। एक विनती की कुछ पंक्तियाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं—

खोटी जाति चिंडाल की जी, घात करै अधिकाय।
जिनवर नांव जप्यां थकां जी, आवागमण मिटाय।
सरधा करिकै पूजै ध्यावै, मनवंछित फल पावै।
देवा ब्रह्म चरणां चित्त लावै, करम कलंक मिटावै।

उनके एक पद की भी कुछ पंक्तियाँ देखिए--

जगपति ल्योरा ला महाराज, विउद विचारो ला महाराज।
मैं अपराध अनेक किया जो, माफ करो गुणराज।
और देवता सबहीं देष्या, खेद सहों बिन काज।
थारो जस तो सुरनर गावैं पावै पद सिव काज।
देवा ब्रह्म चरणां चित लावै, सेवग करि हित काज।

इसमें मैं, अपराध, किया, अनेक, आदि निर्मल खड़ी बोली के प्रयोगों के साथ विउद, सेवग, थारो, देष्या जैसे प्रयोग भी द्रष्टव्य हैं।

आपकी एक अन्य रचना सास बहू का झगड़ा भी पदों में ही आबद्ध है। इसमें १७ पद्य हैं और भाषा पर राजस्थानी प्रभाव स्पष्ट

---

१. श्री कामता प्रसाद—हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास पृ० १६५।

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

है एक बार देवा ने चम्पावती नगरी में चौमासा किया, चम्पावती के बड़े देहरे में एक पांडे माली रहते थे। उनमें और जैन पंचायत के बीच मंदिर को लेकर विवाद उठा तो देवा ब्रह्म ने बीच बचाव करते हुए लिखा था--

झगड़ा मैं कुछ हाथ न आवै, अरथ बिना ही मार,
मान बड़ाई कारणौं जी, बांधै करम अपार जी।

× × × ×

किसका मंदिर किसकी संपति किसका ये घर दार।
सुपनां को मेलो वरायो जी, झूठो सब संसार जी।[1]

इनके पदों और विनतियों में इनकी हार्दिक भक्ति भावना निर्मल ढंग से व्यंजित हुई है। वे अधिकांश भगवान जिनेन्द्र को समर्पित हैं।

आपने परमात्म प्रकाश की भाषा टीका भी की है। इसकी प्रति सं० १७३४ की प्राप्त है अतः इसके आधार पर इनका रचनाकाल १८वीं शती का पूर्वार्द्ध निश्चित किया गया है।

देवीचंद इनका उल्लेख मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने १८वीं शताब्दी में किया है और इनकी रचना 'राजसिंह चौपई' का रचनाकाल सं० १७२७ बताया है।[2] लेकिन जैन गुर्जर कवियो के ही भाग ३ पृष्ठ १२८ पर इसी रचना का रचनाकाल १८२७ लिखा है और १९वीं शती में देवीचन्द का पुनः नामोल्लेख किया है। दोनों स्थानों पर रचना का उद्धरण और अन्य विवरण नहीं दिया है। वहीं पृष्ठ ३८९ पर भी सं० १८२७ लिखा है। इसलिए इसका रचनाकाल शंकास्पद है। रचनाकाल सम्बन्धी जो पंक्तियाँ हैं उनसे यह १९वीं शती की ही रचना लगती है, यथा --

नगर मेडता ठांम मोटो, अठार से सत बीस में,
मास कातिक शुकल पंचमी भोमवार कर निरगमें।[3]

---

१. डॉ० प्रेमसागर जैन --हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि पृ० २९६-२९७ पर उद्धृत।

२. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो भाग ३ पृ० १२६० और १५२३ (प्र०सं०)।

३. वही भाग ३ पृ० १२९ प्र०सं०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अतः इसे शंकास्पद रचना मानकर इस पर यहाँ विचार स्थगित रखा जा रहा है।

देवीदास —ये दिगौड़ा (टीकमगढ़ म० प्र०) निवासी श्री सन्तोष की पत्नी मणि की कुक्षि से उत्पन्न छः भाइयों में सबसे बड़े थे। आजीविका के लिए कपड़े का व्यापार करते थे। छोटे भाई कमल को शादी के लिए सामान खरीदने ललितपुर जाते समय रास्ते में शेर ने मार डाला, इससे इन्हें विरक्ति हुई और साहित्य रचना की तरफ प्रवृत्त हुए। श्री ग०व० दिगम्बर जैन शोध संस्थान, वाराणसी के ग्रन्थागार के एक गुटके से इनकी अड़तीस छोटी-बड़ी रचनाओं का पता चला है। उनकी सूची दी जा रही है —

परमानन्द स्तोत्रभाषा, जीव चतुर्भेदादि बत्तीसी, जिनांतराउली, धरमपचीसी, पंचपदपचीसी, दशधा सम्यक्त्व, पुकारपच्चीसी, वीतरागपच्चीसी, दरसनछत्तीसी, बुद्धिबाउनी, विवेक बत्तीसी, जोगपच्चीसी, द्वादश भावना, उपदेश पच्चीसी, चक्रवर्ति विभूति वर्णन, पदावली, शांति जिनवंदन, जिननामावली, हितोपदेश। ये रचनाएँ छोटी किन्तु गेय और सरस हैं। ये रचनायें १८वीं शती के अन्तिम चरण की बुन्देली भाषा-साहित्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। इन रचनाओं का विषय अध्यात्म और प्रमुख भाव भक्ति है। इन्होंने लोक संगीत के साथ अपनी रचनाओं को गेय बनाने के लिए शास्त्रीय संगीत की विविध राग-रागनियों — यमन, विलावल, जयजयवंती, रामकली, दादरा, धनाश्री आदि — का उपयोग किया है। इन कृतियों में प्रसंगानुकूल प्राकृतिक वर्णन, अलंकार योजना और मानव मनोविज्ञान की भी झलक मिलती है जिससे यत्र-तत्र रचनाओं में सरसता आ गई है। ये कवितायें आत्मरस से परिपूर्ण हैं। 'आतम रस अति मीठो साधो आतमरस अति मीठो।' इस आत्मरस का स्थायी भाव शम या निर्वेद है विभाव है असार संसार, तप-ध्यान और शास्त्र-चिंतन आदि, उद्दीपन है संतवचन। अनुभाव और संचारी आदि के साथ मिलकर शांतरस की स्थान-स्थान पर अच्छी निष्पत्ति हुई है।

इनकी रचनायें अब तक अप्रकाशित हैं। इनके संकलन को 'देवीदास बिलास' नाम दिया गया है। वहीं से कुछ उदाहरणार्थ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं। रागद्वेष से बचने का संकेत करता हुआ कवि कहता है—

हमारे बैर परे दोइ तस्कर राग द्वेष सुन ठेरे;
मोहि जात सिवमारग के रुख कर्म महारिपु घेरे।[1]

कवि का रचनाकाल और क्षेत्र रीतिकालीन प्रवृत्तियों से पूर्ण था इसलिए कुछ प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। अलंकार प्रियता का नमूना—

अनुप्रास—लाल लसिउ देवी को सुवाल लाल पाग बाँधे,
लाल दृग अधर अनूप लाली पान की।
लाल मनी कान लाल माल गले मूंगन की,
अंग झगा लाल कारे गिरवान की।

यमक--जरा जोग हरे, हरे वन में निवास करे,
करे पसु बंधे बंध काजै देखि कारे भये।

उपमा—देवीदास निरखि अति हरषित प्रभु तन घन मन मोर।

अलंकारों के पश्चात् भाव और रस का नमूना देखिए; कवि सुमति शील का परिचय देता हुआ कहता है--

सांचिय सुंदरी सील सती सम शीयल संतनि के मन मानी
मंगल की करनी हरनी अधकीरति जासु जगत्र बखानी।
संतनि की परची न रची पर ब्रह्म स्वरूप लखावन स्थानी,
ज्ञान सुता वरनी गुनवंतिनी चेतनि नाइक की पटरानी।

आत्मरस का उदाहरण देकर यह इतिवृत्त समाप्त किया जायेगा-

आतम रस अति मीठो साधो आतम रस अति मीठो।
स्यादवाद रसना बिनु जाकौ मिलत न स्वाद गरीठो।
पीवत होत सरस सुष सो पुनि बहुरि न उलटि पुर्सीठो।
अचरिज रूप अनूप अपूरब जा सम और न ईठो।[2]

इन कृतियों में जैन रहस्यवाद, अध्यात्म और भक्ति का सुंदर समन्वय मिलता है, यथा--

---

१. देवीदास विलास पृ० ९५।
२. वही पृ० ९१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देह देउरे मै लषो निरमल निज देवा,
आप स्वरूपी आप मै अपनौ रस लेवा।

देवीदास १८वीं शती के बुन्देली हिन्दी के जैन कवियों में श्रेष्ठ स्थान के अधिकारी हैं।[1]

देवीसिंह आप नरवर निवासी जिनदास के पुत्र थे। उस समय नरवर में छत्रसिंह का राज्य था। इन्होंने सं० १७९६ में उपदेश सिद्धांत रत्नमाला नामक छंदोबद्ध एक रचना की है।[2] इसकी पद्य संख्या १६८ दोहा, चौपाइ चौबोला आदि छंदों में है। यह ग्रन्थ मूलतः प्राकृत में नेमिचंद्र भंडारी का लिखा है। रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है--

सत्रह सै अरु छएनवै, संवत विक्रम राज,
भादव वदि एकादशी शनि दिन सुविधि समाज।
ग्रन्थ कियो पूरण सविधि नरवर नगर मझार,
जे समझै याको अरथ ते पावै भवपार।

यह रचना देवी सिंह ने एक माह आठ दिन में पूरी की थी जो इसके १६८वें दोहे से प्रकट है। आत्म परिचय देते हुए लिखा है--

महा कठिन प्राकृत की बानी, जगत मांहि प्रगटै सुख दानी।
या विधि चिंता मनि सुभाषी, भाषा छंद मांहि अभिलाषी।
श्री जिनदास तनुज लघुभाषा, खंडेलवाल सावरा साखा।
देवी संघ नाम सब भाषै, कवित मांहि चिंता गनि राखै।
सुख निधान नरवरपती छत्र्यसंघ अवतंस,
कीरतिवंत प्रवीतमति राजत कूरम वंश।[3]

दौलतराम पाटनी--ये बूँदी के रहनेवाले थे। इन्होंने सं० १७६३ में व्रतविधान रासो लिखा जिसमें जैन व्रतों का वर्णन और माहात्म्य है। इन्होंने सम्भवतः छहढाला की भी रचना की है।

---

१. श्रीमती विद्यावती जैन, अध्यक्ष हिन्दी विभाग म० म० महिला महा विद्यालय, आरा का लेख--'हिन्दी जैन साहित्य का एक विस्मृत बुन्देली कवि देवीदास' से साभार।

२. कामता प्रसाद जैन--हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास पृ० १८२

३. सम्पादक कस्तूरचन्द कासलीवाल--राजस्थान के जैन शास्त्रभंडारों की ग्रन्थसूची भाग ४ पृ० २५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसके आसपास जैन साहित्य में दो अन्य दौलतराम नामक लेखकों का उल्लेख है जिसमें एक तो आगरा निवासी पल्लीवाल थे, इनकी रचनाओं का पता नहीं चला है किन्तु दूसरे दौलतराम कासलीवाल बड़े प्रसिद्ध लेखक हो गये हैं। आगे उनका परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

दौलतराम कासलीवाल—आप ढूढाड़ प्रदेश के वसवा नामक ग्राम के निवासी श्री आनंदराम के पुत्र थे। आपका जन्म आषाढ़ १४ सं० १७४९ में हुआ था। इनकी जाति खंडेलवाल गोत्र कासलीवाल था। बाद में जयपुर में ये बस गए थे। इनके गुरु ऋषभदास थे जो आगरा की उस अध्यात्म मंडली से सम्बद्ध थे जिसके संस्थापकों में प्रसिद्ध कविवर बनारसी दास थे। आप जयपुर के महाराज जयसिंह के कुँवर माधवसिंह के मन्त्री थे। सन् १७८६ से १८०८ तक तो कासलीवाल माधवसिंह के साथ उदयपुर में रहे; बाद में उनके राजा होने पर ये भी उनके साथ जयपुर जाकर रहने लगे। राजकाज से जो समय बचता था उसे वे पूजन, अध्ययन एवं ग्रन्थ रचना में लगाते थे।

मरुगुर्जर गद्य-पद्य में इनकी प्रायः अठारह रचनाएँ प्राप्त हो चुकी हैं जिनमें आठ पद्य, सात गद्य और तीन टीकापरक रचनायें हैं। काव्य कृतियों में जीवंधर चरित, त्रेपन क्रियाकोष, अध्यात्म बारहखड़ी, विवेकविलास, श्रेणिकचरित (सं० १७८२), श्रीपाल चरित (१८२२), चौबीस दण्डक भाषा, सिद्ध पूजाष्टक और सार चौबीसी हैं। इन्होंने पुण्यास्रव कथाकोष भाषाटीका (१७७७), वसुनंदी कृत श्रावकाचार की टब्बा टीका (सं० १८०८), पद्मपुराण की भाषाटीका (सं० १८२३), आदि पुराण की टीका (१८२४) और हरिवंश पुराण की टीका (सं० १८२९) की। इनकी टीकायें सरस और आकर्षक हैं। कहा जाता है कि पद्मपुराण की टीका पढ़ने के लिए अनेक जैनों ने हिन्दी सीखी और कितने ही अजैन वह टीका पढ़कर जैनधर्म के प्रति श्रद्धावान् बने। इनके परमार्थ प्रकाश के अनुवाद के कारण योगीन्दु कृत परमार्थ प्रकाश की बड़ी ख्याति हुई।

अध्यात्म बारहखड़ी का अपर नाम भक्त्यक्षर मालिका बावनी स्तवन है जो आपकी समर्थ काव्यशक्ति का द्योतक है। यह रचना सं० १७९८ की है। इसमें ५२ अक्षरों में से प्रत्येक अक्षर को लेकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काव्यरचना आठ परिच्छेदों में की गई है जिसमें मंदाक्रांता, मालिनी, स्रग्धरा, शार्दूल विक्रीड़ित आदि संस्कृत छंदों के साथ दूहा, चौपाई, सवैया, कवित्त, गीता और मोतीदाम जैसे नवीन प्राचीन छंदों का प्रयोग किया है। इसमें भक्तिरस का उत्कर्ष दिखाई पड़ता है। कवि ने लिखा है—

वंदौ केवलराम कौ, रमि जु रह्यो सब मांहि,
ऐसी ठौर न देखिए,जहाँ देव वह नांहि।

ॐ मन्त्र की स्तुति करता हुआ कवि लिखता है—

ॐ सम कोउ मंत्र जु नाही, पंच परमपद याके मांही।

सन्त कवियों की भाँति कासलीवाल भी मुंडमुड़ाने और अन्य वाह्याचारों को व्यर्थ बताते हुए कहते हैं—

मूंड मुंडाये कहा, तत्व नहि पावै जौ लौं।
मूढ़नि को उपदेश सुनै मुक्ति जुनहितौ लौं[१]।

आपकी प्राप्त रचनायें १९वीं शताब्दी में रचित हैं इसलिए उनका विस्तृत उद्धरण नहीं दिया जा रहा है। इनकी रचनाओं का आधार प्राचीन पुराण एवं जैन शास्त्र है। डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल ने महाकवि दौलतराम कासलीवाल : व्यक्तित्व एवं कृतित्व नामक ग्रंथ में उनका सांगोपांग अध्ययन प्रस्तुत करते हुए उनके आचार्यत्व, काव्यत्व एवं वचनिका प्रतिभा का परिचय दिया है। डॉ० कासलीवाल ने उनकी कृति 'विवेकविलास' को उनकी काव्य प्रतिभा का प्रतीक बताया है।[२] यह मुक्तक रचना है।

आपका हिन्दी गद्य प्रांजल एवं संस्कृत गर्भित है। यह अपभ्रंश, प्राकृत तथा देशज शब्दों से मुक्त है। यद्यपि यह ढूढाड़ी या व्रजभाषा का गद्य है किन्तु इसमें खड़ी बोली के कुछ प्रयोग भी यत्र तत्र हुए हैं, एक उदाहरण देखिए—

मालव देस उजैणी नगरी विषै राजा अपराजित
राणी विजया त्यां कै विनयश्री नाम पुत्री हुई।
हृषिशीर्षपुर के राजा हरिषेण ने परणी।
एक दिन दंपति वरदत्त मुनि नैं आहार दान देता हुआ...।[३]

---

१. प्रेमसागर जैन—हिन्दी जैन भक्तिकाव्य और कवि पृ० ३५३-२५६ तक
२. सं० अगरचन्द नाहटा—राजस्थान का जैन साहित्य पृ० २१६ और २१२
३. वही पृ० २४९।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह उद्धरण पुण्यास्रव कथाकोष का है। इस ग्रन्थ की रचना सं० १७७७ भाद्र कृष्ण ५ को ८००० श्लोकों में पूर्ण हुई थी। इसकी भाषा सरल हिन्दी है। इसकी हरदेव द्वारा लिखित प्रति सं० १८८८ की उपलब्ध है।[१] डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल ने इनकी अनेक कृतियों की सूचना दी है। इनके जीवंधर चरित की चर्चा डा० लालचन्द जैन ने भी अपने व्रजभाषा जैन प्रबन्धों में की है।[२] कामता प्रसाद जैन ने भी अपने संक्षिप्त इतिहास में इनकी कुछ रचनाओं का नामोल्लेख किया है।

दौलतविजय—ये खरतरगच्छ के विद्वान् शांतिविजय के शिष्य थे। इनका जन्म नाम दलपत था। इन्होंने चित्तौड़ के राणा खुमाण को नायक बनाकर चितौड़ के महाराणाओं की शौर्य गाथा पर आधारित ग्रंथ 'खुमाण रास' लिखा है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के आदि काल का नामकरण वीर-गाथाकाल करते समय जिन वीरगाथाओं का उल्लेख किया था, उनमें यह ग्रंथ भी गिना गया था। इसलिए इस पर बड़ी चर्चा हुई और इसके पक्ष-विपक्ष में बहुत कुछ लिखा-पढ़ा गया किन्तु विडम्बना यह है कि मूल ग्रन्थ सम्भवतः किसी पण्डित ने देखने का कष्ट नहीं उठाया। अतः इसे आठवीं शती से लेकर १७वीं शती तक की रचना बताया जाता रहा।

सर्वप्रथम अगरचंद नाहटा ने पूना से इसकी हस्तप्रति मंगवा कर उसका प्रामाणिक विवरण दिया और इसे १८वीं शती के उत्तरार्द्ध की रचना बताया। प्रो० श्रोत्रिय ने अब इसका सम्पादन करके प्रकाशन (उदयपुर) कर दिया है, यह अच्छा शोधप्रबन्ध है और इस कवि और उसकी इस प्रसिद्ध कृति के लिए अधिक जानकारी हेतु वह शोधप्रबंध देखा जा सकता है।[३]

आचार्य शुक्ल ने अपने इतिहास में यह स्पष्ट लिखा था[४] कि

---

१ डा० कस्तूरचंद कासलीवाल—राजस्थान के जैन शास्त्र भंडारों की ग्रंथ-सूची भाग ३ पृ० ८४ और भाग ४ पृ० २३३।

२. कामता प्रसाद जैन—हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास पृ० १८०

३. अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० ११२।

४. आ० रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० २३-२४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खुमाणरासो की प्रति अपूर्ण है और उसमें केवल राणाप्रताप सिंह तक का वर्णन है। मेवाड़ में तीन खुमाण नामक राणा हुए हैं, प्रथम सं० ८१० से ८६५, द्वितीय ८७०-९०० और तृतीय ९६५ से ९९० तक रहे। यह खुमाण अब्बासिया खलीफा अलमामू (८७०-८९०) के समय था अर्थात् वह खुमाण था जिसे नायक बनाकर यह रचना की गई है। इस समय जो खुमाण रासो प्राप्त है उसमें कितना पुराना और कितना बाद का प्रक्षिप्त अंश है यह कहना कठिन है। शिवसिंह सरोज में जिस खुमाण रासो की चर्चा है उसमें रामचन्द्र से लेकर खुमान तक का वर्णन था। अब तो यह भी कहना कठिन हो गया है कि दलपत या दौलत विजय असली खुमानरासो का रचयिता था या उसके पिछले परिशिष्ट का।

द्यानतराय — आपके पिता श्यामदास गोयल अग्रवाल थे। इनके पूर्वज लालपुर से आकर आगरा में बस गये थे। द्यानतराय का जन्म सं० १७३३ में हुआ। इन्हें संस्कृत के साथ उर्दू-फारसी का भी अभ्यास कराया गया था। सं० १७४८ में इनका विवाह हुआ लेकिन गृहस्थ जीवन कष्टमय था। उन्होंने लिखा है —

रुजगार बनै नाहिं, धन तौ न घर मांहि.
खाने को फिकर बहु नारि चाहै गहना।

एक पुत्र जुवाड़ी था, एक मर गया और पुत्री भी विवाहोपरांत दिवंगत हो गई। आगरा उस समय आध्यात्मिक चर्चा का केन्द्र था। मानसिंह सैली सत्संग के लिए प्रख्यात थी। द्यानतराय भी वहाँ जाने लगे और जैनधर्म-दर्शन के प्रति निष्ठा बढ़ती गई। फलतः इन्होंने पूजा, भक्ति और अध्यात्म संबंधी पदों-पद्यों की रचना प्रारंभ की। इनके ऐसे अनेक स्फुट पदों और कृतियों का संग्रह 'धर्मविलास' है। इसमें ३३३ पद हैं। इनमें से कुछ पूजापाठ और बाकी अन्य ४५ विषयों पर लिखे गये हैं। ग्रन्थ की प्रशस्ति से तत्कालीन आगरा की स्थिति पर प्रकाश पड़ता है। उन्होंने रूपचंद, बनारसीदास, भगौतीदास आदि महापुरुषों का उल्लेख किया है —

रूपचंद बनारसी चंद जी भगौतीदास,
जहाँ भलेभले कवि द्यानत उछाह सौ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऐसे आगरे की हम कौन भांति सोभा कहै,
बड़ी धर्म थानक है देखिए निगाह सौं।[1]

ये औरंगजेब, बहादुरशाह, फर्रुखसियर और मुहम्मदशाह के समकालीन थे जिनका समय क्रमशः १७१५ से ६४; ६४ से ६९; ७० से ७६ और ७६ से १८०५ तक था। जगतराय द्वारा संकलित 'धर्मविलास' में सं० १७८० तक का कवि का जीवन चरित संक्षेप में मिलता है। इनकी दूसरी रचना आगमविलास से ज्ञात होता है कि इनकी मृत्यु सं० १७८३ कार्तिक शुक्ल १४ को हुई थी।

इनकी रचनाओं में निरहंकारता और विनय भाव मिलता है यथा—

सबद अनादि अनंत, ग्यान कारन बिन मच्छर,
मैं सब सेती भिन्न, ग्यानमय चेतन अच्छर।

तत्कालीन कुछ ऐतिहासिक घटनाओं जैसे मुहम्मदशाह के समय का वर्णन या दिल्ली में नहर निकालने का उल्लेख भी इनकी कृतियों में कहीं-कहीं मिलता है। पर प्रधानस्वर विनती, भक्ति, अध्यात्म ही है। उनके एक पद की कुछ पंक्तियां प्रस्तुत हैं जिसमें भक्त भगवान को उपालम्भ देता हुआ कहता है—

मेरी बेर कहाँ ढील करी जी,
सूली सों सिंहासन कीना, सेठ सुदर्शन विपति हरी जी।
सीता सती अगिनि मैं बैठी, पावक नीर करी सगरी जी।

भवसागर से मुक्ति की प्रार्थना करता हुआ कवि मध्यकालीन वैष्णव भक्तों की भाषा में कहता है—

तुम प्रभु कहियत दीनदयाल,
आपन जाय मुकति में बैठे, हम जु रुलत जगजाल।
तुमरो नाम जपै हम नीके, मन वच तीनों काल,
तुम तो हमको कछू देत नहिं, हमरो कौन हवाल।[2]

पूजा साहित्य इनकी लिखी पूजाओं में से कुछ प्रतिदिन मंदिरों में पढ़ी जाती हैं, कुछ पर्व के दिनों में अवश्य बाँची जाती हैं।

१. धर्मविलास (कलकत्ता) अन्तिम प्रशस्ति ३०वाँ पद।

२. डॉ० प्रेमसागर जैन—हिन्दी जैन भक्तिकाव्य और कवि पृ० २८०-२८६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पं० पन्नालाल बाकलीवाल ने बृहज्जिन वाणी संग्रह में पूजासाहित्य को संकलित किया है जो भारतीय ज्ञानपीठ से पूजांजलि में छपा है। इसमें देवशास्त्र गुरुपूजा, बीसतीर्थंकर पूजा, दस लक्षण धर्म पूजा, सोलह कारण पूजा, अष्टाह्निका पूजा, सिद्धचक्र पूजा और सरस्वती पूजा आदि विशेष रूप से प्रचलित है। पंचमेरु पूजा में गेयता और लय का उदाहरण देखिए—

सीतल मिष्ट सुवास मिलाय, जलसौं पूजौ श्री जिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय।
पाँचौ मेरु असी जिन धाम, सब प्रतिमा को करौ प्रणाम।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय।

स्तोत्र साहित्य—आपने स्वयंभू स्तोत्र, पार्श्वनाथ स्तोत्र और एकीभाव स्तोत्र की रचना की है, जिनमें से दो मौलिक हैं और तीसरा स्तोत्र वादिराज के संस्कृत स्तोत्र का भावानुवाद है। स्वयंभू स्तोत्रमें २४ पद है, प्रत्येक तीर्थंकर की वंदना में एक एक पद लिखा गया है। पार्श्वस्तोत्र की दो पंक्तियाँ नमूने के रूप में उद्धृत की जा रही हैं—

दैत्य कियो उपसर्ग अपार, ध्यान देखि आयो फनिधार,
गयी कमठ शठ मुख कर श्याम, नमो मेरु सम पारस स्वाम।

आरती साहित्य—आपकी पाँच आरतियाँ जिनवाणी संग्रह में प्रकाशित हैं। प्रथम पंच परमेष्ठी, द्वितीय जिनराज, तृतीय मुनिराज, चतुर्थ महावीर और पंचम आतमराम की आरती है। द्वितीय आरती की दो पंक्तियाँ देखें—

सुरनर असुर करत तुम सेवा, तुमही सब देवन के देवा,
आरति श्री जिनराज तिहारी, करम दलन संतन हितकारी।

छोटा समाधिमरण में १० पद्य है, यह बृहज्जिनवाणी में प्रकाशित है। धर्मपच्चीसी (२७ पद्य) जिनवाणी संग्रह में प्रकाशित है। एक स्थल पर कवि ने धर्म के संबंध में काव्यात्मक पंक्तियाँ लिखी हैं यथा—

चंद विना निश, गज बिन दंत, जैसे तरुण नारि बिन कंत,
धर्म बिना त्यौ मानुष देह, तातैं करिये धर्म सनेह।[1]

१. डा० प्रेमसागर जैन—हिन्दी जैन भक्तिकाव्य और कवि पृ० २७८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इनकी प्रसिद्ध रचना अध्यात्म पंचाशिका या संबोध पंचाशिका में ५० पद्य हैं, इसमें विशुद्ध आत्मा के पास रहकर भी भ्रमाकुल जीव की भटकन का वर्णन करता हुआ कवि एक स्थान पर कहता है —

जैसे काहू पुरुष के द्रव्य गड़्यौ घर मांहि,
उदर भरै कर भीख ही, व्यौरा जानै नाहि।

इनकी अन्य रचनाओं में १०८ नामों की गुणमाला, दस स्थान चौबीसी, छह ढाल आदि का उल्लेख मिलता है।[1]

पद साहित्य की रचना करने वाले १८वीं शती के भक्तिभावप्रधान कवियों में इनका नाम विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। इनके तथा कुछ अन्य प्रमुख कवियों की व्रजभाषा का प्रभाव अन्य जैन कवियों पर भी पड़ा।[2]

धनदेव — वृहद् तपागच्छ के राजविजय आपके गुरु थे। आपने 'स्त्री चरित्र रास' की रचना सं० १७१० से कुछ पूर्व ही की थी। यह रचना धनदेव ने भुवनकीर्ति की आज्ञा से की थी। भुवनकीर्ति सं० १७१० में दिवंगत हुए थे और इनके पट्ट पर रत्नकीर्ति सूरि बैठे थे। कवि ने लिखा है भुवनकीर्ति सूरि की आज्ञा थी—तास आज्ञा लही, बात धनदेव कही।[3]

इस रचना का अन्य विशेष विवरण या रचना से उद्धरण नहीं दिया गया है।

धर्मचंद (मंडालाचार्य भट्टारक)—इन्होंने आदिनाथ बेलि की रचना सं० १७३० में महारौठपुर (जोधपुर) में की। रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है—

---

१. सम्पादक कस्तूरचन्द कासलीवाल—राजस्थान के शास्त्रभंडारों की ग्रंथ-सूची भाग ३।
२. सम्पादक अगरचन्द नाहटा—राजस्थान का जैन साहित्य पृ० २१६-१७
३. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो भाग ३ पृ० ११८७ (प्र० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संवत सतरा सैंतीसे, मास असाढ़ नवमी से,
महारौठपुर मंझारी, आदिनाथ भवियण तारी ।[1]

यह उल्लेख आदिनाथ बेलि के अंतिम पृष्ठ पर है। इसमें प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के पंचकल्याणक उत्सवों का वर्णन सरसता के साथ कवि ने किया है।

धर्ममंदिर गणि खरतरगच्छ की जिनचंद्र सूरि शाखा के दयाकुशल आपके गुरु थे। इन्होंने सं० १७१५ से पूर्व दीक्षा ली थी। इन्होंने श्रावक नवलखा वर्द्धमान व भणशाली मिट्टू के लिए सं० १७४०-४१ में मोहविवेकरास और परमात्मप्रकाश चौपई नामक आध्यात्मिक ग्रंथ लिखे। इनकी प्रारम्भिक रचनाएँ गुजरात में लिखी गई जिनकी सूची नाहटाजी के अनुसार इस प्रकार है--

शंखेश्वर स्तवन सं० १७२३, खंभात, पार्श्वनाथस्तवन सं० १७२४, मुनिपति चौपाई सं० १७२५ पाटण, दयादीपिका चौपाई सं० १७४० मुलताण, मोहविवेकरास (४ खंड ८५ ढाल) सं० १७४१, परमात्मप्रकाश चौपाई सं० १७४२, नवकार स्तवन, सुमतिनागिला संबंध चौपाई १७३८ बीकानेर और शंखेश्वर स्तवन (द्वितीय) सं० १७४८ लोद्रवा।[2]

मोहनलाल दलीचंद देसाई ने इनकी गुरुपरंपरा में भुवनमेरु और पुण्यरत्न का उल्लेख किया है। इन्हीं पुण्यरत्न के शिष्य दयाकुशल थे।

शंखेश्वर पार्श्वनाथ बृहत्स्तवन सं० १७२३ की अंतिम पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं --

सांचो साहिब पास जी रे, मत मूंको रे मन थी उतार,
मया करी महिमानिलो रे अे विनति अम बारबार।
संवत राम बषाणीये कर तुरग भूमि सुजांण।
चैत्र नी पूनिम शुभ दिने, मै भेट्या रे जेहनी बहु आंण।
वाचनाचारिज जाणीये वर, दयाकुशल उल्लास,
मुनि धर्ममंदिर इम कहै, आपेज्यो हो सिवसुख वरवास।[3]

---

१. डा० लालचन्द जैन--जैन ब्रजभाषा प्रबन्धों का अध्ययन पृ० ६९
२. श्री अगरचन्द नाहटा--परंपरा पृ० ९९-१००।
३. मोहनलाल दलीचन्द देसाई-जैन गुर्जर कवियो भाग ४ पृ० ३१९ (न०सं०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनिपति चौपई (४ खण्ड ६१ ढाल १२०० कड़ी सं० १७२५, पाटण)

आदि श्री संखेसर सुखकरन नमतां नवे विधान,
विघन विडारण वीरवर बसुधा बाध्यो बान।

इस कृति में कवि ने मुनिपति के चरित्र के माध्यम से धर्म की नाव पर चढ़कर लोभ की दरिया पार करने वाले संतों की प्रशंसा की गई है। कवि कहता है --

अपरंपर अे लोक में, लोभ लहरि दरियाव,
धन ते नर जे ऊतरे, पामी जिन धर्म नाव।

रचनाकाल---श्री जिनधरम सूरीसरु, जसु दरसण हीयडो हीसे रे,
तसु राजे संबंध संवत सतरे पंचवीसे रे।
पाटण मांहे परगडो श्री वाडी पास विराजे रे,
तस सांनिधि चौपाई रची, चतुरां ने कंठ छाजे रे।

जंबूरास (सं० १७२९, मुलतान, विवरण उद्धरण अप्राप्त) दयादीपिका चौपई का आदि--

चिदानद चित्त में धरी, प्रणमुं पास जिणंद,
जग उपगारी जग गुरु, ज्योतिरूप सुखकंद।

अन्त--पारसनाथ पसाउले श्री मुलताण नगर मझारो रे,
श्रावक जिहां सुखीया वसै अध्यातम ग्यान विचारो रे।

गुरु परम्परा

संवेग गच्छवा राजीया भट्टारक श्री जिनचंदो रे,
भवनमेरु तस शिष्य भला, पुण्यरतन वाचक आणंदो रे,
तासु सीस वाचकवरु श्री दयाकुसल कहीजै रे,
धरममंदिर गणि इम कहै जिनधरम थी सुख लहीजै रे।

रचनाकाल--सतरै सै चालीसै वरसै रचीओ धरमध्यान अंग अेहोरे,
निवृत्तिपणों निश्चल धरें, ग्यांनी नर धनधन तेहो रे।
जीवदया जग में बड़ी, सहु प्राणी ने सुख दाई रे,
जीवदया धरम कीजतां, दिनदिन धर होत बधाई रे।[1]

---

1. मोहनलाल दलीचंद देसाई--जैन गुर्जर कवियो भाग ४ पृ० ३२०-३२२ (न० सं०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह रचना जीवदया का महत्व व्यंजित करती है। प्रबोध चिंतामणि अथवा मोह विवेक नो रास (६ खण्ड, ७६ ढाल, सं १७४१ मागसर शुक्ल १०, मुलतान

जयशेखर सूरि ने यह ग्रन्थ संस्कृत में लिखा था, इसका गुर्जर में रूपांतरण 'त्रिभुवन दीपक प्रबंध नाम से उन्होंने किया था, उसी पर आधारित यह रास धर्ममंदिर ने लिखा है। इसका प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है--

चिदानंद चित्तचाह शुं, प्रणमु प्रथमोल्लास,
तेजतमस जीत्यां जिणे, लोकालोक प्रकास।

जयशेखर सूरि के बारे में कवि कहता है--

प्रबोध चिंतामणि ग्रंथ प्रसिद्धो, श्री जयशेखर कीधो जी,
मोह विवेक तणा अधिकारा गीर्वाण वाणी सारा जी।

रचनाकाल --

सत्तर से अेकताले वरषे उज्वल पक्ष शुभ दिवसे जी,
मागसिर दसमी स्थिर शुभ योगा, चौपाई यह सुप्रयोगा जी।'

यह रचना जैनकाव्य दोहन पृ० २२८ से ३६४ पर प्रकाशित है। परमात्म प्रकाश चौपाई अथवा ज्ञान सुधा तरंगिणी चौपाई (२ खण्ड, ३२ ढाल सं० १७४२ कार्तिक शुक्ल ५ गुरु, जैसलमेर)

आदि-- परम ज्योति प्रणमु सदा परमातम परकाश,
चिदानंद लहरी जलधि अनुपम सुख निवास।

रचनाकाल--

नयन वेद मुनि चंद्रमा (१७४२) अे संवत विक्रम जाणो रे,
काती सुदी पंचमी दिनई, गुरुवारइ सुभ जानो रे।

अंत-- मंगल कारण मानज्यो अे अध्यात्म अधिकारो रे,
धर्ममंदिर वाचक कहे, सुणतां सुख संतति सारो रे।

परमात्म प्रकाश का रचनास्थान पहले देसाई ने मुलतान बताया था। इसमें साह वर्द्धमान और मिट्ठूमल भणसाली का उल्लेख है जो मुलतान के निवासी थे, सम्भवतः इसी कारण रचनास्थान मुलतान

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो भाग ४ पृ० ३२३-२४ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समझने का भ्रम हुआ होगा, परन्तु बाद में सुधारकर रचना स्थान जैसलमेर किया गया है।[1] इनके अलावा 'आत्मपद प्रकाश' का देसाई ने केवल नामोल्लेख किया है। नवकार रास और शत्रुंजय गीत का उद्धरण उपलब्ध है। नवकार रास रत्नसमुच्चय पृ० ४०९-११ पर प्रकाशित है। इसकी अंतिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं--

दिन दिन अधिकी संपदा अे, मनवंछित सुख थाय,
दया कुशल वाचक वरु अे, धर्ममंदिर गुणथाय,
नमुं नवकारने अे।

दो शत्रुंजय गीत देसाई जी के पास थे जिनका आदि अन्त दिया गया है, दोनों ५ कड़ी के हैं, प्रथम गीत का आदि 'सहीयां सेतुंज गिरिवर भेटीयइरे' से हुआ है और द्वितीय का अन्त 'धरममंदिर जिन गावता हूँ, दिनदिन अधिक हुलास हुं' से हुआ है।[२]

धर्मसिंह - आप लोकागच्छ के रत्नसिंह के प्रशिष्य और देवजी के शिष्य थे। आपका जन्म जामनगर के दशा श्रीमाली वणिक् जिनदास की पत्नी शिवाजी की कुक्षि से हुआ था। सं० १७२८ में इनका स्वर्गवास हुआ। आप मूलतः गद्य लेखक थे। इन्होंने २७ सूत्र पर टब्बा लिखा है और समवायांग सूत्र पर हुंडी लिखी है। श्री मोहनलाल दलीचंद देसाई ने इनका जन्म सं० १६८५, दीक्षा सं० १७०० बताया है।[३] परन्तु यह शंकास्पद है। इन्होंने सं० १६८५ में शिवजी ऋषि के समय से अलग हुई दरियापुरी संघ की स्थापना की। इनके नाम पर सं० १७२५ में रचित धर्मसिंह बावनी का उल्लेख भी किया जाता है किन्तु वह रचना वस्तुतः खरतरगच्छ के धर्मसिंह या धर्मवर्द्धन की है जिसका विवरण आगे दिया जा रहा है। इसके गद्य का नमूना उपलब्ध नहीं हो पाया है।[४]

धर्मवर्द्धन, धर्मसिंह, महोपाध्याय श्री अगरचन्द नाहटा ने

---

१. मोहनलाल दलीचंद देसाई—जैन गुर्जर कवियो भाग २ पृ० २३५-२४३ तथा भाग ३ पृ० १२४३-४५ (प्र० सं०)
२. वही भाग ४ पृ० ३२३-३२७ (प्र०सं०)।
३. वही भाग २ पृ० ५९४ और भाग ३ पृ० १६२४ (प्र० सं०)
४. वही भाग ४ पृ० १ (न०सं०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन्हें 'साधुकीर्ति के विद्वद् परंपरा के विमलहर्ष' का शिष्य बताया था[1] किन्तु मोहनलाल दलीचंद देसाई ने इन्हें खरतर जिनभद्रसूरि की शाखा में साधुकीर्ति > साधुसुंदर > विमलकीर्ति > विजयहर्ष का शिष्य बताया है।[2] ये संस्कृत भाषा के अच्छे ज्ञाता और कवि थे। इन्होंने श्री भक्तामर स्तोत्र समस्यारूप श्री वीर जिनस्तवन ४४ वसंततिलका छंदों में रचा था। उसपर संस्कृत में ही स्वोपज्ञवृत्ति भी लिखी थी। यह रचना सं० १७३६ की है। इसमें उन्होंने अपने सुगुरु का नाम विजयहर्ष बताया है, यथा—

रस गुण मुनि भूवेन्देऽत्र भक्तामरस्थे,
चरम चरम पादः पूरयत सत्समस्याः।
सुगुरु विजयहर्षा वाचकास्तद्विनेय-
श्चरमजिननुतिं ज्ञो धर्मसिंहो व्यधत्तः।

इससे यह भी सिद्ध होता है कि कवि का नाम धर्मसिंह और धर्मवर्द्धन दोनों था क्योंकि आगे लिखा है —

इत्युपाध्याय श्री धर्मवर्द्धन गणिकृतं श्री भक्तामरस्तोत्र समस्यारूप श्री वीरजिनस्तवन तद्वृत्तिश्च। इत्यादि

'राजस्थान' नामक हिन्दी त्रैमासिक पत्र वर्ष २ सं० १९९३ के अंक २ में श्री अगरचन्द नाहटा ने 'राजस्थानी साहित्य और जैन कवि धर्मवर्धन' पर एक विस्तृत लेख लिखकर धर्मसिंह के संबंध में पर्याप्त सूचनाएँ दी थी। आपने मरुगुर्जर हिन्दी में भी अनेक रचनायें की हैं जिनका संक्षिप्त विवरण आगे प्रस्तुत किया जा रहा है। आप राजस्थानी भाषा के श्रेष्ठ कवियों में गणनीय हैं। आपने अपनी प्रथम रचना 'श्रेणिक चौपइ' में अपनी तत्कालीन आयु १९ वर्ष बताई थी और श्रेणिक चौपई की रचना सं० १७१९ में हुई थी अतः आपका जन्म तदनुसार सं० १७०० निश्चित होता है। श्रेणिक चौपई के अलावा आपने अमरसेन वयरसेन चौपई, दशाणभद्र चौपई, सुरसुंदरी रास, शीलरास, अर्थबावनी जोधपुर बावनी, सीखबत्तीसी और गुरु-शिष्य छत्तीसी के अलावा अनेक स्तवन आदि लिखे हैं।

---

१. अगरचन्द नाहटा—परम्परा पृ० १०१
२. मोहनलाल दलीचंद देसाई—जैन गुर्जर कवियो भाग ४ पृ० ३८६ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आपका जन्म नाम धर्मसी था। आपके शिष्य कीर्तिसुन्दर भी (जन्म नाम कानजी) अच्छे कवि थे। उनकी चर्चा यथास्थान की जा चुकी है।

श्रेणिक चौपइ (३२ ढाल ७३१ कड़ी सं० १७१९, चंदेरीपुर)

रचनाकाल -सतर सै उगणीसे वरसे, चंदेरीपुर चावै,
श्री जिनभद्र सूरीसर शाखा विध खरतर वउ दावै।

इसमें साधुकीर्ति से लेकर विमलहर्ष तक का ही नाम गुरुपरंपरा में गिनाया गया है। इससे ये विमलहर्ष के शिष्य मालूम होते हैं पर अमरसेन वयरसेन चौपइ में विमलकीर्ति के पश्चात् विजयहर्ष का भी वंदन है।

अमरसेन वयरसेन चौपइ (सं० १७२४ सरसा) में दी गई गुरु परंपरा इस प्रकार है—

गरुओ श्री खरतरगछ गाजे श्री जिनचंद सूरि राजेजी,
शाखा जिनप्रभ सूरि सहाजे, दोलति चढ़ी दिवाजे जी।
पाठक प्रवर प्रगट पुन्याइ, साधुकीरति सवाई जी,
साधु सुन्दर उवझाय सदाइ, विद्या जास बसाई जी।
वाचक विमलकीरति मतिवंता, विमलचंद दुतिवंताजी।
विजयहरष जसु नाम वदंता, विजयहरष गुण व्यापीजी।
सदगुरु बचन तणो अनुसारी; धरमसीख मुनिधारी जी।
कहे धरमवरधन सुखकारी, चउपइ अे सुविचारी जी।

रचनाकाल—संवत सतरे सैं चौवीसेसरसैं, सुखदायकपुर सरसेजी,
सगवटवंध चोपइ स···सुणतां सुख अनुसरसै जी।[1]

आदि — अक्षर राजा जिम अधिकं, अक्षर राजा अेह,
बेहुं अंक अनेक विधि, जागति सगति जेह।

२८ लब्धिस्तवन (सं० १७२२ —मेरु तेरस, लूणकरणासर)

अन्त — संवत सतरे से बावीस (छवीसै) मेरु तेरस दिन भले;
श्री नगर सुखकर लुणकरनसर आदि जिण सुपसाउले।
वाचनाचार्य समरु (सुगुरु) सांनिध विजयहर्ष विलास अे,
कहे धरमवरधनि तवन मणतां प्रगट ज्ञान प्रकाश अे।

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग ४, पृ० २८७-२८८ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह रचना धर्मवर्धन ग्रन्थावली तथा जिनेन्द्र भक्ति प्रकाश में प्रकाशित है।

धर्म (भावना) बावनी (५७ कड़ी सं० १७२५ कार्तिक कृष्ण ९ सोम, रिणी)

अन्त— ज्ञानकै महानिधान बावन्न बरन जान,
कीनी ताकी जोरि यह ज्ञानकी जमावनी।
पाठत पठत जोइ संत सुख पावै सोइ,
विमलकीरति होइ सारै ही सुहावनी।
संवत सत्तर पचीस काति वदि नौमि दीस,
वार है विमलचंद आनंद वधामनी।[1]
नैर रिणी कुं निरख नितही विजैहरष,
कीनी तहां धर्मसीह नाम धर्मबावनी।

यह रचना भी धर्मवर्धन ग्रन्थावली में प्रकाशित है। इसे वा० मो० शाह ने सन् १९११ में प्रकाशित किया था जिस पर एक लेख 'वा० मो० शाह की एक महत्वपूर्ण भूल' श्री अगरचन्द नाहटा ने 'जैन' १९-१२-३७ में लिखा था क्योंकि शाह ने इसे लोकागच्छ के धर्मसिह की रचना बताया था।

१४ गुणस्थान— (गर्भित सुमति जिन) स्तवन (सं० १७२९ श्रावण कृष्ण ११ बाहडमेर) यह भी धर्मबार्धन ग्रन्थावली, रत्नसमुच्चय तथा जैन प्रबोध पुस्तक के अलावा अन्य स्थानों से प्रकाशित प्रसिद्ध लोकप्रिय रचना है। इसका प्रारम्भ सुमति जिणंद सुमतिदातार··· से हुआ है। दंडकविचारगर्भित (पार्श्व) स्तवन (४ ढाल सं० १७२९ दीपावली जैसलमेर)

आदि — पूर मनोरथ पास जिणेसर अेह करूं अरदास जी।

यह रत्न समुच्चय और धर्मवर्धन ग्रंथावली में प्रकाशित है।

अढी द्वीप बीस विहरमान स्तवन (३ ढाल सं० १७२९ जैसलमेर)

यह रत्नसमुच्चय और धर्मवर्धन ग्रन्थावली के अलावा अन्यत्र से भी प्रकाशित हो चुकी है। इसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं –

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई, भाग ४, पृ० २८९ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वंदू मन सुध विहरमान जिनेसर बीस।
दीप अढी मैं दीपै, जयवंता जगदीस।

समवसरण विचार गर्भित स्तवन अथवा त्रिगडा स्तवन २७ कड़ी

यह भी रत्नसमुच्चय जौर धर्मवर्धन ग्रंथावली तथा अन्यत्र से प्रकाशित है—

प्रास्ताविक कुंडलिया बावनी (५७ कड़ी सं० १७३४ जोधपुर)

धर्मबावनी में सवैया, छंद और हिन्दी भाषा का प्रयोग किया गया था इसमें कुण्डलिया छंद और मरुगुर्जर भाषा का प्रयोग हुआ है।

अन्त— आखर बावन आदि दे कवित कुण्डलीया किद्ध,
धरम करम सहु मइ धुरा, प्रास्ताविक प्रसिद्ध।
सतरसइं चउत्रीस भलैं दिवसैं भावी जैं,
विजयहर्ष वाचक शिष्य, धमवरधन साखर,
कीधा बावन कवित्त आदि दे बावन आखर।[1]

यह धर्मवर्धन ग्रन्थावली में प्रकाशित रचना है।

शनिश्चर विक्रम चौपइ (१४८ कड़ी राधनपुर)

आदि — सरसति सुमति दो मूहनि, वाणी अपूरब सार,
गुण भणवा ऊलट घणो, विक्रम भूप उदार।

इसमें महाराज विक्रमादित्य के नाना गुणों का वर्णन किया गया है। जैन साहित्य में विक्रमादित्य पर आधारित अनेक प्रसिद्ध रचनायें हुई हैं। इसके अन्त में सिद्धसेन दिवाकर की प्रशंसा में कहा गया है कि उन्होंने उज्जयिनी के महाकाल का उद्धार किया और विक्रमादित्य का प्रबोधन किया था। यथा

राय सिद्धसेन दिवाकर गुरु वयणे करीरे, प्रीछ्यु श्री जिनधर्म,
महाकाल वर तीरथ जिणि उद्धरूं रे, प्रतिबोध्यो विक्रम।[2]

---

१ मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग ४, पृ० २९०-२९१ (न० सं०)।

२. वही, भाग ४, पृ० २९२ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

डंभक्रिया चौपाई (सं० १७४४ विजयादसमी) शायद वैद्यक शास्त्र की पुस्तक है। धर्मवर्धन ग्रन्थावली में प्रकाशित है।

अमर कुमार सुरसुंदरी नो रास (४ खंड ३९ ढाल ६३२ कड़ी सं० १७३६ श्रावण शुक्ल १५, बेनातटपुर)

आदि— सासण जेहनो सविहिये, आज प्रतिक्ष प्रमाण,
जगगुरु वीर जिणंद नै, प्रणमुं ऊलट आंण।

यह शीलतरंगिणी पर आधारित शील के माहात्म्य को दर्शाने वाली रचना है। रचनाकाल इन पंक्तियों में है—

सील तरंगणी ग्रन्थनी साखै अे रास अति लाखै जी,
धन जे सील रतनै राखै भगवंत इण पर भाख्यै जी।
संवत सतरै वरस छत्रीसे श्रावण पूनिम दीसे जी,
यह संबंध कह्यो सजगीसै, सुणतां सहुमन हीसै जी।[1]

इसमें भी विजयहर्ष को गुरु बताया है।

प्रास्ताविक छप्पय बावनी छप्पय छंदों में रचित मरुगुर्जर की रचना है इसे धर्मवर्द्धन ने सं० १७५३ श्रावण शुक्ल १३ को बीकानेर में पूर्ण किया था। यह धर्मवर्धन ग्रन्थावली में प्रकाशित है।

(वीर जिणंद) आलोयण स्तवन (४ ढाल सं० १७५४ फलौधी)

आदि — अे धन शासन वीर जिनवर तणो,
जास परसाद उपगार थाये घणो,
सूत्र सिद्धान्त गुरुमुख थकी सांभली,
लहिय समकित अने किरति लहिये वली।

यह रत्नसमुच्चय और धर्मवर्धन ग्रंथावली में प्रकाशित है।

दशार्णभद्र चौपइ (ढाल ६, गाथा ९६, सं० १७५७, मेड़ता) भी धर्मवर्धन ग्रन्थावली में प्रकाशित रचना है।

चौबीसी (सं० १७७१ जैसलमेर) की भाषा प्रसादगुण संपन्न हिन्दी है और यह धर्मवर्धन ग्रन्थावली में प्रकाशित है।

सवासो सीख कड़ी १३६, शीलरास (गाथा ६४ बीकानेर) धर्मवर्धन ग्रन्थावली में प्रकाशित छोटी रचनायें हैं।

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग ४, पृ० २९३ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४५ आगम स्तव अथवा संज्झाय (गा० २८ सं० १७७३ जैसलमेर) और गौड़ी पार्श्वछंद अथवा अष्टभय निवारण छंद धर्मवर्धन ग्रन्थावली में प्रकाशित लघु कृतियाँ हैं। इनके अलावा ८४ आशातना स्तव (गा० १८ शिवराम), २४ जिननां २४ गीत, बामानंदन स्तव, पार्श्वनाथ स्तव, ऋषभगीत आदि अनेक स्तवन, स्तोत्र आदि भी उपलब्ध हैं जिनके उद्धरणों से प्रविष्टि का कलेवर बढ़ाना उचित नहीं है। आप १८वीं शती के समर्थ कवि और प्रभावक संत थे। आपने नाना छन्दों, ढालों और लयों में विपुल रचनाएँ की हैं जो लोक शिक्षा एवं लोकरंजन की दृष्टि से श्रेष्ठ हैं।[1] हमें यह भी ज्ञात होता है कि धर्मसिंह, धर्मवर्धन, ध्रमसी, धरमसी आदि नामों से तमाम रचनाओं के कर्त्ता कवि धर्मवर्द्धन अपने समय के महान विद्वान् और संस्कृत, हिन्दी, मरु-गुर्जर आदि भाषाओं के ज्ञाता एवं सक्षम रचनाकार थे।

धरमसी नामक एक कवि की दो रचनायें ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में 'जिनसुख सूरि गीतम्' और 'जिनभक्तिसूरि गीतम्' शीर्षकों के अन्दर प्रकाशित हैं। जिनसुखसूरि को सं० १७६२ में जिनचन्द सूरि ने गच्छनायक का पद प्रदान किया था। जिनभक्ति सूरि सं० १७७९ में जिनसुखसूरि के पट्ट पर आसीन हुए थे। ये धरमसी इन्हीं के शिष्य होंगे और उनका रचनाकाल भी १८वीं शती का उत्तरार्ध रहा होगा। धर्मवर्द्धन का समय १८वीं शतीका पूर्वार्द्ध है और इन दोनों की गुरु परम्परा भिन्न है। अतः ये भिन्न कवि हैं। प्रथम गीत में जिनसुखसूरि की स्तुति है—

यथा— प्रतपो एहु धणा जुग गच्छपति, श्री जिनसुख सूरिंदो जी,
श्री धरमसी कहुं श्री संघनइ, सदा अधिक करो आणंदो जी।

दूसरे गीत में जिनभक्तिसूरि की वंदना है, यथा—

जिनभक्ति जतीसर वंदौ, चढ़ती कला दीपति चंदौ रे,
खरतरगच्छ नायक राजै, छत्रीस गुण करि छाजै रे।

रचनाकाल—

संवत सतरे उगुण्यासी ज्येष्ठ वदि त्रीज पुण्य प्रकासी रे
सहु सुजस रिणी संघ साध्या इम कहै धरमसी उपाध्या रे।[2]

---

१. देसाई, भाग २ पृ० ३३९-४६ तथा पृ० ५९४ और भाग ३ पृ० १३१२-१८ (प्र०सं०)।

२. ऐतिहासिक जैन काव्यसंग्रह।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऐतिहासिक जैन काव्यसंग्रह में संकलित गीत तीर्थयात्राओं के समय घरों में और यात्रा में गाए जाते थे। इनका विषय भक्ति है और इनमें प्रायः महापुरुषों का कीर्ति स्मरण है। इसलिए ये पापबंध के कारण नहीं अपितु पुण्य बन्ध हेतु लिखे और गाए जाते थे। इनमें राजनीतिक और धार्मिक इतिहास भी व्यक्त हुआ है। इनमें वर्णित घटनाओं का प्रमाण इतिहास में प्राप्त होता हैं। जैन साधुओं का सम्पर्क शासकों से अच्छा रहा। जिनप्रभ सूरि ने कुतुबुद्दीन, मुबारक शाह और मुहम्मद शाह को प्रभावित किया था। जिनदत्त सूरि ने सिकन्दरशाह लोदी को और जिनचन्द्र ने सम्राट् अकबर को प्रभावित किया था। उसी प्रकार हीरविजय ने भी सम्राट् अकबर का प्रबोधन किया था। ऐसे प्रभावक जैन साधुओं के जीवन और दर्शन से सम्बन्धित अनेक महत्वपूर्ण घटनायें इन गीतों में उपलब्ध हैं। जिनसुखसूरि और जिनभक्ति सूरि खरतरगच्छ की जिनप्रभसूरि की शाखा के साधु थे और धर्मवर्द्धन उर्फ धरम सी जिनभद्रसूरि की शाखा में हुए थे। अतः इन गीतों के लेखक धरमसी धर्मवर्द्धन उर्फ धरमसी से भिन्न हैं और महत्वपूर्ण ऐतिहासिक जैन गीतकार हैं।

धीरविजय—आप ऋषिविजय के प्रशिष्य एवं कुंवरविजय के शिष्य थे। आपने सं० १७२७ से पूर्व 'चौबीसी' की रचना की; कुछ पंक्तियाँ नमूने के लिए प्रस्तुत है। महावीर स्तव (राग धन्यासी)

वीर जिणेसर वंदीइ, सासन नो सिरदार, जिनजी
सिद्धारथ कुल सिंह लो, त्रिसला मात मल्हार, जिनजी।
सकल वाचक मुगटामणि, श्री ऋद्धिविजय उवझाय,
तस बुध कुंवर विजय तणो, धीरनि हो सुखदाय, जिनजी।[1]

इसी प्रकार इसमें चौबीस तीर्थङ्करों की वन्दना की गई है।

नंदराम—आप जैनेतर कवि हैं। ये वैष्णव कृष्णभक्त कवि थे। अम्बावती निवासी बलिराम खण्डेलवाल के आप पुत्र थे, यथा—

नन्द खण्डेलवाल हैं अम्बावती कौ वासी,
सुत बलिराम गोत है रावत, मत हैं कृष्ण उपासी।

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो भाग ३ पृ० १२३७-३८ (प्र० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आपकी एक सशक्त रचना नन्दराम पच्चीसी (सं० १७४४) का उल्लेख जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थसूची भाग ३ में है। इसकी अनेक प्रतियाँ विभिन्न जैन शास्त्र भण्डारों में सुरक्षित हैं, इससे इस रचना की लोकप्रियता का अनुमान होता है। इसलिए इसका विवरण देना उचित लगा। इसके मंगलाचरण में गणेश की वंदना है —

गनपतिको ज मनाय हरि, रिद्ध सिद्ध के हेत,
वाद वादनी मात तु, सुभ वंछित बहु देत।
कछू कह्यौ हूं चाहता हुं, तुम्हार पुनि परताप।
ताहि सुण्या सुख उपजै, दया करो अब आप।

इसमें कलि व्यौहार का वर्णन करता हुआ कवि लिखता है—

कली व्योहार पच्चीसी बरनी, जथायोग मतितेरी,
कलजुग की ज बानगी ए है, औरो रासि बहोरी।

इसका रचनाकाल इस पंक्ति में है—

संवत सतरा सै चवाला, कातिक चंद्र प्रकासा,
नन्दराम कहु...... ....[1]

इसकी भाषा पुरानी हिन्दी (मरुगुर्जर) है जो जैन साधुओं की भाषा के मेल में है। इसलिए इसे मरुगुर्जर रचनाओं में स्थान दिया गया है, यद्यपि लेखक जैन नहीं है पर रचना का प्राप्ति स्थान भी जैन शास्त्र भण्डार ही है।

नथमल (कवि) आपकी रचना बंकचोर की कथा अथवा धनदत्त सेठ की कथा उपलब्ध है जो सं० १७२५ में चाटसू में रचित है। इसमें धनदत्त के चरित्रांकन के माध्यम से बंकचोर (नामी चोर के हृदयपरिवर्त्तन की मर्मस्पर्शी कथा दी गई है। इस कथा के व्याज से कवि ने चरित्र की नाना भावदशाओं और वृत्तियों का परिचय दिया है। रचनाकाल इस प्रकार है —

संवत सतरा सै पचीस, आषाढ़ वदी जाणौ वर तीज,
वार ज सोमवार ते जाणि, कथा सम्पूर्ण भइ परमाण।

---

१. सम्पादक कस्तूरचन्द कासलीवाल — राजस्थान के जैन शास्त्रभंडारों की ग्रंथसूची, भाग ३, पृ० २८०-२८१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पढ़सी सुणसी जे नर कोय, ते नर स्वर्ग देवता होय ।
भूल चूक कहीं लिख्यो होय, नथमल क्षमा करो सब कोय ।[1]

यह रचना औरंगजेब के शासनकाल में चाटसू में रची गई जहाँ का हाकिम उस समय मदार खां था। उसके शासन में प्रजा सुखी और शांत बताई गई है, यथा —

नौरंग साहि राज ते धरै, पौण छतीसो लीला करै ।
कहुं चोवा चंदन महकाय, कहूं अरगजा फल विकसाय ।
नगर नायका सोभा धरै, पानु नव रचित बोली करै ।
हाकिम है मदार खाँ सही, दुखी दलिद्री दीसै नहीं ।

इसमें चाटसू नगर का वर्णन विस्तार से किया गया है—

सहर चाटसू सुवस वास, तिंह पुर नाना भोग विलास ।
नवसै कूँवा नव सै ठांय काल पोखरी कह्या न जाय ।
तामै बड़ा जगोली राव, सबै लोग देषण को भाव ।

× × ×

छत्री चौतरा बैठक धणी, अर मसजद तुरकां की बणी ।
चहुंधा रूष वृक्ष चहुं छांय, पंथी देखि रहे विलमाय ।
चहुंधा वणे अधिक बाजार, वैसे वणिक करैं व्यौपार ।

इसका प्रारम्भ इन पंक्तियों से हुआ है—

प्रणमुं पंच परमेष्ठी सार, तिहूं सुमिरत पावै भवपार ।
दूजा सारद नैं विस्तरुं, वुधि प्रकास कवित्त उत्तरुं ।[2]

इसकी भाषा सादी, सहज और सरल है जिस पर राजस्थानी का स्वाभाविक प्रभाव है।

नयप्रमोद—खरतरगच्छ के जिनचन्द सूरि की परम्परा में आप हीरोदय के शिष्य थे। इन्होंने सं० १७०९ में चित्रसंभूति संधि की रचना जैसलमेर में और सं० १७१३ में अरहन्नक प्रबन्ध की रचना

१. सम्पादक डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल—राजस्थान के जैन शास्त्र भंडारों की ग्रंथसूची, भाग ३, पृ० २२७-२२९ ।
२. वही ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की।[1] श्री मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने इनकी एक ही रचना, अरहन्नक मुनि प्रबन्ध का उल्लेख जैन गुर्जर कवियो में किया है[2] इन रचनाओं के विशेष विवरण और उद्धरण उपलब्ध नहीं हो सके।

नयविजय--ये तपागच्छ के साधु ज्ञानविजय के शिष्य थे। इन्होंने 'नेमिनाथ बारमासा' (४२ कड़ी) की रचना सं० १७४४, थराद में की। इसकी कुछ पंक्तियाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं--

अन्त - जे भवि भावइ गावइ पावइ ते धनपूर,
नित नित आणंद अति घणो, तस तणो वधतइ नूर।

रचनाकाल सत्तर चिमालइ वीरभद्र थिरपद रही चौमास,
आनंद अधिका पाया, गाया बारेमास।

गुरुपरम्परा--सकल पंडित सिरताज राज (विजयराज) राजई,
ज्ञानविजय प्रभु बड़ह बाजई।
ते गुरु चरण पसाय पामी,
नयविजय विनम्या नेमि स्वामी।[3]

इसकी भाषा में नूर, सिरताज जैसे फारसी शब्द और पाया, गया आदि खड़ी बोली की क्रियायें भाषा प्रयोग की दृष्टि से विशेष द्रष्टव्य हैं।

इनकी दूसरी रचना 'चौबीसी' सं० १७४६ में रचित है। मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने इसे जैन गुर्जर कवियो के प्र० सं० में तिलकविजय के शिष्य नेमविजय की रचना बताया था।[4] नवीन संस्करण (जैन गुर्जर कवियो) के सम्पादक श्री जयन्त कोठारी ने इसका कर्त्ता भी इन्हीं नयविजय को बताया है किन्तु रचना का उद्धरण नहीं दिया है।

नयणरंग--आपने सं० १७९४ से पूर्व अर्बुदाचल वृहत् स्तव की रचना की। यह सूचना मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने जैन गुर्जर

१. अगरचन्द नाहटा--परंपरा पृ० १०७।
२. मोहनलाल दलीचंद देसाई--जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० १५२ (प्र०सं०) और भाग ४, पृ० ३५६ (न०सं०)
३. वही, भाग ५, पृ० ४५ (प्र०सं०),
४. वही, भाग ३, पृ० १३३३ और १३९६ (प्र० सं०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कवियो के भाग ३ पृ. १४६८ पर दी थी। इसके नवीन संस्करण में भी इतना ही उल्लेख भाग ५ पृ० ३५४ पर है पर दोनों संस्करणों में इस रचना का व्यौरा या उद्धरण नहीं उपलब्ध है।

नयनशेखर—अंचलगच्छ की पालीताणा शाखा के विद्वान् सुमति शेखर>सौभाग्यशेखर>ज्ञानशेखर के आप शिष्य थे। आपने योग रत्नाकर चौपाई की रचना सं० १७३६ श्रावण शुक्ल ३ बुधवार को पूर्ण की। यह वैद्यक विद्या पर आधारित चौपइबद्ध ग्रन्थ है। गुरुपरम्परा का वर्णन कवि ने इन पंक्तियों में किया है —

श्री अंचलगछि गिरुआ गच्छपती, महा मुनीसर मोटा यती;
श्री अमरसागर सूरीसर जांण, तपते जइं करि जीवइ भांण।

इसमें पुण्यतिलक से लेकर ज्ञानशेखर तक का उल्लेख किया गया है। तत्पश्चात् लिखा है—

ते सही गुरु नो लही पसाय, हीअे समरी सरसती माय।
योग रत्नाकर नाम चोपइ, नयण शेखर मुनि इणि परि कही।
आयुर्वेद नो जि होइं जांण, करे सहु को तास बषांण;
परोपगार चिकित्सा करे, तेहने झाझो जस विस्तरे।

ये साधु आयुर्वेद का ज्ञान परोपकार भाव से प्राप्त करते-कराते थे और पैसे के लिए नहीं अपितु यश के लिए चिकित्सा करते थे।

रचनाकाल--

संवत सतर छ त्रीसइ जांणि, उत्तम श्रावण मास बखांणि;
सुकल पक्ष तिथि त्रितिया भली, बुधवारइ शुभ बेला भली।

इसकी अंतिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं —

धर्म तणी मति हीइं धरी, जीवदया वली पालो षरी,
सुष संपति वली भोग रसाल, जेह थी लहिजे मंगलमाल।[1]

अर्थात् धर्म, जीवदया आदि सद्भावों से प्रेरित होकर कवि ने आयुर्वेद के चिकित्सा ग्रन्थ का प्रणयन किया था।

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० ३५१-३५२ और भाग ३, पृ० १३२५-२७ (प्र०सं०) और भाग ५, पृ० १९-२१ (न०सं०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नयनसिंह—ये खरतरगच्छ के पाठक जसशील के शिष्य थे। इन्होंने सं० १७८६ में भर्तृहरि शतक त्रय भाषा की रचना बीकानेर के महाराज आनन्द सिंह के लिए की थी। इसीलिए इसका नाम आनन्द भूषण या आनन्द प्रमोद भी रखा गया था। इसके गद्य का नमूना देखिए

उज्जैणी नगरी के विषै राजा भतृहरि जी राज करतु है, ताहि एक समै एक महापुरुष योगीश्वरै एक महागुणवंत फल भेंट कीनी। फल की महिमा कही जो खाय सो अजर अमर होई। तब राजा यैं स्वकीय राणी पिंगला कुं भेज्या। तब रानी अत्यन्त कामातुर अन्य पर पुरुष ते रक्त है ताहि पुरुष को फल भेजो अरु महिमा कही।[1]

नवल--ये बसवा, जयपुर के निवासी थे। इनका सम्भावित रचनाकाल १७९० से १८२५ है। आपने 'दोहा पच्चीसी' के अलावा विपुलसंख्या में गेयपद लिखे हैं। इन्होंने बुधजन, माणिकचन्द और उदयचन्द आदि के समान प्रचुर मात्रा में भक्तिभावपूर्ण पद लिखे जिनकी संख्या डॉ० कस्तूरचंद कासलीवाल के अनुसार हजारों में है। आप दौलतराम कासलीवाल के सम्पर्क में थे और उन्हीं की प्रेरणा से साहित्य की तरफ आकृष्ट हुए थे। वधीचन्द मन्दिर जयपुर के गुटका नं० १०८७ और पद संग्रह सं० ४९२ में इनके दो सौ से अधिक पद प्राप्त हुए हैं। इनका एक अन्य ग्रन्थ वर्धमान पुराण भी बताया जाता है।[2]

नवलसाह —वस्तुतः वर्द्धमान काव्य के रचयिता अन्य नवल साह थे जो बुन्देलखण्ड के खटोला ग्रामवासी थे। इनके पिता देवराय गोलापूर्व जैनी थे। इनके पूर्वज भेलसी के मूल निवासी थे। नवल साह ने भट्टारक सकलकीर्ति के संस्कृत ग्रन्थ से कथा लेकर वर्द्धमान काव्य (पुराण) की रचना की थी जिसके सम्बन्ध में पं० पन्नालाल ने लिखा है कि यह कवि बुन्देलखण्ड के श्रेष्ठ कवियों में है। इस ग्रंथ में महाकाव्य के सब लक्षण पाये जाते हैं। इसकी रचना नवल ने सं० १८२५

---

१. सम्पादक अगरचन्द नाहटा--राजस्थान का जैन साहित्य पृ० २७८-७९।
२. डा० गंगाराय गर्ग - 'राजस्थानी पद्य साहित्यकार' ७ (१८-२० वीं शती) नामक लेख राजस्थान जैन साहित्य पृ० २२२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में की थी। इसलिए इसका विशेष विवरण उद्धरण देना यहाँ समीचीन नहीं है। इसे प्रकाशित करके जैनमित्र के साथ उपहार में बाटा गया था।[1]

ये दोनों नवल १८वीं विक्रमीय के अन्तिम चरण से १९वीं के पूर्वार्द्ध तक रचनाशील थे इसलिए इनका उल्लेख पूर्व योजनानुसार यहाँ कर दिया गया है। विशेष विवरण उद्धरण यथास्थान दिया जायेगा।

नाथू (ब्रह्मचारी) --ब्रह्मचारी नाथू का साधनास्थल वर्त्तमान टोंक (राजस्थान) स्थित नगर ग्राम का जैन मन्दिर था। वहाँ के प्रमुख जैन शास्त्र भण्डारों से नाथू की निम्नलिखित रचनायें प्राप्त हुई हैं—

नेमीश्वर राजमती को ब्याहुलो सं० १७२८; नेमजी की लूहरि, जिनगीत, डोरी का गीत, दाई गीत, राग मलार, सोरठ; मारु, धनाश्री के गीत।

नाथू मधुर गीतकार थे। इन रचनाओं में नेमीश्वर राजमती को ब्याहुलो एक बड़ी रचना है जिसमें तलदी, निकासी, सिन्दूरी, विन्द्राबनी की ढालों में नेमिनाथ राजीमती के विवाह प्रसंग की समस्त मार्मिक कथा का मनोहारी वर्णन किया गया है। उबटन, दूलह का शृंगार, बारात की विदाई आदि लोकाचारों में कवि का मन रमा है अतः सम्बन्धित वर्णन मधुर बन गया है।[2]

नित्यविजय --तपागच्छीय लावण्यविजय के शिष्य थे। इन्होंने सं० १७३४ में अेकादशांग स्थिरीकरण संज्झाय की रचना १२ ढालों में की। इसका प्रारम्भ इन पंक्तियों से हुआ है—

सरस्वती मात नमीनइं सद्गुरु चरणो नामी शीश।
आचारांग अनोपम भाषइ, श्री वर्द्धमान जगदीश रे।
गोयम ! सुणि सूधो आचार, जिम पामो भवजल पार रे।

---

१. श्री कामता प्रसाद जैन—हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास पृ० २२४-२२५।

२. राजस्थान का जैन साहित्य पृ० २१९ और २२५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसका रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है—

संवत सतर चौत्रीसा वरखइ, हरषइ जोड़ी हाथ रे,
नित्यविजय बुध पभणइ इणि परि, प्रणमी श्री शांतिनाथ रे।[1]

गुरु परम्परान्तर्गत विजयसेन सूरि से लेकर विजयदेव, विजयप्रभ, विजयरत्न और लावण्य विजय तक का सादर स्मरण वंदन किया गया है। इसकी अन्तिम पंक्ति में कहा है -

जैन धर्म मां निज चित राखो।[2]

नित्यलाभ--ये आंचलगच्छ के विद्यासागर सूरि>मेरुलाल> सहजसुन्दर के शिष्य थे। ये इस शती के महत्वपूर्ण कवि थे। इनकी अनेक कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। इसकी प्रसिद्ध रचना विद्यासागर सूरि रास (सं० १७९८ पौष १०, सोम, अंजार) ऐतिहासिक रास संग्रह भाग ३ में प्रकाशित है। सं० १७९८ में विद्यासागर का स्वर्गवास होने पर नित्यलाभ ने यह रास लिखा। रचनाकाल देखिये--

सं० १७९८ ना वरषे पोष दसम सोमवारे,
गच्छपतिना गुण वर्णन कीधा चोमास रही अंजारे रे।[3]

विद्यासागर सूरि के पिता का नाम कर्मसिंह और माता का नाम कमला था, यथा--

शा कर्मसिंह कुलें त्रिदशपति सारिखो,
मात कमला तणु सुजस दीपे।[4]

इसमें बताया गया है कि आंचलगच्छीय अमरसागर सूरि के शिष्य श्री विद्यासागर एकबार भुजनगर गए, वहाँ गोवर्द्धन नामक बालक को सं० १७७७ में दीक्षित करके उसका नाम ज्ञानसागर रखा। गोवर्धन का जन्म जामनगर में सं० १७६२ में हुआ था। इनके पिता कल्याण जी और माता का नाम जयवन्ती था। सं० १७९७ में इन्हें

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई--जैन गुर्जर कवियो, भाग २ पृ० २९९ (प्र०सं०) और भाग ५ पृ० ९ (प्र०सं०)

२. वही

३. ऐतिहासिक जैन रास संग्रह भाग ३ सम्पादक – श्री विजयधर्मसूरि।

४. नित्यलाभ कृत विद्यासागर सूरिस्तव—उद्धृत जैन गुर्जर कवियो भाग ५ पृ० ६९३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य और गच्छेश पद प्राप्त हुआ तथा नाम उदयसागर सूरि पड़ा। विद्यासागर सूरि ने देवगुरु विरोधी प्रतिमोत्थापक मूलचन्द ऋषि को भुजनगर में और रणछोड़ ऋषि जैसे कई मिथ्यामतियों को शास्त्रार्थ में पराजित किया। सूरत में चक्रेश्वरी की साधना की और वहीं महोत्सवपूर्वक ज्ञानसागर को आचार्य पदवी प्रदान की। सूरत में ही शरीर त्याग किया। रासका प्रारम्भ देखिये—

प्रणमी श्री श्रुतदेवता, निज गुरु समरी नाम,
गछपति ना गुण वरणवुँ, सुख संपति हित काम।
पंचम आरे परगडा, साचा सोहम स्वामि,
श्री उदयसागर सूरिसरु, भवि आस्या विसराम।

अन्त — श्री उदयसागर सूरीसर साहिब पूरब पुन्यें पाया रे,
श्री अंचल गछपति तेजें दिनमति, जग यस पडह बजाया
अे गुरुना गुणग्राम करता, पुन्यभंडार भराया रे।[1]

वासुपूज्य स्तव (सं० १७७६) इसी वर्ष अंजार, कच्छ में वासुपूज्य की स्थापना की गई थी। सम्बन्धित पंक्तियाँ निम्नांकित हैं--

कच्छ देशे गुणमणि निलो रे, रुडुं गाम अंजार,
तिहां जिनवर प्रासाद छे रे, महिमावंत उदार।
× × ×
पूजता जिनवर भाव शुं रे, लहियें शिवसुख सार,
सत्तर छहोंतरे थापना रे, वदि तेरस गुरुवार।
अंचल गच्छपति जाणियें रे, विद्यासागर सूरिराय,
वाचक सहज सुन्दर तणो रे, नित्यलाभ गुणगाय।[2]

यह रचना प्रकाशित है।

चौबीसी (सं० १७८१, सूरत) रचनाकाल--

संवत सतर अेक्यासीअेजी, सूरति रही चौमास,
गुण गाता जिनजी तणांजी, पहुतो मननी आस।
विद्यासागर सूरीसरु जी, अंचलगच्छ सिणगार,
वाचक सहजसुंदर तणोजी, नित्यलाभ जयजयकार।

१ मोहनलाल दलीचंद देसाई--जैन गुर्जर कवियो भाग ५ पृ० २९३
२. मोहनलाल दलीचंद देसाई--जैन गुर्जर कवियो भाग २ पृ० ५३७-५४२ (प्र०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह चौबीसी 'चौबीसी बीशी संग्रह' में प्रकाशित है।

महावीर पंच कल्याणकनु' चोढालियुं अथवा स्तवन (सं० १७८१ सूरत) यह रचना जैन संज्झाय माला, भाग दो में प्रकाशित है।

चंदनबाला संज्झाय (सं० १७८२ आश्विन वदी ६, रवि, सूरत) यह भी जैन संज्झाय माला, भाग दो में प्रकाशित है।

मूर्खनी संज्झाय भी जैन संज्झाय माला में प्रकाशित है।

सदेवंत सावलिंगा रास (२४ ढाल सं० १७८२, ८९?), महाशुक्ल ७, बुध, सूरत) का आरम्भ इस प्रकार हुआ है--

सकल सुख संपतिकरण, गुणनिधि गोडी पास।
पदकंज प्रणमु' तेहना, प्रेमधरी सुविलास।

कवि ने यत्र तत्र कथा और उपदेश के साथ साहित्य को भी संयोजित किया है और गुरु का महत्व बताते हुए वह काव्यात्मक ढंग से कहता है --

रसिया विण शृंगाररस, नवरस विना बखाण,
लवण विना जिम रसवती, तिम गुरु बिना पुरुष अजांण।

इसमें शील का महत्व सदावत्स सावलिंग की वार्त्ता के माध्यम से व्यक्त किया गया है। कवि ने सहृदय और अनाड़ी का अंतर बताते हुए आगे लिखा है

मधुकर सम जे नर कह्या, ते जांणे रसभाव,
स्यू' जाणे मूरख बापडा गोल बोल एक दाव।[1]

कुकणविजय नगर में सालिवाहन नामक प्रतापी राजा राज्य करता था। उसकी रानी गुणमाला का पुत्र सदाबत्स बड़ा सुन्दर था। वहाँ के मन्त्री पद्म और उसकी पत्नी पद्मा की रूपवती कन्या सावलिंगा थी। इन्हीं के चरित्र का वर्णन इसमें किया गया है। गुरु-परम्परा इसमें भी वही है जो अन्य ग्रन्थों में इन्होंने पहले बताई थी। रचनाकाल यह है--

संवत सत्तर सें व्यासीइ (नेवासी यै) सुन्दर माधव मासे रे,
सुद सातम बुधवार अनोपम, पूरण थयो सुविलासे रे।

---

१ देसाई, भाग ५, पृ० २९४-२९८ (न० सं०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नित्यसौभाग्य--आप तपागच्छीय बुद्धिसौभाग्य के शिष्य थे। आपने सं० १७३१ में नन्दबत्रीसी की रचना १६ ढालों में पूर्ण की। इसके प्रारम्भ में ऋषभदेव की वन्दना करता हुआ कवि लिखता है--

श्री आदीसर आदिकर चौबीसे जिणचन्द;
प्रणमुं नितनित पुहसमें, आपै परमाणंद।

गुरु परंपरा का स्मरण इन पंक्तियों में है--

प्रवर प्रधान सुपंडित प्रणमौ रे, गीतारथ गुणधाम,
वृद्धि सौभाग्य पयंपइ इण परिरे, श्री सारद सुपसाय।

आपकी दूसरी रचना 'पंचाख्यान चौपाई' अथवा कर्मरेखा भाविनी-चरित्र सं० १७३१ आसो शुक्ल १३ को पूर्ण हुई। इसमें २५ ढाल और ४५३ कड़ी है। इसके प्रारम्भ में सरस्वती की वन्दना करता हुआ कवि कहता है--

सरसती मात सदा मन धरी, कथा कहुं अति आणंद धरी,
कथा सुणे कचपच परिहरो, हृदय कमल मिं आणंद धरी।

रचनाकाल --

संवत सतर एकत्रीसे जाण (१७३१) शुदि आसो तेरसि बखाण,
सारद मात तणि सुपसाय, नितसौभाग्य अहोनिशि गुण गाय।

इसमें भी गुरु वृद्धिसौभाग्य का वन्दन किया गया है। इसकी अन्तिम पंक्तियाँ आगे प्रस्तुत हैं--

चोपइ अे मनमोहनी अे, नवनव ढाल रसाल,
कण्ठ सुकण्ठे गावतां अे लागे अधिक रसाल।
चोपइ अे चंगी अछइ अे, सगवटनुं कसताम,
नवरस भाव नवनवा अे, तेणि करी अभिराम।
पण्डित वृद्धि सौभाग्य नितसौभाग्य सुजाण।
सरसती निं सुपसाइले अे, धरी कवित्त सुध्यान।
गुणियण मिलि गायज्यो अे, अरथ सहित अधिकार,
मनरंजसी मोहेलो सुणतां चतुर सुविचार।[1]

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई--जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० २७९-८२ (प्र०सं०) और भाग ४, पृ० ४४९-४५१ (न० सं०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निहालचन्द--इनकी गुरु परम्परा में मतभेद है। श्री मोहनलाल दलीचन्द देसाई इन्हें पार्श्वचन्द्र गच्छ के विद्वान् साधु हर्षचन्द्र का शिष्य बताते हैं।[1] श्री अगरचंद नाहटा इन्हें हर्षचन्द्र का गुरुभाई बताते हैं।[2] इनकी रचनाओं माणेक देवी रास और बंगलादेश की गजल का नाम भी 'परम्परा' में क्रमशः मालवदेवी रास और वंशज गजल लिखा है जो अशुद्ध है। लगता है ये छापेखाने की अशुद्धियाँ हैं। इसके अलावा नाहटा ने जीवदयारास, नवतत्वभाषा और बावनी भी इनकी रचनायें बताई हैं। जीवदयारास का रचनाकाल १७०६ और नवतत्व भाषा का रचनाकाल १८०५ लिखा है जो स्पष्टतया गलत मालूम पड़ता है। एक ही कवि की दो रचनाओं में एक शताब्दी का लम्बा अन्तराल अविश्वसनीय है।

माणक देवी रास में कवि ने स्वयं को हरषचन्द का अनुज बताया है, यथा--

पाशचंद गछ परगडा रे लाल, वाचक श्री हरषचंद रे,
तास अनुज जस उच्चरे रे लाल, नाम मुनि निहालचन्द रे।[3]

रचनाकाल--

संवत सतरै अठाणवै रे लाल, पोष कृष्ण पख सार रे,
तिथि तेरस अे जोड़ी ओ रे लाल, मकसूदाबाद मझार रे।

अर्थात् यह रचना सं० १७९८ पौष कृष्ण १३ को मकसूदाबाद में पूर्ण हुई। यह रचना जैनराससंग्रह प्रथम भाग (भ्रातृचंद सूरि ग्रंथमाला) पृ० १४८-१६० पर प्रकाशित है।

जीवदयारास का नाम श्री देसाई ने जीवविचार भाषा बताया है और इसका रचनाकाल सं० १८०६ बताया है। यह १८६ कड़ी की रचना सं० १८०६ चैत्र शुक्ल २, बुधवार को पूर्ण हुई। नवतत्व भाषा का रचनाकाल श्री देसाई ने १८०७ माघ शुक्ल ५, मकसूदाबाद बताया है।[4]

---

१. श्री देसाई--भाग ५, पृ० ३६० (न०सं०)

२. अगरचन्द नाहटा--परंपरा, पृ० ११२

३. मोहनलाल दलीचन्द देसाई--जैन गुर्जर कवियो, भाग ५, पृ० ३६० (न०सं०)

४. वही, पृ० ३६०-३६२ (न०सं०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बंगलादेश की गजल और ब्रह्मबावनी स्वच्छ हिन्दी में रचित अधिक प्रसिद्ध रचनायें हैं इनका विवरण-उद्धरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

ब्रह्मबावनी (सं० १८०१ कार्तिक शुक्ल २, मकसुदाबाद)

आदि-- आदि ओंकार आप परमेसर परमजोति,
अगम अगोचर अलखरूप गायो है।

रचनाकाल—संवत अठारै सै अधिक अेक काती मास,
पख उजियारै तिथि द्वितीया सुहावनी
पुर पैं प्रसिद्ध मखसुदाबाद बंग देश,
जहाँ जैन धर्म दया पतिक कौ पावनी।

आपकी प्रायः सभी रचनायें मकसुदाबाद (मुर्शिदाबाद) बंगदेश में लिखी गई। लगता है कि मुनि निहालचंद्र अधिकतर बंगला देश में ही रहे और अन्ततः उन्होंने बंगलादेश की गजल लिख डाली। गजल काव्यरूप और खड़ी बोली हिन्दी का भाषा रूप में प्रयोग भी बंगलादेश के कारण सम्भव लगता है। ब्रह्मबावनी की कुछ पंक्तियाँ नमूने के तौर पर उद्धृत कर रहा हूँ--

हम पें दयाल कैंके सज्जन विसाल चित्त,
मेरी अेक वीनती प्रमांन करि लीजियौ।
मेरी मतिहीनता ते कीन्हौं वाल ख्याल इह,
अपनी सुबुद्धि ते सुधार तुम दीजियौ।
पौन के स्वभाव तें प्रसिद्ध कीज्यौ ठोर ठोर,
पन्नग स्वभाव अेकचित्त में सुणीजियौ
अलि के स्वभाव ते सुगंध लीज्यौ अरथ की,
हंस के स्वभाव ह्वै कै गुन को गहीजियौ।[1]

नवतत्व भाषा (सं० १८०७ माघ शुक्ल ५ मकसुदाबाद)

बंगालादेश की गजल (गा० ६५)

आदि-- सारद सद्गुरु प्रणम्य कर, गवरी पुत्र मनाय,
गजल बंगालादेस की, परगट लिखी बनाय।

बंगला देश का वर्णन करता हुआ कवि लिखता है--

---

१. श्री देसाई—भाग ५, पृ० ३६०-३६२ (न०सं०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जहाँ शिखर समेत पर नाथ पारस प्रभु झाड़खण्डी महादेव चंगा,
नग्र पचेट में दरस दूधनाथ का बड़ान्हाहेण है गंगासागर सुसंगा।
देस उड़ीस के जगन्नाथ अरु बालवा कुंड केन्हात सुध होत चंगा।
गजल बंगाला देस की, भाखी जती निहाल,
मूरख के मन नां बसे, पंडित होत खुसाल।

इसमें सारदा के साथ गणेश की वन्दना और सम्मेत शिखर तथा पार्श्वनाथ के साथ गंगासागर, जगन्नाथ और वैद्यनाथ महादेव की वंदना करके कवि ने उदार मनःस्थिति का परिचय दिया है। भाषा में खड़ी बोली का यह प्राचीन प्रयोग भी ऐतिहासिक महत्त्व का है। हिन्दी काव्य में गजल का प्रयोग उस समय अभिनव प्रयोग था। इन सब दृष्टियों से विचार करने पर कवि निहालचन्द्र की मौलिक प्रतिभा का अनुमान लगता है। श्री देसाई ने भूल से इस गजल के कर्त्ता का नाम रूपचंद लिख दिया था किन्तु नवीन संस्करण जैन गुर्जर कवियो में सुधार कर कर्त्ता का सही नाम निहालचन्द्र दिया गया है।[1] कवि ने स्वयं लिखा है—

गजल बंगाला देस की भासी जती निहाल।

तो शंका का कोई कारण नहीं है। काव्य में खड़ी बोली के प्रयोग की दृष्टि से इस गजल का ऐतिहासिक महत्त्व है; और यह भी प्रमाणित होता है कि १८वीं सती तक खड़ी बोली का पद्यभाषा के रूप में प्रयोग बंगाल तक फैल चुका था। इस प्रयोग के प्रायः डेढ़ सौ वर्ष बाद अयोध्या प्रसाद खत्री ने पद्य में खड़ी बोली के प्रयोग का आंदोलन सन् १८८८ में 'खड़ी बोली का पद्य' प्रकाशित करके प्रारम्भ किया।

नेणसी मूता—ओसवाल जाति के श्वेताम्बर जैन श्रावक थे। आप जोधपुर के महाराज यशवंत सिंह (बड़े) के दीवान थे। मारवाड़ी मिश्रित पुरानी हिन्दी भाषा में आपने राजस्थान का एक इतिहास 'मूता नेणसी की ख्यात' शीर्षक से लिखकर इतिहास में अपना नाम अमर कर दिया है। सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ मुन्शी देवीप्रसाद ने इस ग्रन्थ की प्रशंसा की है और इसे इतिहास का प्रामाणिक ग्रंथ बताया है। यह ग्रन्थ सं० १७१६ से १७२२ के बीच लिखा गया था।

---

१. श्री मोहनलाल दलीचंद देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग ३, पृ० ३२१ तथा १०९८-९९ (प्र० सं०) और भाग ५, पृ० ३६०-३६२ (न० सं०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नाथूराम प्रेमी ने इसके सम्बन्ध में लिखा है कि इसमें ऐसी अनेक बातें हैं जिनका पता कर्नल टाड के राजस्थान में नहीं है। इस ग्रंथ में राजपूतों की इकतीस जातियों का इतिहास है। इसके पहले भाग में एक एक परगने का नामकरण और उसके राजा का वर्णन है। इसके अतिरिक्त उक्त परगनों की फसलों, जातियों, जागीरदारों के विवरण के साथ उसकी मालगुजारी तथा उसकी नदियों और ताल तालाबों का भी वर्णन है। इसमें जोधपुर के राजाओं—राव सियाजी से लेकर जसवन्त सिंह तक का वर्णन किया गया है। मूता नेणसी ने यह ग्रंथ लिखकर जैन विद्वानों पर लगा यह आक्षेप मिटाया है कि ये लोग सार्वजनिक कार्यों की उपेक्षा करके मात्र व्यक्तिगत साधना और मुक्ति को महत्व देते हैं। यह 'ख्यात'[1] गद्य में लिखित प्रामाणिक इतिहास की पुस्तक है।

नेमचन्द—आपकी रचना का नाम है, 'चौबीसी चौढालियुं'। यह कार्तिक सं० १७७३ में लिखी गई। श्री मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने इसका कर्त्ता नेमिदास को बताया था,[2] जबकि रचना में ही कर्त्ता का नाम नेमचन्द मिलता है, यथा

चौबीस जिणवर सहित गणधर समरतां जिण वंदीअे,
भव जलधि तारण दुख निवारण गुण जु धारण वंदीअे।
संवत सतरासय तिहत्तर मास कातक सुभकरी,
श्री नेमचन्द गुण ऋषवारे थुने पाप नाखे पुरी।[3]

जैन गुर्जर कवियो के नवीन संस्करण में उसके सम्पादक श्री कोठारी ने कर्त्ता सम्बन्धी भूल सुधारकर रचनाकार का नाम नेमचन्द दिया है। नेमचन्द के सम्बन्ध में विशेष परिचय और उनकी गुरु परम्परा आदि का विवरण नहीं उपलब्ध हो सका। कवि के अनुप्रास प्रयोग और छन्द-लय प्रयोग क्षमता का अनुमान उपरोक्त कलश की चार पंक्तियों से हो जाता है।

१. नाथूराम प्रेमी—हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास, पृ० ६९ और कामता प्रसाद जैन—हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ० १६४-१६५।
२. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० ४६८ (प्र०सं०)
३. वही, भाग ५, पृ० २९० (न०सं०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हिन्दी जैन साहित्य में तीन नेमिचन्दों का नाम उल्लेखनीय है, जिनमें प्रथम नेमिचंद संस्कृत के साहित्यकार एवं आचार्य थे। इन्होंने आश्रमपत्तन (वर्त्तमान नाम केशोराय पाटन) नामक स्थान में बृहद् द्रव्य संग्रह एवं परमात्म प्रकाश की रचना संस्कृत में की थी, इस पर संस्कृत टीका सोमराज श्रेष्ठी के लिए ब्रह्मदेव ने नेमिचंद के साथ मिलकर लिखी थी। अनुमानतः ये १४-१५वीं शताब्दी के आचार्य थे। एक अन्य नेमिचन्द्र ने कर्मकाण्ड नामक ग्रंथ प्राकृत में काफी पहले लिखा था जिसकी टीका सुमतिकीर्ति ने १७वीं शताब्दी में लिखा था। १९वीं शती में भी एक नेमिचन्द हुए हैं जिन्होंने कई पूजायें लिखी हैं। वे खण्डेलवाल जाति के वैश्य और जयपुर के निवासी थे।

नेमिचन्द्र I—१८वीं शताब्दी में एक दिगम्बर कवि नेमिचन्द्र हुए हैं। इन्होंने सं० १७७० में देवेन्द्रकीर्ति की जकड़ी लिखी।[1] आप आमेर में स्थापित मूलसंघ के शारदागच्छ के भट्टारक सुरेन्द्र कीर्ति के प्रशिष्य और जगतकीर्ति के शिष्य थे। ये खण्डेलवाल जाति के सेठीगोत्रीय श्रावक थे। इन्होंने अपने कारोबार से समय निकालकर साहित्य की अच्छी सेवा की। आपकी निम्नलिखित रचनायें जैन मन्दिर निवाई (टोंक) से प्राप्त हुई हैं - प्रीतंकर चौपई १७७१, नेमिसुर राजमति की लूहरि, चेतन लूहरि, जीव लूहरि, जीव समोधन लूहरि, विसालकीर्ति को देहुरो, जखड़ी, कडखो, आसिक को गीत, नेमिसुर को गीत और पद संग्रह।[2] इनके छोटे भाई का नाम झगडू था। इनके दो शिष्य थे डूगरसी और रूपचंद। प्रीतंकर चौपाई एक मौलिक खण्डकाव्य है। अन्य रचनायें विविध लोक विधाओं में रचित गेय गीत या पदादि हैं। डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल ने इनकी एक अन्य महत्वपूर्ण कृति नेमीश्वर रास की खोज की है जिसकी रचना १७६९ में हुई; इसमें ३६ अधिकार और १३०८ छन्द हैं। यह एक चंपू रचना है। जिसमें गद्य और पद्य दोनों का यथास्थान प्रयोग किया गया है। डॉ० कस्तूरचंद कासलीवाल ने भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति के शिष्य जगत् कीर्ति का विवरण देते हुए लिखा है कि इनके शिष्य नेमिचन्द्र अच्छे विद्वान् थे, ये वस्तुतः जगत्कीर्ति के शिष्य देवेन्द्रकीर्ति के शिष्य थे।

---

१. कामताप्रसाद जैन—हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ० १८१

२. सम्पादक नाहटा मंडल—राजस्थान का जैन साहित्य, पृ० २१८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन्होंने सं० १७६९ में हरिवंश पुराण की रचना की। नेमीश्वर रास ही हरिवंशपुराण है। उत्तमचंद कोठारी ने भी अपनी सूची में नेमिचंद कृत हरिवंश पुराण (सं० १७६९) का उल्लेख किया है। इसलिए ये दोनों नामधारी रचनायें एक ही हैं। इस ग्रंथ की प्रशस्ति में अपने दादागुरु भट्टारक जगत्कीर्ति की प्रशंसा में कवि ने लिखा है—

भट्टारक सब ऊपरै जगतकीरती जगत जोति अपार तौ,
कीरति चहुं दिसि विस्तरी, पाँच आचार पालै सुभसारतौ।
प्रमत्त मैं जीतै नहीं, चहुं दिसि में ताकी आण तौ,
खिमा खड्‌ग सो जीतिया, चोराणवे पटनायक भाण तौ।[1]

इसका रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है—

सतरासे गुणत्तरै सुदि आसोज दसै रवि जाणि तौ।[2]

इसके २१ अधिकारों में हरिवंश की उत्पत्ति का वर्णन है। शेष में नेमि के पंचकल्याणकों की कथा है। इसमें टेक है 'रास भणौ श्री नेमि को।' काव्य पूर्णतया गेय है। भाषा ढूढारी ब्रज है। रचना साहित्यिक स्तर की है और कवि के मौलिक चिन्तन शक्ति की परिचायिका है। एक उदाहरण देखिये—

दूध चल्यौ जब आंचला, जाणि कठोर कलस अपार तौ,
आनंद के आँसू झरै, आपस में पूछैं सब सारतौ।
रासभणौ.....

डॉ० लालचंद जैन ने लिखा है कि इस कवि की अन्य किसी कृति का पता नहीं चला है किन्तु यही रचना उसकी कीर्ति के लिए पर्याप्त है।[3] इस वाक्य का पूर्वार्द्ध यद्यपि असत्य है क्योंकि उनकी कई अन्य रचनाओं का पता लग चुका है पर उत्तरार्द्ध शत प्रतिशत सही है क्योंकि एकमात्र यही रास उनकी कीर्ति का पर्याप्त आधार है। यह रास परंपरा का उत्तम ग्रन्थ है। इसमें नेमि को चरितनायक बनाया गया है।

१४-१५वीं शती में रचित द्रव्यसंग्रह एवं वृहद् द्रव्यसंग्रह नामक रचनाओं की जैन समाज में प्रसिद्धि है पर निश्चित नहीं हो सका है

१. डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल—राजस्थान के जैन संत, पृ० १७२
२. नेमिरास, पृ० १३०१
३. डा० लालचन्द जैन—जैन कवियों के ब्रजभाषा प्रबंध, पृ० ८०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कि ये रचनायें कब की हैं। गोम्मटसार, त्रिलोकसार, लब्धिसार के कर्त्ता नेमिचंद का भी ब्यौरा नहीं उपलब्ध है और ये रचनायें भी मरुगुर्जर (हिन्दी) की नहीं है अतः इनके लिए विस्तार में जाने की अपेक्षा भी नहीं है। १८वीं शती के जिस नेमिचंद्र का उल्लेख किया गया है वे देवेन्द्रकीर्ति के शिष्य नेमिचंद्र ही हैं जिन्होंने हरिवंशपुराण या नेमीश्वर रास लिखा है।

नेमिदास श्रावक—आप दशा श्रीमाली कुलोत्पन्न श्री रामजी साह के सुपुत्र थे, और ज्ञानविमल सूरि के शिष्य थे। आपने अध्यात्म सारमाला की रचना सं० १७६५ वैशाख तृतीया को पूर्ण की। ग्रंथ के अन्त में कवि ने अपने कुल और ग्रंथ के रचना-समय का विवरण निम्न पंक्तियों में दिया है—

सवि भविजन अे ध्यान, पामिने नृभव सुधारो,
ज्ञानविमल गुरु वयण, चित्त माँहे अवधारो।
श्री श्रीमाली वंश रत्न सम रामजी नंदन,
नेमिदास कहे वाणि ललित शीतल जिम चंदन।

रचनाकाल—

सर रस मुनि विधु वरस तो, मास माधव तृतीया दिने,
अे अध्यात्म सार में भण्यो, भाव करी सुभ मने।

यह रचना बुद्धिप्रभा मासिक सं० १९७२ में प्रकाशित हुई है। आपकी दूसरी प्राप्त रचना है 'ध्यानमाला अथवा अनुभव लीला' (सं० १७६६), इसकी अंतिम पंक्तियाँ निम्नांकित हैं—

इम ध्यानमाला गुण विशाला भविक जन कंठे ठवो,
जिम सहज समता सरलता नो सुख अनूपम भोगवो,
संवत रस ऋतु मुनि शशि मित भास उज्ज्वल पाखे,
पंचमी दिवसे थितं लहो लीला जेम सुखे।
श्री ज्ञानविमल गुरु कृपा सही, तस वचन आधारी,
ध्यानमाला इम रची, नेमिदास व्रतधारी।[1]

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० ४६७-४६८ और भाग ३, पृ० १४१३ (प्र०सं०) और भाग ५, पृ० २३१-३२ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह कृति 'नमस्कार स्वाध्याय भाग ३' में प्रकाशित है। पहले देसाई ने इसका नाम चौबीसी चौढालियुं बताया था; किन्तु इसके कर्त्ता नेमचन्द हैं जिनका विवरण इससे पूर्व दिया जा चुका है।

नेमविजय—ये तपागच्छीय आचार्य हीरविजय सूरि की परम्परा में आणंदविजय > मेरुविजय > लावण्यविजय > लक्ष्मीविजय > तिलकविजय के शिष्य थे। आप इस शती के अच्छे साहित्यकारों में थे, आपकी प्रमुख रचनाओं का परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

शीलवतीरास अथवा शीलरक्षाप्रकाशरास (६ खण्ड, ८४ ढाल, २०६१ कड़ी, सं० १७५०) का रचनाकाल कवि ने इस प्रकार कहा है--

सतिय शिरोमणि शीलवती नो, सांचो व्रत छे नगीना हे,
रास सम्पूर्ण सत्तर पचासे अखा त्रीज रसधार से है।

मंगलाचरण की प्रारम्भिक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं--

ऊंकार अक्षर अधिक जपता पातिक जंत,
अेहनी अधिको को नही, शिवपुर आपै सन्त।

इसकी रचना गच्छपति विजयरत्न सूरि के शासनकाल में हुई, यथा--

गच्छ चोरासी शिरोमण छाजे, तपगच्छ अधिक दिवाजे हे
गच्छपति श्री विजयरत्न सूरीन्दा, राज्ये रच्यो सुखकंदा हे।

अन्त--भणे गणे जे रास रसाला, ते घर मंगलमाला हे,
नेमविजय सती गुण गाजे, ऋद्धि बृद्धि पद थाजे हे।[1]

यह रचना प्राचीन काव्य माला, बड़ोदरा से प्रकाशित है।

नेमिबारमास (५८ कड़ी, सं० १७५४ माघ शुक्ल ८, रवि, दीववंदर)

आदि— समरीइं सारद नाम सांचु, अेह विना जाणीये सर्व कांचु;
ज्ञान विज्ञान ने ध्यान आपे, महिर नी लहिर अज्ञान कांपे।

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई---जैन गुर्जर कवियो, भाग ५, पृ० ११६-११७ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुरु परम्परा और रचनाकाल से सम्बन्धित पंक्तियां आगे दी जा रही हैं--

नेम राजुल मेरे गाइयां, पाइयां आनन्द आप,
परमेसर पद गायतां, जाइजे विरुआं पाय।
तपगच्छ विबुध शिरोमणि तिलकविजय गुरु जास,
दीवबंदर मोहि विरचिया नेमीना रे बारेमास।
वेद पांडवों ने मन्न आणो, नय चंद संवत अे वखाणो;
उद्योत अष्टमि मास माह, मार्त्तण्ड वारे पूरण उमाह।[1]

यह रचना जैनयुग पुस्तक १ अंक ४ पृ० १८९ तथा प्राचीन मध्यकालीन बारमासा संग्रह भाग १ में प्रकाशित हो चुकी है। आपकी कुछ रचनायें पर्याप्त विस्तृत हैं किन्तु अब तक प्रकाश में नहीं आ सकी हैं जैसे वछराज चरित्र रास ४ खण्ड ६३ ढाल २०२१ कड़ी की रचना है। यह सं० १७५८ मार्गसर शुक्ल १२, बुधवार को बेलाकुल (वेरावल) में पूर्ण हुई। इसका आदि निम्नवत् है--

अकल गति अंतरीक जिन, प्रणमुं प्रेमे पास,
विघन हरी सेवक तणा, पूरो पूरण आस।

रचनाकाल--

संवत सतर अठावन मांहि स्वेतपक्ष अवधार,
मास मागसिर कविता मनसुख बार सिने बुधवार।

अन्त-- चौथे षंड में पूरण कीधों, ढाल छबीसवीं धारि,
लछी पामी श्रवणेर सुणतां, नेमविजय घरबारि।

सुमित्ररास अथवा राजराजेश्वररासचरित्र (सं० १७५५ माह शुक्ल ८ शनि मड़िय।द) यह भी तीन खंड में पूर्ण हुई है, यथा--

त्रिण षंडे ते वर्णतां चरित्र सुमित्र रतन,
बावन ढाल सुणतां सहि, मनहुं होय ते प्रसन्न।

रचनाकाल--

संवत सतर पंचावना मांहे, कीधो कवित सुजगीस जी,
जिहां लगे शशिधर सूरज प्रतपो, वंचक कोडि वरीस जी।

इसकी कथा वासुदेव हिण्डी से ली गई है। इसके दृष्टान्त से दान

१. श्री देसाई—भाग ५, पृ० १२२ (न०सं०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का माहात्म्य प्रतिपादित किया गया है। इसकी अंतिम पंक्तियां देखिए--

गाम श्री भनडीयाद ज मांहे वोरा नाथा ना उपदेसे जी,
वलि निज आतम ने उपदेशे, परम प्रबंध विशेषे जी।
भणे गणे जे अेहि ज रासो, ते घर मंगलमाला जी,
जन्म पवित्र होवे श्रवणे सुणतां, अति घणि लक्षि विसाला जी।[1]

धर्मबुद्धि पापबुद्धि रास अथवा कामघट रास (सं० १७६८ आषाढ़ कृष्ण सप्तमी) इसमें धर्म की महत्ता बताई गई है। धर्मबुद्धि मन्त्री था और पापबुद्धि उसका राजा। अधिकतर जैन काव्यों में कथानायक या प्रधान पात्र राजा नहीं बल्कि उनके मन्त्री हैं जो धर्मात्मा तथा बुद्धिमान भी हैं, और वणिक होते हुए भी आवश्यकता पड़ने पर शौर्य भी प्रदर्शित करते हैं। इस रास में नेमिविजय ने तपागच्छ की परम्परा सोहम स्वामी से प्रारम्भ करके अकबरबोधक हीरविजय सूरि से होकर तिलकविजय तक गिनाई है और बताया है कि इस रचना का आधार आनन्दसुन्दर कृत ग्रन्थ है। रचनाकाल इन पंक्तियो में है--

संवत सतर अडसट्ठा वरषें, सातीम कृष्ण आसाढ़ि रे,
नेमिबिजै बहु लह्यो सम्पद, परमानन्द पद गाढ़ि रे।
श्री विजयरत्न सूरीसर राजियं, रास रच्यो सुखकारि रे,
जिहां लगि सशि सूरज थिर अे वक्ता श्रोता सुखकारि रे।[2]

तेजसार राजर्षि रास भी काफी बड़ी रचना है यह ३९ ढाल १९५८ कड़ी में पूर्ण हुई है। इसका रचनाकाल सं० १७८७ कार्तिक कृष्ण १३ गुरुवार है, यथा--

संवत संयम माता प्रवचन सुनयचित्त अवधारी,
काती मास सुवास कृष्ण योगे तेरसि ने गुरुवार।

प्रारम्भ--परम परमेश्वर परम प्रभु, पास परम सुखकार,
परम लीलाकर परम जय, भय भंजन भवतार।

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई--जैन गुर्जर कवियो, भाग ५, पृ० १२१ (न०सं०)।

२. वही, पृ० १२२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस छन्द में अनुप्रास अलंकार का सुन्दर प्रयोग द्रष्टव्य है। कवि हीरविजय के बारे में कहता है--

साह अकबर के प्रतिबोधक, कीया सुगता विहार
तस शिष्य आणंद विजय बुध गिरुआ मेरुविजय बुधसार।

इनकी भाषा में प्रवाह के साथ शब्दालंकारों की अच्छी योजना है। एक उदाहरण प्रस्तुत है—

श्री लावण्यविजय सुगुरु उवझाया, वाचक लषिमी साधार,
कविकुल कोटीर धीर महाकवि, जिन आगम सहचार।
तिलक विजय बुध बुधजन सेवित, भूरमणी उरहार,
तास चरण रज रेणु सेवाकर, नेमि विजय जयकार।

यह रचना दौलतचन्द के आग्रह पर कवि ने की थी, यथा—

अे दानचन्द्र शिष्य दोलति चन्द्र ने कथने कीयो अधिकार,
पंडित वांची ने सुद्ध करयो, भविक जीव हितकार।[1]

जैन गुर्जर कवियो के प्रथम संस्करण में इस कवि के नाम पर जो चौबीसी बताई गई थी वह ज्ञानविजय के शिष्य नयविजय की रचना होने के कारण नवीन संस्करण में छोड़ दी गई है। सुमित्ररास में रचना-स्थान नडिपाद बताया गया था किन्तु पाठान्तर्गत शब्द 'मडियाद' आया है। इसके स्पष्टीकरण की अपेक्षा है। यहाँ मड़ियाद ही दिया गया है।

न्यायसागर--ये तपागच्छीय धर्मसागर उपाध्याय की शिष्य परम्परा में विमलसागर>पद्मसागर>उत्तमसागर के शिष्य थे। आपका जन्म भिन्नमाल (मारवाड़) निवासी ओसवाल मोटो साह की पत्नी रूपा की कुक्षि से सं० १७२८ श्रावण शुक्ल अष्टमी को हुआ था। आपके बचपन का नाम नेमिदास था, आपको दीक्षा उत्तमसागर ने दी। आप प्रसिद्ध सन्त विद्वान् एवं साहित्यकार थे। आपने दिगम्बर

---

१. मोहनलाल दलीचंद देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० ४४९-५४, भाग ३, पृ० १३९६-१४०० (प्र०सं०) और भाग ५, पृ० ११६-१२४ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भट्टारक नरेन्द्रकीर्ति को वादविवाद में पराजित किया था, किन्तु आप में साम्प्रदायिक कट्टरता नहीं थी। आपकी उदारता से प्रभावित होकर भिन्नगच्छ के साधु पुण्यरत्न ने आपके शरीरांत (सं० १७९७ भाद्र पद कृष्ण अष्टमी) के तत्काल बाद पं० श्री न्यायसागर निर्वाण रास लिखा था।[1] उसी रास से ये सूचनायें ली गई हैं। रास का विस्तृत परिचय लेखक पुण्यरत्न के विवरण के साथ यथास्थान दिया जायेगा।

पं० न्यायसागर की अधिकतर रचनायें प्रकाशित हो चुकी हैं। उनकी कतिपय प्रमुख रचनाओं का विवरण आगे संक्षेप में दिया जा रहा है।

सम्यक्त्व विचार गर्भित महावीर स्तवन अथवा समकित स्तवन (६ ढाल सं० १७६६ भाद्र शुक्ल पंचमी) इसका रचनाकाल इस प्रकार कहा गया है—

संवत ऋतुरस मुनि चंद्र १७६६ संवत्सर जाणी,
भादरवा मासै सित पंचमी गुणखाणी।

आदि — प्रणमी पद जिनवर तणां जे जग नें अनुकूल,
जास पसाई म्हि लहिउं, समकित रयण अमूल।

रचना में गुरुपरंपरान्तर्गत विजयरत्न और उत्तमसागर का उल्लेख किया गया है। आपने अपनी इस रचना पर स्वयं बालावबोध (सं० १७७४, राजनगर) लिखा है। ये दोनों रचनायें प्रकरण रत्नाकर भाग ३ और 'आत्म हितकर आध्यात्मिक वस्तु संग्रह' में प्रकाशित है।[2]

पिंडदोष विचार संज्झाय (सं० १७८१ चौमास, भरुंच (भड़ौच, गुजरात)

आदि— प्रणमी जिनवर पदकमल, सिद्ध नमी कर जोड़ि।
पिंड दोष कहूं लेश थी, पहोचइ वंछित कोडि।

रचनाकाल —संवत सत्तर अेकाशीइं वर्षे भरुअच रही चौमास जी,
अे संज्झाय कर्यो जग हेते, भणीइं मनि उल्लासे जी।

---

१. जैन ऐतिहासिक गूर्जर काव्यसंचय में संकलित न्यायसागर निर्वाणरास।
२. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो भाग ५, पृ० २६०-२६२ (न० सं०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निगोद विचार गर्भित महावीर स्तवन की अंतिम पंक्तियाँ :--

हवे प्रभु तु मुझने मिल्यो, सिद्धां सविकाज;
न्यायसागर प्रभु ने कहे, धन दिन मुझ आज।

महावीर (जिन स्तवन) रागमाला सं० १७८४ धनतेरस, रानेर।

यह गेय रचना भिन्न-भिन्न ३६ राग रागिनियों में पूर्ण की गई है जिससे कवि के संगीत ज्ञान का परिचय मिलता है। प्रारम्भ राग रामकली में किया गया है, यथा--

प्रह ऊठी पहली समरीजइ, नमस्कार सुखकंदो,
चउद सुपन राणी निशि देखइ, आया कूखि जिणंदो।

रचनाकाल एवं स्थान--

रहि रानेर नयर चोमासुं, जिहां जिन भवन विशाल,
वेद वसु मुनि विधु मितवर्षेहर्षे अे रंगमाल।
धनतेरसि दिनि पूरण कीधी, छत्रीस राग रसाल।

इसके कलश की पंक्तियों में गेयता और लय दर्शनीय है--

जय जगत लोचन तम विमोचन महावीर जिनेसरो,
म्हें थुण्यो आगइ भक्ति रागइं जागतइं जग अघहरो।
तपगच्छ मंडन दुरित खंडन उत्तमसागर बुधवरो,
तस सीस भासइ पुण्य आसय न्यायसागर जयकरो।[२]

हम देखते हैं कि इनकी ये सभी रचनायें २४वें तीर्थङ्कर महावीर के स्तवन के रूप में लिखी गई है जिन पर भक्ति भावना का गहरा प्रभाव है। इन स्तवनों के अलावा भक्ति पूर्ण दो चौबीसियाँ लिखी हैं जिनमें चौबीसों तीर्थङ्करों की वंदना होती है। ये दोनों चौबीसियाँ चौबीसी बीसी संग्रह पृ १४४-१७१ पर तथा ११५१ स्तवन मंजूषा में प्रकाशित है। प्रथम चौबीसी की अंतिम पंक्तियाँ दी जा रही है--

निरखी साहिब की सूरति,
लोचन केरे लटके हो राज, प्यारा लागो।
उत्तम शीशे न्याय जगीशें,
गुण गाया रंग रटके हो राज, प्यारा लागो।

---

२. श्री देसाई---भाग ५, पृ० २६०-२६२ (न०सं०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दूसरी चौबीसी की प्रथम पंक्ति इस प्रकार है--

जग उपकारी रे साहिब माहरो रे, अतिशय गुणमणिधाम।

बीशी (बिहरमान जिन) का आदि (राग विहाग में)

कहेजो वंदन जाय, दधिसुत कहेजो वंदन जाय।

× × ×

न्यायसार दास को प्रभु, कीजिये सुपसाय। दधिसुत...।[1]

यह भी चौबीसी बीसी संग्रह पृ० ७३८-४८ पर प्रकाशित है। इन स्तवन और स्तुति-वंदनाओं के अलावा आपकी एक छोटी कृति वार व्रत रास अथवा संज्झाय सं० १७८४ दीपावली पर लिखित उपलब्ध है।

पद्म--सुन्दर के शिष्य थे। एक सुन्दर लोंकागच्छ के हो गये हैं जिन्होंने १७९१ में नेमराजुल ना नवभव संज्झाय लिखी है जिनकी चर्चा आगे की जायेगी। सम्भवतः ये वहीं सुन्दर हों। पद्म ने नववाड संज्झाय सं० १७९९ आसो शुक्ल १५ रविवार को सूरत में पूर्ण किया था। इसके मंगलाचरण की प्रारम्भिक पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं--

अनंत चोबीसी जिन नमुं, श्रुत देवी चीत लाय;
नववीधि वाडि बखांणतां, मनमां बसीयो माय।

नेमि की वंदना में कवि लिखता है--

नमीई नेम जिणेसरु ब्रह्मचारी भगवान।
सुन्दर अपसर सारखी, रूपवतीमां रेह,
योवनमां युवती तजी, राजुल गुणनी गेह।

अन्त-- भणें गुणें जे सांभले रे, ते घर कोडि कल्याण रे,
सील तणा सुपसाय थी हो लाल।
पद्म परम रिद्धि पांमस्यो रे, सील थी चतुर सुजांण रे,
निधि नव संवत सायर ससी हो लाल।
आसो सुदि पूनिम दिने रे, रवी अश्वनी ऋषिराय रे,

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई--जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० ५४२-४६ और भाग ३, पृ० १४४०-४१ (प्र०सं०) तथा भाग ५, पृ० २५९-२६४ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूरति चोमासिं रही हो लाल ।
सुगुरु सुन्दर सुपसाय यी रे पद्म कही अे संज्झाय रे,
सील सुजस तरु सेवाई हो लाल ।[1]

इन पंक्तियों से यह स्पष्ट है कि इस संज्झाय के लेखक पद्म सुंदर के शिष्य हैं, ऋषिराय शब्द से यह अनुमान होता है कि सुंदर लोका० ऋषि ही हों। रचनाकाल १७९९ निश्चित है। रचना स्थान सूरत भी स्पष्ट है। अतः इस रचना के सम्बन्ध में कोई शंका नहीं है किन्तु आपकी दूसरी रचना पुण्यसार चोपाई जिसका रचनाकाल मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने सं० १७०९ बताया है अविश्वसनीय है क्योंकि एक ही कवि की दो रचनाओं में ९० वर्ष का अन्तराल विश्वसनीय नहीं है, इसलिए या तो यह रचनाकाल अशुद्ध हो और यह रचना भी सं १७९९ के आसपास कभी १७९७ या १७९० में बनी हो या यह उनकी रचना ही न हो। रचना में पद्म का नाम है।

यथा—प्रथम पद्म कहइ चोपइ ढाल, आगलि संबंध सबल रसाल। या
पद्म कहइ ढाल बीसमी सु० होंसइं सिलोको वांचि। वा०।

इसलिए अधिक आशंका इस बात की है कि इसका रचनाकाल गलत हो। इसका आदि इस प्रकार है--

सकल सिद्ध अरिहंत नइ, प्रणमी निज गुरु पाय,
वाणी सुधारस बरसति, सरसति दिउ मति माय।[2]

पुण्यसार की कथा के माध्यम से धर्म का महत्व प्रतिपादित किया गया है। यथा--

धर्म तणां फल वर्णवुं, जे भाष्या जिनराय,
मुझ मूरखनइं भारति, सानिधकारी थाय।

पद्मचन्द्र—खरतरगच्छ के जिनसिंह सूरि>जिनराजसूरि और पद्मकीर्ति>पद्मरंग के शिष्य थे। इन्होंने गूढ़ा साह के आग्रह पर जंबूरास (सं० १७१४, सरसा) की रचना की। इस रास की प्रारंभिक

---

१. मोहनलाल दलीचंद देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग ५, पृ० ३६७-३६९ (न० सं०) और भाग २, पृ० १३९ तथा भाग ३, पृ० ११८७-८९ (प्र०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंक्तियों में कवि ने कालिदास को मूर्ख से पंडित और महाकवि बनाने वाली माँ शारदा का वंदन सर्वप्रथम किया है--

सारद पय प्रणमुं सदा, कविजन केरी मात,
मूरख यों पंडित करै, कालिदास विख्यात।

इसके पश्चात् जिनकुशलसूरि को प्रणाम करके उपरोक्त गुरु-परम्परा बताई गई है। जम्बूरास में शील या चरित्र का माहात्म्य बताया गया है।

कोडि छन्नू वें कंचण तणी, आठ सुंदरी नारि,
जंबू कुंवर ने परिहरी, सह्यो सील अधिकार।

रचनाकाल--संवत सतरि सै चोदोतरे, काती मास उदारो रे,
सुकल पक्ष तेरसि दिने अे कीयो चरित सुविचारो रे।[1]

खरतरगच्छ के आचार्य जिनसिंह की प्रशंसा में अकबर द्वारा उनके सम्मानित किए जाने का उल्लेख है। यह कथा परिशिष्ट पर्व से ली गई है--

परिशिष्ट पर्व थी उधरिउ, अेह सहु अधिकारो रे।

अन्त-- चरम केवली अे थयो, जाणे सहु संसारो रे,
पदमचंद मुनिवर कहै सयल संघ सुखकारो रे।

एक मुनि पद्मचंद को नेमि राजिमती संज्झाय (१५ कड़ी) का कर्त्ता बताया गया है किन्तु इसका विवरण-उद्धरण उपलब्ध नहीं है।[2] हो सकता है कि जंबूरास के कर्त्ता ही इसके भी रचयिता हों। श्री मोहनलाल दलीचंद देसाई ने नवतत्त्व बालावबोध (सं० १७१७) का कर्त्ता भी पद्मचंद्र को ही बताया था[3]। किन्तु श्री अगरचंद नाहटा ने इसे पद्मचंद्र के किसी शिष्य की सं० १७६६ की रचना बताया है।[4]

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई--जैन गुर्जर कवियो, भाग ४, पृ० २६३ (न०सं०) और भाग २, पृ० १५५-१५७ तथा भाग ३, पृ० १२०३ (न०सं०)।
२. मोहनलाल दलीचन्द देसाई--जैन गुर्जर कवियो, भाग ५, पृ० ४०१ (न०सं०)।
३. वही, भाग ३, पृ० १६२६ (प्र०सं०) और भाग ४, पृ० २८४ (न०सं०)।
४. अगरचन्द नाहटा--परंपरा पृ० १०७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उन्होंने इसका नाम नवतत्व बृहद् बाला० (ग्रन्थाग्रन्थ ३०००) नामक गद्य ग्रंथ बताया है। अन्तर्साक्ष्यों के आधार पर नाहटा जी का कथन ही सही प्रमाणित हुआ है और बाद में श्री देसाई ने भी इसे पद्मचन्द्र के शिष्य की ही रचना मान लिया है। और इसका विवरण-उद्धरण भी दिया है जो आगे दिया जा रहा है।

पद्मचन्द्र शिष्य—आप जिनचंद्र सूरि के प्रशिष्य और पद्मचंद्र के शिष्य थे। नवतत्व बालावबोध (हिन्दी सं० १७६६ पार्श्व जन्मदिवस, माग कृष्ण १०, गुरुवार, थट्टा) इसका प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है—

संवत सतरे षट रसें १७६६, श्री पार्श्वजन्म विचार।
तिण दिन ग्रंथ पूरण भयो, स्वात रिषि गुरुवार।
खरतर की शाखा भली, धोरी विरुद बखांण,
श्री जिनचंद्र सूरीसरु, प्रथम शिष्य परधान।[1]

इसमें पद्मचन्द्र को जिनचंद्र का प्रथम प्रधान शिष्य बताया गया है। पता नहीं कि नवतत्व बाला० के कर्त्ता के गुरु पद्मचंद्र और जंबू स्वामी रास के कर्त्ता पद्मचंद्र एक ही व्यक्ति हैं या भिन्न-भिन्न हैं क्योंकि प्रथम पद्मचंद्र जिनचंद्र के शिष्य कहे गये हैं और द्वितीय पद्मचंद्र को पद्मरंग का शिष्य बताया है।

पद्मचन्द्र सूरि—आप बडतपगच्छीय पार्श्वचंद्र सूरि की परंपरा में जयचन्द्र सूरि के पट्टधर थे। इन्होंने सं० १७२१ पाटण में शालिभद्र चौढालियु (६८ कड़ी) की रचना की जिसका प्रारम्भ इस प्रकार है—

सद्गुरु पाय प्रणमी करी रे लाल,
गाइस सालिकुमार रे, भोगीसर,
पुन्न तणइ वसि पामीयइ रे लाल,
मानव नउ अवतार रे भोगीसर।

रचनाकाल—सतर सइ इकवीसा समइ रे, पाटण नगर प्रमाण,
दिन दिन दोलति बाधती रे, लहीइ कोडि कल्याण।

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग ५, पृ० २५७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुरु परम्परान्तर्गत कवि ने पार्श्वचंद्र एवं जयचंद्र का वंदन किया है। इसकी अंतिम पंक्तियाँ इस प्रकार है—

गुण गाता श्री शालना रे जनम सफल करि जांण,
श्री पद्मचंद्र सूर बीनवइ रे, वाणी यह परिणाम।[1]

इस प्रकार १८वीं शती के पूर्वार्द्ध में पद्मचंद्र, पद्मचंद्र मुनि, पद्मचंद्र सूरि और पद्मचंद्र शिष्य का उल्लेख मिलता है किन्तु इनके सम्बन्ध में अधिक शोध की अपेक्षा है।

पद्मनिधान—आप विजयकीर्ति के शिष्य थे। आपने सं० १७३४ में 'बारव्रत विचार' की रचना की। इसके रचनाकाल की सूचना निम्न पंक्तियों में है—

संवत सतरै चौतीसै समइ रे शुभ महूरत सुभवार,
सद्गुरु ने वचने करि आदर्या रे धर्मइ जयजयकार।

गुरु का उल्लेख इन पंक्तियों में हुआ है—

वाचना चारिज विजयकीरति सीस पदमनिधान अे,
तसु पासि पूरि श्रविकायइ धरया व्रत परधान अे।

इसे श्रावकों के लिए प्रधान व्रत बताया है।[2]

पद्मविजय——तपागच्छीय शुभविजय आपके गुरु थे। आपने 'शीलप्रकाश रास' सं० १७१५ और श्रीपाल रास की रचना की। दूसरी रचना का रचनाकाल सं० १७२६ चैत्र शुक्ल १५ बताया है। इसकीप्रति स्वयं लेखक द्वारा ही लिखित उपलब्ध है। आपकी तीसरी रचना २४ जिननुं स्तवन (२५ कड़ी) की अन्तिम पंक्तियाँ आगे दी जा रही है—

श्री विजयाणंद सूरि गणधरु, शुभविजय बुधराय,
तस पदपद्म निज शिरे धरी, जिनपद पद्म गुण गाय।[3]

---

१. मोहनलाल दलीचंद देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग ३, पृ० १२१६-१७ प्र०सं० और भाग ४, पृ० ३१०-३११ (न० सं०)।

२. वही, भाग २, पृ० २९६ (प्र०सं०) और भाग ५, पृ० ८-९ (न०सं०)।

३ वही, भाग २, पृ० १५८, भाग ३, पृ० १२०३ (प्र०सं०) और भाग ४, पृ० २७४ (न० सं०)।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

पद्मसुन्दर गणि—आप वृद्धतपागच्छ के धनरत्नसूरि 7 अमररत्नसूरि 7 देवरत्नसूरि 7 उपा० राजसुन्दर के शिष्य थे। आपने सं० १७०७ और १७३४ के बीच किसी समय 'भगवती सूत्र पर बालावबोध अथवा स्तबुक या विवरण' रचा, जिसे अत्यन्त सुन्दर अर्थ वाला टब्बा भी कहा जाता है। इसकी प्रारम्भिक पक्ति अग्रलिखित है—

प्रणम्य श्री महावीर गौतम गणनायकं,
श्रुतदेवी प्रसादेन मया हि स्तबुकं कृतः।[1]

इसमें वृद्धतपागच्छीय धनरत्न, अमररत्न, देवरत्न, जयरत्व, भुवनकीर्ति, रत्नकीर्ति और देवरत्न सूरि के शिष्य राजसुंदर गणि को गुरु स्वरूप नमन किया गया है। इसके आदि और अन्त की पंक्तियाँ प्राप्त हैं जो संस्कृत में है किन्तु गद्य का नमूना नहीं प्राप्त हो सका है। इसलिए मरुगुर्जर गद्य भाषा का नमूना नहीं मिल सका।

पद्मो—ये दिगम्बर साधु विनयचंद के शिष्य थे। आपने ध्यानामृत रास की रचना सं० १७५८ से पूर्व किसी समय १८वीं शती में ही की थी। इस रास में कवि पद्मो ने शुभचन्द्र सूरि और मुनि विनयचंद्र की वंदना की है। यह रचना कवि ने ब्रह्म करमसी की सहायता से की थी, तदर्थ कवि ने उनका आभार स्वीकार किया है। इसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ निम्नांकित हैं—

सकल जिनेश्वर पद नमूँ, गुण छेतालीस धार,
चुत्रीस अतिशय प्रतिहार्य अष्ट, अनन्त चतुष्टय च्यार।

इसमें लेखक ने रचनाकाल नहीं दिया है किन्तु प्रतिलिपि सं० १७५८ की प्राप्त होने से उसके कुछ पूर्व ही रचना का अनुमान होता है। रास का सारांश इस 'वस्तु' में वर्णित है—

रास कियो मि रास कियो मिं ध्यान तणो मनोहार,
ध्यान तणा गुण वर्णव्या, ध्यानी जनमनरंजन निर्मल,
पंच परमेष्टी मन धरी सारदे सामिनी गुरु निग्रंथ उज्वल।

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग १, पृ० ६०३, भाग ३, पृ० १६३४-३५ (प्र०सं०) और भाग ४, पृ० १६३ (न०सं०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पढ़े पढ़ावे जे सांभले अंग धरि अतिहं उल्लास,
जिन सेवक पदुम कहे, अन्त्य लहि अविचल वास।[1]

यह रचना शुद्ध साम्प्रदायिक ध्यान पूजा का प्रचार करने के लिए की गई प्रतीत होती है अतः इसमें साहित्यिक सरसता की तलाश व्यर्थ है। भाषा में प्राकृताभास अटपटापन भी है।

परमसागर—तपागच्छीय जयसागर उपा० आप के प्रगुरु और लावण्यसागर गुरु थे। आपने अपनी प्रसिद्ध रचना विक्रमादित्य (अथवा विक्रमसेन लीलावती) रास अथवा चौपई (६४ ढाल) सं० १७२४ पौष शुक्ल १० गड़वाड़ा में पूर्ण किया। इसमें कवि ने स्वयं को उदयसागर, विजयदेव, विजयप्रभ, (वि) जयसागर उपाध्याय के शिष्य लावण्यसागर का शिष्य बताया है। इसमें परमसागर ने रचनाकाल इस प्रकार बताया है--

संवत सत्तर चोबीसा बरसे, पोस दसमें सुखदाया;
दास जन्म कल्याणक दिवसे; पूरण करी सुखपाया।

यह रचना विक्रमादित्य प्रबन्ध के आधार पर रचित है, यथा--

पूज्यें विक्रमसेन नृप पाम्यो सुख पडूर,
तास चरित सुपरि कहुँ, आणी आणंद पूर। अथवा
विक्रमादित्य नरेसर विक्रमसेन महाराया,
तास संबंध में रचीउ रंगे सद्गुरु चरण पसाया।
विक्रमादित्य प्रबंध सुं जोई अे मे ग्रंथ निपाया,
आदर करीने उत्तम माणस, सुणयो सहु चित्त लाया।[2]

गुरु लावण्यसागर को प्रणति निवेदन पूर्वक अन्त में कवि लिखता है—

तस पद सेवक परमसागर कवि रचीयो रास रसाल,
भाव धरी अे सुणतां भवियण, लहेसो मंगलमाल।
तां लगे अे चोपइ थिर थायो, जां लगि सूरज चंदो,
राग धन्यासी ढाल चउसठमी परमसागर आणंदो, रे।[3]

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो—भाग ३, पृ० १५२४-३६ (प्र०सं०) और भाग ५, पृ० १८८-१९० (न०सं०)।
२. वही, भाग ४, पृ० ३३५-३३६ (न०सं०)
३. वही, भाग २, पृ० २१७-२२० (प्र०सं०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर्वत धर्मार्थी--आपने समाधितन्त्र बालावबोध की रचना की है। जिसका मूल पूज्यपाद दिगम्बर की रचना समझी जाती है। इसका आदि इस प्रकार हुआ है—

अर्थ — जिनै अनादिकाल की मोह निद्रा को उपसम
(वि) रमीनइ आपणयो आपण पासि देख्यो अनइ आपण हुती
बीजे पुहुल प्रपंच ते सर्व आपणां गुण हुंती अति विजलो
देखीइ सो अक्षय सास्वतो बोधदर्शन ज्ञान प्रकाश रूप छइ।[1]

यह महत्वपूर्ण है कि १८वीं शती में गद्य की इतनी प्रसाद गुण सम्पन्न सक्षम भाषा-शैली का विकास जैन लेखकों ने कर लिया था यह नमूने की तीन पंक्तियों से प्रमाणित होता है।

प्रागजी--आप भीम के शिष्य थे। आपने बाहुबल संज्झाय की रचना सं० १७४१ विजयादशमी को पाटण में पूर्ण की; इसकी प्रारंभिक पंक्ति प्रस्तुत है--

बांधव जी वैरागें व्रत आदरी हो लाल, बाहुबल बलवंत।

इसकी अन्तिम पंक्तियाँ भी उदाहरणार्थ उपस्थित है—

महि मण्डल महिमाधरा हो लाल, गुरु श्री भीम मुणिंद,
तस सेवक प्राग जी हो लाल, पामइ परम आनन्द।
इम जिन मुनि गुण गाइया हो लाल, पाटण नगर मझार,
सतर इकतालीसवै हो लाल, विजयदसमि दिनसार।[2]

इस उद्धरण द्वारा लेखक का नाम, उसके गुरु का नाम और रचनाकाल तथा रचना स्थान का प्रमाण अन्तःसाक्ष्य के आधार पर प्राप्त हो जाता है।

प्रीतिवर्द्धन--आपकी दो कृतियों का पता चला है किन्तु आपका इतिवृत्त और गुरुपरंपरा अज्ञात है आपकी प्रथम रचना महावीर स्तवन (३४ कड़ी) सं० १७६८, किशनगढ़ में चौमासे के समय लिखी गई थी। इसका रचनाकाल इस प्रकार है--

१. मोहनलाल दलीचंद देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग ५, पृ० ४२१ (न०सं०)

२. वही, भाग २, पृ० ३६२ (प्र०सं०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संवत सतरइ अड़शठ किशनगढ़
चोमास अेजी वीर गायउं सुख पायो।

आदि— महावीर प्रणमुं सदा जिण शासन सिणगार,
तवन कहूं निज हित भणी, आगम नें अनुसार।

इनकी अन्य कृति पार्श्व स्तव है जो २६ कड़ी की है और जिसे कवि ने सं० १७७० में सोजत के चौमासे में पूर्ण किया था। इसके आदि और अन्त की पंक्तियाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत की जा रही हैं--

आदि-- देव निरंजन नितनमूँ, वादुं जिणवर पास;
कलपसुत्र नी साष दे,, तवन चंद्र गुणरास अे।

अन्त-- संवत सतरै सतर वरसे सोजत नगर चोमास अे,
श्री पास गायो सुष पायो प्रीतिवर्द्धन मास अे,
च्यार पाट केवल भास अें।[1]

इसमें रचनाकाल और लेखक के नाम की छाप प्रामाणिक रूप से प्राप्त है।

प्रीतिविजय—आप तपागच्छीय हर्षविजय के शिष्य थे। इन्होंने सं० १७२७ में चौबीस जिन नमस्कार नामक रचना भुज में पूर्ण की थी। कवि ने अपनी गुरु परम्परा के अन्तर्गत विजयदेव सूरि, विजयप्रभ सूरि और हर्ष विजय का वंदन किया है। रचनाकाल का निर्देश करता हुआ कवि लिखता है—

अेह जिनवर अेह जिनवर थुण्या चौवीस
वर्त्तमान शासन घणी भविक नयण आनंदकरी
श्री विजयदेव सूरि तणो, श्री विजयप्रभ सूरि पट्टधारी।
सतावी सई संवत सतर श्री भुजनगर मझारि,
श्री हर्षविजय कविराज नो प्रीतिविजय जयकारि।

इसके आदि में नाभिनंदन ऋषभ की वंदना में कवि ने लिखा है—

---

१. मोहनलाल दलीचंद देसाई–जैन गुर्जर कवियो, भाग ३, पृ० १५२६-२७ (प्र०सं०) और भाग ५, पृ० २६७ (न०सं०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नाभिनंदन नाभिनंदन रीषभ जिनराय,
मरुदेवी माता उपरि, राजहंस सम स्वामी सोहइ,
नयरी विनीता राजा ओ, वृषभ लंछन जसपाय मोहइ।[1]

आपने ज्ञातासूत्र १९ अध्ययन नामक दूसरा ग्रन्थ कब लिखा, इसका पता नहीं लग पाया। इसकी प्रारम्भिक पंक्तियां निम्नांकित हैं—

श्री श्रुत देवी नमी करी जी, ज्ञातासूत्र मझारि,
उगणीसे अध्ययन जे कह्या जे, कहिसुं तास अधिकार।

इसमें जम्बू केवली और सोहम स्वामी का ज्ञातासूत्र के सम्बन्ध में ज्ञानवर्द्धक प्रश्नोत्तर है। इसकी अन्तिम पंक्तियाँ आगे दी जा रही हैं—

जी हो दिसा लेइ इम साधु जीलाला, विषय न रांचे जेह,
जी हो अरचनीक सहु संघ मां लाला, पामस्ये सुख अछेह।
जी हो अध्ययन उगणीस यो कहिउ लाला, ज्ञातासूत्र मझारि,
श्री हर्षविजय कविराज नो लाला, प्रीतिविजय जयकार।[2]।

प्रीतिसागर—ये प्रीतिलाभ के शिष्य थे; इन्होंने ऋषिदत्ता चौपई की रचना सं० १७५२ जेष्ठ शुक्ल २, रविवार को राजनगर में और धर्मबुद्धि पापबुद्धि चौपई की रचना सं० १७६३ उदयपुर में की।[3] आप खरतरगच्छीय नयसुन्दर>दयासेन>प्रीतिविजय>प्रीतिसुन्दर के गुरुभाई प्रीतिलाभ के शिष्य थे। यह परम्परा कवि ने अपनी रचना ऋषिदत्ता चौपई में बताई है। इनमें कवि ने जिनरंग, जिनराज का भी वंदन नयसुन्दर आदि गुरुओं के साथ किया है और प्रीतिलाभ का उल्लेख करके कहा है—

तसु अन्तेवासी प्रीतिसागर रच्यो जी, संबंध ऋषिदत्ता नाम;

---

१. मोहनलाल दलीचंद देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग ३, पृ० ३८० (न०सं०)
२. वही, भाग ३, पृ० १२३८-३९ (प्र०सं०) और भाग ४, पृ० ३८०-३८१ (न०सं०)
३. अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० १०९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रचनाकाल—

संवत सतरइ बावन समइ जी जेठसित पक्ष जांण;
तिथि बीजा रविवार शुभ अति भलो जी,
शुभचंद्र हुं तो सुख ठांण
सील संबंधइ अधिकार रच्यो जी सुणतां होवै उल्लास;
ओछा अधिको तिण मांहइ कह्यो जी मिछा दुक्कड़ तास।

अंतिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

ऋषिदत्ता चौपइ कीधी रंगस्युं जी सुणतां हुवै सुषकार;
प्रीतिसागर मुनिवर गुण गांवता जी, आणंद जय जयकार।[1]

दूसरी रचना धर्मबुद्धि पापबुद्धि का कर्त्ता भी इन्हें ही अगरचन्द नाहटा ने बताया है किन्तु इसका कोई प्रामाणिक विवरण और उद्धरण न तो नाहटा जी ने दिया और न श्री मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने दिया है। इसलिए यह कहना कठिन है कि यह रचना वस्तुतः किसकी है। श्री नेमविजय ने भी धर्मबुद्धि पापबुद्धि चौपई लिखी है जिसका विवरण पहले दिया जा चुका है। हो सकता है कि यह वही रचना हो।

पुण्यकीर्ति—खरतरगच्छ के युगप्रधान जिनचंद्र सूरि के शिष्य थे। इन्होंने 'पुण्यसार कथा' की रचना सं० १७६६ में की थी। रचना सामान्य कोटि की है। कवि पुण्यकीर्ति सांगानेर, जयपुर के निवासी थे। इसके अतिरिक्त विशेष विवरण और उद्धरण प्राप्त नहीं है।[2]

पुण्यनिधान (वाचक)—आप भावहर्ष>अनंतहंस>विमल उदय के शिष्य थे। आपने सं० १७०३ विजयदशमी को वैरागर में अगड़दत्त चौपई पूर्ण की जिसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ निम्नवत् हैं—

परमेसर धुरि प्रणमि करि, सद्गुरु प्रणमि उलास,
सरसति पिण प्रणमेवि सुरि, विरचिस वचन विलास।

सरस्वती की प्रार्थना करके कवि आकांक्षा करता है कि—

---

१. मोहनलाल दलीचंद देसाई—जैन गुर्जर कविओ, भाग ३, पृ० १३७६ (प्र०सं) और भाग ५, पृ० १३२-१३३ (न०सं०)
२. सम्पादक कस्तूरचन्द कासलीवाल और अनूपचन्द—राजस्थान के जैन शास्त्र भंडारों की ग्रंथसूची, भाग ३, पृ० १६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुन्दर अक्षर अति सरस, विचि विचि राग विनोद,
रसिक लोक सुणंता रसिक पभणिसु कथा प्रमोद ।

रचनाकाल-संवत गुण नभ मुनि शसि वरसइ, विजयदसमि दिन रंगइ,
अगड़दत्त चरित्र परिपूरण कीधउ, अति अछरंगइ ।

पुण्यनिधान ने रचना में अपनी गुरु परम्परा इस प्रकार बताई है —

श्री भावहरष गुरु अनंतहंस गणि विमल उदय सुखकारी;
पुण्यनिधान वणारस पभणइ, तासु सीस सुविचारी ।
वइरागर पुरवर चउमासइ कीयउ चरित्र अनुकारी;
सुमतिनाथ सीतल जिन सांनिधि, श्रावक गुरु सुखकारी ।[1]

पुण्यरत्न – पुनिमगच्छ के भावप्रभ सूरि आपके गुरु थे । आपने तपागच्छ के मुनि न्यायनागर के निर्वाण पर 'न्यायसागर निर्वाण रास' सं० १७९७ आसो कृष्ण ५, रविवार को लिखकर साम्प्रदायिक सौहार्द्र एवं उदारता का उदाहरण प्रस्तुत किया । इस रास में तपगच्छ के आनंद विमल सूरि, विद्यासागर, धर्मसागर, विमलसागर, पद्मसागर, कुशलसागर और उत्तमसागर तक की गुरु परम्परा बताई गई है । न्यायसागर उत्तमसागर के शिष्य थे । इसमें पुण्यरत्न ने पुनिमगच्छीय ढंढेर शाखा के आचार्य और अपने गुरु भावप्रभसूरि का भी वंदन किया है । यह रास जयसागर के आग्रह पर लिखा गया था । कवि ने लिखा है--

संघे विनती गुरु ने कहावी,
शिष्य मोकलो चित्त मां ठरावी रे,
गुरु आदेशे शिष्य पुण्य आव्या,
पुनिमगच्छ संघ मन भाव्या रे ।
श्री पुण्यरत्ने गुरु पसाये
पं० न्यायसागर गुणगाया रे ।

रचनाकाल—

संवत सतर सत्ताणुआं वर्षे, आश्विन वदि रविवार सोहाया रे,
पंचमि दिन संपूर्ण कीधो विघन रहित उज्यालो रे;
भणस्यें गुणस्यें जे सांभलिस्यें तस घर लीला विशालो रे ।[2]

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग ३ पृ० ११३९-४० (प्र० सं०) और भाग ४ पृ० ७९-८० (न०सं०)

२. वही भाग २ पृ० ५८५-८७(प्र.सं.)और भाग ५ पृ० ३५७-३५९(प्र.सं.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह रास जैन ऐतिहासिक गुर्जर काव्य संचय में संकलित है जिसके अन्त की प्रशस्ति अपूर्ण है। भावप्रभ सूरि ही का अमर नाम भावरत्न सूरि था। ये चंद्रप्रभ सूरि की परम्परा में महिमाप्रभ सूरि के शिष्य थे। उन्होंने कई ग्रंथों की रचना की है जिनका वर्णन यथास्थान किया जायेगा।

इस रास से ज्ञात होता है कि न्यायसागर के पिता भिन्नमाल (मारवाड़) निवासी ओसवाल मोटो साह थे। इनका संक्षिप्त परिचय पहले दिया जा चुका है अतः पुनरुक्ति अनावश्यक है।

पुण्यरत्न की दूसरी रचना 'शंखेश्वर पार्श्वनाथ स्तवन' सं० १७९७ वैशाख कृष्ण ४, गुरुवार को पूर्ण हुई, यथा—

संवत सत्तर सत्ताणुइ, वैशाख वदि हो चोखी ने गुरुवार कि,
श्री यात्रा करी भलीभाँति सु, संघजन नी हो पुहची मनआस,
भावप्रभ सूरि शिष्य पुण्य कहे, मुझ तूण हो संखेसर पास कि।[1]

जैन सम्प्रदाय में भी निर्गुण ज्ञानमार्गी संतों की तरह गुरु का बड़ा महत्व है। गुरु की वंदना में पुण्यरत्न ने लिखा है--

भावैं गुरु ने वंदीयै, गुरु विण ज्ञान नहीं कोई,
देव दाणव गुरु शिर धरैं, गुरु विण ज्ञान न होई।

इसका मंगलाचरण भी गुरु वंदना से प्रारंभ हुआ है, यथा--

सुखकर दुखहर गुणनिधि, श्री भावप्रभ सूरि
अेह सुगुरु पसाय थी, गाइस स्तवन सनूर।

आपकी एक लघुकृति 'शंखेसर स्तव' (७ कड़ी) भी है, इसकी प्रारंभिक पंक्ति आगे दी जा रही है--

सुखकारी संखेसर सेवा जी।

इसकी अंतिम पंक्तियाँ देकर यह प्रकरण पूर्ण किया जा रहा है—

साहा श्री रतन जी ना संघ ने साथे, यात्रा करी सुख सेवा जी,
भावप्रभ सूरि को पुण्य इम जंपे, सकल संघ सुख करेवा जी।[2]

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० ५८५-८७ प्र०सं० और भाग ५, पृ० ३५७-३५९ (न०सं०)।

२. वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुण्यरत्न (मुनि) कृत नेमिकुमार रास सं० १७६१ का उल्लेख उत्तमचंद कोठारी ने अपनी सूची में किया है किन्तु नामोल्लेख के अलावा अन्य कोई विवरण नहीं होने से उसकी चर्चा यहीं समाप्त की जा रही है। कोठारी जी का कथन है कि ये रचनायें उन्होंने नाहटा संग्रह में देखी हैं।

पुण्यविलास—खरतरगच्छीय समयसुन्दर की परंपरा में आप पुण्यचंद्र के शिष्य थे। इन्होंने 'मानतुंग मानवती रास' की रचना सं० १७८० में की। रास का आदि निम्नांकित है—

नमु सदा नितमेव, आदीसर अरिहंत पय,
दरसण श्री जिनदेव, लूणकरणसर में लह्यो।

इसके पश्चात् वागेश्वरी की वंदना है। कवि ने मानवती के दृष्टांत द्वारा सत्य की महत्ता घोषित की है; यथा—

मानवती परबंध मृषावाद ऊपर कहुँ,
सुणो तास संबंध कुण मानवती किहांथई,
जीव्यौ तास प्रमाण, वचन बोलि पाले जिके,
जीवन धिग तसु जाण, वचन बोलि बदलै जिके।

यही उपदेश पाठकों को रास देता है। इसका रचनाकाल देखिये—

संवत सतरै अस्सीअे, रह्या लूणसर चौमास;
वाचक श्री पुण्यचंद नइ सुपसाइ रे कीधो अे रास।
रविवार सुदि द्वितीया दिनइ, रिति सरद बीजे मास;
शिष्य पुण्यशील नइ आग्रहइ, इमजंपइ रे कवि पुन्य विलास।[1]

पुण्यहर्ष—आप खरतरगच्छीय कीर्तिरत्नसूरि की परंपरा में हर्षविशाल > हर्षधर्म > साधुमंदिर > विमलरंग > लब्धिकल्लोल > ललितकीर्ति के शिष्य थे। कीर्तिरत्न सूरि शाखा में महोपाध्याय पुण्यहर्ष गणि की शिष्य परंपरा लम्बी थी। इनके एक शिष्य अभयकुशल ने

---

१. जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० ५३६-५३७, भाग ३, पृ० १४३९ (प्र० सं०) और भाग ५, पृ० ३१४-३१५ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऋषभदत्त रूपवती चौपइ की रचना की, जिसका उल्लेख यथास्थान किया जा चुका है। अभयकुशल ने पुण्यहर्ष की वंदना में गीत लिखा है जिससे ज्ञात होता है कि पुण्यहर्ष उपाध्याय ने गच्छपति की आज्ञा प्राप्त कर सिन्धु देश के हाजी खानपुर में चौमासा सं० १७४४ में किया था और वहीं कार्तिक शुक्ल ३ को प्रभातकाल में अनशनपूर्वक शरीर त्याग दिया था। संघ ने वहाँ उनका निर्वाण महोत्सव किया। इससे प्रकट होता है कि वे एक प्रभावशाली साधु थे, साथ ही उनकी रचनाओं को देखने से यह भी प्रमाणित होता है कि वे एक अच्छे रचनाकार भी थे, उनकी कुछ रचनाओं का विवरण दिया जा रहा है।

जिनपालित जिनरक्षित रास (सं० १७०९, विजयदसमी) इसके अंत में विस्तृत गुरुपरंपरा दी गई है और जिनराज, जिनरतन, कीर्तिरत्न से लेकर इस शाखा के उपरोक्त आचार्यों की वंदना की गई है। रचनाकाल इस प्रकार बताया है—

संवत सतरे से नवडोतरे आसू मास उदार,
विजयदशमी दिन रलीयामणो रास रच्यो हितकार।

इसकी अंतिम पंक्तियों में साधु के गुणों का वर्णन किया गया है, यथा—

सांभलता भणतां गुण साधुना पातक जाये दूर,
रसना पावन होइ आपणी, वाधे पुण्य पडूर।
मेरु महीधर सागर जां लगे जां लगि सूरज चंद,
संबंध ता लगि वाचतां थाक्यो सहज आनंद।[1]

इनकी दूसरी रचना 'हरिबल चौपाई' (१७ ढाल सं० १७३५ सारसा) में हरिबल नामक धीवर की दया का वर्णन है, यथा—

हरिबल नामइ धीवरइ पाली दया प्रधान,
तास चरित बखाणतां सुणिज्यो चतुर सुजांण।
दया धरम जे पालिस्ये ते लहिस्ये सुखसार,
आगम दसमें अंगमइ अंक कह्यो निरधार।

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो भाग १, पृ० ११८९-९२ (प्र०सं) और भाग ४ पृ० १६६-१६८ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दयाधर्म का प्रालन करने से हरिबल धीवर को भी अपार आनंद की प्राप्ति हुई, इसका प्रारम्भ--

श्री गुरु पय प्रणमी करी, भाव भगति भरपूर,
जसु सांनिधि सुख संपजइ, संकट नासइ दूर ।

रचनाकाल बताने से पूर्व कवि ने खरतरगच्छ के प्रसिद्ध आचार्य जिनचंद्र सूरि की भी वंदना की है। रचनाकाल देखिये—

इषु गुण मुनि शशि वत्सरें अे सरसे सहर मजार,
ललित कीरति पाठक तणें अे, सुपसाये सुखकार ।
पुण्यहर्ष पाठक कहे अे अेह संबंध रसाल
भणतां गुणतां वांचतां अे, घरि घरि मंगलमाल ।[1]

पुण्यहर्ष ने अपने शिष्य अभयकुशल के साथ मिलकर दिगम्बर पद्मनंदी कृत पंचविंशिका की हिन्दी भाषा में टीका सं० १७२२ में आगरा के जगतराय के लिए लिखी थी अतः आप कुशल पद्यकार के साथ ही गद्य लेखक भी थे। अभयकुशल ने चतुर सोनी के आग्रह पर भर्तृहरिशतक बालावबोध की रचना सं० १७५५ में की थी; यह कुशलता उन्हें अपने योग्य गुरु पुण्यहर्ष से ही प्राप्त हो सकी थी।

पूर्णप्रभ--खरतरगच्छ की कीर्तिरत्न सूरि शाखा के हर्षविशाल > हर्षधर्म > साधुमंदिर > विमलरंग > लब्धि कल्लोल > ललित कीर्ति > पुण्यहर्ष > शांति कुशल के आप शिष्य थे। आप समर्थ रचनाकार और विद्वान् साधु थे। आपकी कतिपय प्रमुख रचनाओं का विवरण दिया जा रहा है। 'पुण्यदत्त सुभद्रा चौपइ' (३ खंड ३३ ढाल ६१६ कड़ी) की रचना आपने सं० १७८६ कार्तिक धनतेरस को धरणावस में किया। रचनाकाल से संबंधित पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं--

संवत सतर छयासीओ अे, कातिग मास उदार,
धनतेरसि अति दीपती अे, परब दीवाली सार ।

१, सम्पादक अगरचन्द नाहटा—राजस्थान का जैन साहित्य पृ० २३१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसकी काव्यभाषा एवं काव्यत्व का नमूना उपस्थित करने के लिए चौपइ की कुछ प्रारंभिक पंक्तियाँ देखिये--

पुरिसादाणी पास जिण, नित समरतां नाम,
गोड़ी घणी गुण गावतां महियल मोटी मांम।
जेहनो सासण जाणीयै वर्धमान सुखकार,
जसु पद पंकज नित नमै, इंद्र चंद्र सुविचार।

× × ×

पुण्यदत्त विवहारनी सुभद्रा तेहनी नारि,
सील प्रभावै सुख थया, ते सुणज्यो अधिकार।
तीन खंडे तेहनी कहिस चोपई सार,
दान दीयौ पहिलै भवै मोटा मोहिक च्यार।[1]

इस रचना का आधार शील तरंगिणी ग्रन्थ है। इसमें शीलपालन का माहात्म्य बतलाया गया है।

आपकी दूसरी प्रसिद्ध कृति 'गजसुकुमार चौपाई' (२५ ढाल ४२३ कड़ी) सं० १७८६ पौष शुक्ल २ गुरुवार को धरणावस में ही पूर्ण हुई थी। इसकी कथा जैन कथा साहित्य में अत्यधिक लोकप्रिय और प्रसिद्ध है। अनेक कवियों ने इस आख्यान को अपनी रचना का आधार बनाया है। इसका मौलिक आधार कल्पसूत्र है। इसमें गजसुकमाल के उच्च साधु चरित्र का वर्णन किया गया है। मंगलाचरण पहले दिया जा रहा है--

जिणवर नै प्रणमी करी, सिद्ध यथा छै तेह,
तेहना पय जुग वंदतां, उपजै भाव अछेह।
गज सुकुमाल की चौपइ जादवा नो अधिकार,
अंतकृत थयो केवली ते सुणज्यो नरनारि।

रचनाकाल—

संवत रस पर्वत मुनि आँखै इंदु पिण सहुनी साखै;
पोस शुकल पक्ष द्वितीया जाणौ, गुरुवार तेप बखाणों जी।

इसमें कवि ने स्वयं को पुण्यहर्ष का प्रशिष्य एवं शांति कुशल का शिष्य बताया है।

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग ५, पृ० ३२३-३२९ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शत्रुंजयरास (७ ढाल ११७ कड़ी) इसकी रचना सं० १७९० फाल्गुन कृष्ण ८ मंगलवार को हुई थी। इसमें शत्रुंजय तीर्थ का माहात्म्य बताया गया है। कतिपय उद्धरण आगे दिए जा रहे हैं—

मंगलाचरण---आदिकरण अरहंत जी, सिद्धवंत गुणवंत।
तेहना चरण नमी करी भयभंजण भगवंत।

शेत्रुंज तीरथ सरीखो समवड नही कौ सार,
मंत्र मांहि मोट्यो कह्यां, पंच परमेष्ठि नवकार।
शेत्रुंज महातम तिण कीयो, च्यार सतोतर जाण,
धनैसूरि सूरे उचर्यो जिणवर मुंख नी वांण।

रचनाकाल--
संवत शून्य निधि मुनि सही रे लाल इंदु षिण फागुन मास रे,
कृष्ण पक्ष अष्टमी तिथै रे लाल, भृगुवार कीयो रास रे।

जयसेन कुमार प्रबंध अथवा रास (रात्रिभोजन विषये, ४ खंड ३७ ढाल ७६२ कड़ी) की रचना सं० १७९२ कार्तिक धनतेरस के पर्व पर वाली में पूर्ण हुई। प्रारंभ में गुरुवंदना करता हुआ कवि कहता है–

गुरु मोटा गुरु देवता, गुरु विण घोर अंधार,
सुगुरु तणे सुपसाद थी, लहीअे अक्षर सार।

कवि इससे पहले पार्श्व और सारदा की वंदना की है जिससे सुंदर अभिव्यंजना शक्ति का वरदान मांगा है। रात्रिभोजन की विगर्हणा करता हुआ कवि कहता है–

पुहर च्यारे दिवस रे, अने नही धायंति,
रात्रिभोजन जे करे, मानव राक्षस कहंति।
च्यारे खंडे चोपइ करिसु अति विस्तार;
जयसेन नामा कुमर नी रात्री भोजन अधिकार।

इसकी कथा का सूत्र वृहद् नंदीसूत्र से लिया गया है।

रचनाकाल देखिये--
नयण निधि मुनि संख्या आंणो, इंदु संवच्छर टाणों जी,
कार्तिक मासे पख्य दीवाली, धनतेरस पिण निहाले जी।
चहुपाणवटी जालोरी देसे, तिहां वाली गाम वसे से जी,
धणे आग्रहे चौमास लीधी, चोपइ तिहां कण कीधी जी।[1]

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई– जैन गुर्जर कवियो, भाग ५, पृ० ३२२-३२९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस रचना की अंतिम पंक्तियाँ विषय के परिचयार्थ दी जा रही हैं–

दान धरम मोटो तिहां दीपै, शील विशेष जग जीपै जी,
तप तणा अधिकार अति ताजा, भाव विशेषे तिहां राजै जी।
धनुर्विध धर्म थी अधिको जांणे, रयणभोजन फल विशेषे आंणो जी,
पूरणप्रभ हिव इण परि भासे, सुख संपद लील विलासे जी।[1]

प्रेमचंद—आप कनकचंद उपाध्याय के शिष्य थे। आपने आबू राज स्तवन अथवा आदि कुमार स्तवन की रचना सं० १७७९ ज्येष्ठ शुक्ल द्वितीया बुधवार को पूर्ण की। यह ३४ कड़ी का स्तवन है। रचनाकाल से संबंधित पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

संवत सतरे उगलासीइ, बीजारे बुधवार रे वार,
जेठ महीने जुगत सुंगायो श्री आदि कुमार रे, लाल।
कनकचंद उवझाय नो, वाचक कहे प्रेमचंद रे, लाल,
वंदे पूजे भाव सूं, पाले परमाणंद रे लाल।[2]

प्रेमानंद—आप गुजराती भाषा के प्रसिद्ध एवं श्रेष्ठ कवि हैं परन्तु जैनेतर हैं। श्री देसाई ने आप की तीन प्रमुख कृतियों का परिचय दिया है, तीनों प्रकाशित हैं फिर भी तीनों के कुछ उद्धरण उदाहरणार्थ दे रहा हूँ। सुदामा चरित्र (सं० १७३८ श्रावण शुक्ल ३ भृगुवार) कवि ने आत्म परिचय में लिखा है–

वीरक्षेत्र बडोदरु गुजरात मधे ग्राम,
चतुरवंशी ग्यात भ्रांह्मण, कवी प्रेमानंद नाम।

रचनाकाल–संवत सतर आडत्रीसा वरखे, सावण सुदी निधान,
तिथी त्रितीअे भृगुवारे पदवंध करूं आख्यान।
ऊदर नीमत करी सेंतु गांम नंदन बार,
नीदीपरा मांहां कथा कीधी जथा बुधी अनुसार।

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग ३, पृ० १४५८-६४ (प्र० सं०) और भाग ५, पृ० ३२३-३२९ (न०सं०)।
२. वही, भाग २, पृ० ५३६ (न०सं०) और भाग ५ पृ० ३०२ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभिमन्यु आख्यान—सं० १७२७, यह आख्यान महाभारत की अतिमार्मिक और सर्वज्ञात घटना अभिमन्यु वध पर आधारित है–

करी न आवे रुदन कीधे, पछे नाहा अरजुन ने वीस्वाधार,
सावचीत थइ सखीसाची अे, भीम ने पूछे समाचार।
केम पड़ीओ पुत्र माहारो ? कुल बोलु के तारु ?
नाहासतां मुओ के नाम बोलु, के कोणे मारीओ ?[1]

आपकी तीसरी रचना गुजराती तथा भारतीय साहित्य के प्रसिद्ध संत नरसिंह मेहता से संबंधित है, नाम है नरसिंह मेहतानुं मामेरु, यह रचना सं० १७२८ आसो शुक्ल ९ रविवार को पूर्ण हुई थी। कवि प्रेमानंद नरसिंह मेहता को बड़े पूज्य भाव से देखते थे ओर उन्हीं की वेदना में यह मामेरु लिखा है।

आदि-श्री गुरु गुणपत ने सारदा समरुं ते सुखदायक सदा,
मन मुदै मांमेरु मेता तणु, प्रष्ण थायो तो हुंअ ज भणूँ।
मांमेरु मेंता तणुं पदवंध करवा आस,
नरसींह मेंतो नागर ब्राह्मण जूनागढ़ मा बास।

रचनाकाल संवत १७२८ वरिसे आसु सुद नोम रवीवारे जी,
पूरण ग्रंथ थयो अे दिवसे, कहु ते बुध प्रकास जी।[2]

प्रेमराज—आपका इतिवृत्त अज्ञात है। आपकी एक रचना 'वैदर्भी चौपाई' (१८२ कड़ी) सं० १७२४ से पूर्व की रचित प्राप्त है जिसका प्रारंभ इन पंक्तियों से हुआ है—

जिणधर्म माहि दीपता करी धरम स्युं रंग,
रिदइं सूरा जाणइं बहू, ढाल भणु मनरंग।
× × ×
रंग विण रस न आवसी, कविता करो विचार,
नवरस आदि सिंगार रस ते आणु अधिकार।

अंत—दान देइ चारित लीओ जी, हुतो तस जय जयकार,
प्रेमराज गुरु इम भणइ, मुगत गया ततकाल।

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई–जैन गुर्जर कवियो, भाग ३ पृ० २१७६-७८ (प्र० सं०)।
२. वही, भाग ३, पृ० २१७६-७८ (प्र० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसमें दान का महत्व बताता हुआ कवि कहता है—

श्री दान सुपात्रइ दीजीयइ, दानइ दोलति होइ,
राजऋद्धि सुख पामीयइ, वेदरभी जिम जोइ।
कठिन क्रिया ते करी, पोहती स्वर्ग आवास,
वेदरभी गुण गावतां, पामइ लील विलास।[1]

पहले श्री देसाई ने जैन गुर्जर कवियो के भाग ३ पृ० ३३४ पर इस रचना को लोकागच्छ के प्रेमकवि की रचना बताया था। द्वितीय संस्करण के संपादक श्री जयंत कोठारी का स्पष्ट विचार है कि यह कृति प्रेमकवि की नहीं अपितु प्रेमराज की है अतः यहाँ उन्हीं की रचना के रूप में इसे प्रस्तुत किया गया है।

प्रेमविजय—आप धर्मविजय के प्रशिष्य और शांतिविजय के शिष्य थे। आपकी एक 'चौबीसी प्राप्त है जिसकी रचना सं० १७६२ माघ शुक्ल २ महिसाणा में हुई। इसका प्रारम्भ इस मंगलाचरण से हुआ है—

श्री सरसति शुभमति विनवुं श्री गुरु प्रणमी पाय लाल रे,
मरुदेवी नंदन गावतां माहरु तनमन नीरमल थाय लाल रे।

इसकी अन्तिम पंक्तियाँ भी प्रस्तुत कर रहा हूँ जिनमें इसका रचनाकाल और गुरु का उल्लेख है—

संवत सतर बासठा वरसइ, माघ शुदि बीजा दिन सारी,
महिसाणें चुमास रहीने, जिन स्तवना विस्तारी रे लाल।
पंडित श्री धर्मविजय विबुधवर सेवक शांतिविजय शुभ सीस,
तस चरण कमल पाय प्रणमतां, प्रेम पांमी सुजगीस रे, भवियण।[2]

बख्तावरमल—आपकी रचना जिनदत्त चरित का उल्लेख डॉ० लालचंद ने अपने ग्रंथ जैन कवियों के ब्रजभाषा प्रबन्ध काव्यों का अध्ययन में किया है किन्तु विवरण नहीं दिया है। इसमें १७००-१९००

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग ३, पृ० ३३४, १४००-१ तथा १५२४ और भाग ४, पृ० ३२८-३२९ (न० सं०)।
२. वही, भाग ३, पृ० १४१०-११ (प्र० सं०) और भाग ५, पृ० २२४ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तक की रचनायें हैं अतः निश्चित नहीं कि यह १८वीं शती की रचना हो इसलिए छोड़ दिया गया है।

बच्छराज - लोकागच्छ के लेखक, अन्य विवरण अज्ञात, आपकी रचना 'सुबाहु चौढालिया' सं० १७४९ बीकानेर (काकडा) में पूर्ण हुई। कवि ने स्वयं को ऋषि वछराज लिखा है अतः वह लोकागच्छीय होगा। अन्य विवरण या रचना का कोई उद्धरण उपलब्ध नहीं है।[1]

बधो (श्रावक)– आप पीपाडो जाति के श्रावक थे, आपका निवास स्थान सोजत नामक स्थान था। यह परिचय कवि ने अपनी रचना कुमतिरास अथवा संञ्झाय या प्रतिमा स्थापन गीत या महावीर स्तवन में स्वयं दिया है। इसमें सोजत नगर में स्थापित महावीर का स्तवन किया गया है, यथा—

सोजित मंडण वीर जिणेसर, वीनती करुं तुम आगे,
शुभ दृष्टे साहिब ने सेव्यां कुमति कदाग्रह भागे रे।

आत्म परिचय देता हुआ कवि कहता है—

साह बधो ने जाते पीपाडो नगर सोजित नो वासी,
अे तवन तव्यो सद्गुरु ने वयणें, थे छोड़ो कुमति नी पासी रे।

रचनाकाल—

संवत सतरें वरस चोबीसे, श्रावण सुदि छठ दिवसे,
श्री जिन प्रतिमा नुं दरसण करतां कमल रतन विकसे रे।

इसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ निम्नवत् हैं -

श्री श्रुतदेव तणें सुपसायें प्रणमी सद्गुरु पाया,
श्री सिद्धांत तणें अणुसारें, सीख देउं सुखदाया रे।[2]

बाल - श्री मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने इनकी एक रचना पाँच इंद्रिय संवाद (१५४ कड़ी) सं० १७५१ भाद्र शुक्ल २ का उल्लेख जैन

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग ३, पृ० १३४७ (प्र०सं०) और भाग ५, पृ० ७५ (न०सं०)।

२. वही, भाग ३, पृ० १२३३-४(प्र०सं०) और भाग ५ पृ० ३४१ ३४२ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुर्जर कवियो में किया है।[1] ठीक इसी तिथि की रचना भैया भगवती दास कृत पंचेन्द्रिय संवाद है जिसका रचनाकाल पंचेन्द्रिय संवाद के पद्य १५० पृ० २५२ पर सं० १७५१ दिया गया है।[2] इसमें नाक, कान आँख, जीभ आदि इन्द्रियों के मानवीकरण में कवि को अच्छी सफलता मिली है। बाल कविकृत पाँच इंद्रिय संवाद में रचनाकाल पद्य सं० १५२ में इस प्रकार कहा गया है—(देखिये पद्य संख्या १५२)

संवत सतरह अेकानवे १७५१ नगर आगरे मांहि
भादो सुदी शुभ दूज को, बाल ख्याल प्रगटाहिं।

इसके मंगलाचरण में कवि ने जिनराय और शिवराय की वंदना की है—

प्रथम प्रणमि जिनदेव कौं बहुरि प्रणमी शिवराय,
साद्य सकल के चरण कौं प्रणमौं सीस नमाय।

व्रजभाषा हिन्दी में मंगलाचरण प्रारम्भ किया गया है, लेकिन ढाल की भाषाशैली मरुगुर्जर है। ठीक इसी शैली में बालक' रामचन्द्र ने सीता चरित नामक प्रसिद्ध प्रबन्धकाव्य लिखा है। देसाई ने प्रस्तुत बालकवि कृत 'सीतारास' का नामोल्लेख किया है किन्तु विवरण उद्धरण नहीं दिया है। हो सकता है कि उक्त सीतारास बालक (रामचन्द्र) कृत सीताचरित्र ही हो और पाँच इंद्रिय संवाद भैया भगवतीदास कृत पंचेन्द्रिय संवाद नामक रचना हो, पर यह स्पष्ट नहीं है क्योंकि दोनों के पाठों के मिलान का अवसर मुझे नहीं मिला। नाक कहती है--

नाक कहै जग हुं बड़ो, बात सुणो सब कोई रे,
नाक रहे पत लोक मा, नाक गये पत खोई रे।

पाँच इंद्रियों के सम्बन्ध में आम धारणा है कि ये दुःख स्परूप हैं, यथा —

चली बात व्याख्यान में पाँचै इन्द्री दुख,
त्यों त्यों अे दुख देत हैं ज्यौं ज्यौं कीजै पुष्ट।

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो भाग ५, पृ० १२५।
२. डा० लालचन्द जैन—जैन कवियों के ब्रजभाषा प्रबन्धकाव्यों का अध्ययन, पृ० ७७-७८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बात के संबंध में बाल का वचन है--

सुरस मोहि सब सुख बसै, कुरस मांहि कछु नाहि,
कुरस बातइ ना कहै, पुरस प्रगट समु कांहि।[1]

पंचेन्द्रिय संवाद में भी इसी प्रकार आद्यंत पंचेन्द्रियों की प्रशंसा और भर्त्सना प्रबल स्वर में साथ साथ की गई है। भैया भगवतीदास जीभ के सम्बन्ध में कहते हैं—

टेक —(यतीश्वर जीभ बड़ी संसार, जपै पंच नवकार)
जीभहिं तें सब जीतिये जी, जीभहिं तें सब हार,
जीभहि तें सब जीव के जी, कीजतु हैं उपकार।[2]

हो सकता है कि बाल कवि, बालक (रामचन्द्र) और भैया भगवती दास की रचनाओं में घालमेल हो गया हो अथवा यह भी सम्भव है कि बालक कवि अलग हों और बाल कवि अलग। इसी प्रकार बाल और भैया भगवती दोनों ने एक ही समय एक साथ पंच इंद्रिय संवाद लिखा हो।

बालक—(रामचन्द्र) और उनकी रचना 'सीताचरित्र' का विवरण रामचन्द्र बालक के साथ यथास्थान दिया जायेगा। इनका उल्लेख डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल कृत राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की सूची भाग ३ पृ० ७९ और अन्यत्र भी हुआ है। इसलिए इनका विवरण स्वतंत्र रूप से यथास्थान ही देना समीचीन होगा।

बंशीधर—आपकी एक रचना दस्तूर मालिका (सं० १७६५) का उल्लेख मिलता है[1] जो अर्थशास्त्र से संबंधित है इसमें व्यापार संबंधी दस्तूर बताए गये हैं। इसका प्रारम्भ इन पंक्तियों से हुआ है--

जो धरत गनपति व्रातैं मै धरत जो लोइ,
गुन वंदन इकदंत के सुर मुनि जन सब कोइ।

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० ४२१-२२ (प्र०सं०) और भाग ५ पृ० १२५-१२६ (न०सं०)।
२. डा० लालचन्द जैन—जैन कवियों के ब्रजभाषा प्रबन्धकाव्यों का अध्ययन पृ० ७८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह रचना औरंगजेब के शासनकाल में की गई। इसमें छत्रसाल का भी वर्णन है, यथा--

छत्रसाल भुवपाल को राजत राज विशाल,
सकल हिन्दु जग जाल में मनौ इन्द्र दुतिजाल।

आगे किसी सकलसिंघ का भी उल्लेख है जो शहर सकतपुर के थे।

रचनाकाल -- संवत सत्रा सैकरा पैसठ परम पुनीत,
करि बरनन यहि ग्रंथ की छइ चरननि करि मीत।

कवि वंशीधर कपड़ा खरीद का दस्तूर बताते हैं--

जितै रुपैया मोल को गज प्रत जो पट लेइ,
गिरह एक आना तिते लेख लिखारी देइ।
आना ऊपर हौय गज प्रति रुपया अंक,
तीन दाम अठ अंस बढ़ ग्रज प्रति लिखे निसंक।[1]

ब्रह्मदीप--आपकी दो रचनायें प्राप्त हैं 'अध्यात्म बावनी' और मनकरहा रास। इनकी हस्तप्रति सं० १७७१ की प्राप्त है इसलिए रचनाएँ इससे कुछ पूर्व की होंगी। इनके अलावा कुछ स्फुट पद भी मिलते हैं।

अध्यात्म बावनी या ब्रह्म विलास बड़ी रचना है। इसमें ७७ दोहा चौपाई छन्द हैं। इसके मंगलाचरण में अरहंतों और सिद्धों की वंदना है, तत्पश्चात् नागरी लिपि के वर्णानुक्रम से आत्मा, परमात्मा, मोक्ष और सहज साधना आदि का पद्यबद्ध वर्णन किया गया है। आत्मतत्व की खोज करने का संकेत करता हुआ एक जगह कवि ने लिखा है--

नना नहि कोई आपणौ, घरु परियणु तणु लोइ,
जिहि अधारइ घटि बसै, सो तुम आपा जोइ।

अन्त--ऊंछर धातु न विषये किंचित ब्रह्म विलास,
इति ब्रह्मदीप कृत अध्यात्म बावनी समाप्त।

मनकरहा रास (रचनाकाल सं० १७७१ से पूर्व)

इसमें मन रूपी करभ (ऊँट) को भव बन में उगी हुई विषबेलि को चखने से मना किया गया है। करभ का रूपक जैन कवियों में राज-

१. सम्पादक डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल—राजस्थान के जैन शास्त्रभण्डारों की ग्रन्थसूची, भाग ३, पृ० १७०-७१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थानी प्रभाव के कारण अधिक मिलता है। मुनि रामसिंह, भगवती दास आदि कई प्रसिद्ध अध्यात्मवादी कवियों ने मनकरहा का रूपक अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया है। ब्रह्मदीप के प्रस्तुत रास का प्रारम्भ इन पंक्तियों से हुआ है—

मनकरहा भव बनि मा चरइ, तदि विष वेल्लरी बहूत,
तंह चरतंह बहु दुख पाइयउ, सब जानहि गौ मीत।

इसके अन्त में कवि ने लिखा है कि उसने इस रास की रचना भीमसेन टोडरमल के जिन चैत्मासय में की, यथा—

भीमसेन टोडरमल्लउ जिन चैत्यालय आई रे,
ब्रह्मदीप रासौ रच्यौ, मति यहु हिए समाई रे।

यह स्थान भरतपुर में है। इससे लगता है कि वे राजस्थानी कवि हैं इनकी भाषा मरुगुर्जर है। आपके पदों में आध्यात्मिक साधना का सन्देश है। कवि सच्चे योगी का स्वरूप बताते हुए एक पद में कहते हैं--

औधू सो जोगी मोहि भावै, सुद्ध निरंजन ध्यावै,
सील हुउं सुरनर समाधि करि, जीव जंत न सतावै।[1]

ब्रह्मनाथू--आपका साधना-स्थल टौंक जिले के नगरग्राम का जैन मन्दिर था। वहाँ के जैन मन्दिरों के शास्त्र भण्डरों की खोज के समय आपकी कई रचनाएँ प्राप्त हुई हैं जिनमें नेमीश्वर राजीमती को ब्याहुलो सं० १७२८, नेमजी की लूहरि, जिनगीत, डोरी गीत, दाई गीत और राग मलार, सोरठ, मारु तथा धनाश्री के गीत उल्लेखनीय हैं। मधुर गीतकार ब्रह्मनाथू की इन रचनाओं में नेमीश्वर राजीमती को व्याहुलो अपेक्षाकृत बड़ी रचना है, इसमें निकासी सिंदूरी आदि विविध ढालों में नेमिनाथ और राजीमती के विवाह सम्बन्धी समस्त प्रसंगों का मधुर वर्णन है। उबटन, दूलह का शृंगार, बारात की निकासी आदि विविध लोकाचारों के वर्णन में कवि ने पर्याप्त रुचि प्रदर्शित की है। कवि का सरस हृदय नेमि, राजीमती के मार्मिक

१. डा० वासुदेव सिंह--अपभ्रंश और हिन्दी में जैन रहस्यवाद पृ० १०१-१०२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रसंग में अधिक रमा है इसलिए उसने दूसरी रचना नेमजी की लूहरि भी उसी प्रसंग पर रची है। शेष गीत मार्मिक किन्तु छोटे हैं जिनमें विभिन्न राग-रागनियों का प्रयोग करके उनकी गेयता को परिपुष्ट किया गया है। खेद है कि इस सरस एवं भावुक गीतकार के गीतों का उद्धरण उपलब्ध नहीं हो सका, केवल काव्य-प्रसंग और ढालों तथा राग रागनियों के प्रयोग की जानकारी के आधार पर ही उनकी मार्मिकता तथा गेयता का अनुमान किया गया है।[1]

बिहारीदास —आप आगरा के रहने वाले थे और प्रसिद्ध जैन कवि द्यानतराय के गुरु थे। उस समय आगरा में दो मुख्य विद्वान् थे एक बिहारीदास, दूसरे मानसिंह जौहरी थे, इनकी शैली चलती थी। वे स्वयं अच्छे कवि थे और कविता में अपना नाम बिहारी या कहीं कहीं बिहारीलाल लिखते थे। ये हिन्दी के प्रसिद्ध कवि सतसैयाकार बिहारी से पूर्णतया भिन्न थे। इस नाम के कई अन्य कवि भी हो गये हैं जिनमें एक ओरछावासी बिहारीलाल कायस्थ थे, दूसरे का उल्लेख नागरी प्रचारिणी की खोज रिपोर्ट की द्वितीय त्रैमासिक रिपोर्ट में हुआ है, उन्होंने सं० १८२० में 'नखशिख रामचन्द्रजी' की रचना की है। तीसरे बिहारीलाल 'हरदौल चरित्र' सं० १८१५ के लेखक हैं। चौथे हरिराम दास के शिष्य बिहारीदास थे जिन्होंने सं० १८३५ में 'निसाणी की रचना की। ये सभी १९वीं शती के पूर्वार्द्ध के रचनाकार थे। प्रस्तुत विहारीलाल १८वीं (वि०) शताब्दी के पूर्वार्द्ध के कवि थे क्योंकि द्यानतराय का जैनधर्म की तरफ झुकाव सं० १७४६ में इन्हीं की प्रेरणा से हुआ माना जाता है अर्थात् तब तक ये पर्याप्त प्रौढ़ और प्रसिद्ध हो चुके रहे होंगे।

आपने संबोध पंचाशिका, जखड़ी, जिनेन्द्र स्तुति और आरती नामक रचनाएँ की हैं। संबोध पंचासिका का अपरनाम अक्षर बावनी भी है। इसका रचनाकाल सं० १७५८ कातिक कृष्ण १३ है। इसमें ५० पद्य हैं जो विविध ढालों में ढालबद्ध है। इसका आरम्भ देखिए—

ऊंकार मझार पंच परमपद बसत है,
तीन भवन मैं सार वंदौ मनवचकायकै;

१. सम्पादक अगरचन्द नाहटा—राजस्थान का जैन साहित्य, पृ० २१९ और २२५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अक्षर ज्ञान न मोहि छंद भेद समझु नहीं,
बुध थोरी कीम होय भाषा अक्षर बावनी ।

इसमें जिनेन्द्र के चरणों में चित्त रमाने का संदेश दिया गया है, जैसे—

लागि धरम जिन पूजिये, सांच कह्यो सब कोइ,
चित प्रभु चरन लगाइयो, तब मनवंछित फल होइ ।

जखड़ी—यह एक प्रकार स्तोत्र है। जैनभक्तिसाहित्य में इसकी परम्परा पुरानी है। इस जखड़ी में ३६ पद्य हैं और पंचासिका से दो वर्ष पूर्व की यह रचना है। इसमें तीर्थों, चैत्यों और आचार्यों की वंदना है, एक उदाहरण लीजिए—

शिखरी देश के मध्य विराजै सम्मेदाचल वंदौ जी,
कर्म काटि निर्वाण पहुँच्या, बीस जिनेश्वर वंदौजी ।

जिनेन्द्र स्तुति—यह कृति वृहज्जिनवाणी संग्रह के पृष्ठ १२६ पर प्रकाशित है। यह भगवान के सुन्दर स्वरूप पर मुग्ध भक्त की भाव पूर्वक की गई स्तुति है; नमूने के लिए दो पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

वस्त्राभरण बिन शांतमुद्रा सकल सुरनर मन हरै,
नासाग्र दृष्टि विकार वर्जित, निरखि छवि संकट टरै ।

आरती—यह आतमदेव की आरती है, यथा—

करो आरती आतम देवा, गुण पर जाप अनंत अभेवा,
जामै सब कह वह जग मांही, वसत जगत में जग समा नाही ।[1]

बृन्द—ये औरंगजेब के दरबार में थे और उसके पोते अजीमुश्शान के आश्रित थे। इन्होंने सं० १७६१ कार्तिक शुक्ल ७, सोमवार को ढाका में 'सतसैया वृन्द विनोद' नामक काव्यग्रंथ की रचना की जिसके रचनाकालादि का उल्लेख इन पंक्तियों में है—

संवत शशि रस वार शशि, काति सुदी शशिवार,
सातैं ढाका सहर मै, उपज्यौ यहै विचार ।[2]

इसकी प्रतिलिपि चारित्रोदय मुनि के गुरुभाई माणिक्योदय ने सं० १८२२, बालोतरा में लिखी ।

---

१. डा० प्रेमसागर जैन—हिन्दी जैन भक्तिकाव्य और कवि, पृ० ३२२ ।
२. मिश्रबन्धु—मिश्रबन्धु विनोद, पृ० ४९५ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बुधविजय--तपागच्छीय विजयदेवसूरि > विजयसिंह सूरि > गजविजय>गुणविजय>हेतविजय>ज्ञानविजय आपके गुरु थे। आपने सं० १८०० से पूर्व 'योगशास्त्र बालावबोध' की रचना की। इसके गद्य का नमूना प्राप्त नहीं हो पाया।[१]

बुद्धिविजय--आपके संबंध में कोई विवरण उपलब्ध नहीं है। आपने सं० १९१२ आषाढ़ शुक्ल १० को 'जीव विचार स्तव'[२] लिखा जिसका उद्धरण अनुपलब्ध है। इसलिए यह निश्चय नहीं हो पाया कि ये तपागच्छीय ज्ञानविजय के शिष्य बुधविजय ही हैं या अन्य कोई लेखक हैं।

बुलाकीदास--रचनाकाल सं० १७३७ से १७५४

आपका परिवार मूलतः बयाना का निवासी था; इनके दादा लाला श्रमणदास बयाना छोड़कर आगरा रहने लगे थे। कवि के पिता का नाम नंदलाल था। इनके पिता (नंदलाल) के गुणों से प्रसन्न होकर पंडित हेमराज ने अपनी पुत्री 'जैना' का विवाह इनसे कर दिया था। माता पिता के पुण्यप्रभाव से बुलाकीदास रूपवान्, विद्वान् और कवि हो गये। ये लोग गोयलवंशीय अग्रवाल थे। इन्होंने अनेक उत्तम रचनायें की हैं जिनमें वचनकोश, प्रश्नोत्तर श्रावकाचार, पाण्डवपुराण और जैन चौबीसी आदि प्रमुख हैं।

जैनवचन कोश (सं० १७३७) जैन सिद्धान्त विषय पर पद्यबद्ध कृति है। इसके पद्य सरल और सुबोध हैं।

प्रश्नोत्तर श्रावकाचार (सं० १७४७) जैनधर्मानुसार श्रावकों के आचार का निर्देश इसमें किया गया है। यह भी हिन्दी में पद्यबद्ध रचना है। इसमें कुछ स्थल साहित्यिक सरसता से संयुक्त हैं; पाण्डव-पुराण इनकी प्रसिद्ध रचना है यह सं० १७५४ में रचित है।[३] यह सर्गवद्ध है। इसमें पाण्डवों के जीवनसंघर्ष के साथ ही द्रौपदी के

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई--जैन गुर्जर कवियो, भाग ३, पृ० १६४८ (प्र०सं०) और भाग ५ पृ० ३७० (न०सं०)।

२. वही, भाग ३, पृ० ११९५।

३. सम्पादक डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल—राजस्थान के जैन शास्त्र भंडारों की ग्रंथसूची, भाग ४, पृ० १५०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चारित्रिक संघर्ष का भी वर्णन किया गया है। द्यूतक्रीड़ा कितनी भयंकर परिणामवाली है यह बड़े मार्मिक ढंग से इसमें व्यंजित किया गया है। इनकी माता जैनी ने शुभचन्द्र भट्टारक कृत संस्कृत पाण्डव-पुराण पढ़ कर उसको हिन्दी में रचने की आज्ञा बुलाकीदास को दी, तदनुसार यह रचना हुई। इसमें ५५०० पद्य हैं। रचना मध्यम श्रेणी की है। कहीं-कहीं कवि-प्रतिभा की झलक भी दिखाई पड़ जाती है। काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा हिन्दी ग्रंथों के खोज के त्रैवार्षिक पन्द्रहवें विवरण में इस कृति की प्रशंसा की गई है, किन्तु जैन विद्वान् नाथूराम प्रेमी इसे औसत दर्जे की रचना बताते हैं क्योंकि इसका मूल ग्रंथ ही उतना अच्छा नहीं है। इसके प्रारंभ का छप्पय देखिए—

संवत सत सुरराय स्वयं सिद्धि शिव सिद्धमय,
सिद्धारथ सरबस नय प्रमाण सो सिद्धि जय।
करम कदन करतार करन हरन कारन चरन
असरन सरन अम्बार मदन दहन साधन सदन,
इह विधि अनेक गुणगण सहित. जगभूषण दूषण रहित,
तिहि नंदलाल नंदन नमत सिद्‌धि हेत सरवज्ञ नित।

युद्‌धवर्णन की कुछ पंक्तियाँ भी प्रस्तुत हैं—

हस्तहस्त पगपग भिरत सीस सीस सों मार,
अधर जुवै लोचन अरुन, स्वेद दिपत तनसार।[1]

जैन चौबीसी--यह भक्तिभाव पूर्ण रचना है। इसमें १९६ अनुष्टुप छंद हैं। ये सभी २४ तीर्थंकरों की भक्ति से संबंधित हैं। भगवान आदिनाथ की वंदना का एक पद अग्रलिखित है –

वंदौ प्रथम जिनेस को, दोष अठारह चूरी,
वेद नक्षत्र ग्रह औरष, गुन अनंत भरी पूरी।
नमो करि फेरि सिद्‌धि को अष्ट करम कीए छार,
सहत आठ गुन सो भइ, करै भगत उधार।
आचारज के पद फेरि णमो, दूरी अंतर गति भाउ,
पंच अचरजा सिद्धि ते, भारै जगत के राउ।[2]

---

१. डा० लालचन्द जैन--जैन काव्यों के ब्रजभाषा प्रबन्ध काव्यों का अध्ययन पृ० ९१।
२. डा० प्रेमसागर जैन--हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि पृ० २९०-२९३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री कामताप्रसाद जैन ने 'वचनकोश' के रचयिता का नाम बुलाकीचंद दिया है। उन्होंने यह नाम तथा संबंधित विवरण अनेकांत वर्ष ४ के अंक ६, ७, ८, ९ और १० के आधार पर अपने ग्रंथ 'हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, (पृ० १८२) में दिया है, किन्तु यह नाम भ्रामक प्रतीत होता है। संभवतः बुलाकीदास के स्थान पर भ्रमवश बुलाकीचंद लिख दिया गया है। जो हो, वचनकोश बुलाकीदास की ही रचना है, वे अपना नाम बुलाकीचंद नहीं लिखते।[1]

बेलजीमुनि—ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में बेलजी मुनि की एक लघु कृति 'जिनसुख सूरि निर्वाणगीतम्' (९ कड़ी) संकलित है जिसका आदि निम्नवत् है--

सहीया चालौ गुरु वांदिवा, सजि करि सोल सिंगार,
सहेली भाव सुं केसर भरीय कचोलड़ी महि मेलि घनसार।

निर्वाणकाल—सतरै सै असी यै जेठ किसन जग जांण,
असासण करि आराधना, पाम्यो पद निरवाण।

अंत - नामै नवनिधि संपजै, आरती अलगी थाय,
कर जोड़ी बेलजी कहै, लुलि लुलि लागै पांय।[2]

(भैया) **भगवती दास**--आप आगरा निवासी लालजी साहु के सुपुत्र थे। इनके पितामह दशरथ साहु कटारिया गोत्रीय ओसवाल वैश्य और आगरा के सम्पन्न पुरुषों में थे। भगवतीदास साहित्यक्षेत्र में 'भैया' उपनाम से विख्यात हैं। ये प्राकृत, संस्कृत, हिन्दी, गुजराती और बंगला के अच्छे जानकार थे। औरंगजेब के समकालीन आगरे के प्रतिष्ठित परिवारों में उर्दू-फारसी का प्रचलन होने के कारण भैया भगवतीदास ने भी उर्दू-फारसी का अभ्यास किया था। इन्होंने अपनी रचनाओं में कहीं-कहीं भैया के अलावा भविक और दासकिशोर उपनाम का भी प्रयोग किया है।

आपकी काव्य रचनाओं में अध्यात्म और भक्ति का समन्वय है। इन्होंने ओजपूर्ण भाषा में वीररस का प्रयोग भी बीच-बीच में यथा–

---

१. कामताप्रसाद जैन—हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास पृ० १८२
२. ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह 'जिनसुखसूरि निर्वाणगीतम्'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थान किया है। नाथूराम प्रेमी ने ब्रह्मविलास का कर्त्ता निर्भ्रान्त रूप से भैया भगवतीदास को बताया है। इसी ग्रंथ के द्वितीय खण्ड में भगौतीदास के बारे में विवरण देते हुए कहा जा चुका है कि एक ही समय के आसपास तीन-चार भगवती दास हो जाने से उनकी रचनाओं के निर्धारण में उलझनें आती हैं किन्तु प्रायः सभी विद्वान् मानते हैं कि ब्रह्मविलास भैया भगवतीदास की रचना है।

अतः इनकी रचनाओं में सर्वप्रथम उसी का विवरण दिया जा रहा है।

ब्रह्मविलास - (सं० १७५५ वैशाख शुक्ल तृतीया, रविवार) का रचनाकाल इन पंक्तियों से समर्थित है--

संवत सत्रह पंचपचास, ऋतु बसंत वैशाख सुमास;
शुक्ल पक्ष तृतिया रविवार, संघ चतुर्विध को जयकार।[1]

यह रचना जैन ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय बम्बई से सन् १९०३ में प्रकाशित हो चुकी है। इसमें उनकी ६७ रचनाएँ संकलित हैं जिसमें चेतनकर्म चरित्र, बावीस परीषह, गूढ़ाष्टक, वैराग्य पचीसिका, पंचेन्द्रियसंवाद, मनबत्तीसी, स्वप्नबत्तीसी और परमात्मशतक आदि विशेष महत्व की हैं। इसमें कई स्तुति, स्तवन, स्तोत्र जैसे जिन-पूजाष्टक, चतुर्विंशति जिनस्तुति, तीर्थंकर जयमाल आदि भी संग्रहीत हैं। रचनाओं में अनेक भक्तिप्रवण गेय पद भी सम्मिलित हैं।

कहा जाता है कि दादूपंथी सुंदरदास, कवि केशवदास और भैया भगवतीदास गुरु भाई थे, किन्तु यह किंवदंती लगती है क्योंकि ये लोग समकालीन नहीं हैं। आचार्य केशवदास की मृत्यु सं० १६७४ के आस पास हुई थी और भैया भगवतीदास का रचनाकाल सं० १७३१ से ५५ के बीच प्रमाणित है। इसलिए यह कहना ठीक हो सकता है कि सुंदरदास और भगवतीदास ने केशवदास के रसिकप्रिया की कटु आलोचना की, किन्तु ये समकालीन और गुरुभाई थे यह कहना असंगत और अप्रमाणित है। यह अवश्य है कि उनकी कविता में केशव की तरह अलंकार बहुलता है, रूपक, यमक और अनुप्रास की भीड़ है। ब्रह्मविलास में अनुप्रास की योजना सर्वत्र दर्शनीय है। अनुप्रास-युक्त वीररस का एक छन्द नमूने के लिए प्रस्तुत है--

१. डा० प्रेमसागर जैन--हिन्दी जैन भक्तिकाव्य और कवि पृ० २६८-२७६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अरिन के ठठ्ठ दहबट्ट कर डारे जिन,
करम सुभट्टन के पट्टन उजारे हैं।
नर्क तिरजेत चटपट्ट देकैं बैठ रहे,
विषै चोर झट्ट झट्ट पकर पछारे हैं।

ब्रह्म विलास के अन्त में कवि ने अपना समय और वंश आदि बताया है, यथा—

जंबु द्वीप माँहि छिन भर्त्ता नामें आर्य खंड विसारता,
तिहाँ उग्रसेनपुर थाना, नगर आगरा नाम प्रधाना।

× × ×

दशरथ साह पुण्य के धनी, तिनके ऋद्धि वृद्धि अति घनी।
तिनके पुत्र लालजी भये, धर्मवंत गुनगन निरमये।
तिनके नाम भगोतीदास, जिन इह कीनो ब्रह्मविलास।
जामे निज आतम की कथा, ब्रह्मविलास नाम हे जथा।

रचनाकाल का दूसरा पाठ भी प्राप्त है, यथा—

संवत सतरे से पंचावन, सुबे शाम वैसाख सोहावन,
शुक्ल पक्ष तृतिये रविवार, संघ चतुर्विध जय जयकार।

× × ×

पढ़त सुनत सबको कल्याण, प्रगट होय निज आतम ज्ञान,
भैया नाम भगौतीदास, प्रकट कियो जिन ब्रह्मविलास[1]।

ब्रह्मविलास के पृ० २९२ से ३०४ पर चित्रवद्ध कविता संकलित है जिसमें अन्तर्लापिका और वहिर्लापिका भी निबद्ध हैं। अलंकार प्रियता भले केशव जैसी हो पर शृंगार विशेषतया अश्लील शृंगार का बहिष्कार भरसक भैया ने किया है। भैया भगवती दास की कविता पर रीति कालीन हिन्दी काव्य शैली का भरपूर प्रभाव छन्द, अलंकार और भाषा योजना में दिखाई पड़ता है पर भाव भक्ति और अध्यात्म परक हैं न कि शृंगार प्रधान। एक उदाहरण द्वारा अपनी बात पुष्ट करना चाहूंगा :—

1. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कविओ, भाग ४, पृ० १२७९-१२८० (प्र०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पार्श्व प्रार्थना–आनंद को कंद किधौं पूनम को चंद किधौ,
देखिए दिनंद ऐसो नंद अश्वसेन को,
करम को हरै फंद भ्रम को करै निकंद,
चूरै दुख द्वन्द्व सुख पूरै महा चैन को।
सेवत सुरिंद गुन गावत नरिंद भैया,
ध्यावत मुनिंद तेहू पावैं सुख ऐन को,
ऐसो जिनचंद करे छिन में सुछंद सुतौ,
ऐक्षित को इंद पार्श्व पूजों प्रभु जैन को।[1]

मन संसार के विविध विषयों में भटकता है, उसे चेतावनी देते हुए कवि कहता है—

आँख देखै रूप जहाँ दौड़ तू ही लागे तहाँ;
सुने जहाँ कान तहाँ तू ही सुने बात है।
जीभ रस स्वाद धरै ताको तूँ विचार करै,
नाक सूंघै बास तहाँ तू ही विरमात है।

काम के प्रकोप से बचाने की प्रार्थना भैया ने बड़े अनुनयपूर्वक जिनेन्द्र से की है, यथा –

जगत के जीव जिन्हें जीत के गुमानी भयो,
ऐसो कामदेव एक जोधा जो कहायो है,
ताकेशर जानियत फूलनि के वृन्द बहु,
केतकी कमल कुन्द केवरा सुहायो है।
मालती सुगन्ध चारु बेलि की अनेक जाति,
चंपक गुलाब जिन चरण चढ़ायो है।
तेरी ही शरण जिन जासे न वसाय याको,
सुमत सो पूजे तोहि मोहि ऐसो भायो है।

नाम महिमा, णमोकार महिमा. सम्यक्त्व महिमा पर यत्रतत्र कवि ने अनूठी भावव्यंजनाएँ की हैं जिनसे उनके कवि रूप की मनोरम झाँकी दिखाई देती है और वे एक श्रेष्ठ कवि सिद्ध होते हैं, एक उदाहरण—

स्वरूप रिझवारे से सुगुण मतवारे से,
सुधा के सुधारे से सुप्रमाण दयावंत हैं,

१. डा० प्रेमसागर जैन—हिन्दी जैन भक्तिकाव्य और कवि, पृ० २६८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुबुद्धि के अथाह से सुरिद्ध पातशाह से,
सुमन के सनाह से महा बड़े महन्त हैं।
सुध्यान के धरैया से सुज्ञान के करैया से,
सुप्राण परखैया से शक्ती अनन्त हैं,
सबै संघनायक से सबै बोललायक से,
सबै सुखदायक से सम्यक् के संत हैं।।

चेतन कर्म चरित्र—ब्रह्मविलास में संकलित ६७ रचनाओं में यह विशिष्ट रचना है। यह उक्त संकलन के पृ० ५५ से ८४ पर संकलित है। मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने इसका रचनाकाल सं० १७३२ बताया है जिसका आधार ये पंक्तियाँ हैं—

संवत सत्रह सै बतीसइ, ज्येष्ठ सप्तमी आदि,
श्री गुरुवार सुहावनों, रचना कहीं अनादि।[1]

लेकिन संकलन के पृष्ठ ८४ पर छपे पद्य २९६ में रचनाकाल १७३६ बताया गया है। इस भेद का कारण पाठभेद हो सकता है। इसमें चेतन और कर्म जैसे अमूर्त्त तत्वों का मूर्तीकरण करके उनका चरित्रांकन किया गया है। आत्म स्वतन्त्रता का अभिलाषी चेतन कर्म बन्धनों से मुक्त होकर ही मुक्तिलाभ करता है इसलिए कवि कहता है—

ज्ञान दरस चारित भण्डार, तू सिवनायक तू सिवसार,
तू सब कर्म जीत सिव होय, तेरी महिमा बरनै कोय।
(पद्य संख्या २९१ पृ० ८४)

इस रूपक काव्य में आत्मा के वास्तविक स्वरूप पर कल्पना द्वारा रमणीय प्रकाश डाला गया है। यह वीररसात्मक काव्य अंततः शांत में पर्यवसित होता है। रचना दोहा चौपाई छन्द में है, बीच बीच में सोरठा, पद्धरी, करिरना और मरहण आदि छन्दों का भी प्रयोग किया गया है। इसकी व्रजभाषा में खड़ी बोली का पुट मिला हुआ है। कथ्य में कहीं कहीं दार्शनिक दुरूहता द्रष्टव्य है, यथा—

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग ३, पृ० १२७९ (प्र० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तब जीव कहै सुनिये सुज्ञान, तुम लायक नाही यह समान,
वह मिथ्यापुर को है नरेस, जिह घेरे अपने सकल देस।[1]
(पद्य सं० ९६९)

मधुविन्दुक चौपाई (सं० १७४०) यह एक आध्यात्मिक रूपक काव्य है। विषयासक्त जीव नाना दुखों को भोगकर विषयादि से जिस मार्ग द्वारा मुक्ति प्राप्त करता है वही इसमें भी बताया गया है, यथा—

विषय सुखन के मगन सों, ये दुख होहिं अपार,
तातें विषय विहंडिये, मन वच क्रम निरधार।[2]

कथा सरस कुतूहलपूर्ण और अभिव्यक्ति प्रभावशाली है। हिन्दी भाषा सुबोध और प्रसाद गुण सम्पन्न है। दोहा चौपाई छन्दों का मुख्यतया प्रयोग किया गया है।

शत अष्टोत्तरी--यह १०८ छंदों का कवित्त छंदों में बद्ध काव्य है जो ब्रह्मविलास में पृ० ८ से ३२ पर संकलित है। इसमें चेतन, सुबुद्धि और कुबुद्धि जैसे पात्रों के माध्यम से कथा को खड़ी करने का प्रयास किया गया है किन्तु कथानक में शिथिलता और घटनागुम्फन का अभाव प्रायः खटकता है। सुबुद्धि द्वारा चेतन को अपने वास्तविक स्वरूप का परिचय देना ही इसका मुख्य लक्ष्य है। विशेषता यह है कि इसमें एक नारी पात्र पुरुष की पथप्रदर्शिका बताई गई है जो जैन काव्यों में दुर्लभ उदाहरण है। इसकी भाषा प्रौढ़, अलंकार युक्त है। कहीं-कहीं खड़ी बोली के साथ फारसी के शब्द भी प्रयुक्त हैं। वर्णिक और मात्रिक दोनों प्रकार के छंदों का प्रयोग मिलता है।

पंचेन्द्रिय संवाद—एक संवादात्मक खण्ड काव्य जैसा है; रचनाकाल सं० १७५० है और यह भी ब्रह्मविलास में संकलित है। इसमें नाक, कान, आँख, जीभ आदि इन्द्रियों का मानवीकरण किया गया है, इनका सरदार मन है जिसे परमात्म तत्त्व की उपलब्धि का संदेश दिया गया है। छंदों में दोहा, सोरठा, धत्ता आदि का प्रयोग बहुलता से किया गया है। गेयता के लिए ढालों जैसे 'रे जिया तो बिन घड़ी रे छ मास,

---

१. डा० लालचन्द जैन जैन कवियों के ब्रजभाषा प्रबन्धकाव्यों का अध्ययन पृ० ७१-७२।

२. वही।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'ए देसी' और अन्यों का प्रयोग किया गया है। टेक द्वारा भी गेयता लाने का सफल प्रयोग किया गया है। उदाहरणार्थ दो पंक्तियाँ देखें—

यतीश्वर जीभ बड़ी संसार जपै पंच नवकार,
जीभहिं तें सब जीतिये जी, जीभहिं तें सब हार,
जीभहिं तें सब जीव के जी, कीजतु हैं उपगार।
यतीश्वर जीभ बड़ी संसार। इत्यादि

सूआ बत्तीसी (सं० १७५३) यह भी आध्यात्मिक रूपक काव्य है, और ब्रह्मविलास में पृ० २६७ से २७० पर संकलित है।[1] इसमें आत्मा को सूआ के रूप में चित्रित किया गया है और गुरुमंत्र महिमा बताई गई है; वही जीव को दुर्गति से बचाता है। इनकी कुछ रचनाओं के नमूने और विवरणों से यह विदित हो गया कि ये श्रेष्ठ कवि और रूपककार तथा आध्यात्मिक कवि थे। भाषा और छंदों के सक्षम प्रयोक्ता थे। स्वप्न बत्तीसी, मन बत्तीसी, वैराग्य पचीसिका आदि छोटी रचनायें भी संकलित हैं। इसमें परमात्मशतक अपेक्षाकृत बड़ी और उल्लेखनीय है। सभी रचनाओं की भाषा ढूढाड़ी या ब्रजमिश्रित मरुगुर्जर है।

भवानीदास—आपके गुरु माना जी श्वेताम्बर साधु थे। इनकी रचनाओं के आधार पर अनुमान किया जाता है कि ये आगरा के रहने वाले थे। गुरु माना जी से इनकी सर्वप्रथम भेंट सं० १७८३ में हुई थी। इन्होंने अपनी रचना 'जीव विचार भाषा' में गुरु माना जी का स्वर्गवास सं० १८०९ पौष बदी अष्टमी बताया है, जीवविचार भाषा का रचनाकाल सं० १८१० कार्तिक शुक्ल १० है।

इनकी साहित्यिक रचनावधि सं० १७९१ से १८२८ तक मानी जाती है। इनकी अधिकांश रचनाएँ जिनेन्द्रभक्ति से संबंधित हैं। कुछ कृतियों में जैनमत के सिद्धान्तों की चर्चा है। इनके रचनाओं की भाषा शुद्ध हिन्दी है; उस पर राजस्थानी या गुजराती का प्रभाव प्रायः नहीं के बराबर है। अध्यात्म बारहमासा और चेतन हिण्डोलना जैसी रचनाओं पर बनारसीदास की अध्यात्म परंपरा का प्रभाव परिलक्षित होता है।

---

१. डा० प्रेमसागर जैन—हिन्दी जैन भक्तिकाव्य और कवि पृ० २६८-७६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इनके रचनाओं की सूची बड़ी है उसे आगे दिया जा रहा है–

चौबीस जिनबोल सं० १७९७, अध्यात्म बारहमासा (१२ पद्य सं० १७८१) ज्ञाननिर्णय बावनी (१२ पद्य) सं० १७९१, कक्काबत्तीसी (३४ पद्य) सं० १७९६, चौबीसी के कवित्त (२६ पद्य), हितोपदेश बावनी (५२ दोहा) सं० १७९२, पन्नवणां अल्पा बहुत ९८ बोल भाषा (५२ पद्य) सं० १७९१, सुमति कुमति बारहमासा (१२ पद्य), ज्ञानछंद चालीसी (४० पद्य) सं० १८१०, सरधा छत्तीसी (३७ पद्य), नेमिनाथ बारहमासा (१२ पद्य), चेतन हिंडोलना गीत (८ पद्य), नेमि हिंडोलना (८ पद्य), राजमती हिण्डोलना (८ पद्य), नेमिनाथ राजीमती गीत (८ पद्य), चेतन सुमति संज्झाय (१२ पद्य), फुटकर शतक (९८ पद्य), जीव विकार (१५१ पद्य)

नेमिश्वर की भक्ति में समर्पित एक पद द्वारा इनकी भाषा-भाव का नमूना प्रस्तुत किया जा रहा है—

रथ चढ़ि जदुनंदन आवत हैं, चलो सखी मिलि देखन कूँ।
मोर मुकुट केसरिया जामा, कर में कंकण राजित है,
तीन छत्र माथे पर सोहैं, चवसठ चमर ढुरावत हैं।
इन्द्र चन्द्र थारी सेवा करत हैं, नारद बीन बजावत हैं
दास भवानी दोउ कर जोड़े, चरणों में सीस नवावत है।[1]

फुटकर शतक के तीन पद्यों में आगरा के तीन श्वेताम्बर मंदिरों और उनमें प्रतिष्ठित मूर्तियों का समय दिया गया है। दूसरे पद्य के अनुसार श्री गणधर स्वामी के मंदिर में चंद्रानन की प्रतिमा सं० १६६८ में साह हीरानन्द ने बनवाई, जिनके घर पर सम्राट् जहाँगीर आया था। इससे लगता है कि वे आगरे के श्वेताम्बर कवि थे और प्रचुर परिमाण में साहित्य सर्जना की।

भागविजय तपागच्छीय विजयप्रभसूरि > उदयविजय> मणिविजय के शिष्य थे। इनकी रचना 'नवतत्व चौपाई' (१६७ कड़ी) सं० १७६६, पाटण में हुई। इसका आदि इस प्रकार है--

पास जिनेसर प्रणमी पाय, सद्गुरु दान(म)तणो सुपसाय,
नवतत्त्व नो कहूं विचार, सांभलयो चित देइ नरनारि।

१. डा० प्रेमसागर जैन--हिन्दी जैन भक्तिकाव्य और कवि, पृ० ३५६-३५७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीव अजीव पुन्य पाप जोय, आस्रव संवर निर्जरा होय,
बंध मोक्ष नव तत्व अे सार, हिवे कहूं अेहनो विस्तार।

रचनाकाल से संबंधित पंक्तियाँ निम्न हैं--

संवत सतर छसठानी साल, नगर पाटण रही चोमास,
भागविजय जी अे विनती करी, संघ समक्षे चीत धरी।

इस चौपाई की अंतिम पंक्तियाँ अग्रलिखित हैं--

बसे छोहोतर बोल ज सार, आगम थी कह्यो विस्तार,
नवतत्व नी चोपाइ अेह, भणे गुणे सुख पामे तेह।[1]

भानुविजय—तपागच्छीय लाभविजय>गंगविजय>मेघविजय के शिष्य हैं। आपने 'पार्श्वनाथ चरित्र बालावबोध' सं० १८०० पौष कृष्ण अष्टमी, सोमवार को पूर्ण किया। इसके अन्त में गुरु परम्परा आदि का विवरण दिया गया है, यथा--

श्री तपागच्छ गगन दिनकर सदृश विजयदान सूरीन्द्रा
तद्वंशो लाभविजया तत्शिष्यो गंग विजयाख्याः ;

गुरु मेघविजय की प्रशंसा में कवि ने लिखा है—

मेघादिविजय नामा तर्क साहित्य शास्त्रविद् विदुरा,
तच्चरणाब्जद्विरेफा बभूव भानुविजयकाः।

यह रचना भानुविजय ने अपने शिष्य के लिए की। रचनाकाल इस प्रकार बताया है--

भूप्संवत्स् चन्द्रेष्टे १८०० पोषे मासे सितेतरे पक्षे
सोमेष्टमि दिनेभू संपूर्णा ग्रंथ सुखयोगे।

इस रचना की गद्य भाषा का नमूना उपलब्ध नहीं है। एक भानुविजय या भाणविजय तपागच्छ के विद्वान् लब्धिविजय के शिष्य हैं। इनका विवरण आगे दिया जा रहा है। भानुविजय और भाणविजय शिष्य लब्धिविजय तो एक ही व्यक्ति हैं किन्तु मेघविजय शिष्य भानुविजय इनसे भिन्न प्रतीत होते हैं। लगता है कि मेघविजय

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग ३, पृ० १४१५-१६ (प्र० सं०) और भाग ५ पृ० २५८ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के एक अन्य शिष्य लब्धिविजय भी थे और उनके शिष्य का नाम भी भानुविजय या भागविजय था।[1]

भानुविजय या भाणविजय--ये तपागच्छीय मेघविजय के प्रशिष्य और लब्धिविजय के शिष्य थे। आपने विजयाणंद सूरि निर्वाण संज्झाय (४३ कड़ी) की रचना सं० १७११ भाद्र कृष्ण १३, भौमवार को बारेजा नामक स्थान में पूर्ण की। इसकी रचना विजयाणंद सूरि के निर्वाण (सं० १७११) के समय हुई। इसका रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है—

संवत शशि शशि मुनि शशि, भाद्रवा वदि भोमवार रे,
तेरस संज्झाय रच्यो भलो, वारेजे जय जयकार रे।
अेह संज्झाय नित जे भणे, तस घरि मंगलमाल रे,
सांभलता सुख संपदा, आपे ऋद्धि विशाल रे।

इसका प्रारम्भ इन पंक्तियों से हुआ है--

सरसति सामिनी मनि धरी, प्रणमी निज गुरु पांय,
गच्छपति ना गुण गायतां, पातक दूरि पलाय।
श्री हीर विजय सूरि पटधरु, श्री विजयसेन सूरिंद,
श्री विजयतिलक पाटे जयो, श्री विजयाणंद मुनिंद।

यह रचना ऐतिहासिक संज्झायमाला भाग १ में प्रकाशित है। मौन एकादशी स्तव (७२ कड़ी) सं० १७३७ वैशाख शुक्ल ३, खंभात में रचित है। इसका आरम्भ निम्नांकित पंक्तियों से हुआ है--

सरसती भगवती मनी धरी, प्रणमी निज गुरु पाय,
कल्याणक जिन जी तणां, थुणतां मन थिर थाय।

रचनाकाल--

संवत मुनि जग मुनि शशी, वैशाख सुदी विधु त्रीज,
भाणविजय विजयी करु, सकल कुशल नुं बीज।

इसमें भाणविजय ने अपने गुरु लब्धिविजय का वन्दन किया है--

तपगछनायक कुशलदायक, श्री विजयराज सूरीसरु,
बुधराज लब्धिविजय सेवक, भानुविजय मंगल करु।

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई--जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० ५९१, भाग ३, पृ० १६४७-४८ (प्र०सं०) और भाग ५ पृ० ३७१(न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कवि अपना नाम भाणविजय और भानुविजय दोनों लिखता है। लगता है कि दोनों एक ही व्यक्ति है। यह रचना खंभात निवासी राजमी के पुत्र बाछड़ा के आग्रह पर की गई थी। आपकी तीसरी रचना शाश्वता अशाश्वता जिन तीर्थमाला (७५ कड़ी) सं० १७४९, खंभात में पूर्ण हुई। इसकी प्रारंभिक पंक्तियाँ आगे दी जा रही हैं—

सरसती भगवती मनि धरी, सुमति ज्योति दातार,
चार निखेपई जिन तणो, भाव पूजा करुं सार।

कलश—इम भाव आणी भगति जाणी, संथुआ में जिनवरा,
संवत सतर इगुण पंचासो, खंभाति संघ सुखकरा।
श्री विजयभान सुरीस राज्ये विजयपक्ष सोहाकरु,
बुधराज लब्धिविजय सेवक भाणविजय बुध जयकरु।[1]

आपने एक गद्य रचना 'शोभन स्तुति बालावबोध सं० १७११ के आसपास ही लिखी थी किन्तु उसके गद्य का नमूना नहीं मिला।

भावजी—रविविजय के शिष्य थे। इन्होंने 'पार्श्वनाथ छंद' (१०१ कड़ी) की रचना सं० १७६० से पूर्व किसी समय की। इसमें पार्श्वनाथ का माहात्म्य दर्शाया गया है, यथा—

परतक्ष पारसनाथ आसपूरण अलवेसर,
परतक्ष पारसनाथ परममंगल परमेसर।
परतक्ष पारसनाथ सुजस त्रिहु भुवणे सोहे,
परतक्ष पारसनाथ सयल सुरनर मन मोहे।
श्री पार्श्वनाथ वीर प्रतपौ सुरगिरि सुरिज ज्यूं रासी,
पंडित श्री रविविजय पवर, सीस जंपइ भाव जी।

इसका आदि इस प्रकार हुआ है—

सुरतरु चिंतामणि समो, परगट पारसनाथ;
परमेसर प्रणमुं सदा, हरषे जोड़ी हाथ।[2]

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० ३५६-५७ एवं भाग ३, पृ० ११९५, १३२९ और १६२४ (प्र० सं०) तथा भाग ४ पृ० १८८-१८९ (न०सं०)।

२. वही, भाग ३, पृ० १२०८ (प्र०सं०) और भाग ५, पृ० १९४ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावप्रमोद—आप खरतरगच्छीय जिनराजसूरि7भावविजय7 भावविनय के शिष्य थे। इनकी प्रमुख रचना 'अजापुत्र चौपइ' सं० १७२६ आसो शुक्ल १० बीकानेर में रची गई। इसमें अजापुत्र के धर्म कर्म का महत्व बतलाया गया है, यथा—

अजापुत्र धरमै करी, पांमी लील विस्तार,
एक थी सुणज्यो सहू, हरष धरी उल्लास।

यह रचना चन्द्रप्रभु चरित पर आधारित है। रचनाकाल इस प्रकार लिखा है—

संवत सतरे छविसमे आसू मास उदारो रे,
सुकल पक्ष दसमी दिन अे, ग्रंथ कीधो सुखकारो रे।

इसकी प्रारंभिक पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

पारस प्रणमुं सदा, सुख संपत दातार,
दायक सकल जगति मुगत रमणिका दातार।

गुरु परंपरान्तर्गत धरमसिंह के पुत्र जिनराज सूरि तथा उनके शिष्य-प्रशिष्य भावविजय और भावविनय का सादर स्मरण किया गया है।

यथा—खरतरगछ महिमानिलो जुगवर श्री जिनराजो रे,
वादि गजकटा भंजणो, सकल भंजणो सिरताजो रे। इत्यादि।

यह रचना शाहजहाँ के शासनकाल में की गई थी। रचना स्थान बीकानेर बताया गया है। इसमें युग प्रधान जिनचंदसूरि का भी उल्लेख है। अंत में कवि कहता है कि यह दृष्टांत नवनिधि दायक है।

अे दृष्टांत सुहावणों, सुणतां नवनिधि थाय रे,
भाव प्रमोद पाठक कहे, श्री संघ नै सुखदाई रे।[1]

श्री अगरचंद नाहटा ने इस रचना का नामोल्लेख करके रचनाकाल दे दिया है।[2]

भावरत्न—(भावप्रभसूरि) पौर्णिमागच्छीय चन्द्रप्रभसूरि की

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग ३, पृ० १२३६-३७ (प्र०सं०) और भाग ४, पृ० ३६५-३६६ (न०सं०)।

२ अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० १०७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परंपरा में विद्याप्रभ सूरि>ललितप्रभसूरि 7 विनयप्रभसूरि>महिमाप्रभ सूरि के आप शिष्य थे।[1] सूरि पद के पूर्व आपका नाम भावरत्न था। आपके पिता का नाम मांडण और माता का बादूला था। यह विवरण इन्होंने कालिदास कृत 'ज्योतिर्विद्या भरण' पर लिखित 'सुखबोधिका' नामक अपनी संस्कृत टीका की प्रशस्ति में दी है। आप मरुगुर्जर के साथ संस्कृत के भी विद्वान् और सुलेखक थे। आपक यशोविजय कृत 'प्रतिमाशतक' पर सं० १७९३ में संस्कृत टीका लिखी थी। आपके अन्य कई संस्कृत ग्रंथों का विवरण श्री मोहनलाल दलीचंद देसाई कृत जैनसाहित्य नो संक्षिप्त इतिहास में उपलब्ध है।

भावप्रभसूरि ने मरुगुर्जर में छोटी बड़ी प्रायः एक दर्जन पुस्तकें लिखी हैं जिसमें झाझरिया मुनि की सञ्झाय, हरिबल मच्छी रास, अंबडरास, सुभद्रासती रास, बुद्धिलविमलसती रास और चौबीसी आदि बड़ी रचनाएँ उल्लेखनीय हैं। इनके अलावा इन्होंने कई चौपाइयाँ, सञ्झाय और स्फुट रचनाएँ भी की हैं। कतिपय रचनाओं का विवरण सोदाहरण आगे दिया जा रहा है। झांझरिया मुनि सञ्झाय (चार ढाल सं० १७५६ आषाढ़ कृष्ण द्वितीया, सोमवार) का आदि—

सरसती चरण सीस नमावी, प्रणमुं सद्गुरु पाय रे,
झांझरिआ ऋषि ना गुण गांता, ऊलट अंग सवाय रे।
भवीजन बांदो मुनि झांझरिया, संसार समुद्र जे तरिया रे,
सबल सही परिसह मन शुद्धै, शील रयण करी भरीया रे।

रचनाकाल—

संवत १७५६ नां कैरी, आसोज (आषाढ़) बद बीज,
सोमवारे संज्झाय अे कीधी, सांभलतां मन मोद के
श्री पुनमगच्छ गुरुराये विराजे, महिमाप्रभ सूरीन्द्र,
भावरत्न शिष्य भणे इम, सांभलतां आनंद के।

यह रचना जैन संज्झाय संग्रह (साराभाई नवाब) और जैन संज्झाय माला (बालाभाई शाह) नामक संग्रह ग्रन्थों में प्रकाशित हो चुकी है।

हरिबल मच्छी रास (३३ ढाल, ८४९ कड़ी, सं० १७६९ कार्तिक

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग ५, पृ० १६५-१७९ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कृष्ण २, भौमवार, रूपपुर) का रचनाकाल इन पंकियों में दिया गया है--

अंक अंग अश्वचन्द्र (१७६९) कहीजइ अे संवच्छर जाणो रे,
कार्तिक शूद त्रीज मंगलवारे, रास प्रारंभ बखाणो रे,
कार्तिक वदि तृतीया भौमवारे, थयो संपूरण रासो रे,
मंगल पणमंगल थयो अे, अे गुरु महिमा प्रसादे रे ।

यह ग्रंथ रत्नशेषर गणि कृत 'पडिक्कमणा वृत्ति' पर अवलम्बित है।

अंबडरास (सं० १७७५ ज्येष्ठ कृष्ण २, रविवार, पाटण)

यह चरितकाव्य अंबड और सुलसा संवाद पर आधारित है, यथा--

अंबड नो संबंध भाख्यो, सुलसा धर्म सगाई है, ससनेही ।

आदि --श्री महिमा जग विस्तरे, नित जपतां जसु नाम,
ते जिन पास ने प्रणमी अे लहिअे वंछित काम ।

इसमें पूर्णिमागच्छीय विनयप्रभ सूरि से लेकर महिमाप्रभ सूरि तक का गुणगान किया गया है। विनयप्रभ के लिए कवि ने लिखा है--

सकल सिद्धांत पारगामी, सकल नय ना दरिया हे,
वैयाकरणे हेम सरीखा, आचार ना गुणभरिया हे ।
काव्य छन्द अने अलंकारे, पूर्णलक्षण वेत्ता हे,
साहि सभा मांहि उपदेसे, निविड़ मिथ्यातना भेत्ता हे ।

रचनाकाल--

द्रुपदराय तणी जे पुत्री तसपति तिम तुरंगा हे,
भेद संयमनाभेला कीधा, संवत जाणो अे चंगा हे ।

बीसी (सं० १७८०, माधव कृष्ण ७, सोमवार)

आदि--श्री सीमंधर साहिबा रे, अतिशय ऋद्धि भण्डार,
तीरथंकर पद भोगवइ रे, विहरमान हितकार ।

अन्त--बिहरमान प्रभु बीस अे, गाथा श्री जिनराय,
मनोरथ मुझ फल्या ।
जिनवर च्यार जंबू दीपइ, घातकीइ कहाइ,
मनोरथ मुझ फल्या ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुरु की वन्दना करके अन्त में कवि आशीर्वाद मांगता है--

ते सुगुरु सुप्रसाद थी, बाधो बयण विलास,
श्री भावप्रभ सूरि कहइं, जिनगुण लील विलास।

महिमाप्रभ सूरि निर्वाण कल्याणक रास (९ ढाल सं० १७८२ पौष शुक्ल १०) यह रास महिमाप्रभ सूरि के निर्वाण पर लिखा गया। इससे ज्ञात होता है कि महिमाप्रभ सूरि का जन्म पालनपुर के समीप गोलाग्रामवासी पोरवाड़ गोत्रीय शाह बेला की भार्या अमरादे की कुक्षि से सं० १७११ आश्विन कृष्ण ९ को हुआ। बचपन का नाम मेघराज था। चार वर्ष की अवस्था में ही माँ मर गई तब पिता बच्चे को लेकर जब यात्रा कर रहे थे, मार्ग में विनयप्रभ सूरि के दर्शन हुए और उन्होंने ही सं० १७१९ में बालक को दीक्षा देकर उसका नाम मेघरत्न रखा। यही बालक पाणिनीय व्याकरण, न्याय ग्रंथ चिंतामणि शिरोमणि और ज्योतिष का प्रसिद्ध ग्रन्थ सिद्धांत शिरोमणि आदि के साथ जैनधर्म, सिद्धांत और गणित आदि का अभ्यास करके सं० १७३१ फाल्गुन में विनयप्रभ सूरि के पट्ट पर महिमाप्रभ सूरि के नाम से आसीन हुआ। तत्पश्चात् वे विविध तीर्थों की यात्रा, श्रावकों, शिष्यों को उपदेश आदि करते हुए सं० १७७२ में स्वर्गवासी हुए। इसका प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है--

श्री सुखदायक जगगुरु पार्श्वनाथ प्रसिद्ध,
वंछित पूरण सुरतरु नमतां हुइ नवनिधि।
सरसति ना सुपसाय थी गाइसि हूं गच्छराज,
श्री महिमाप्रभ सूरि नुं सुणउ निर्वाण समाज।

रचनाकाल--

श्री महिमाप्रभ सूरि ना गुण गांता हो थयो हरष अपार कि,
सुणतां सहूनइ सुषकरु, मनवंछित हो लहइ जयजयकार कि।
संवत सत्तर बिहुत्तरि पोष उज्जल हो दसमी नइ दिन कि,
निर्वाण गाऊं इणि परि ढाल नवमी हो भावरत्न सुमन कि।

अन्त--श्री महिमाप्रभ सूरि सद्गुरा तेहनी स्तवना करी,
धन धन श्रावक श्राविका जे, सांभलि आदर धरी।
तसु गेह संपति सार सोहइ, सुख सोभाग सदा लहइ,
तेज प्रताप अखंड कीरति पामइ, इय भावरतन कहइ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चौबीसी (सं० १७८३ फाल्गुन शुक्ल ३ सोमवार)

आदि – आदि जिनेसर दास नी विनती रे,
मुझ चित्त आंगणी अे तु पधारि रे,
चरण कमल नी भालो चाकरी रे,
जीवन करि सफलो अवतार रे।

रचनाकाल--
संवच्छर रत्न प्रवचन माता, भेद संयमना धारो रे,
फागुण सुदि तिथि त्रीज अनूपम, वार नक्षत्रपति सारो रे।

सुभद्रासती रास (२० ढाल, सं० १७९७, महा शुक्ल ३, शुक्रवार, पाटण)

आदि-- सकल अतिशये शोभता, श्री शंखेसर पास,
सेवक ने सुरतरु समा, परतक्ष पूरे आस।
चन्द्र किरण जिम ऊजली जेह्नी देह्नी कांति,
ते सरसति नित समरीअे, भाजे भावटि भ्रांति।

यह रचना दसवैकालिक की हरिभद्री वृत्ति और अन्य ग्रन्थों से सुभद्रा चरित को एकत्र कर तैयार की गई है। इसमें पूर्णिमा गच्छ के विद्याप्रभसूरि, ललितप्रभ, विनयप्रभ और महिमाप्रभ का वंदन किया गया है।

रचनाकाल--तुरंग अंक तुरंगम भूमी, १७९७ मान संवत्सर धारो,
माह शुदि त्रीज जया तिथि जाणो, दिनवार शुक्रे संभारो।
शील सुवर्णना भूषण भूषित, गुण रयणें जे सुहायो,
सती सुभद्रा नाम सुमंगल, मनवंछित सुख पायो रे।
भणतां गुणतां वलीय सांभलता, सती चरित्र रसाला,
श्री भावप्रभ सूरि वीसमी ढाले फली मनोरथ माला रे।

बुद्धिल विमलसती रास (२ खण्ड सं १७९९ मागसर शुक्ल द्वितीया गुरुवार, पाटण) प्रारम्भ में पार्श्वनाथ की वंदना करता हुआ कवि मंगलाचरण में कहता है--

अेहवा पास जिणेसरु नमता पातिक जाय,
विघनहरैं सुखनै करैं, पार्श्वयत्र सदाय।
वाणी वाणीमय तनु धरीई हृदय मझार,
वांछित अर्थ दीइ सदा, जस अभिनव भंडार।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कथाकोश में वर्णित श्रेष्ठिसुत बुद्धिल और सती विमला की कथा पर आधारित इस रचना में वही गुरु परम्परा दी गई है जो पहले लिखी जा चुकी है। रचनाकाल इन पंक्तियों में वर्णित है—

संवत नव नव घोउलो चंद्र समित हो जाणो नरह सुजाण,
मगसीर सूद दिन बीजडी गुरुवारे हो सुन्दर सुखखांड।
अणहिलपुर पाटणें ढंढेर वडि हो वसति सुविशाल,
दीपे मनोहर देहरा देखतां हो जाई पाप नी झाल।
तिहां अे रास रच्यो भलो मतिसार हो आणि नूतन ढाल,
बुद्धिल सती विमला तणों, मिठो रुडो हो संबंध रसाल।
बीजे खंडे सोलमी पूरण करुरे अे सुन्दर ढाल,
भावप्रभ सूरि कहें सांभलतां हो होई मंगलमाल।

इन बृहत् रचनाओं के अतिरिक्त भावप्रभ ने गुरु महिमा चौपई ९ कड़ी, सुशिष्य लक्षणाधिकार चौपई ७ कड़ी, कुशिष्य लक्षण परिहरण चौपई १३ कड़ी और धन्नाजी संज्झाय ५ कड़ी, राजिमती रहनेमि संज्झाय १६ कड़ी, स्थूलिभद्र मुनि संज्झाय १६ कड़ी और जम्बूस्वामी संज्झाय ७ कड़ी आदि कई छोटी रचनाएँ की हैं। इनमें राजिमती रहनेमि और स्थूलिभद्र संज्झाय जैसी कुछ मनोरम कृतियाँ भी हैं। इन्होंने संज्झाय और सवैये कई लिखे हैं जिनमें नववाड संज्झाय, मोटु संज्झाय माला संग्रह में प्रकाशित हैं। 'तेर काठिया संज्झाय, नेमि-विवाह तथा नेमनाथ जी नो नवरसों में प्रकाशित हो चुकी है। आषाढ़ भूति संज्झाय (५ ढाल) जैन संज्झाय संग्रह (साराभाई नवाब) तथा मोट संज्झाय माला संग्रह में प्रकाशित हैं। इनमें से नववाड संज्झाय के आदि अंत की पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

आदि— उठि सवारे सामयिक कीधू पण वारणु नवि दीधु,

अन्त— भावप्रभ सूरि कह नहि कथलो अध्यात्म उपजावो जी।

इन्होंने आदि जिन सवैया १५ कड़ी और २४ जिनसवैया २४ कड़ी आदि जिन स्तुतियाँ भी भक्तिभाव पूर्ण लिखी हैं। शालिभद्र धन्ना ऋषि संज्झाय २७ कड़ी, मेघकुमार संज्झाय ११ कड़ी इनकी अन्य उल्लेखनीय पद्य रचनाएँ हैं।[1]

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० ५०३-५११ और भाग ३, पृ० १४२४ से १४३२ तथा १६३९ (प्र०सं०) और भाग ५, पृ० १६५-१७९ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन्होंने लोकरूढ़ भाषा ज्ञानोपयोगी स्तुति चतुष्क बालावबोध नामक एक गद्य रचना भी की है किन्तु इसका विवरण तथा उद्धरण अनुपलब्ध है। इन कृतियों के आधार पर यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि भावरत्न अथवा भावप्रभ सूरि १८वीं शती के उत्तरार्ध के श्रेष्ठ कवियों तथा रचनाकारों में गणनीय हैं।

भाऊ मुझे खेद है कि योजनानुसार इनका विवरण १७वीं शती में ही दिया जाना चाहिए था क्योंकि इनका रचनाकाल १७वीं और १८वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध है। काशी नागरी प्रचारिणी सभा के खोज विवरण के संपादकों ने इनका रचनाकाल 'अविदित' लिखा है क्योंकि इनकी प्राप्त रचना 'नेमिनाथ रास' जिस गुटके में संकलित है उसका लेखन काल सं० १६९६ है और 'आदित्यवार कथा' एक ऐसे गुटके में निबद्ध हैं जिसका लेखनकाल सं० १७६३ है। इसलिए यह अनुमान होता है कि इन्होंने १७वीं शती के उत्तरार्द्ध से लेकर १८वीं शती के पूर्वार्द्ध में अपनी रचनाएँ की हैं।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा के खोज विवरण में इनके पिता का नाम भलूक दिया गया है लेकिन 'पुष्पदन्त पूजा' की अन्तिम प्रशस्ति में भुलूको पूत[1] लिखा है जिसका स्पष्ट अर्थ है भुलू का पुत्र, अतः इनके पिता भलू गर्ग गोत्रीय जैन थे। अभी तक खोज में इनकी चार रचनाएँ प्राप्त हो पाई हैं, आदित्यवार कथा, पार्श्वनाथ कथा, पुष्पदंत पूजा और नेमिनाथ रास, जिनका विवरण आगे प्रस्तुत है।

आदित्यवार कथा अपरनाम 'रविव्रत कथा' में व्रत माहात्म्य के साथ पार्श्वनाथ की भक्ति का स्वर अधिक मुखर है। गुणधर ने धरणेन्द्र एवं पद्मावती की प्रेरणा से रविव्रत पूजन प्रारम्भ किया और पूजा के लिए एक विशाल जैन मंदिर बनवाया। यह कथा अत्यन्त लोकप्रिय है। इसकी प्राप्त प्रति १७५९ सं० में लिखित गुटके में निबद्ध है। इसके प्रारम्भ में चौबीस तीर्थङ्करों और शारदा की स्तुति है, यथा -

सारद तणी सेवा मन धरौ, जा प्रसाद कवित्त ऊचरौ।
मूरष तै पंडित पद होई, ता कारणी सेवैं सब कोई।

---

१. काशी नागरी प्रचारिणी सभा का त्रैवार्षिक पन्द्रहवाँ खोज विवरण appendix II, पृ० ८६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पार्श्वनाथ कथा--यह पद्यबद्ध काव्य भगवान पार्श्वनाथ के जीवन चरित्र से संबंधित है।

पुष्पदंत पूजा—इसका उल्लेख का० ना० प्र० सभा के १५वें त्रैवार्षिक विवरण में पृ० ८९ पर हुआ है। इसमें ६७२ अनुष्टुप छंद हैं इसमें नौवें तीर्थंकर पुष्पदंत की पूजा का माहात्म्य बताया गया है। इसका आदि देखिए —

अगर अवर धूप चंदन लेवो भविजन लाय।
देखे सुर खग आनि कौतिग जय मेरु सुदर्शन।

अन्त--अजर अमर सोउ जित्य भयो, सो जिनदेव सभा को जयो।
दीन दीख्यौ रच्यो पुरान, ओछी बुधि में कियो बखान।[1]

नेमिनाथ रास--यह अच्छी रचना है, इसमें १५५ पद्य हैं। चौपाई छंदों का प्रयोग किया गया है। इस रास में नेमिनाथ को वैराग्य उत्पन्न करने वाली वैवाहिक घटना का मार्मिक वर्णन है। विवाह के अवसर पर द्वार पर बंधे पशुओं को, जिनको काटकर बारात को भोज दिया जाना था, देखकर नेमि को करुणा उत्पन्न हुई और वे सब छोड़कर विरक्त हो गये, किन्तु राजीमती का परम मर्मान्तिक विरह जीवन भर के लिए उद्दीप्त कर गये। यह रास उसी प्रसंग पर आधारित है। नववधू के वेश से सजी दुल्हन राजीमती का वर्णन इन पंक्तियों में द्रष्टव्य है--

रूप अखगल णेमिकुमार, सुण राजीमती कियो शृंगार।
कर कंकण बहु हीरा जड्यो, पहिरि हार गजमोती मढ्यो।

× × × ×

पहिरि पटोरें दक्षिण चीर, जणिकुं सिंदूरह मिलियो खीरु।
चलणन्ह नेवर को झणकार, सब वर्णों तो होइ पसार।

इसके प्रारम्भ में सरस्वती की वन्दना है, यथा—

सरस्वती माता बुद्धिदाता, करहु पुस्तक लेई,
उर पहिरि हारु करि सिंगारु हंस चढ़ी वर देई।[2]

---

१. प्रेमसागर जैन—हिन्दी जैन भक्तिकाव्य और कवि, पृ० ३०५।
२. वही पृ० ३०६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भुवनसोम-भुवनसेन— ये खरतरगच्छ की जिनभद्र सूरि शाखा में धनकीर्ति के शिष्य थे।[1] देसाई ने जैन गुर्जर कवियों के प्रथम संस्करण में इनका नाम भुवनसोम लिखा है तथा इन्हें जिनभद्रशाखा के साधुकीर्ति > कनकसोम > यशकुशल > लाभकीर्ति > धनकीर्ति का शिष्य बताया था। इनकी दो रचनायें उपलब्ध हैं-नर्मदा सुंदरी चौपाई और श्रेणिक रास। इनमें कवि ने अपना नाम भुवनसोम बताया है अतः भुवनसेन के बजाय भुवनसोम ही उचित प्रतीत होता है। लगता है नाहटा जी ने इनका नाम अशुद्ध लिख दिया है। आगे इनकी रचनाओं का विवरण दिया जा रहा है।

नर्मदासुन्दरी (सं० १७०१ वैशाख शुक्ल ३, सोमवार, नवानगर) इसमें गुरुपरम्परा इस प्रकार बताई गई है--

श्री जिनभद्र सूरि शाखायइ हूआ, श्री साधुकीर्ति उवझाय,
श्री कनकसोम कलियुग केवली, रायरंजन कहिवाय।
यशकुशल पाटइ लाभकीरति हूआ, बीजा धनकीरति जाण,
संयम मारग सूध्यो उपदिसउ, अद्‌भुत अमृतवाणि।[2]
शिष्य बेउनउ बेई दीपता, हर्षसोम मुनिराय,
भुवनसोम कहे भाई आपणी, अविचल जोड़ी कहाय।
चुंप करीनइ चउमास्यो रह्या, श्री नवइनगर सनूर,
भुवनसोम कहि अे बांचता, प्रगटइ पुण्य पडूर।

इससे व्यक्त होता है कि कनकसोम के शिष्य यशकुशल के दो शिष्य लाभकीर्ति और धनकीर्ति थे। इन दोनों के दो शिष्य हर्षसोम और भुवनसोम थे। इसलिए भुवनसेन के स्थान पर भुवनसोम उचित है। इसका रचनाकाल इस प्रकार दिया गया है--

संवत सतरइ सइ इकडोत्तरइ, सुदि बइसाखी त्रीज,
सोमवारइ सूरिज ऊगतइ, नीपनी चउपइ अेसीज।

---

१. श्री अगरचन्द नाहटा--परंपरा, पृ० १०५।

२. मोहनलाल दलीचन्द देसाई-जैन गुर्जर कवियो, भाग ४, पृ० ३५-३७ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसकी अंतिम पंक्तियाँ निम्नांकित हैं--

मइ मतिसारइ बोल्या माहरइ वचने सतीय चरित्र,
सांभलिस्यइ ते सारा सुख पामिस्यइ, थास्यइ कान पवित्र।[1]

श्रेणिक रास (विनय के विषय में यह रचना की गई है) इसका आदि इस प्रकार है—

शांति जिणेसर सेवता, वंछित थायइ सिद्धि,
सहगुरु श्रुत देवी बिन्हे, आपइ अविचल रिद्धि।
च्यार भेद जिनवर कहइ, श्री मुखि धर्म उदार,
जे अे सेवइ मनसुधइ, ते पामइ भवपार।

इस कृति में भी वही गुरुपरम्परा दी गई है जो नर्मदासुंदरी चौपई में दी गई थी। इसलिए ये रचनाएँ एक ही व्यक्ति की हैं और उनका नाम भुवनसोम निश्चित है। इस रचना का आधार उपदेशमाला सूत्रवृत्ति है, यथा—

उपदेशमाला सूत्र वृत्तिइ, शतक त्रीजइ संकल्पउ।

इसमें विनय का माहात्म्य बताया गया है, यथा--

भाषइ भगबंत भविक नइ, विनय धर्मनइ मूल,
सिघातइ दशविध कह्यउ, धर्म भणी अनुकूल।

× × ×

राजा श्रेणिक नी परइ, विनय करो सहु कोइ,
चोर विनय करी रीझव्यो, सुद्ध विद्याधर होइ।
तेहनी परिजन सांभलउ, समभावइ मनि आण,
ज्ञानवंत गुरुनउ करउ, विनय खरो गुणखाण।

इसमें रचनाकाल नहीं दिया गया है किन्तु यह भुवनसोम की ही रचना है जैसा अंत की इस पंक्ति से प्रकट है--

तेहनउ लघुभ्राता पभणइ, भुवनसोम इसी परइ,
अधिकार अेही विनय ऊपर…… ।[2]

इसलिए यह भी १८वीं शती के प्रथम चरण की ही रचना होगी।

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग ३, पृ० ११२३-२५ (प्र० सं०)।
२. वही, भाग ४, पृ० ३५-३७ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भूधरदास खंडेलवाल—ये आगरा निवासी खंडेलवाल वैश्य थे। इन पर रीतिकालीन हिन्दी कवियों का अच्छा प्रभाव था। इन्होंने अपनी प्रसिद्ध रचना 'जैनशतक' में लिखा है–

आगरे में बालबुद्धि भूधर खंडेलवाल,
बालक के ख्याल सो कवित्त करि जाने है।

इसका मिलान रीतिकाल के प्रसिद्ध कवि की इस पंक्ति से कीजिए–

ढेला सों बनाय आय मेलत सभा के बीच
लोगन कवित्त कीबो खेल करि जानो हैं।

दौलतराम जी ने इनका नाम भूधरमल बताया है और कहा है कि ये आगरा के स्याहगंज-मंदिर में प्रतिदिन शास्त्रप्रवचन किया करते थे। खंडेलवाल जी कवि और शास्त्रज्ञ दोनों थे। रीतिकाल के अधिकांश कवि भी शास्त्रलक्षणकार भी थे। वे काव्यशास्त्र की चर्चा करते थे, ये जैनशास्त्र की चर्चा करते थे। वे लक्षण प्रायः श्रृंगाररस के ढूढ़ते थे, ये दृष्टांत और उदाहरण अध्यात्म और शांतरस के दिया करते थे। भूधरदास बनारसीदास की अध्यात्म परंपरा के आगरा निवासी कवि थे।

ये १८वीं शताब्दी के अंतिम चरण के श्रेष्ठ कवियों में थे। इन्होंने विपुल साहित्य की सर्जना की है। प्रबन्ध, मुक्तक दोनों रूपों में लिखा है जैसे पार्श्वपुराण महाकाव्य है तो भूधर विलास या पद संग्रह मुक्तक का उदाहरण है। मुक्तकों में जखड़ी, विनतियाँ, स्तोत्र, बारह भावनाएँ आदि सम्मिलित हैं। मुक्तक रचनाओं में भक्ति और अध्यात्म का सुखद संयोग है। इनकी कुछ प्रमुख रचनाओं का सोदाहरण परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

जैनशतक—सं०१७८१ पौष कृष्ण त्रयोदशी, रविवार; १०७ कवित्त, सवैया, दोहा और छप्पय आदि छंदों में आबद्ध यह शतक है। इसमें संसार की असारता; विषयों से विरत रहने की चेतावनी और जैन धर्म सिद्धांतों का महत्व प्रतिपादित किया गया है। डॉ० कस्तूरचंद कासलीवाल ने इसका रचनाकाल सं० १७८१ पौष कृष्ण १३ बताया है।[1] इसके रचनाकाल से संबंधित पंक्तियां इस प्रकार कही गई है—

१. सम्पादक कस्तूरचन्द कासलीवाल—राजस्थान के जैन शास्त्रभंडारों की ग्रंथसूची, भाग ३, पृ० २३५।

२२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सतरह सै इक्यासिया पौष पाख तम लीन,
तिथि तेरह रविवार को शतक समापत कीन।[1]

इस असार संसार में जन्म-मृत्यु का चक्कर चलता ही रहता है। कवि कहता है—

काहू घर पुत्र जायौ काहू के वियोग आयौ,
काहू रागरंग काहू रोआ रोई करी है।
जहाँ मातु उगत उछाह गीत गान देखे,
सांझ समै ताही थान हाय हाय परी है।
ऐसी जग रीति की न देखि भयभीत होय,
हा हा नर मूढ़ तेरी मति कौने हरी है।
मनुष जनम पाय सोवत विहाय जाय
खोवत करोरन की एक एक घरी है।

भूधरदास के काव्याभिव्यंजन का स्वर रीतिकालीन हिन्दी काव्य अभिव्यंजना के मेल में है जैसा भगवान नेमिनाथ की स्तुति की निम्न पंक्तियों से स्पष्ट होता है-

बाल ब्रह्मचारी उग्रसेन की कुमारी जादौनाथ
तैं निकारी जन्मकादौं दुखरास तैं,
भीम भव कानन में आनन सहाय स्वामी,
अहो नेमि नामी तकि आयौ तुम पास मैं।

भूधरविलास—यह उनकी अनेक रचनाओं का संग्रह ग्रंथ है। डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ने इन रचनाओं के बारे में लिखा है कि इनमें कुछ अनुवाद और कुछ स्वतंत्र रचनाएँ हैं।[2] भाषा खड़ी बोली मिश्रित ब्रजभाषा है। कुछ गुजराती के शब्द भी हैं। यह संकलन जिनवाणी प्रचारक कार्यालय कलकत्ता से प्रकाशित हुआ है। इस मिली जुली रचना में प्रमुख स्वर भक्ति का है। एक स्थान पर कवि अजितनाथ की प्रार्थना करता हुआ उनकी भक्ति माँगता है—

---

१. डा० प्रेमसागर जैन—हिन्दी भक्तिकाव्य और कवि पृ० ३३५-३४९।
२. सम्पादक डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल—नागरी प्रचारिणी सभा, हस्तलिखित पुस्तकों की खोजरिपोर्ट चौदहवाँ त्रैवार्षिक विवरण।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तुम त्रिभुवन में कलपतरुवर, आस भरो भगवान जी
ना हम मांगे हाथी घोड़ा, ना कछु संपति आन जी
भूधर के उर बसो जगतगुरु, जब लौं पद निरवान जी।

भक्ति के प्रधान अंग ध्यान और नाम जप का महत्व बताते हुए कवि एक पद में कहता है-

जपि माला जिनवर नाम की;
भजन सुधारस सों नहि धोई, सो रसना किस काम की।

पदसंग्रह—यह ८० पदों का संग्रह है और जैनवाणी प्रचारक कार्यालय कलकत्ता से प्रकाशित है। पदों का वर्ण्य विषय प्रायः जिनेन्द्र भक्ति, गुरु भक्ति और जिनवाणी है, यथा-

भगवंत भजन को भूला रे,
यह संसार रैन का सुपना, तन धन नारी बबूला रे। इत्यादि।

इसकी कुछ पंक्तियाँ अतिशय प्रचलित हैं, यथा—

चरखा चलता नाही, चरखा हुआ पुराना,
पग खूंटे इम हालन लागे, उर मदरा खखराना।[1]

पता नहीं कब मृत्यु आ जाय इसलिए जो समय मिला है उसमें भजन करो—

जिनराज चरण मन मति विसरै,
को जानै किहिं बार काल की धार अचानक आनि परै।

परमार्थ जखड़ी—हर्षकीर्ति, रूपचंद, दौलतराम, रामकृष्ण और जिनदास आदि अनेक कवियों ने जखड़ी लिखी है। भूधरदास की जखड़ी केवल पाँच पद्यों की संभवतः सबसे छोटी है। पन्नालाल बाकलीवाल द्वारा संपादित जिनवाणी संग्रह में इसका प्रकाशन हुआ है। इससे एक उदाहरण-

अब मन मेरे बे सुन सुन सीख सयानी।
जिनवर चरनन बे, कर कर प्रीति सुज्ञानी।

गुरुस्तुति-गुरुवाणी संकलन में इनकी दो गुरुस्तुतियाँ प्रकाशित हैं। इनमें कवि का मुख्य कथ्य यह है कि गुरु की कृपा के बिना कर्म

---

१. कामताप्रसाद जैन—हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ० १७२-१७५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शृंखला नहीं कटती। चूँकि जैन गुरु प्रखर तपस्वी होता है इसलिए वह अपने कर्मों का निर्जरा करके शिष्य को भी कर्मबन्धन से मुक्त कराता है, यथा--

जेठ तपै रवि आकरो, सूखै सरवर नीर,
शैल शिखर मुनि तप करै, दाझै नगन शरीर।
ते गुरु मेरे मन बसो।

बारहभावना -- इसमें संसार की असारता का मार्मिक वर्णन है, यथा--

राजा राणा छत्रपति, हाथिन के असवार,
मरना सबको एक दिन, अपनी अपनी बार।

यह कृति ज्ञानपीठ पूजांजलि और अन्य अनेक स्थलों से प्रकाशित है।

जिनेन्द्र स्तुति -- जिनवाणी संग्रह में इनकी तीन जिनेन्द्र स्तुतियों का प्रकाशन हुआ है। इनमें से एक स्तुति 'ज्ञानपीठ पूजांजलि' में भी छपी है। भूधर दास्यभाव की भक्ति में विश्वास करते हैं, वे कहते हैं-

जै जग पूज परम गुरु नामी, पतित उधारन अंतर जामी,
दास दुखी तुम अति उपगारी, सुनिए प्रभु अरदास हमारी।

एकीभाव स्तोत्र -- यह वादिराज के एकीभाव स्तोत्र का अनुवाद है। जिनेन्द्र भगवान की भक्ति रूपी गंगा स्याद्वाद् रूपी पर्वत से निकलकर भक्तों को पवित्र करती मोक्षरूपी समुद्र में मिल जाती है, यथा--

स्याद्वाद गिरि उपजे मोक्ष सागर लौं धाई,
तुम चरणाम्बुज परस भक्ति गंगा सुखदाई। इत्यादि।

कवि ने पार्श्वनाथ की स्तुति में कई रचनाएँ की हैं जैसे पार्श्वनाथ स्तुति, पार्श्वनाथ स्तोत्र और पार्श्व पुराण। प्रथम दो सामान्य रचनायें हैं किन्तु पार्श्वनाथ पुराण असाधारण रचना है। इनका परिचय आगे दिया जा रहा है।

पार्श्वनाथ स्तुति भगवान पार्श्वनाथ की महिमा का गान करता हुआ कवि उनके नाम के माहात्म्य का वर्णन करता है--

पारस प्रभु को नाऊँ, सार सुधारस जगत में,
मैं बाकी बलि जाऊँ, अजर अमर पद मूल यह।

यह जिनवाणी संग्रह में प्रकाशित है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पार्श्वनाथ स्तोत्र— यह भी जिनवाणी संग्रह में प्रकाशित है। इसमें २२ पद्य हैं। दोहे, चौपाई. छन्दों का प्रयोग किया गया है। पार्श्वनाथ स्तुति की अपेक्षा यह स्तोत्र अधिक मर्मस्पर्शी है, एक स्थल पर भक्त अपनी लघुता का वर्णन करता हुआ कहता है—

प्रभु इस जग में समरथ ना कोय,
जासो तुम यश वर्णन होय।
चार ध्यानधारी मुनि थकैं,
हमसे मन्द कहा करि सकैं।[1]

पार्श्व पुराण —यह एक महाकाव्य है। इसके सम्बन्ध में प्रेमी जी ने लिखा है हिन्दी के जैन साहित्य में पार्श्वपुराण ही एक ऐसा चरित्र ग्रंथ है जिसकी रचना उच्च श्रेणी की है, जो वास्तव में पढ़ने योग्य है और जो किसी संस्कृत, प्राकृत ग्रन्थ का अनुवाद करके नहीं किन्तु स्वतन्त्र रूप से लिखा गया है।[2] इसकी रचना में काव्य सौन्दर्य और चमत्कार है। साथ ही इसकी भाषा प्रसादगुण संपन्न है। यह महाकाव्य सं० १७८९ में रचा गया—

संवत सतरह सै समय और नवासी लीय,
सुदि अषाढ़ तिथि पंचमी, ग्रंथ समापत कीय।[3]

यह ग्रन्थ नौ अधिकारों में पूर्ण हुआ है। इसमें तेइसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ का सांगोपांग चरित्रांकन हुआ है। भक्तिरस की प्रधानता है। यह दोहे-चौपाई छन्दों में आबद्ध है। इसमें पार्श्व के पूर्व भवों से लेकर निर्वाण काल तक की कथा है। इस मुख्य कथा के साथ सुसम्बद्ध कई अवान्तर कथायें भी हैं। शांतरस के साथ अन्य रसों का भी यथास्थान उपयोग किया गया है। दोहा-चौपाई के अलावा कहीं-कहीं सोरठा और छप्पय का भी प्रयोग मिलता है। प्रारम्भ में मंगलाचरण में भी पार्श्वनाथ की ही स्तुति है, यथा—

बाघ सिंह वश होहि, विषम विषधर नहि डंकै;
भूत प्रेत बेताल, व्याल वैरी मन शंकैं।
× × × ×

---

१. डा० प्रेमसागर जैन—हिन्दी जैन भक्तिकाव्य और कवि पृ० ३३५-३४८।
२. नाथूराम प्रेमी—हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास, बम्बई।
३. डा० लालचन्द जैन – जैन कवियों के ब्रजभाषा प्रबन्धकाव्यों का अध्ययन पृ० ८२-८३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री पार्श्वनाथ के पदकमल, हिये धरत निज एकमन।
छूटै अनादि बन्धन बँधे कौन कथा विनशै विघन।

तपस्वी पार्श्व पर कमठ के जीव ने बड़ा उपसर्ग किया, पार्श्व सब हँसते हँसते झेल गये उसका एक चित्र देखिये—

किल किलंत वैताल, काल कज्जल छवि छज्जहिं,
भौं कराल विकराल, भाल मदगज जिमि गज्जहिं।
× × × ×
इहि विधि अनेक दुर्वेष धरि, कमठ जीव उपसर्ग किय,
तिहुँ लोक वंद्य जिनचंद्र प्रति, धूलि डाल निज सीस लिय।

सज्जन और दुर्जन के विषय में कवि की एक उक्ति देखिए—

उपजे एकहि गर्भ सौं, सज्जन दुर्जन येह,
लोह कवच रक्षा करै, खांडो खंडै देह।
तपे तवा पर आय स्वाति जल बूंद विनंट्ठी,
कमलपत्र परसंग लही मोती सम दिट्ठी।[1]

इसकी अंतिम पंक्तियों में भगवान पार्श्वनाथ को केवल ज्ञान होने पर इन्द्र के समवशरण में आने का वर्णन है—

तिस कारण करुणानिधि नाथ, प्रभु सनमुख हम जोरे हाथ,
जब लों निकट होय निरवान, जग निवास छूटै सुख दान।
तब लों तुव चरणाम्बुज बास, हम उर होहु यही अरदास।
और न कछु वांछा भगवान, यह दयाल दीजै वरदान।

इनकी भक्ति भावना पर तुलसी की भक्ति रचनाओं का प्रभाव झलकता है। इन्हीं ऊचाइयों के कारण यह समस्त हिन्दी जैन काव्य साहित्य में वस्तुतः सराहनीय रचना बन पड़ी है।

ढोलियों के दिगम्बर जैन मंदिर में सुरक्षित ६४८ वें पाठ संग्रह में इनकी तीन रचनायें और प्राप्त हुई हैं—गजभावना, पंचमेरु पूजा और वज्रनाभि चक्रवर्ती की वैराग्य भावना। इनमें से तीसरी रचना जिनवाणी संग्रह में छप गई है। अन्य रचनाओं में बाईस परीषह लघु होते हुए भी महत्वपूर्ण हैं जो जिनवाणी संग्रह में प्रकाशित हो चुकी है। रचनाओं की संख्या और उनके काव्यत्व की विशिष्टता को देखते हुए

१. डा० प्रेमसागर जैन—हिन्दी जैन भक्तिकाव्य और कवि, पृ० ३३५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि भूधरदास १८वीं शती के अंतिम पाद के सशक्त कवियों में अग्रगण्य थे। प्रारंभ में इनके जैन शतक की चर्चा की गई है। इस विवरण का समापन भी जैनशतक की इस चेतावनी के साथ किया जा रहा है—

जौ लों देह तेरी काहू रोग सो न छेरी
जौ लों जरा नही नेरी जासौ पराधीन परि है।
तौं लो मित्र मेरे निज कारज संवार लेरे,
पौरुष थकै जो फेर पीछे कहा करि है।
अहो आग लागै जब झोपरी जरन लागी;
कुवाँ के खुदाये तब कौन काज सरि है।[1]

आग लगने पर कुवाँ खोदना, हिन्दी क्षेत्र का लोक प्रचलित मुहावरा है। इसका कितना प्रभावी प्रयोग उपरोक्त पंक्ति में किया गया है। ऐसे अनेक संग्रहणीय सुभाषित पद्य इनकी रचनाओं में मणि रत्नों के समान जगमगा रहे हैं।

आगरा ब्रजभाषा क्षेत्र का प्रमुख नगर है। १८वीं शती में काव्य भाषा व्रजभाषा थी, इसलिए भूधरदास खंडेलवाल के लिये व्रजभाषा हिन्दी में रचनाकार्य सुकर था अतः उन्होंने सशक्त भाषा तथा समृद्ध काव्य कौशल का प्रयोग करके अपनी भक्ति और शांतरस की रचनाओं को समस्त जैन साहित्य में विशिष्ट स्थान का अधिकारी बना दिया है।

भोजसागर—[2] आप तपागच्छीय साधु विनीतसागर के शिष्य थे। आपने रत्नशेखर सूरि कृत (सं० १५१६) आचार प्रदीप पर सं० १७९८ ज्येष्ठ कृष्ण १०, मंगलवार को एक बालावबोध लिख कर पूर्ण किया। इसे इन्होंने 'टब्बार्थ' कहा है। यह टब्बार्थ भोजसागर ने रूपविजय गणि के आग्रह पर लिखा था। इसमें लेखक ने विजयदया सूरि के पश्चात् विनीतसागर की वंदना की है। इसके गद्य का नमूना नहीं मिला।

---

१. डा० प्रेमसागर जैन—हिन्दी जैन भक्तिकाव्य और कवि, पृ० ३३५-३४९
२. मोहनलाल दलीचन्द देसाई — जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० ५९३, भाग ३, पृ० १६४५-४६ (प्र० सं०) और भाग ५, पृ० ३६२-३६३ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मणिविजय—तपागच्छ के कपूरविजय आपके गुरु थे। उन्होंने जिनप्रभ सूरि के शासन (सं० १७१०-१७४९) में अपनी रचनाएँ कीं।

आपकी रचना '१४ गुणस्थानक भास' अथवा संज्झाय जिनेन्द्र भक्ति प्रकाश और चैत्य आदि संज्झाय भाग १ तथा अन्यत्र से भी प्रकाशित प्रसिद्ध रचना है। इसकी प्रारंभिक पंक्तियाँ निम्नांकित हैं–

श्री शंखसरपुर धणी जी, प्रणमी पास जिणंद,
नाम जयंता जेहनूँ जी, आपइ परमाणंद।
भविक जन सँभलो अेह विचार,
कर्मग्रंथ मांहि कह्यो जी, अे सधला अधिकार।

गुरु परंपरान्तर्गत कवि ने विजयदेव, विजयप्रभ और कपूरविजय का उल्लेख किया है। रचनाकाल नहीं दिया है किन्तु यह १८वीं शती के पूर्वार्द्ध की रचना है। इसकी अंतिम पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं–

पूजो पूजो रे प्रभु पास जी पूजो,
संखेसर परमेसर साहिब, अे सम देव न दूजो रे,
जेहनइ नामइ नवनिधि पामइं, मुगतिवधू तस कामइं,
सुरनर नारी बे कर जोडी आविनइं सिरि नामइं रे।

× × ×

सकल पंडित शिर मुगुट नगीनो, कपूरविजय गुरु सीस,
मणिविजय बुध इणि परि जंपइ, पूरो संघ जगीस रे।[1]

मतिकुशल—खरतरगच्छ के गुणकीर्ति गणि के शिष्य मतिवल्लभ आपके गुरु थे। आपने चन्द्रलेखा चौपइ अथवा रास (२९ ढाल ६२४ कड़ी) सं० १७२८ आसो वदी १० रविवार को पचीआख में पूर्ण की। रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है –

संवत सिद्धिकर मुनि शशि वदि आसो दसमि रविवार,
श्री पचीआख में प्रेमशुं जी अेह रच्यौ अधिकार।

गुरु परंपरा बताते हुए मतिकुशल ने खरतरगच्छ के आचार्य जिनचंद्रसूरि संतानीय क्षेम शाखा के गुणकीर्ति व मतिवल्लभ का वंदन किया है। इसकी आरंभिक पंक्तियाँ ये हैं––

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई–जैन गुर्जर कवियो, भाग ३, पृ० १५२८-२९ (प्र०सं०) और भाग ५, पृ० ७०-७१ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सरसति भगति नमी करी प्रणमुं सद्गुरु पाय,
विघन विडारण सुखकरण, परसिद्ध अेह उपाय।
× × ×
मरुदेवी भरतादि मुनि करि सामायक सार;
केवल कमला तिणि वरी, पाम्या भवनो पार।
सामायक मन सुध्ये करो पामी ठाम पवित्र,
तिण उपरि तुम्हें सांभलो, चन्द्रलेहा चरित्र।

अंत—रतनवलभ गुण सानिधे जी, अे कीओ प्रथम अभ्यास,
छसै चौबीस गाहा अछै जी, ओगणतीस ढाल उल्लास।
भणि गुणि सुणि भावशुं, गिरुआ तणां गुण जेह,
मन शुद्धे जिनधर्म जे करै जी, त्रिभोवनपति हुवै तेह।[1]

यह रचना काफी लोकप्रिय हुई; इसकी पचासों प्रतियाँ जगह-जगह शास्त्र भंडारों से उपलब्ध हुई हैं, परन्तु अभी तक संभवतः यह प्रकाशित नहीं हुई है। यह कवि की प्रथम रचना है। इसमें चन्द्रलेखा के चरित्र का उदाहरण देकर त्रिकाल सामायक का महत्व समझाया गया है। इसके तीसरे पद्य में कहा है—

सामाइक सुधा करो, त्रिकरण सुद्ध त्रिकाल,
सत्रु मित्र समता गणि, जिम तूटै जग जाल।[2]

विभिन्न प्रतियों में पाठभेद मिलने से शुद्ध पाठ का मूल रूप निर्धारित करने में कठिनाई होती है।

मतिसागर—आपकी एकमात्र रचना 'खंभात तीर्थमाला'[3] सं० १७०१ का उल्लेख मोहनलाल दलीचंद देसाई ने किया है किन्तु अन्य कोई विवरण या उद्धरण नहीं दिया है। अतः इनके संबंध में शोध की आवश्यकता है।

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० २६५-२६८ (प्र० सं०), भाग ३, पृ० १२६९-७० (प्र० सं०) तथा भाग ४, पृ० ४२०-४२४ (न०सं०)।

२. डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल—राजस्थान के जैन शास्त्रभंडारों की ग्रंथसूची भाग ३, पृ० ३६१।

३. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० ५६ (प्र०सं०) और भाग ४, पृ० ६५ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मतिसार—खरतरगच्छ जिनरत्नसूरि>जिनवर्धमान के शिष्य थे। आपने 'धन्ना ऋषि चउपइ' की रचना सं० १७१० आसो शुक्ल ६, खंभात में पूर्ण की। रचनाकाल इस प्रकार बताया है—

तस शिष्य व्रधमान जगीसे, आसो सुदि छठि दिवसै जी
संवत सत्तर बाहोत्तर वरसै, खंभाइत मन हरषै जी।
अे संबंध रच्यौ मतिसारै नवम अंग अणुसारै जी,
भवियण जण नै वांचण सारै विसतर जो जगि सारै जी।

मोहनलाल दलीचंद देसाई ने शंका की है कि जिनसिंह सूरि मतिसार जिनकी चर्चा इस ग्रंथ के द्वितीयखंड में की जा चुकी है और जो जैन गुर्जर कवियो भाग १ के पृ० ५०१ पर वर्णित है वे और प्रस्तुत मतिसार संभवतः एक ही कवि हैं। उन मतिसार की शालिभद्ररास और प्रस्तुत मतिसार की धन्नाऋषि चउपइ शायद एक ही रचना हो। बिना प्रतियों का मिलान किए इस संबंध में कुछ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता।

देसाई ने जैन गुर्जर कवियो भाग २ पृ० ८०-८१ पर मतिसार की चर्चा की है किन्तु इस ग्रन्थ के नवीन संस्करण में मतिसार की चर्चा सम्पादक ने नहीं की है, शायद सम्पादक कोठारी को निश्चय हो गया कि ये दोनों एक ही हैं।

मनराम—[1]इनकी गुरुपरम्परा और विशेष जीवनवृत्त का पता नहीं चल सका है किन्तु इनकी रचनाओं को देखते हुए लगता है कि ये १८वीं शताब्दी के जैन हिन्दी लेखकों में अच्छे लेखक थे। इनका भाषा पर अच्छा अधिकार था। इन्होंने अक्षरमाला, धर्मसहेली, मनरामविलास, बत्तीसी गुणाक्षरमाला आदि कई अच्छी रचनाएँ की हैं। साहित्यिक दृष्टि से भी ये रचनायें श्रेष्ठ मानी गई हैं।

मनोहरदास अथवा मनोहर—(रचनाकाल सं० १७०५-१७२८) ये सोनी गोत्रीय खण्डेलवाल वैश्य थे और सांगानेर से आकर धामपुर में रहने लगे थे। ये धामपुर के नगरसेठ आसू के मनोरम आश्रम में रहते

१. डा० कस्तूरचंद कासलीवाल—राजस्थान के जैन शास्त्र भंडारों की ग्रंथसूची भाग ३ पृ० १७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थे। ये उच्चकोटि के विद्वान् और कवि थे तथा स्वभाव से अहंकारहीन विनयी व्यक्ति थे। वे अपने सम्बन्ध में कहते हैं--

कविता मनोहर खण्डेलवाल सोनी जाति,
मूलसंघी मूल जाको सांगानेर वास है,
कर्म के उदय तै धामपुर में बसत भयौ,
सबसों मिलाप पुनि सज्जन को दास है।[1]

आपकी प्रसिद्ध पुस्तक धर्मपरीक्षा सं० १७०५ धामपुर में ही लिखी गई थी। यह एक व्यंग्यात्मक काव्य है। इसमें पवनवेग और मनोवेग नामक दो मित्रों की कथा है। यह ग्रन्थ आचार्य अमितगति के धर्म परीक्षा नामक संस्कृत ग्रन्थ का ३००० पद्यों में भाषानुवाद है। इसमें दोहा, सोरठा, सवैया, छप्पय आदि मात्रिक छन्दों का प्रयोग किया गया है। अमितगति के मूल ग्रन्थ का यह भाषान्तरण है इसके समर्थन में डॉ० प्रेमशंकर जैन ने यह उद्धरण दिया है—

सुमुनि अमित गति जान सहसकीर्ति पूर्व कही,
या मैं बुधि प्रमान भाषा कीनी जोरिकै।[2]

जबकि डॉ० लालचन्द जैन ने इसे मुनि मतिसागर विरचित धर्म परीक्षा के आधार पर लिखा बताया है और अपने कथन के समर्थन में निम्न पद्य उद्धृत किया है--

मतिसागर मुनि जान संस्कृत पूर्वहि कही
मैं बुद्धिहीन अयान, भाषा कीनी जोरिकै।[3]

इन दो पंक्तियों में केवल अंतिम अर्द्धाली भाषा कीनी जोरिकै दोनों में समान है, शेष भाग भिन्न-भिन्न है और यह कहना कठिन है कि कौन सा पाठ प्रामाणिक एवं शुद्ध है। प्रथम दृष्ट्या प्रेमसागर जैन द्वारा उद्धृत 'सहसकीर्ति पूर्व कही' के स्थान पर लालचन्द जैन द्वारा उद्धृत संस्कृत पूर्वहि कही ज्यादा सही लगता है और इसके आधार पर यदि उनके उद्धरण को ठीक माना जाय तो इस रचना का मूल ग्रन्थ अमितगति कृत न होकर मतिसागर कृत धर्मपरीक्षा है। यह कई

१. डा० नाथूराम प्रेमी—हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास, पृ० ६७।
२. डा० प्रेमसागर जैन--हिन्दी जैन भक्तिकाव्य और कवि, पृ० २२१-२२४
३. डा० लालचन्द जैन—जैन कवियों के ब्रजभाषा प्रबन्धकाव्यों का अध्ययन पृ० ८९।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रतियों का मिलान करके ही निश्चित किया जा सकता है। इसका मंगलाचरण देखिए--

प्रणमु अरिहंत देव गुरु निरग्रन्थ दया धरम,
भवदधि तारन एव अवर सकल मिथ्यात मणि।

वे अत्यन्त विनयपूर्वक कहते हैं—

व्याकरण छंद अलंकार कछु पढ्यो नाहि,
भाषा मैं निपुन तुच्छ बुद्धि कौ प्रकास है।

जो लोग परमब्रह्म की आस छोड़ अन्य व्यर्थ मार्गों में भटकते हैं उनकी तुलना वेश्यापुत्र से करता हुआ कवि कहता है--

इह प्रकार जो नर इहैं, इसी भांति सोभा लहै,
अजरिज पुत्र वेश्या तणो, कहो बाप कासों कहै।

यह रचना कवि ने रावत सालिवाहण, जगदत्त मिश्र और गैंगराज की प्रेरणा से की थी।

ज्ञानचिंतामणि—यह अध्यात्म से सम्बन्धित रचना है। इसका रचनाकाल सं० १७२९ माह सुदी ७ है। यह सुभाषितों का संग्रह ग्रंथ है। यह बुरहानपुर में रचित है। विषयों में लिप्त जो व्यक्ति धर्म का मर्म नहीं जानता उसके बारे में कवि का कथन है--

गुरु का वचन सुणै नहिं कान, निसिदिन पाप करै अज्ञान;
विषया विष सूं रचि पचि रह्यो, ध्यान धर्म को मरम न लह्यो।

चिन्तामणिमानबावनी एक महत्वपूर्ण रचना है। इसके कुछ पद्यों में रहस्यवादी रूपकों की झलक मिलती है, यथा--

धर्म्मु धर्म्मु सब जग कहै मर्म्म ण कोइ लहंत,
अलष निरंजन ज्ञानमय इहि तन मध्य रहंत।

इसकी भाषा को कवि ने प्राकृताभास बनाने का प्रयास किया है, यथा—

जिम मोह पटल फट्टइ सयल द्रिष्टि प्रकास फुटंत अति
श्रीमान कहै मति अग्गलौं हो धर्म्म पिछाण ण एहु गति।

सुगुरु सीष इसमें केवल ११ पद्य हैं, इसमें मुख्यतया जीव को संसार से विरक्त रहने की प्रेरणा दी गई है--

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिन दिन आयु घटै है रे लाल,
ज्यों अंजली कौ नीर मन मांहि ला रे।
थिरता नहीं संसार मन माहि ला रे,
सीष सुगुरु की मानिलै रे लाल।
समकित स्यौं परच्यौ करो रे लाल,
मिथ्या संगि निवारि मन मांहि ला रे।

गुणठाणा गीत में १७ पद्य हैं जो परम चिदानन्द की भक्ति में लिखे गये हैं, एक पद की कुछ पंक्तियां नमूने के रूप में प्रस्तुत हैं—

परम चिदानंद सम्पद पदधरा, अनंत गुणाकर शंकर शिवकरा।
शुभचन्द्र सूरि पद कमल युगलई, मधुपव्रत मनोहर धरए,
भणइत श्री वर्धमान ब्रह्म एह वाणि भवीयण सुखकर ए।[1]

महिसिंह अथवा **महेशमुनि**—आपकी रचना अक्षर बत्तीसी का रचनाकाल सं० १७२५ है। इसका आदि इस प्रकार है—

कका ते किरिया करी करम करऊं ते चूरि,
किरिया बिण रे जीव डा, शिवनगरी हुई दूरि।

रचनाकाल कवि ने स्वयं दिया है, यथा—

सतरह सइ पच्चीस संवत कीयो वखाण,
उदयपुर उद्यम कीयो मुनि महिसिंह जाण।[2]

इस पद्य से इनका नाम मह या महिसिंह ज्ञात होता है। इनका विवरण देते हुए मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने रचनाकाल सम्बन्धी पद्य का पाठ इस प्रकार लिखा है—

सतरय सय पचीस भइ, संमत कीयउ सा वखाण,
उदयपुर उद्यम कीयउ, मुनि महेश पंडित जाण।[3]

इससे इनका नाम महेशमुनि मालूम पड़ता है।

---

१. डा० प्रेमसागर जैन—हिन्दी जैन भक्तिकाव्य और कवि, पृ० २१९-२२४
२. डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल—राजस्थान के जैन शास्त्रभंडारों की ग्रंथ-सूची, भाग ३, पृ० २५२।
३. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० २३० (प्र०सं०) और भाग ४, पृ० ३५८ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महिमावर्धन--आप कुलवर्धन सूरि के शिष्य थे। आपने धनदत्त रास[1] की रचना सं० १७९६ ज्येष्ठ कृष्ण ५, मंगलवार को पूर्ण की।

महिमासूरि --आप आगमगच्छ के साधु थे। आपने 'चैत्यपरिपाटी' की रचना सं० १७२२ श्रावण ३, गुरुवार को ५ ढालों में पूर्ण की।

आदि— श्री वागीश्वरी वीनवुं रे लो, कहिसुं गुणग्राम रे, साहेली
रथ मोटा मानीइ रे लो, जोयां ठामोठाम रे। साहेली
प्रणमुं हूं परमेसरु रे लो, राजनगर थी मांडि रे,
संख्या कहुं जिनबिंब नी रे लो, अंग थी आलसि छांडि रे।

इन्होंने अहमदाबाद से मारवाड़ तक की तीर्थयात्रा करके जिनबिंबों की गणना की थी और उनकी संख्या १९०४२ बताई थी। यह रचना प्राचीन तीर्थमाला संग्रह पृ० ५७-६१ पर प्रकाशित है। इसकी अंतिम पंक्ति है--

काप्रेडी बेहु मंदिरि रे लाल, पंच्योत्तरी जगदीस रे।

रचनाकाल इस प्रकार कहा है--

बावीशि श्रावण पखि त्रीज भली गुरुवार,
गोडी मंडण ध्यांन थी रिद्धि वृद्धि भंडार; श्री संघनी जयकार।[2]

महिमासेन--खरतरगच्छीय शिवनिधान के शिष्य थे। आपने वच्छराज हंसराज चौपाई की रचना सं० १७७५, कोरडा में पूर्ण की। इनके सम्बन्ध में अन्य विवरण एवं उद्धरण उपलब्ध नहीं है।[3]

महिमा हंस--आप खरतरगच्छ के साधु शांतिहर्ष के शिष्य थे। शान्तिहर्ष बोहरा गोत्रीय तिलोकचन्द्र एवं तारादे के पुत्र थे। आपने शत्रुंजय माहात्म्य का भाषा चौपाई में रूपान्तरण किया है। इसके अलावा मृगापुत्र चौपाई, यशोधर रास, श्रीमती रास आदि कई

१. जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० ५८७ (प्र०सं०) और भाग ५, पृ० ३५५ (न०सं०)।
२. वही, भाग २, पृ० १९५-९६ (प्र० सं०) और भाग ४, पृ० ३१४-३१५ (न०सं०)।
३. वही, भाग ३, पृ० १४२३ (प्र०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रचनाएँ की हैं। आपके बीकानेर पधारने पर जो महोत्सव हुआ था उसका वर्णन उनके शिष्य महिमाहंस ने एक गहूली नामक गीत में किया है जो ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में संग्रहीत है। इसी संग्रह में आपका 'जिनसमुद्र सूरि गीतम्' भी संकलित है। जिनसमुद्र सूरि हरराज और लखमादे के पुत्र थे तथा जिनचन्द्र सूरि के पट्टधर थे। इस गीत का प्रारम्भ इस पद्य से हुआ है--

सुधन दिन आज जिनसमुद्र सूरिंद आयो सूरिंद आयो;
वड़ो गच्छराज सिरताज वर वड वखत,
तखत सूरे ते मइं अति सुख पायो।[1]

इसमें कुछ आठ छन्द हैं।

महिमाहर्ष--इनका भी एक गीत ऐतिहासिक रास संग्रह में 'जिन समुद्र सूरि गीतम्' शीर्षक से संकलित है। यह मात्र तीन कड़ी का है। इसकी दो पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं--

श्री जिनसमुद्र सूरीश्वर भेट्यो वेगड़गच्छ सिणगार।
× × × ×
महिमाहर्ष कहें चिर प्रतपो, जिन शासन जयकार।[2]

इस गीत में वही परिचय है कि जिन समुद्र सूरि श्रीमाल गोत्रीय हरराज की भार्या लखमा दे की कुक्षि से पैदा हुए थे और जिनचन्द्र के पट्टधर थे। आपने अनेक स्थानों में विहार किया। उनके सूरत आगमन पर छत्तराज ने महोत्सव किया था, उसी का वर्णन इस गीत में महिमाहर्ष ने भी किया है। इस महोत्सव का वर्णन एक अन्य गीत में भाईदास ने किया है। रचना का समय १८वीं शताब्दी ही है किन्तु निश्चित तिथि अज्ञात है।

महिमोदय या **महिमा उदय**--ये खरतरगच्छ के आचार्य जिन-माणिक्य सूरि>विनय समुद्र>गुणरत्न>रत्नविशाल>त्रिभुवनसेन> मतिहंस के शिष्य थे। इन्होंने अपनी रचना श्रीपाल रास[3] (सं०

१. ऐतिहासिक जैन काव्यसंग्रह–जिन समुद्रसूरि गीतम्।
२. ऐतिहासिक राससंग्रह–जिन समुद्रसूरि गीतम्।
३. अगरचन्द नाहटा—परम्परा, पृ० ९८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७२२, मागसर शुक्ल १३, गुरुवार, जहानाबाद) में जो गुरुपरंपरा दी है उसके अन्तर्गत उपरोक्त गुरुओं यथा जिनदत्त, जिनकुशल, जिन-माणिक्य, जिनचंद, जिनसिंह, जिनराज, जिनरंग जिनचंद तक का उल्लेख करके पुनः जिनमाणिक्य से विनयसमुद्र आदि का व्यौरा सादर दिया है। इनके विद्यागुरु लब्धिविजय प्रतीत होते हैं क्योंकि सांब-प्रद्युम्न रास की पुष्पिका से ऐसा स्पष्ट संकेत मिलता है। श्रीपाल रास का रचनाकाल इस प्रकार कहा गया है--

सतरे सइ बावीस वच्छरे, मनोहर मगसिर मास,
तिथि तेरसि गुरुवार तणें दिने रचियो अे में रास।
आरंभो अे गढ़े भेसेरोझ में परिहरि ने प्रमाद,
नगर जहानावाद मांहे थयो पूरण सुगुरु प्रसाद।

इसका प्रारम्भ इस प्रकार किया गया है--

पर उपगारी परम गुरु तारण तरण जिहाज,
पद पहिले प्रणमुं मुदा जगनायक जिनराज।
अकल अमूरति अलख गति शिवसुन्दर लयलीण,
सिद्ध नमुं सांचे मने, पद कीजे परवीण।[1]

महेश--आपकी एक रचना 'नेमिचन्द्रिका'[2] सं० १७६१ का नामोल्लेख मात्र श्री उत्तामचंद कोठारी की सूची में है इसके द्वारा न तो लेखक पर और न उसकी रचना पर कोई विशेष प्रकाश पड़ता है। महिसिंह के साथ महेशमुनि की चर्चा की जा चुकी है। हो सकता है कि अक्षरबत्तीसी के रचयिता महेशमुनि या महिसिंह और नेमिचन्द्रिका के लेखक प्रस्तुत महेश एक ही व्यक्ति हों। इस सम्बन्ध में अभी छान-बीन आवश्यक है; तत्पश्चात् ही कुछ निश्चित तौर पर कहा जा सकता है।

माणिक्य--आपकी रचना मांकण भास (८ कड़ी सं० १८१० से पूर्व) प्रकाशित हो चुकी है। इसका आदि इस प्रकार है--

---

१. मोहनलाल दलीचंद देसाई--जैन गुर्जर कवियो, भाग ४, पृ० ३१३ (न० सं०)।

२. उत्तमचन्द कोठारी की सूची, प्राप्तिस्थान--पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मांकण नो चटको वोहिला, केहने नवि लागें सोहिलो रे
मांकण मुबालो ।
अे तो निलज ने नहि कांन, अेहने हीयडे नहि सान रे ।
अंक हतो पाट पलंग मांहि आवे, चटको देव छांतो जावें रे ।

इसकी अंतिम पंक्तियाँ निम्नांकित हैं—

माणिक्य मुनि कहे सुणो सरणा,
तुम जीवनी करजो जयणा रे,
मांकण भरुअच्छ नगर थी आव्यो,
रामधनपुर मांहि गवायो रे ।[1]

माणिक्य विजय—आप तपागच्छ के शान्तिविजय के प्रशिष्य और क्षमाविजय के शिष्य थे। इन्होंने नेमराजुल बारमासा (५७ कड़ी) सं० १७४२ वैशाख शुक्ल तृतीया रविवार को पूर्ण किया, इसका आदि देखिए—

प्रणमु प्रेमिरे सरसती बरसती वचन विलास,
कवि जन संकट चूरती, पूरती वंछित आस ।

रचनाकाल—

सतर वेतालीस संवत, वारु वैशाख मास
सुदि तृतीया नि रविवासार संथव्या बारेमास ।
वाचक शान्तिविजय तणो, खीमविजय बुध सीस,
श्री हेमविजय सुपसाय थी, माणिक्य पुगी जगीस ।

अन्त— वांधीयो तन्न मन प्रेम पासे,
जाय यदूनाथ ने रहत पासे,
बारमें मास ते विरह रलीओ,
आय माणिक्य नो सामी मलीओ ।[2]

यह रचना प्राचीव मध्यकालीन बारहमासा संग्रह भाग १ में प्रकाशित है।

---

१. मोहनलाल दलीचंद देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग ५, पृ० ४२२ (न० सं०)।
२. वही, भाग ५, पृ० ४१-४३ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर्युषण पर्व व्याख्यान नी अथवा कल्पसूत्र नी संज्झाय अथवा भास (११ ढाल),

आदि— परब पजूसण आवीया आणंद अंग न माये रे,
घरेघरि ऊछव अति घणा श्री संघ आवी जाये रे।

अन्त— रूपामहोर प्रभावना करीजे नव सुखकार रे,
श्री खेमविजय कविराय नो बुध माणिक्य विजे जयकार रे।

यह कृति जैन प्राचीन स्तवनादि संग्रह और अन्यत्र से भी प्रकाशित है। चौबीसी या २४ जिन स्तवन का आदि इस प्रकार है—

प्रथम जिनेसर प्राहुण जगवाहला वारु,
आवो अमहेय गेह रे, मनमोहन मारु,
भगति करूं भलीभाँति सु, जगवाहला वारु,
साहिब जी ससनेह रे, मनमोहन गारु।

अन्त— संप्रति शासनईस चरम जिणेसर वांदीइ,
श्री खीमविजय बुधसीस, कहि माणिक चिर नंदीइ।[1]

माणिक्यसागर—इन्हें श्रीपाल रास का कर्त्ता बताया गया है किन्तु यह रचना ज्ञानसागर की है। इनकी गुरुपरम्परा इस प्रकार है—

अंचलगच्छीय गजसागर सूरि ＞ ललितसागर ＞ माणिक्यसागर के शिष्य थे ज्ञानसागर। यही ज्ञानसागर श्रीपाल रास के वास्तविक कर्त्ता हैं इसलिए श्रीपाल रास का विवरण ज्ञानसागर के साथ दिया गया है। एक अन्य माणिक्यसागर १९वीं (वि०) के प्रथम चरण में हुए हैं जो कल्याण सागर के अग्रज गुरुभाई क्षीरसागर के शिष्य थे। उन्होंने सं० १८१७ में कल्याणसागर सूरि रास लिखा। यह रास जैन ऐतिहासिक काव्यसंचय पृ० १७२ पर प्रकाशित है और इसका विवरण १९वीं शताब्दी में ही देना समीचीन होगा।

माणेकविजय—आपके गुरु तपागच्छीय रूपविजय थे। आपने २४ जिनस्तवन अथवा चौबीसी की रचना सं० १७८८ से पूर्व की थी। इसके आदि और अंत की पंक्तियाँ प्रस्तुत की जा रही हैं—

१. मोहनलाल दलीचंद देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० ५६७, भाग ३, पृ० १४५२ (प्र०सं०) और भाग ५, पृ० ४१-४३ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदि— श्री नाभिरायां कुल दिनमणि हो राज,
मरुदेवी मात मलार, वारिमारा साहिबा।
सकल तीरथ सिरसेहर हो राज,
शेत्रुंजगिरि सणगार; वारिमारा साहिबा।
× × ×
श्री रूपविजय कविराज नो हो राज, मांणिक कहै मुझ तार;

अन्त— रिषभ जिणेसर नित नमूं अे, बीजा अजित जिणंद तो,
श्री रूपविजय गुरु सेवतां अे, मांणिक ने मंगलमाल तो।[1]

माणेकविमल—आप तपागच्छीय देवविमल के शिष्य थे। आपकी रचना शाश्वत जिन भुवन स्तव (८५ कड़ी) सं० १७१४ कार्तिक शुक्ल १० गुरुवार को समी में निर्मित हुई थी। इसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ अग्रलिखित हैं—

वीर जिणेसर पाय नमी, प्रणमी सारदमाय,
तास तणे सुपसाउले, गास्युं श्री जिनराय।
अतीत अनागत वर्त्तमान, चोबीसी चिहुंसार,
बहुत्तरि तीर्थंकर टाली पाप विकार।

रचनाकाल—
संवत सतर चउदोत्तरइं, काती सुदि गुरुवार; सुणि सुन्दरी।
दसमी दिन मइ गाइया अे, मालतंडी,
समीनगर मझारि, सुणि सुंदरी।[2]

यह रचना प्राचीन स्तवन रत्नसंग्रह भाग २ में प्रकाशित है। इनकी किसी अन्य रचना का अभी पता नहीं चला है।

मानकवि (मानजी)—खरतरगच्छ के सुमतिमेरु आपके प्रगुरु और उनके शिष्य विनयमेरु आपके गुरु थे। आपने वैद्यक के दो ग्रन्थ पद्य-बद्ध हिन्दी में रचे हैं। प्रथम ग्रंथ 'कवि विनोद' की रचना सं० १७४५

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० ५५७-५८ (प्र०सं) और भाग ५, पृ० ३३८ (न० सं०)।
२. वही, भाग ३, पृ० १२०१-१२०२(प्र०सं०) और भाग ४, पृ० २६०-६१ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वैशाख शुक्ल ५, सोमवार को लाहौर में हुई। इसके मंगलाचरण की प्रारम्भिक पंक्तियाँ देखिए--

उदित उदोत जगिमग रह्या चित्रभानु,
अैसेई प्रताप आदि ऋषभ कहत हैं।
ताकौ प्रतिबिम्ब देखि भगवान रूपलेखि,
वाहि नमौ पाय पेखि मंगल वहति है।

रचनाकाल--

संवत सतरह सै समै पैताले वैशाख,
शुक्लपक्ष पंचमि दिने सोमवार है भाख।
और ग्रन्थ सब मथन करि, भाषा कहौं वषान;
काढ़ा औषधि चूर्णि गुटिं, प्रगट करै गुनमान।

इनकी दूसरी रचना कवि प्रमोद रस (वैद्यक हिन्दी) सं० १७४६ कार्तिक शुक्ल २ की रचित है। इसमें कवि ने गुरुपरम्परा इस प्रकार बताई है--

खरतरगच्छ परसिद्ध जगि वाचक सुमतिमेरु,
विनयमेरु पाठक प्रगट, कीयै दुष्ट जगजोर।
ताकौं शिष्य मुनि मान जी, भयौ सबनि परसिद्ध,
गुरु प्रसाद के वचन तैं, भाषा कीनी जनविद्ध।

रचनाकाल--

संवत सतर छयाल शुभ कातिक सुदि तिथि दोज,
कवि प्रमोद रस नाम यह सर्व ग्रन्थनि को खोज।

इसके आदि की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं--

प्रथम मंगल पद हरित दुरित नाद,
विजित कमल मद तासौ चितलाइयइ।
जाके नाम कूर करम छिनही में होत नरम,
जगत विख्यात धर्म्म तिनिहीं कौ गाइयइ।
अश्वसेन वामा ताकौ अंगज प्रसिद्ध जगि,
उरगलच्छन पग जिन पत पाइयइ।
धर्म्मध्वज धर्मीरूप परमदयाल भूप,
कहत मुमुक्षु मान अैसेही कौ ध्याइयइ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंतिम पंक्तियाँ--

कवि प्रमोद अे नाम रस कीयौ प्रगटि यह मुख;
जो नर चाहै याहि कौ, सदा होय मन सुख।
सब सुखदायक ग्रंथ यह, हरै पाप सब दूर,
जौ नर राखै कंठ मधि, ताहि सट्टसुखपूर।[1]

जैन मुनि हिन्दी पद्य में काव्य के अलावा ज्योतिष, वैद्यक, धर्म-दर्शन आदि विविध विषयों की रचनायें करते रहे हैं।

मानमुनि --आप लोकागच्छीय नवलऋषि के शिष्य थे। आपकी प्रसिद्ध रचना 'ज्ञानरस' (१२६ कड़ी) सं० १७३९ वर्षाऋतु आनंद मास में लिखी गई। इसके अतिरिक्त 'संयोग बत्तीसी' और 'मानबावनी' भी इन्हीं की रचनायें हैं। ज्ञानरस की भाषा हिन्दी है। इसका आदि इस प्रकार है--

श्री जिन नितप्रति समरीअे, पुरुषोत्तम परिब्रह्म,
अकल अनरव अरिहंत जे, भवभयटालण भ्रम।
मनख जनम लाभें मना, काजें उत्तमकर्म;
जे जाणें जगदीश ने, ध्यावो अेक जिनधर्म।

रचनाकाल-अंत-(छंद बे आखरी, मोतीदाम; आर्या, मोतीदाम)

ससीहर सागर राम सुनंद, अनाद वर्षारिति मास आनंद,
नवल रिषि गुरु मोरोयनाथ, हरी गुन मोपे बताव्योय हाथ।
देखाव्योय देवनिरंजन नांम, कीयो मेंय अेम जिनेश्वर कांम,
सही सिवलोकनूं अेह स्वरूप, अनंत अनंत अनंत अनूप।

कलश-अनंत तुह अनहद, ग्यान ध्यान मह गावें,
मात तात नह मांन, प्रभू नात जात न पावें,
नाद विंद विण नांम, रूप रंग विण रत्ता,
आदि अनंत नही अेम ध्यान योगेश्वर धरत्ता।
सिव सगत उभें दोय संभ हेक निरंजन आप हुय,
नव नवा रूप नर नित्य तुं, आदि पुरुष आदेश तुय।

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई-- जैन गुर्जर कवियो, भाग ३, पृ० १३३४ ३६ (प्र०सं०) और भाग ५, पृ० ४७-४९ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसकी भाषा चिन्त्य और कहीं कहीं भ्रामक है जैसे मनख (मानुष>मनुष्य), सगत (सकति>शक्ति) आदि। इसमें अभिनव छन्द प्रयोग जैसे मोतीदाम का प्रयोग द्रष्टव्य है। विषयवस्तु इसके नाम से ही स्पष्ट है--ज्ञानमार्ग से अनंत-अनाम को जानना। इनकी दूसरी रचना संयोग बत्रीसी (सं० १७३१ चैत्र शुक्लषष्ठी) की अंतिम पंक्तियाँ अधोलिखित हैं, रचनाकाल भी है।

संवत चंद समुछ सिवाक्ष शशी युत वर्ष विचारइ तिसी,
चैत सिता तसु छट्ठि गिरापति मांन रचियुं संयोग बत्रीसी।

कवि ने यह रचना अमरचंद मुनि के आग्रह पर की थी और अपनी पीठ स्वयं ठोकता हुआ कहता है कि इसमें उत्तम उक्तियाँ हैं।

यथा–अमरचंद मुनी आग्रहैं समर हूइ सरसति,
संयम बत्तीसी रची आछी आनि उकत्ति।[1]

इनकी तीसरी कृति 'सवैयामान बावनी' का केवल नामोल्लेख मिला, कोई विवरण-उद्धरण प्राप्त नहीं हुआ।

मानविजय I तपागच्छ के जयविजय इनके गुरु थे। इन्होंने नवतत्व रास की रचना सं० १७१८ वैशाख शुक्ल १०, भोपाउर में की[2] इनकी गुरु परंपरा रचना में इस प्रकार बताई गई है—

श्री हरि शीस सुजाणी, गणि कीका गुणखांणी;
तसु सीस पंडितराया, बुध जय विजय सवाया।
मानविजय तसु सीस, कीधो रास सुविसेस।

रचनाकाल—

संवत सतर अठारइं वैशाख सुदि दशमी सार,
श्री शांतीसर सुवसाय, पुर भोपाउर मांहि।

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई---जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० २८२; भाग ३, पृ० १२८०-१२८१ तथा १५२४ (प्र०सं०) और भाग ४, पृ० ४५१-४५२ (न० सं०)।

२. अगरचन्द नाहटा---परंपरा पृ० १११।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसकी प्रारंभिक पंक्तियाँ अग्रलिखित हैं—

प्रणमुं जिन चउवीसमो महावीर शुभनाम,
जासु प्रसाद सदा फलइ वांछा सुरतरु ताम ।[1]

यह रचना उन्होंने अपने शिष्य देवविजय के लिए की थी। देवविजय के लिए इन्होंने 'धर्मपरीक्षा' ग्रंथ संस्कृत में लिखा था। आपकी एक अन्य रचना श्रीपालरास का भी उल्लेख मिलता है जिनकी गुरु परंपरा में तपागच्छ के विजयसिंह सूरि को प्रगुरु और जयविजय को गुरु कहा गया है। इसका रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है—

युग गगन मुनी शशी वरसनी आसो सुदि दशमी शशिवार
रच्यो रास चंद्रप्रभ पसाउलइ रे, पील वणा मझारि। जपो।

अर्थात् यह रचना सं० १७०४ आसो सुदि दसमी सोमवार को पीलवण में की गई। इसमें अकबर प्रबोधक हीरविजय का स्मरण इन पंक्तियों में है—

तपगछ नायक जगगुरु; श्री हीरविजय सूरींद,
अकबर जेणइ प्रतिबोधियो, जिनसासन रे जयकार मुणिंद।

इनके पद्य पर क्रमशः विजयसेन, विजयदेव और विजयसिंह आसीन हुए। उनकी वंदना करके कवि ने स्वयं को विजयसिंह के शिष्य जयविजय का शिष्य बताया है, यथा—

आचारिज श्री विजयसिंह सूरि, सकल सूरि सिरदार,
बुधजयविजय सिसइ रच्यो, मानविजयइं रे, लह्यो सुजस अपार।[2]

इस कवि ने छठा कर्मग्रंथ की वृत्ति भी लिखी थी जिसकी प्रति भावनगर के भंडार में उपलब्ध है।

१८वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में कम से कम चार मानविजय नामक कवियों का पता चलता है। इनके विवरण आगे क्रमशः दिए जा रहे हैं।

मानविजय II—ये तपागच्छीय गुणविजय के शिष्य थे। इन्होंने

१. मोहनलाल दलीचंद देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग ३, पृ० ११८३-८४ (प्र०सं०) और भाग ४ पृ० ६९ (न०सं०)।
२. वही, भाग २, पृ० १२८-१३० (प्र० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'नवतत्व प्रकरण' पर बालावबोध अथवा विवरण की रचना की पर रचनाकाल अज्ञात है। इसमें कहा है—

श्री मत्तपगण भर्त्तृ, श्री विजयानंद सूरि राजानं
तत्पटेऽलंकुर्वती　　सूरिवरे　　विजयराजाह्वे
विबुधवर गुणविजयांतिषदा बुध मानविजय गणि नाम्ना,
नवतत्वटबार्थो यं लिखितः स्वान्योपकाराय।[1]

अर्थात् यह टबार्थ स्व और अन्य के उपकारार्थ मानविजय गणि ने लिखा।

(गणि) मानविजय III—आपके गुरु थे तपागच्छ के शांतिविजय। आपने मरुगुर्जर गद्य-पद्य में कई रचनाएँ की हैं। गद्य में आपने 'भव-भावना बालावबोध' सं० १७२५ में लिखा। यह गद्यकृति मानविजय दानविजय के आग्रह पर विजयराज सूरि के शासन में की गई। भवभावना के मूल लेखक मलधारी हेमचंद्र सूरि थे।

पद्य में आपने कई स्तवन, संज्झाय और रास लिखे हैं जिनका संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है। सुमति कुमति (जिनप्रतिमा) स्तव सं० १७२८ के आसपास रचित है।

आदि-श्री जिन प्रतिमा वांदणना, दीसै अक्षर प्रगट;
　　समकित ने आलावें ज्यां ज्यां, नहीं काई कपट, इहां रे।

अंत—ते माटे आणा प्रमाण, नवि कीजै कुयुक्ति अजांण,
　　बुध शांतिविजय नो सीस, मांच नामे सुगुरुनो सीस।

गुरुतत्वप्रकाश रास (१०७ कड़ी, सं० १७३१)

आदि-प्रणमु श्री सोहम् गणधार, चतुविह समणसंघ आधार,
　　जस संपति दुपसह गुरु लगइं, भरहखित्ति चालइ संलगइ।

अंत—सोहम पाट परंपरि आवीउ, विजयाणंद सूरिराय,
　　शांतिविजय बुध विनयी सुगुरुना, मानविजय गुणगाय।
　　अेह गुरु तत्व प्रकाश प्रकाशीउ, विजयराज गुरु राजि,
　　ग्रंथ अनेक नी साखि मुनि मांनइ, भविजन बोधन काजि।

---

१. मोहनलाल दलीचंद देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० ५९१, भाग ३, पृ० १६२९ और भाग ४, पृ० ३६५ (न०सं०)।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

नयविचार (अथवा सात नय नो) रास--यह रचना आवश्यक-निर्युक्ति पर आधारित है। इसमें हीरविजय, विजयसेन, विजयतिलक, विजयाणंद और शांतिविजय का सादर नमन किया गया है।

आदि-श्री गुरुचरण कमल अनुसरी, श्री श्रुतदेवी रीदय धरी,
तत्व रुचीनई बोधनकाज, करूं नयविवरण गुरुसाहाजि।
सूत्रअर्थ सविनय संमति, संदरभित छइ श्री जिनमति,
आवश्य निर्युक्ति अश्यु, देखी कहिबा मन उल्लस्यु।[1]

इसकी भाषा को कवि ने प्राकृत भाषा कहा है, प्राकृत शब्द का प्रयोग चलती और अपने समय की जन साधारण की भाषा है न कि महावीर कालीन प्राकृत भाषा से है।

यथा-अेह अनोपम चिंतामणि सम,
शास्त्र पट कथा लेइ जी, प्राकृत भाषा दोरे गूंथ्यो।

यह जैन श्वे० हेरल्ड वैशाख १९७३ में प्रकाशित है।

'चौबीसी' के आदि में ऋषभ स्तवन

ऋषभ जिणंदा ऋषभ जिणंदा, तुम दरिशण हुये परमाणंदा,
अहनिशि ध्याऊं तुम दीदारा, महिर करीने करज्यो प्यारा।

इसमें दीदार और महिर (मेहर) जैसे शब्द भी कवि की प्राकृत भाषा में सम्मिलित हैं। यह चौबीसी—बीसी संग्रह पृ० १७२-१८८ पर प्रकाशित है।

२४ जिन नमस्कार—इसमें पहले ऋषभ की वंदना करता हुआ तीसरे छंद में कवि विनता नगरी का उल्लेख करता है, यथा-

विनता नगरी राजीओ अे ऋषभलंछन वर पाय,
युगला धर्म नीवारणो, मानविजय गुण गाय।

सिद्धचक्र स्तवन (४ ढाल २५ कड़ी)

अंत -इह भवे सवि सुखसंपदा, परभवे सवि सूख थाइ,
पंडित शांतिविजय तणो, कहे मानविजय उवझाय।

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई--जैन गुर्जर कवियो, भाग ४, पृ० ३५९-३६१ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणस्थानगर्भित शांतिनाथ विज्ञप्ति रूप स्तवन (८५ कड़ी)

आदि—शांति जिणेसर जग हितकारी, वारी जेणें मारि रे,
कर्म अशेष खपावि पोहतो, शिवमंदिर मनोहारि रे।

आपने कई संज्झायों की रचना की है जिनका एक संग्रह संज्झाय संग्रह है। आठमद संज्झाय, श्रावकना ११ गुण संज्झाय ७ कड़ी और श्रावक बार व्रत संज्झाय प्रकाशित संज्झाय हैं। आपकी एक और गद्य रचना 'उत्तराध्ययन सूत्र पर बालावबोध'' सं० १७४१ पौष शुक्ल १३ की रचित उपलब्ध है किन्तु अफसोस है कि इन लेखकों की गद्य भाषा का नमूना नहीं प्राप्त है वर्ना तत्कालीन प्राकृत या मरुगुर्जर (हिन्दी) गद्य का प्राचीन उदाहरण उपलब्ध हो जाता और हिन्दी गद्य का इतिहास काफी प्राचीन सिद्ध होता।

इनकी एक और रचना सामायिक संज्झाय (१५ कड़ी) का आदि अंत देकर यह प्रकरण पूर्ण किया जायेगा--

आदि--सामायक जाणो नही सामायक स्या रूप रे,
…म तरा अर्थ लहो नही जेह कहिय फलरूप रे।

अंत---भगवति प्रथम शतकइ कहिइ कीजउ अेहनुं धान रे,
पंडित शांतिविजय तणो प्रणमइ नितु मुनि मान रे।[२]

यह रचना भगवती के प्रथम शतक से ली गई है। इस प्रकार कई मानविजयों में प्रस्तुत मानविजय का कर्तृत्व अग्रगण्य है।

मानविजय—तपागच्छ के विजयसिंह सूरि>देवविजय>ज्ञानविजय>रत्नविजय के शिष्य थे। आपने सं० १७१६ में अंजनासुन्दरी स्वाध्याय (३५ कड़ी) की रचना की जिसमें अंजना के दृष्टान्त से कर्मसिद्धान्त को प्रमाणित किया गया है। इसकी अंतिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं---

करमइ बहु दुष पामीया रे, हरिहर नल नइं राम,
सीता सुभद्रा द्रूपदी रे, कलावन्ती सती तामरे।

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० २३२-२३४ तथा ४९१, भाग ३, पृ० १२४०-१२४३ तथा १६२८-२९ और भाग ४, पृ० ३५९-३६५ (न०सं०)।

२. वही, भाग ५, पृ० ४०३ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंजना तणा गुण गायतां रे, मंगलीक संपद थाय,
श्री देवविजय उवझायनो रे, बुध मानविजय गुण गाय रे,
कर्म न छूटइ।

आपकी दूसरी रचना विक्रमादित्य चरित्र (छः उल्लास, ९२ ढाल, २८६५ कड़ी) सं० १७२२ (२३, ३२) ? पोष सुदी ८, बुधवार को खेमता गाँव में पूर्ण हुई। इसमें रचनाकाल इस प्रकार है--

संवत १७२२ सज (संजम ?) कर गुण ने,
वर्ष तणो परिमांणो जी।
पोस शुकल तीथी अष्टमी दीवसे,
बुधवासर गुण वाणो जी।

× × ×

श्री विजय धर्म (प्रभ ?) सूरीसर राजे,
गाम खेमते गुण गायो जी।
श्री संघ केरां वयण सुणी ने,
मालवपति हूलरायो जी।
विक्रमनृप जिम महीतल मोटो,
तिम तमे श्रोता सत धरज्यो जी,
अधिको ओछो भाष्युं जो होये,
वक्ता सधारी सुध करज्यो जी।[1]

इसके रचनाकाल में संजम = १७, कर = २, गुण = ३ का प्रयोग इस प्रकार है, सं० १७२३ या १७३२ आता है किन्तु सं० १७२२ या २३ अथवा ३२ भी हो सकता है। इसमें मालवा के प्रसिद्ध नृपति विक्रमादित्य का आख्यान है जिसके माध्यम से सत्य का महत्व प्रतिपादित किया गया है।

श्री देसाई ने खरतरगच्छ के प्रसिद्ध आचार्य जिनराजसूरि के शिष्य मानविजय को पाण्डव चरित्र रास (सं० १७२८ आसो बदी २ रवि, मेड़ता) का भ्रमवश रचनाकार बताया था, किन्तु यह रचना उनके शिष्य कमलहर्ष की है जैसा निम्न उद्धरण से प्रकट होता है--

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई--जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० २०९-१०; भाग ३, पृ० २१० (प्र०सं०) और भाग ४, पृ० २७५-७७ (न०सं०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री खरतरगच्छ दीपता जयवंता श्री जिणचंदो रे,
सकल गुणें सोहामणा दरसण थी जावे दंदो रे।
वषतांवर विद्यानिला वली गुण छत्रीस निधानो रे,
चन्द्र जिस्यो चढ़ती कला पूरे यश जुग परधानो रे।
परगट पाट परम्परा गच्छनायक श्री जिनराजो रे,
तासु सीस वाचकवरु सिरि मानविजय शिरताजो रे।
तासु सीस वाचक कह गणि कमलहर्ष हित काजे रे,
चउपी पांडव चरित नी ते सुणतां भावठ भाजे रे।[1]

इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि पाण्डव चरित्र रास मानविजय की रचना न होकर उनके शिष्य कमलहर्ष की रचना है। इसीलिए जैन गुर्जर कवियों के नवीन संस्करण में सम्पादक कोठारी ने इसे नहीं लिया है श्री अगरचन्द नाहटा ने भी इसे कमलहर्ष की रचना बताया है।[2] खरतरगच्छ में मानविजय नामक कोई अन्य रचनाकार मेरे देखने में नहीं आया इसलिए यह रचना कमलहर्ष की सिद्ध होती है। कमलहर्ष के साथ इसका विवरण दिया जा चुका है। इसका रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है—

संवत सतरे से भलै बरसे अणवीसे रे,
आसू बद द्वितीया तिथै रविवारे अधिक जगीसे रे।
मोटे नगरे मेडते श्री शांतिनाथ सुपसाये रे,
पूरी कीधी चउपइ सुणतां थिर दोलत थाये रे।

मानसागर—तपागच्छ के विद्यासागर>सहजसागर>जिनसागर>जितसागर के शिष्य हैं। इनकी रचना विक्रमादित्य सुत विक्रमसेन चौपाई (५५ ढाल, १।६२ कड़ी) सं० १७२४ कार्तिक ? मागसर कुडे (कुवरनयर) में पूर्ण हुई।

आदि — सुखदाता संखेश्वरो, पूरण परम उल्लास,
सानिधि करिज्यो साहिबा, अधिक फल ज्यूं आस।

---

१. श्री मोहनलाल दलीचंद देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० २५३ (प्र०सं०)।

२. श्री अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० १००।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसमें दान का माहात्म्य समझाया गया है, यथा--

दान सील तप भावना, चारे जग में सार,
सरिषा छै तौ पणि इहां, दान तणो अधिकार।

रचनाकाल—

सतर सइं चउवीसइं जांण, काति (मृगशिर) मास बषांणा जी;
कुडइ नगर रह्या गुणषाणें ग्रंथ चढ्यो परिमाण जी।

गुरु परम्परान्तर्गत कवि ने विजयदेव, विजयप्रभ, विद्यासागर, सहजसागर, जिनसागर और जीतसागर को प्रणाम निवेदित किया है। यह रचना अपने समय में अधिक लोकप्रिय हुई क्योंकि इसकी बीसों प्रतियाँ विभिन्न ज्ञानभण्डारों में सुरक्षित हैं।[1] सुरपतिकुमार रास सं० १७२९ और आषाढ़भूति चौपाई अथवा सप्तढालियुं सं० १७३० की रचनाएँ हैं। इनकी अन्य प्रसिद्ध रचनाओं में आर्द्रकुमार चौपई (सं० १७३१ मागसर, सुराय) की कुछ पंक्तियाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं–

आदि-- संतिकरण संतीसरु अचिरासुत अरिहंत,
तस पदपंकज सेवतां, लहीये सुख अनन्त।
तास तणै चरणै नमी, आणी अधिक उलास,
आर्द्रकुमार ऋषि गावतां पहुँचै मन नी आस।

रचनाकाल--उडुवति वह्नि मुनि चंद्रमा, अेह संवत्सर जाणी रे,
मृगसिर मास वषाणी रे।
नयर सखर सूराय नै तवीयो अे मुनि भाण रे,
दिन दिन कोडि कल्याण रे।

कान्ह कठियारा नो रास (९ ढाल सं० १७४६, पद्मावती गाँव मारवाड़)[2]

आदि-- पारसनाथ प्रणमुं सदा त्रेवीसमो जिनचंद,
अलिन विघन दूरे हरे, आपे परमानन्द।

यह रचना शील के महत्व को प्रकाशित करती है, यथा--

शीले सुख सम्पद मिले, शीले भोग रसाल,
कठियारा कान्हड परे, फरे मनोरथ माल।

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई-जैन गुर्जर कवियो, भाग ४, पृ० ३२९-३३५ (न० सं०)।

२. वही, भाग ४, पृ० ३२९-३३५ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रचनाकाल और स्थान—

सत्तरसें से (छें) तालीस में म, तिहाँ कीधो चउमास, ला।
सद्गुरु नो परसाद थी म, पूगी मननी आस, ला।

नगर भलुं पद्मावती म, मरुधर देश मझार,
धर्मनाथ परसाद थी म, पूजा सत्तर प्रकार।
दिग्पट कथाकोस थी रचीओ अे अधिकार,
अधिको ऊछो भाषीयो, मिच्छा दुक्कड़ सार।

इसे कठीयार कानडरी चौपाई भी कहते हैं।[1] इसकी अंतिम पंक्तियाँ ये हैं--

नवमी ढाल सोहामणी जी म० गोड़ी राग सुरंग,
मानसागर कहे सांभलो दिन दिन वधतो रंग।

सुभद्रा रास (४ ढाल सं० १७५९ वच्छराजपुर)

आदि— सरसति सामिणि वीनवुं आपज्यो अविरल वाणी रे,
सीयल तणो महिमा कहुं सांभलो चतुर सुजाण रे।

इसमें भी शील का माहात्म्य ही समझाया गया है। इसका रचनाकाल इस प्रकार कहा गया है--

सतरै गुण सठै समै वच्छराजपुर चौमास म,
सुविध जिणंद प्रसाद थी पूगी मननी आस। म।[2]

इस प्रकार आपका साहित्य १८वीं शती के पूर्वार्द्ध के श्रेष्ठ सर्जकों के समान संख्या और गुण दोनों में सम्माननीय है। आपने जैन धर्म के दान और शील नामक प्रमुख तत्त्वों को प्रतिपादित करने के लिए प्रमाण स्वरूप विक्रमादित्य, सुभद्रा जैसे ख्यात पात्रों और उनकी कथाओं को चुना है। भाषा प्रसादगुण संपन्न मरुगुर्जर है।

मानसिंह 'मान'–ये विजयगच्छ के विद्वान् थे। इन्होंने सं० १७४६ में उदयपुर के महाराणा राजसिंह की प्रशस्ति में 'राजविलास'

१. सम्पादक कस्तूरचन्द कासलीवाल—राजस्थान के शास्त्रभंडारों की ग्रंथ-सूची, भाग ४, पृ० २१८।
२. मोहनलाल दलीचन्द देसाई–जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० २२०-२२४, भाग ३, पृ० १२२८-३१ (प्र०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नामक ऐतिहासिक वीरकाव्य की रचना की। यह पुस्तक नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से प्रकाशित है। इसके अलावा महाकवि बिहारी कृत बिहारी सतसई की टीका लगभग ४५०० छन्दों में पूर्ण की है।[1]

मुनिविमल--इसकी गुरुपरम्परा और अन्य वृत्त ज्ञात नहीं है। इन्होंने शाश्वत सिद्धायतन प्रतिमा संख्या स्तवन (२९ कड़ी) सं० १७४२ से पूर्व ही लिखी जिसके आदि और अन्त की पंक्तियाँ प्रस्तुत की जा रही हैं।

आदि-- सिरि रिसह जिणेसर वद्धमान,
चंदायण निम्मल गुण निहाण;
सिरि करिसेण तिहुअण दिणिंद,
अेणि नामि चउसासय जिणिंद।

अन्त--ईस सुरनर मुनि वंदी अ सासय सिध्यायतन बखाण्यां,
अंग उपांग वृत्ति प्रकरण थी, सद्गुरु वयणे जाण्यां।
मुनि विमल करजोड़ी वीनवइ, प्रणमी तुमचा पाय,
सासय सुह संतति केरो मुझ जिनजी करउ पसाय।[2]

इसकी भाषा को जानबूझ कर प्राकृताभास बनाने का प्रयास किया गया है।

मेघविजय आप लाभविजय के प्रशिष्य तथा गंगविजय के शिष्य थे। आपने वजीरपुर में सं० १७३९ में चौमासा किया और उसी समय एक 'चौबीसी जिन स्तवन' लिखा जिसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ निम्नवत् हैं--

आदि--अलबेलो आदिल सेवीइ रे, हाजी,
पेली सुनंदा सुमंगला को कंत, अे रुडो।
मरुदेवा रो नंद, अे रुडो, दीठइं परमाणंद, अे रुडो,
ऊंचपणे रे तन दीपतु ं रे, हाजी, पंचसयां धनुषरो तंत।

१. डा० भगवानदास तिवारी--हिन्दी जैन साहित्य, पृ० १४।
२. मोहनलाल दलीचन्द देसाई--जैन गुर्जर कवियो, भाग ३, पृ० १२९३ (प्र० सं०) और भाग ५, पृ० ३१ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह रचना वजीरपुर निवासी आसकरण पारेख के आग्रह पर की गई थी, यथा--

पारेख आसकरण जिनरागी लाला, वजीरपुर नगर नो वासी रे,
तस आग्रहइं करी जिन स्तव्या लाला, पातिक गया अति नासी रे,

रचनाकाल--

संवत सतर उगणच्यालीसइ लाला, वजीरपुर रह्या चउमासी रे,
सकल संघनइ सुखकरु लाला, थुणिया जिण उल्लासी रे।

गुरुपरम्परा--

सकल पंडित सिरसेहरो लाला, लाभविजय गणि गिरुआ रे,
तस सीस पंडित राज हो लाला, गंगविजय गुण भरीआ रे।
तस पद पंकज मधुकर लाला, मेघविजय कहि कोडी रे,
ओ चौबीसी तीर्थंकरा लाला, द्यो सुष मंगल कोडी रे।[२]

मेघविजय II–तपागच्छ के विवेकविजय>माणिक्यविजय के शिष्य थे। उन्होंने 'मंगलकलश चौ०' की रचना सं० १७२३ में की; उन्होंने रचनाकाल इस प्रकार बताया है, 'शशि मुनि नयन भुवन', भुवन= तीन, नयन=दो, मुनि=सात और शशि=१, इस प्रकार सं० १७२३ हुआ। यह रचना बेलाउल में की गई थी। इसका उद्धरण नहीं मिला। मोहनलाल दलीचंद देसाई अपने ग्रंथ जैन गुर्जर कवियो भाग ३ पृ० १२१५ प्र० सं० पर इसका रचनाकाल सं० १७२१ बताया था, किन्तु संवत् दर्शक शब्दों का अर्थ १७२३ होता है और नवीन संस्करण के संपादक श्री जयंत कोठारी ने भी यही संवत् लिया है।[१]

मेघविजय III –इस शताब्दी में आस पास ही तीन मेघविजयों का पता चलता है जिन्होंने मरुगुर्जर या पुरानी हिन्दी में रचनाएँ की थी। प्रस्तुत मेघविजय तपागच्छीय हीरविजय सूरि के शिष्य कनकविजय>शीलविजय>कमलविजय>कृपाविजय के शिष्य थे। इन्होंने संस्कृत में कई ग्रंथ लिखे जैसे देवानंदाभ्युदय सं० १७२७,

१ मोहनलाल दलीचंद देसाई--जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० ३५९ (न०सं०) और भाग ५, पृ० ३१-३२ (प्र०सं०)।

२. वही, भाग ४, पृ० ३१९ (प्र०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मातृका प्रसाद सं० १७४७, चंदप्रभा व्याकरण १७५७, सप्तसंधान महाकाव्य १७६०, शांतिनाथ चरित्र, तत्व गीता, धर्ममंजूषा, युक्ति प्रबोध नाटक, हैमचन्द्रिका, मेघदूत समस्या लेख और भक्तामर स्तोत्र वृत्ति इत्यादि। पुरानी हिन्दी में भी आपने कई सुंदर अच्छी कृतियाँ प्रस्तुत की जिनमें विजयदेव निर्वाणरास, श्री पार्श्वनाथ नाममाला आदि रचनाएँ उत्कृष्ट कोटि की हैं और प्रकाशित भी हैं। इनके अतिरिक्त आपने कई स्तवन, संज्झाय और चौबीसी आदि भी लिखा है जिनमें से कुछ प्रमुख कृतियों का परिचय और नमूने के लिए आवश्यक उद्धरण दिए जा रहे हैं।

विजयदेव निर्वाण रास (विजयदेव का स्वर्गवास सं० १७१३ में हुआ था अतः यह रचना उसी समय की होगी।) इसका आदि इस प्रकार है-

जिनवर नवरस रंगवर, प्रवचन वचन वसंत।
समरी अमरी सरसती, सज्जन जननी संत।
श्री गुरु कृपा प्रसाद थी, वचन लही सविलास,
श्री विजयदेव सूरीशना, गाइअे गुण गण रास।

अंत-तपगच्छराया सहु सुहाया, श्री जिनशासन दिनकरो,
श्री विजयदेव सूरीश साहिब, श्री गौतम सम गणधरो,
जस पट्टदीपक विजयप्रभ सूरि राजा अे,
कवि कृपाविजय सुशिष्य मेघे, सेवित हित सुखकाज अे।[1]

यह रचना जैन ऐ० रासमाला भाग १ और ऐ० संज्झायमाला भाग १ में प्रकाशित है।

श्री पार्श्वनाथ नाममाला (सं० १७२१, दीव वंदर) का प्रारम्भ इस प्रकार है—

जिनवाणी आणी हिईं, पुरिसादाणी पास,
जांणी प्राणी मया करु, थुणस्यु निअ मनि वास।

रचना की भाषा आलंकारिक है, अनुप्रास और यमक का नमूना देखिए-

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० १८८-१८९।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अमल कमल परिमल जिसो, महीमां महिमा जास,
व्यापइ थापइ परमपद, अतिशय करत उजास ।

आपने कुमति निवारण हुंडी स्तवन (गाथा ७९) लिखा है जिसमें दिगम्बरों का खण्डन है । 'दशमत स्तव' चौबीसी और संञ्झाय भी रचा है ।[1]

मेरुलाभ—(माहावजी) ये आंचलगच्छ के सूरि कल्याणसागर के प्रशिष्य और विनयलाभ के शिष्य थे । कल्याणसागर का जन्म सं० १६३३, दीक्षा सं० १६४२, आचार्य पद सं० १६४९, गच्छेश पद सं० १६७० और महापद (स्वर्गलाभ) सं० १७१८ भुज में हुआ था । इनके प्रशिष्य मेरुलाभ अपर नाम माहावजी ने सं० १७०४ में 'चन्द्रलेखा सतीरास' (३०३ कड़ी) मागसर वदी ८, गुरुवार को पूर्ण किया, उसका मंगलाचरण प्रस्तुत है—

मदकल गजघट-मद-तरण, नभ सम गति नव बोध,
अनिश ऊपाशय क्रम अमल, सिंह सुरूप सुयोध ।
पद तसु निति प्रति प्रेम सुं, प्रणमुं तेज प्रकाश,
नत सुरमुकुट निचिताभरण, भगत वदइ इतिभास ।
मेटइ जड़ता मुझ तणी, नवरस द्यउ निति वाणि,
परमेसरि परसाद थी, परबंध चढ़ी प्रमाणि ।

कवि ने मेरुतुंग का वंदन किया है, तत्पश्चात् वह कहता है—

सो सद्गुरु सानिधि थकी, प्रगटित प्रबल प्रबंध,
चतुरां चित्ति चमत्करउ, शुक परि वाक्य संबंध ।
सज्जन जन संसार मां, परगुण ग्रहइ प्रत्यक्ष,
दुर्जन देषइ दोस जिम, करहा कंटक भक्ष ।

× × ×

निरखी अे नवमइं व्रतिइं, भणसयउं भाव भगत्ति,
चंद्रलेहि चउपइ सुणउ, चतुरधरी अेकचित्त ।

गुरुपरंपरा-वादी गज घट सिंह वदीतो, कल्यान सूरीश कहा ओ,
वाचक जास आज्ञाइं विराजइं, विजयलाभ वरराओ ।

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई–जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० १८८-८९, भाग ३, पृ० १२१४ (प्र०सं०) और भाग ४ पृ० २५९-२६०(न०सं०) ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वदति तास सीस दो बंधव मेरु पदम मनाभाओ,
चंदकला नामइ अेह चउपइ, सगवटि कीओ समुदाओ।

रचनाकाल—संवत सतर सय ऊपरि सारइं वेद संख्याब्द विधा ओ,
मगसिर मास वदि अठमि सुरगुरु दिनइं सुहाओ।
मुनि महाव जी कहि महियलि मां अे, रवि दूतांहि रहाओ।[1]

इस रचना के निर्माण में मेरुलाभ का बौद्धिक सहयोग उनके गुरुभाई पद्मलाभ ने भी किया था।

मेरुविजय—तपागच्छीय आचार्य विजयदानसूरि > पंडित गोप जी गणि > रंगविजय गणि के शिष्य थे। आपने वस्तुपाल तेजपाल के विरुद पर आधारित ऐतिहासिक रास 'वस्तुपाल तेजपाल रास' सं० १७२१ चैत्र शुक्ल द्वितीया, कानडी बीजापुर में पूर्ण किया। इसका आदि अग्रलिखित है—

आदि—सकल जिनेसर पयनमी, समरी सरस्वती माय,
पंचतीथी जिनवर नमुं, मनवंछित सुख थाय।
आदे आदि जिनवर नमुं, युगल्याधर्म निवार;
मरुदेवी अे जनमीओ प्रथम जिन अवतार।

तदुपरांत शांति, नेमि, पास और वीर जिन की स्तुति के बाद पुनः सरस्वती की वंदना की गई है—

ब्रह्माणी ब्रह्मवादिनी, कविजन केरी माय,
वाणी आपे निर्मली वस्तुपाल गुण गाय।
वली तेजपाल अे क्यो हुआ किम सत्यजुग नाम,
धर्म करण शी शी करी कहुं भाय ताय तस ठाम।

इस रास में अकबर प्रतिबोधक हीरविजय सूरि से लेकर विजयपाल, विजयाणंद, गोपजी, रंगविजय आदि का सादर स्मरण विस्तार पूर्वक किया गया है।

ग्रन्थ रचनाकाल—

१७२१ संवत सत्तर एकवीस कहु चैत्र शुक्ल बीज सारो रे,
कानडी बीजापुर सुख लही, रास रच्यो बुधवारो रे।

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० १७१-१७३ (प्र०सं०) और भाग ४, पृ० ८०-८२ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रावक जन सहु आग्रहे मे चारित्र रच्यो रसालो रे,
लघु प्रबंध वस्तुपाल तणी, जोइ रास रच्यो सुविशालो रे।

इसकी अंतिम पंक्तियाँ निम्नलिखित हैं–

वस्तुपाल तेजपाल गुण वर्णव्या, ते तो देवगुरु नो आधारो रे,
रंगे मेरुविजय प्रभु विनवे जिन नामे जयजयकारो रे।

यह रचना प्रकाशित है। आपकी दूसरी कृति 'नवपद रास' या श्रीपाल रास सं० १७२२ आसो शुक्ल १० गुरुवार को पलियड में लिखी गई थी। इसको सवाई भाई रायचंद ने प्रकाशित किया है। इसका रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है–

संवत ससी सायर च प्रमाण, नयण संवच्छर जाणो रे,
आसो सुदि दसमी भली, गुरुवारि रास रचाणो रे।
पलियड पास महिमा घणो, सेव्ये दीइं सिवपुरी वास रे,
रास रच्यो पलीयड वली, सेवक नी पूरो आस रे।[1]

आपकी एक अन्य रचना 'नर्मदा सुंदरी रास' का भी उल्लेख मिलता है किन्तु उसका विवरण–उद्धरण नहीं मिलता। वस्तुपाल-तेजपाल केवल अमात्य ही नहीं वरन् शूरवीर योद्धा, राजनीतिज्ञ और धर्म प्रभावक महापुरुष थे। इन पर आधारित अनेक रचनाओं में इसका स्थान महत्वपूर्ण है।

मोतीमालु––ये संभवतः अहमदाबाद के प्रेमापुर मुहल्ले के निवासी थे क्योंकि उनकी रचना 'नेमिजिन शलोको' (७३ कड़ी) सं० १७९८, दीपावली के दिन अहमदाबाद में ही लिखी गई थी। इसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं–

वाणि वरसति सरसति माता, कविजन त्राता कीरति दाता;
इक्ष्वाकु वंशे जिनवर बावीस, मुनि सुव्रत नेमि दोय हरिवंश,
बावीसमो जिनवर नेमकुमार, बाल ब्रह्मचारी नेमकुमार;
परणा नहि पण प्रितडी पाली, कहस्युं सल्लोको सूत्र संभाल।

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई–जैन गुर्जर कवियो, भाग २. पृ० १९०-१९३ (प्र०सं०) और भाग ४, पृ० ३०७-३१० (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रचनाकाल—

सहस वदन जो सुरगुर गावे, परमेसर गुण नो पार न आवे,
मतहीण मानवी केम बषाणे, शिशु जिम सायर मुज मति जाणे।
सतर अठाण दिवाली ठाणुं, ससहरनी पासे प्रेमापुर जाणुं।
संभव सुखलहरी पसरी कल्याण, मोतीमालुज्ज लोक जैन वाणि।[1]

अर्थात् यह रचना सं० १७९८ में दीपावली के पर्व पर प्रेमापुर में पूर्ण हुई। श्री मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने जैन गुर्जर कवियों में ससहर का अर्थ अहमदावाद बताया है। यह रचना ससहर के पास प्रेमापुर में रची गई। जो हो, प्रेमापुर अहमदाबाद का एक मुहल्ला है और यह रचना वही की गई थी।

मोहनविजय—तपागच्छीय आचार्य विजयसेन सूरि>कीर्तिविजय मानविजय>रूपविजय के ये शिष्य थे। इन्होंने कई उत्तम रचनाएँ की हैं जिनका संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

नर्मदासुंदरी रास (६३ ढाल, १७५४ पौष कृष्ण १३, शुक्रवार, समीनगर)

आदि-प्रभु चरणांबुज रज तणी वज्जी ने होइं ठोक,
भायो बली जग जेहनो, बीहूं अक्षर ने श्लोक।

इस कृति में नर्मदासुंदरी के शील का महत्व बताया गया है, यथा—

चक्षू श्रवण सीलें करी, थयो कुसुम नी माल;
पावक पण पाणि थयो, शीले सीह सीयाल।
सीलरूप सन्नाह थी, मनमथ नृप नां वाण;
बेधी न सके वृक्ष ने, रे मन मृषा न जांण।
शील तणे अधिकार अथ, नमदासूंदरी चरित्र,
रचिस शास्त्र अनूं सारथी, वर्णन करी विचित्र।

\+ \+ \+

अेह संबंध छे शील कुलक में जोयो सुगुण जगीसे जी,
भरहेसर बाहुबली वृत्ति प्रगट संबंध अे दीसे जी।

---

1. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग ३ पृ० १४७०-७१ (प्र०सं०) और भाग ५ पृ० ३६४ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रचनाकाल–विधिमुख शिवमुख ऋषि इन्दु संवत संज्ञा अेही जी,
मास पोस वदि तेरस दिवसे उसनानार गुणगेहे जी।

इसमें ऊपर दी गई गुरुपरम्परा का उल्लेख किया गया है। यह रचना भीमसिंह माणेक द्वारा प्रकाशित की गई है।

हरिवाहन राजा रास (३१ ढाल, सं० १७५७(८) कार्तिक कृष्ण ९, शुक्र, महेसाणा)

आदि—परमानंदमइ प्रभु चिद्रूपी विज्ञान;
जगहित धर्त्ता ज्योतिमय, तेहनो धरिइं ध्यान।

इसमें राजा हरिवाहन के निर्वेद की प्रशंसा की गई है, यथा—

नीरवेद जो अनुभव्यो नृप हरीवाहने पवित्र,
सूष पाम्यौ तिणे सास्वती, सांभलज्यो अे चरित्र।

रचमाकाल—
संवत १७ संयम गीरी पांउव मीते, वर्षे वर्षा धूरी मासाकितें,
(चाली) मास पहिलो सरद ऋतु नो असीत पक्ष प्रलक्ष अे।

रत्नपाल रास (४ खण्ड ६६ ढाल १३८९ कड़ी सं० १७६० मागसर शुक्ल ५, गुरुवार, अणहिलपुर, पाटन)

आदि—सकल श्रेणि मेदुर (मेदुलीला) तणी, दायक अनुदिन जोह;
ते जे कोई रूप छे, तेह थीं धरेई नेह।

भगवान के बारे में कवि लिखता है—

नित्य अरूपी दिण नथी, छे रूपी भगवान;
निकट घणी जो नवि लखे यथा नयन जुगकान।
अध्यातम आवास में, अनुभव मोख प्रत्यक्ष;
ज्ञान नयन थी ऊपने, तिहां जस रूप प्रत्यक्ष।

यह रचना दान के माहात्म्य का दृष्टांत प्रस्तुत करती है, यथा–

दान ऊपर संबंध अथ कहिस प्रमाद निवार,
रत्नपाल केरु चरित, सुणो सहु करि मन ठार।

रचनाकाल–संवत खांग संयम करी जाणो, मागसिर मास सुहायो जी;
तिथी पंचमी गुरुवार तणे दिन, विजय मुहूर्त मन भायो जी।

इसमें भी गुरुपरंपरा पूर्ववत् दी गई है। ये सभी रचनाएँ काफी लोकप्रिय रही हैं और अनेक ज्ञानभण्डारों में इनकी कई प्रतियाँ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुरक्षित हैं। यह कृति सवाई भाई रायचन्द, अहमदाबाद ने प्रकाशित किया है।

मानतुंग मानवती रास (४७ ढाल १०१५ कड़ी, सं० १७६० अधिक मास शुक्ल पक्ष ८, बुधवार, पाटण)

इसमें मृषावाद का परिहार अर्थात् असत्यभाषण से बचने का संदेश दिया गया है। इसका प्रारंभ इस पंक्तियों से हुआ है—

ऋषभ जिणंद पदांबुजे मन मधुकर करि लीन,
आगम गुण सौरम्यवर, अति आदर थी कीन।
थानपात्र सम जिनवरु, तारण भवनिधि तोय,
आप तर्या तारे अवर, तेहने प्रणिपति होय।

इसके पश्चात् सरस्वती और गुरु की स्तुति की गई है। मृषावाद के बारे में कवि ने लिखा है—

मृषावाद व्रत द्वितीय अे, मृषा तणो परिहार;
सत्यवचन आराधिये, तो वरिये सिवनार।
फूट मृषा तजतां थका, धरिये इम प्रतिबंध;
सत्यवचन ऊपर सुणो मानवती सम्बन्ध।

रचनाकाल—पुरण काय मुनिचंद्र सुवर्षे (१७६०) वृद्धिमास शुद्ध पक्षे हे;
अष्टमी कर्म्मवारी उदयिक, सौम्यवार सुप्रत्यक्षे हे।[1]

यह रचना दुर्गादास राठौर के राज्यकाल में की गई थी, यथा—

अणहिलपुर पाटण मां रहीने, मानवती गुण गाया हे,
दुर्गादास राठौड़ ने राज्ये, आणंद अधिक उमाया हे।

इसकी भी पचासों प्रतियों की सूचना श्री मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने दी है। इसे भीमसी माणेक और सवाई भाई रायचंद ने प्रकाशित किया है।

पुण्यपाल गुणसुंदरी रास (७५७ कड़ी सं० १७६३ शुक्ल ११, पाटण)

आदि— सकल सिद्धि दायक सदा, गुणनिधि गोड़ी पासु;
अश्वसेन कुल दिनमणि, नित्यानन्द प्रकाश।

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग ५, पृ० १३७-१५७ (प्र०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस ग्रंथ का आधार ग्रंथ शीलतरंगिणी है, यथा--

शील तरंगिणी ग्रन्थ थकी अे चरित्र रच्युं सुविशाल जी,
भविजन श्रोताजन ने हेते, अेह संबंध रसाल जी ।

रचनाकाल--

कीधी रास तणी परि रचना, गुण रस संजम वर्षे जी,
सुदि अेकादशी सुरगुरु दिवसे पत्तन माहे हर्षे जी ।

चन्द राजा रास अथवा चन्द्र चरित्र (४ खण्ड सं० १७८३ पोष शुक्ल ५, शनिवार, राजनगर)

आदि— प्रथम धराधव तीम प्रथम, तिर्थङ्कर आदेय,
प्रथम जिणंद दिणंद सम, नमो नमो नामेय ।

इसमें चन्द राजा के उच्च शीलगुण का वर्णन किया गया है, कवि ने स्वयं लिखा है—

चन्द नरिंद तणो रचुं सीयल गुणें सुचरित्र,
श्रोता श्रुतिभूषण निपुण, परम धरम सुपवित्र ।
मधुर कथा रचना मधुर वक्ता मधुर तिम होय,
मधुर अे तो हो मधुरता हुई जो श्रोता कोय ।

अर्थात् मधुर कथा, मधुर रचना, मधुर वक्ता तभी माधुर्य प्रदान कर सकते हैं जब कोई सहृदय श्रोता हो । सभी श्रेष्ठ कवियों को सहृदय श्रोता की अपेक्षा रही है । विजयसेन द्वारा दिल्लीपति सम्राट् अकबर के प्रतिबोधन का उल्लेख इसमें मिलता है । रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है—

कीधो चोथो उल्लास संपूरण, गुण वसु संयम वर्षे जी,
पोष मास सित पंचम दिवसे, तरणि ज वारे हर्षे जी ।
राजनगर चोमासु करीने, गायो चंद चरित्र जी,
श्रवण देइ श्रोता सांभलशे, याशे तेह पवित्र जी ।

अन्तिम कलश--

अे चरित्र सागर हुं ती निरखी यत्न सुरगिरि आदर्यो,
चंद नृप संबंध राशि जिम अति ही प्रभाकर उद्धर्यो ।
श्रीविजयक्षेम सुरिंद राज्ये करी परम गुरु वंदना,
कवि रूप सेवक मोहन विजये, वर्णव्या गुण चंदना ।[1]

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग ५, पृ० १३७-१५७ (न० सं०) ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह रचना भी अत्यधिक लोकप्रिय है। यह भीमसिंह माणेक और अमृतलाल संघवी द्वारा संपादित तथा प्रकाशित है।

चौबीसी—इसकी अन्तिम दो पंक्तियाँ प्रस्तुत करके इनका विवरण समाप्त कर रहा हूँ। अन्तिम पंक्तियाँ--

वर्धमान मुझ वीनती रे, काई भान जो निशदीस रे,
मोहन कहे मनमंदिर रे, काई वसियो तु विसवा वीश रे।[1]

इसकी भाषा में मुहावरों का प्रयोग यत्रतत्र अच्छा हुआ है जैसे 'विस्वा वीस' का प्रयोग ऊपर की पंक्तियों में द्रष्टव्य है। यह रचना 'चौबीसी वीशी संग्रह' में पृ० ८४ से ११० पर प्रकाशित है।

मोहनविमल—तपागच्छीय मानविमल>रामविमल>ज्ञानविमल के शिष्य थे। इन्होंने सं० १७५८ कार्तिक शुक्ल ५ शनिवार को देवगढ़ में अपनी रचना वरसिंह कुमार (वावना चंदन) चौपई पूर्ण की।

आदि— प्रणमु सारद सामनी, हंसासन कवि मात,
वीणा पुस्तक धारणी, तिहुं भुवने विख्यात।
तुझनें मानें तिहूं भुवन, सुरनर नागकुमार,
मूरख ने पंडित करै, ज्ञान तणी दातार।

उस समय देवगढ़ में रावत प्रताप सिंह का राज्य था, कवि ने लिखा है—

रावत श्री प्रताप सी रे, तेहना राज मझार,
कुअर पृथ्वीसींघ वचन थी रे, अे संबंध रच्यो मै सार।

रचनाकाल—

संवत सतरे अट्ठावने रे, काती सुदी शनीवार,
पंचमी तिथ कही अे भली रे, देवगढ़ नगर मझार।

इसमें कवि ने अपनी गुरुपरम्परा के अन्तर्गत विजयप्रभ, विजयरत्न और मानविमल के पश्चात् रामविमल और अपने गुरु ज्ञानविमल की वन्दना की है।

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० ४२८-४२ और भाग ३ पृ० १३७७-८६ (प्र०सं) और भाग ५ पृ० १३७-१५७ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्त-- मुझ मति सारु में करी रे, चोपइ अेह रसाल,
वैरीसिंह कुमार नी रे, वावला चंदन वालो रे।[1]

यशोनन्द—ये तपागच्छ के साधु गुणानन्द के शिष्य थे। इन्होंने नवकार मंत्र का माहात्म्य दर्शित करने के लिए 'राजसिंह कुमार रास' की रचना सं० १७२६ आशो शुक्ल २, मंगलवार को बादर में की। यह कवि की प्रथम रचना है, यथा—

प्रथम अभ्यास अे माहरो, पिण मम करयो उपहास रे,
नूतन चंद्र तणी परि, कवि देज्यो मुझ स्याबास रे।

कवि सहृदयों से शाबासी की अपेक्षा रखता है। इसमें नवकार मन्त्र की महिमा का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

जिम दधि मथतां नीसरा, माखण पिंड सरूप,
तिम चउदह पूर मांहि थी, अेह जू मंत्र अनूप।

इसका रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है—

संवत सत्तर छवीसमें, करी बादर चउमास रे,
श्री शांति जिन पसाउले, रच्यो राजसिंह कुमार रास रे।

गुरु वन्दना करता हुआ कवि साहित्यिक शब्दावली में कहता है--

कनक कमल दल पाखड़ी, निरमल गंगानीर,
भवोदधि तारण तरण गुरु, सागर पर गंभीर
शासन तास शोभाकरु, श्री गुणानंद गुरुराज रे,
तस पद पंकज मधुव्रत इम जसोनंद कहइ आज रे।

इसके आदि और अन्त के छंद आगे प्रस्तुत किए जा रहे हैं,

आदि— पास जिणेसर पाय नमी, चोवीसमो जिणंद,
अलिय विघन दूरिय हरइ, आपे परमानंद।

अन्त-- रास रसिक राजसिंह नो वली मोटो श्री नवकार रे,
भणें गणें जे साँभले तस घरि जयजयकार रे।[2]

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग ३, पृ० १३९५-९६ (प्र०सं०) और भाग ५, पृ० १९०-१९१ (प्र०सं०)।

२. वही भाग ४, पृ० ३७०-७१ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यशोलाभ खरतरगच्छ की सागर शाखा के समयकलश> सुखनिधान>गुणसेन के शिष्य थे। आपकी तीन रचनाओं का उल्लेख मिलता है—सनत्कुमार चौपाई, अमरदत्त चित्रानन्द रास और धर्मसेन चौपाई। इनका विवरण-उद्धरण आगे दिया जा रहा है।

धर्मसेन रास (३६ ढाल, सं० १७४० (३०)? ज्येष्ठ शुक्ल १३, नापासर)

आदि— चरण कमल श्री पास ना, प्रणमुं बे कर जोड़ि,
सेवक जास प्रसाद थी, शीघ्र लहै सुख कोडि।

इसमें दानधर्म का माहात्म्य ऋषि धर्मसेन के चरित्र को दृष्टान्त स्वरूप प्रस्तुत करके दर्शाया गया है, यथा—

दान धरम श्रीकार सहू में, आदरि जिण मन मैं बे,
श्री धर्मसेन रिषीवर राया, प्रणमु उठी नित पाया बे।

रचनाकाल—

संवत सतरह सै चालीसै, जेठ सुदी तेरस दिवसे बे,
सुपास तणो दिक्षा दिन उच्छव, सुरनर करै महोत्सव बे।
नापासर जिन भुवन विराजे, अजित शांति जिनराजे बे,
खरतरगच्छ सुरतरु सम सोहै, दान अमृत फल मोहे बे।[1]

आगे सागर शाखा के समयकलश, सुखनिधान, गुणसेन का सादर स्मरण किया गया है। इसकी अन्तिम पंक्तियाँ आगे दी जा रही हैं।

यशोलाभ साधु गुण गावे मन वंछित फल पावे बे,
सकल संघ ने आनन्दकारी, मंगलमाल जयकारी बे।

अमरदत्त मित्रानंद रास का रचनाकाल नहीं मालूम हो सका, इसके प्रारम्भ की कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

स्वस्ति श्री जिनवर सकल, चरण नमुँ चित लाय,
मनवंछित फलइ मन तणा, थिर रिद्धि संपति थाय।
× × × ×
कडुवा फल कसाय ना, परतिख प्राणी पाय,
इम जाणी जिण उपदिस्यइ, सेव्या होइ संताप।

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो भाग ५, पृ० २४-२६ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

च्यार कषाय अे चउगणा, वरजउ आणि विवेक,
मित्रानंद अमरदत्त जिम, कीधा करम अनेक।[1]

श्री अगरचन्द नाहटा ने उपरोक्त तीन रचनाओं के अलावा इनकी चौथी रचना चित्रसेन पद्मावती चौपाई की भी सूचना दी है।[2] उनके पास अमरदत्त मित्रानंद रास और चित्रसेन पद्मावती चौपाई की अपूर्ण प्रतियाँ होने के कारण सही रचनाकाल एवं अन्य विवरण नहीं दे सके। श्री देसाई ने सनतकुमार चौपाई का रचनाकाल सं० १७३६ श्रावण शुक्ल ११ बताया है किन्तु इसका कोई प्रमाण स्वरूप उद्धरण नहीं दिया है।

यशोवर्धन--खरतरगच्छीय क्षेम शाखा के रत्नवल्लभ आपके गुरु थे। इनके चार ग्रंथों की सूचना श्री नाहटा ने दी है—रत्नहास रास (चौपाई) सं० १७३२, चन्दन मलयागिरि रास सं० १७४८ रतलाम; जम्बू स्वामी रास सं० १७५१, विद्याविलास रास सं० १७५८, बेनातट।[3] नाहटा ने किसी रचना का उद्धरण नहीं दिया; श्री देसाई ने चंदन मलयागिरि रास का विवरण-उद्धरण दिया है। यह रचना यशोवर्धन ने ३२ ढालों में सं० १७४७ श्रावण शुक्ल ६ रतलाम में की थी। नाहटा और देसाई के रचनाकाल में एक वर्ष का अन्तर है किन्तु देसाई ने अपने कथन के प्रमाणस्वरूप ग्रन्थ से सम्बन्धित पंक्तियाँ उद्धृत की हैं, यथा--

संवत सतर सैतालें वरसै, श्रावण सुदि छठि दिवसैं जी,
अे संबंध रच्यौ अति सरसै, सुणता सहुमन हरसैं जी।

इसलिए इन्हीं की बताई सूचनाएँ प्रामाणिक प्रतीत होती है। इसमें खरतरगच्छ के जिनचन्द सूरि का वन्दन है, तत्पश्चात् खेम शाखा के सुगुणकीर्ति और रत्नवल्लभ को सादर नमन किया गया है। यह रचना रतलाम में हुई, यथा--

श्री रतलाम सहर सुखकारी, अलकापुर भवतारी जी,
सा वैसावी समकित धारी, गुरु भगता गुणधारी जी।

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग ३, पृ० १३२१-२३ (प्र०सं०) और भाग ५, पृ० २४-२६ (न०सं०)।

२. अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० १०२।

३. वही, परंपरा पृ० १०२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसका प्रारम्भ इन पंक्तियों से हुआ है--

पुरिसादाणी पद नमी, प्रणमी सद्गुरु पाय,
सासणनायक सरसती, सानिधि ने सुपसाय।
नृप चंदन मलयागिरी, कहिस्यों कथा किलोल,
सांभलता सुगणां नरा ऊपजसी हिल्लोल।
जांणी नै अंतराय न कीजै, पर उपगार धरीजै जी,
यशोवरधन हीय जिन ध्याइजै, ज्यों अंतर संसार तरीजै जी।[1]

यशोविजय—इनकी तथा १७वीं शती में रचित इनकी कुछ रचनाओं की चर्चा द्वितीय खंड में की जा चुकी है। हेमचन्द के पश्चात् जैन शासन में दूसरा कोई इनके जैसा विविध विषयों का पारंगत विद्वान् और प्रभावक आचार्य नहीं हुआ। सर्वशास्त्र पारंगत इस प्रकार के अन्य विद्वान् हरिभद्र सूरि अवश्य माने जाते हैं। कांतिविजय ने 'सुजसवेली भास' में इनके बहुमुखी गुणों का वर्णन किया है। गुजरात के कन्होडू ग्रामवासी नारायण व्यवहारी की भार्या सौभाग्य दे की कुक्षि से इनका जन्म हुआ था। सं० १६८८ में नयविजय ने दीक्षा देकर यशवंत का नाम यशोविजय रखा। माता सौभाग्य देवी सचमुच परम भाग्यशालिनी थी कि उनका पुत्र इतना यशस्वी निकला और अपने नाम यशोविजय को सार्थक किया। इनकी बड़ी दीक्षा विजयदेव सूरि ने की थी? इन्होंने काशी में विविध शास्त्रों का गहन अभ्यास किया था। इनके विविध गुणों के बारे में कांतिविजय ने लिखा है—

श्री यशोविजय वाचक तणा, हुं तो न लहुं गुण विस्तारो रे;
गंगाजल कणिका थकी, अेहना अधिक अछें उपगारो रे।

इनके सैकड़ों रचनाओं की सूची द्वितीय खण्ड में दी जा चुकी है और कुछ ग्रंथों का परिचय भी दिया जा चुका है।

श्री मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने १८वीं शताब्दी (विक्रमीय) के पूर्वार्द्ध को (सं० १७०१-४३) यशोविजय युग कहा है जो एक हद तक उचित हो सकता है। इसलिए इनकी संक्षिप्त चर्चा १८वीं शती में भी अपेक्षित और आवश्यक है। पर देसाई का यह नामकरण सर्वमान्य

---

१. मोहनलाल दलीचंद देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० ३७८-८० और भाग ३ पृ० १३३८ (प्र०सं०) और भाग ५, पृ० ५८-६० (न०सं०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है, ऐसा मैं नहीं समझता क्योंकि यह आवश्यक नहीं कि जिसे श्वेताम्बर युगपुरुष मानें उसे दिगम्बर भी मान लें; फिर तप, ज्ञान या रचना बाहुल्य श्रद्धा के कारण हो सकते हैं पर युग प्रवर्त्तन का नहीं। युग प्रवर्त्तक को नवीन साहित्यिक प्रवृत्ति, वाद या स्कूल का प्रारम्भ-कर्त्ता होना चाहिए। इस दृष्टि से १७वीं और १८वीं (वि०) शताब्दी के जैन साहित्य में कोई पार्थक्य नहीं मिलता, पता नहीं किस आधार पर देसाई ने 'जैन साहित्य नो इतिहास' में १८वीं शताब्दी को अपने इतिहास के विभाग सातवें के प्रारम्भ में यशोविजय युग को 'भाषा साहित्य नो अर्वाचीन काल' कहा है[1] जबकि उन्होंने १७वीं शती को मध्यकाल में रखा है। श्री देसाई ने यह नहीं बताया कि कौन सी अर्वाचीन प्रवृत्तियाँ १८वीं शताब्दी में उदित हो गई। व्यक्तिगत रूप से यशोविजय समयज्ञ, सुधारक, न्यायशास्त्री, योगवेत्ता, अध्यात्म-वादी और महान साहित्य सर्जक हैं पर युगप्रवर्त्तक नहीं हैं क्योंकि उन्होंने किसी नवीन प्रवृत्ति का सूत्रपात नहीं किया जो आगे एक साहित्यिक वाद या धारा के रूप में प्रवाहित हुई हो।

काशी से न्यायविशारद और आगरा से तर्कशास्त्री की उपाधि प्राप्त करके ये गुजरात गए और वहाँ के तत्कालीन हाकिम महोबत खान के समक्ष अष्टादश अवधान का प्रदर्शन करके उससे सम्मानित हुए। विजयदेवसूरि ने उपाध्याय पद से विभूषित किया। इन्होंने न्याय, तर्क, योग पर प्रभूत साहित्य की रचना की है। जिसकी टक्कर का साहित्य हरिभद्रसूरि और हेमचन्द्र के अतिरिक्त अन्य किसी जैन सर्जक का नहीं मिलता। इन्होंने महर्षि पतंजलि के योगदर्शन सांख्य सिद्धान्त की जैनधर्मानुसार प्ररुपणा की। अध्यात्मी यशोविजय का परिचय तत्कालीन अलौकिक योगी आनन्दघन से हुआ जिनके गुणानुवाद में यशोविजय ने हिन्दी में अष्टपदी लिखी—

जशविजय कहे सुन हो आनंदघन। हम तुम मिले हजूर

× × × ×

या जश कहे सोही आनंदघन पावत अंतर ज्योत जगावे।
अथवा आनंदघन आनंदरस झीलत देखत ही जश गुण गाया।[2]

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन साहित्यनो इतिहास पृ० ६१९।
२. वही पृ० ६४१ (प्र०सं०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इनकी भाषा के नमूने द्वितीय खंड में दे चुका हूँ इसलिए पुनरुक्ति अनावश्यक है। इन्होंने अपने समय के कई लेखकों को प्रेरणा दी। इनके समकालीन लेखकों में विनयविजय, सत्यविजय और मेघविजय आदि प्रमुख हैं। विनय विजय और यशोविजय के सहलेखन से प्रसिद्ध रचना श्रीपाल रास की चर्चा पहले हो चुकी है। इसकी कुछ पंक्तियों को उद्धृत करके यह प्रकरण पूर्ण कर रहा हूँ–

डेहरो गाय तणे गले, खटके जेम कुकट्ठ,
मूरख सरसी गोण्डी पगपग हियडे हट्ठ।
जो रूठो गुणवंत ने, तो देजो दुःख पोठि,
दैव न देजे एक तु, साथ गमारा गोठि।

गुणवंत को गंवार गोष्ठी में रहने की विवशता से बढ़कर दुःख कोई नहीं हो सकता--

"शिरसि मां लिख मां लिख मां लिख।"

हे दुर्दैव और जो भी चाहे दुख तू लिख दे पर भाग्य में दुष्ट संग मत लिखना।

रंग प्रमोद—खरतरगच्छीय जिनचन्द्रसूरि>पुण्यप्रधान>सुमतिसागर>ज्ञानचन्द के ये शिष्य थे। इन्होंने चंपक चौपाई[1] की रचना सं० १७१५ वैशाख कृष्ण तृतीया को मुलतान जैसे दूरस्थ प्रदेश में पूर्ण की। इनकी सूचना देसाई और नाहटा दोनों ने दी है किन्तु इसका उद्धरण या अन्य विवरण दोनों में से किसी ने भी नहीं दिया है।

रंगविनयगणि आप खरतरगच्छीय प्रसिद्ध साधु जिनरंग के शिष्य थे। आपका व्यक्तिगत इतिवृत्त ज्ञात नहीं हो सका पर आपकी रचना मंगलकलश महामुनि चतुष्पदी का विवरण और उद्धरण उपलब्ध हुआ है। यह मरुगुर्जर (राजस्थानी हिन्दी मिश्रित) भाषा में रचित पद्यबद्ध चरित्र काव्य है। इसकी रचना कवि ने सं० १७१४ श्रावण शुक्ल एकादशी को पूर्ण की। इसका आदि—

एहवा मुनिवर निसदिन गाइयइ, मन सुधि ध्यान लगाई;
पुण्य पुरुषणा गुण घुणतां छवां पातल दूरि पलाई।

---

१. (क) मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग ३, पृ० १२०९ (प्र०सं०) और भाग ४ पृ० २७४ (न०सं०)
(ख) अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० १०७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शांति चरित्र थकी ए चउपइ कीधी निज मति सारि,
मंगलकलश मुनि सतरंगा कह्या गुण आतम हितकारि।

यह रचना अभयपुर के जिनालय में वहाँ के एक श्रावक नारायण दास के पुत्र के आग्रह पर की गई थी। गुरुपरम्परा इस प्रकार कही गई है—

गछ खरतर युगवर गुण आगलउ श्री जिनराज सुरिंद,
तसु पट्टधारी सूरि शिरोमणि श्री जिनरंग मुणिंद।
तासु सीस मंगलमुनिराय नउ चरित कहेउ ससनेह,
रंगविनय वाचक मनरंगसु जिनपूजा फल एह।
सासण नायक वीर प्रसाद थी चउपी चडीय प्रमाण,
भणिस्यइ सुणिस्यइं जे नर भाव सु धारयइ तासु कल्याण।
ए संबंध सरस रस गुण भरपउ भाष्य मति अनुसारि,
धरमी जण गुण भावण मनरली, रंगविजय सुखकार।[1]
एहवा मुनिवर निसिदिन गाइयइ सर्वगाथा दूहा ५३२।

श्री अगरचन्द नाहटा ने इनकी एक रचना 'कलावती चौपई'[2] की भी सूचना दी है। यह चौपई सं० १७०६ में खंभात में लिखी गई थी। इसका अन्य विवरण और उद्धरण उन्होंने नहीं दिया है।

रंगविलास गणि—ये जिनचंद्र सूरि के शिष्य थे। ये जिनचंद्र अकबर द्वारा युगप्रधान पद प्राप्त ६१वें जिनचंद्र सूरि नहीं थे बल्कि ६५वें जिनचंद्र थे जिनके पिता का नाम सहसकरण और माता का नाम सुषिया देवी था। इनका मूल नाम हेमराज, दीक्षा नाम हर्षलाभ और सं० १७८३ में इनका स्वर्गवास हुआ था। इनके शिष्य रंगविलास ने अध्यात्म कल्पद्रुम चौपई की रचना सं० १७७७ वैशाख शुक्ल ५, रवि को पूर्ण की।[3] श्री अगरचन्द नाहटा इसे अध्यात्म रास कहते हैं।[4] इसे मोतीचन्द्र कापडिया ने प्रकाशित किया है। कवि ने भी इसका

---

१. सम्पादक कस्तूरचन्द कासलीवाल—राजस्थान के जैन शास्त्रभंडारों की ग्रंथसूची भाग ४, पृ० ५५ और १८५-१८६।
२. अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० १०९।
३. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० ५३४-३५ (प्र० सं०)।
४. अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० ११०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नाम अध्यात्म रास ही लिखा है। शायद मूलग्रन्थ अध्यात्म कल्पद्रुम था और कवि ने अध्यात्म रास नाम से उसका भाषान्तर किया है। इसका आदि इन पंक्तियों से हुआ है—

परम पुरुष परमेसर रूप, आदि पुरुष नइ अकल सरूप,
सामी असरण सरण कहाय, सकल सुरासुर सेवे पाय।
प्रणमी तास चरण अरविंद, खरतर गछपति श्री जिणचंद्र,
संभारी श्री सद्गुरु नाम, भाषा लिखुं संस्कृत ठाम।
अध्यात्मकल्पद्रुम लह्यउ, श्री मुनि सुन्दर सूरि कह्यउ।
परमारथ उपदेशकरी, नवम शांत रसपति अणुसरी।

अर्थात् मुनिसुन्दर कृत संस्कृत ग्रंथ अध्यात्म कल्पद्रुम का इन्होंने नवम् शांतरस प्रधान भाषांतर मरुगुर्जर में किया।

रचनाकाल—

संवत सतर सतोत्तरे, मास शुक्ल वैशाख,
रविवारे पाँचमि दिने, पूर्ण थयो अभिलाष।

अंतिम पंक्तियाँ निम्नांकित हैं—

तास सीस गुरु चरण रज सम ते रंगविलास,
निज पर आतम हित भणी, कीनो आदरि जास।
भणिज्यो गुणज्यो वांचज्यो, अे अध्यातम रास।
जिम जिम मन मां भावस्यो, तिम तिम थस्ये प्रकास।

कवि ने रचना का नाम अध्यातम रास कहा है। इनके किसी अन्य रचना की सूचना नहीं मिली है। यह रचना भी सामान्य स्तर का अनुवाद मात्र है और अन्य जैन साहित्यिक रचनाओं की तरह शांत रस पर आधारित उपदेश प्रधान रचना है अतः इसमें साहित्यिक विशेषताओं को ढूंढना अपेक्षित नहीं है। आध्यात्मिक दृष्टि से इसका महत्व हो सकता है।

(भट्टारक) रत्नचंद द्वितीय—आप भट्टारक अभयचन्द्र की परंपरा में शुभचन्द्र के शिष्य थे। ये भी अपने गुरु की तरह हिन्दी प्रेमी साहित्यकार संत थे। इनकी चार रचनाएँ उपलब्ध हैं। आदिनाथ गीत, वलिभद्र गीत, चिंतामणि गीत और बाबनगजा गीत।[1] इनके

१. डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल—राजस्थान के जैन संत, पृ० २०९।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अलावा कुछ स्फुट गीत और पद भी मिले हैं। बावनगजा गीत में इनके द्वारा सम्पन्न चूलगिरि की संघयात्रा का वर्णन किया गया है। यह यात्रा सं० १७५७ पौष शुक्ल २ मंगलवार को सम्पन्न हुई थी, यथा—

संवत सतर सतवनों पोस सुदि बीज भौमवार रे,
सिद्ध क्षेत्र अति सोभतो तेनि महिमानो नहि पार रे।
श्री शुभचन्द्र पट्टे हवी, परखा वादि मद भंजे रे,
रत्नचंद्र सूरिवर कहैं, भव्य जीव मनरंजे रे।

चिंतामणि गीत में अंकलेश्वर के मंदिर में विराजमान पार्श्वनाथ की स्तुति की गई है। आपका रचनाकाल १८वीं शताब्दी का द्वितीय और तृतीय चरण निर्धारित किया गया है। आप साहित्य के अच्छे विद्वान् और स्वयं सर्जक साहित्यकार थे।

रत्नजय--ये खरतरगच्छीय रत्नराम के शिष्य थे। इन्होंने राजस्थानी गद्य में ४ भाषा टीकाएँ लिखीं जिनमें ज्ञातासूत्र टबा १३५०० श्लोकों का है। इसके अतिरिक्त कल्पसूत्र बालावबोध, प्रतिक्रमण टब्बा और योग चिंतामणि बालावबोध[1] भी प्राप्त है। इन गद्य रचनाओं में प्रयुक्त गद्य के नमूने उपलब्ध नहीं हो सके।

रत्नराज (उपा०) --खरतरगच्छीय जिनचंद्रसूरि>रत्ननिधान>रत्नसुन्दर के शिश्य थे। इन्होंने २२ अभक्ष निवारण संज्झाय (२७ कड़ी) सं० १७३९ से पूर्व ही किसी समय लिखा था। इसकी प्रारंभिक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं--

प्रणमुं भावइ श्री अरिहंत, केवल ज्ञान करी दीपंत,
तेहना वचन भला चित धरी, श्रावक नइ हित जाणी करी।
उभयकाल पडिकमणउं करइ, जीवदया चित्त सूधी धरइ,
श्रावक समकित पालइ सार, जाणी अभक्ष करइ परिहार।

इस सांप्रदायिक रचना में बाईस प्रकार के अभक्षों का वर्णन करके अन्त में कवि कहता है—

अे सेवाथी भमइ संसार, नरक तणा दुख अधिक प्रकार,
अे विरमंता सुख निरवाणि, अेहवी श्री जिणचंद्र नी वाणि।

---

१. अगरचन्द नाहटा—परंपरा, पृ० ११०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रतन निधान सुगुरु उपदेश, अे अधिकार कह्यउ सविशेष,
रतनराज कहइ उवझाय, लाभ घणउं भणतां सिज्झाय।[1]

रत्नवर्द्धन—खरतरगच्छ की जिनभद्रसूरि शाखा में शिवनिधान > मति सिंह > रत्नजय के शिष्य थे। आपने 'ऋषभदत्त चौपई' सं० १७३३ विजयदशमी, मंगलवार को संखावती में पूर्ण किया।[2] इसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ निम्नांकित हैं--

वामानंदन परगडो, तेवीसमों जिनराज;
पारसनाथ परसाद थी, फलइ वांछित काज।
दान सीयल तप भावना, जिणवर भाख्या चार;
तउपणि इहाँ वषाणीय, सील तणुं अधिकार।

शील का महत्व प्रतिपादित करने के लिए रत्नवर्द्धन ने ऋषभदत्त रूपवती की कथा दृष्टान्त रूप में प्रस्तुत की है। यथा,

ऋषभदत्त रूपवति तणु, भाख्यो प्रबन्ध रसाल,
भाव धरीजे सांभले, फले मनोरथ माल।

रचनाकाल—

रत्नवर्द्धन शिष्य विनय करी अेह रच्यो अधिकार,
संवत सतर तेत्रीस हे, विजयदसमी भृगुवार।

गुरुपरम्परा बताते समय लेखक ने जिनचन्द्र, जिनदत्त, जिनप्रभ आदि दादा गुरुओं के अलावा उपरोक्त परम्परा का वर्णन किया है। यह रचना संखावती के कोठारी पहिराज के अनुज विरागदास के आग्रह पर आपने की थी। इसकी अन्तिम पंक्तियाँ प्रमाण स्वरूप प्रस्तुत हैं—

अेह प्रबंध आग्रह करी, बखाण्यो मतिसार,
वटशाखा जिम विस्तरो, पुत्र कलत्र परिवार।
भणे गुणें जे सांभले, नरनारी अे रास,
रलीरंग वधामणा, पूरी मन की आस।[3]

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग ३ पृ० १३३१-३२ (प्र० सं०) और भाग ५ पृ० ३०-३१ (न०सं०)
२. अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० १०८।
३. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग ३, पृ० १२८४-८६ (प्र० सं०) और भाग ५, पृ० ३ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसकी भाषा राजस्थानी प्रभावित मरुगुर्जर है। रचना में कथा का आनंद और काव्य रस मिलाकर उपदेश की शुष्कता को कम करने का प्रयास है, फिर भी यह कृति काव्य की दृष्टि से सामान्य कोटि की है। इससे शील-चरित्र का महत्व अवश्य उजागर हुआ है।

रत्नविमल--आप तपागच्छीय दीपविमल>विवेकविमल>नित्यविमल के शिष्य थे। इन्होंने सं० १७८१, वुरहानपुर में एक 'चौबीसी' की रचना की। आपने दान, शील, तप और भावना में से भावना को अधिक महत्वपूर्ण समझकर उसके दृष्टान्त स्वरूप अेला ऋषि का चरित्र चित्रित करते हुए एक रचना 'अेला चरित्र' नाम से की है। इसमें २१ ढाल हैं। यह रचना सं० १७८५ आसो, बदी १३, हरिश्चन्द्र पुरी में हुई थी। इसका रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है--

संबत संयम सर गज सारो, अति हर्ष आसो मासे जी,
धनतेरस दिवस धन जे, ऊछव घणो आवासे जी।

गुरुपरंपरा—विजयक्षमा और दयासूरि के पश्चात् ऊपर बताई गुरुपरम्परा का उल्लेख रचना में ससम्मान किया गया है। इसमें भावना का महत्व बताते हुए लेखक ने लिखा है—

तिणे भाव थी तर्यो केइ तरस्यें, पंचम के गत पाया जी,
भाव ऊपर अेतो अधिक भावें, गुण अेला ऋषि गाया जी।

इसकी अन्तिम पंक्तियाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं---

संघ चतुर्विध ने सांनिध होयो, अहनीशे अति आणंद जी,
रतनविमल कहि नितनित रुडं, प्रेमे प्रमाणंद जी।
अेकवीसमी ढाले अधिक उच्चांइं, मंदिर मंदिर दिप मालि जी,
भणतां गणतां सांभला भावें, नितनित होस्ये दिवाली जी।
भवी भावण भावो जी।[1]

रघुनाथ--रघपति, रुधपति रूपवल्लभ—आप खरतरगच्छीय विद्यानिधान के शिष्य थे। श्री मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने जैन गुर्जर कवियो[2] के भाग २ में इनका नाम रघुनाथ दिया था, लेकिन

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग ३, पृ० १४४९-५० (प्र०सं०) और भाग ५, पृ० ३१६-३१७ (न०सं०)।
२. वही भाग २, पृ० ५७३-५७४ (प्र०सं०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तृतीय भाग में नाम का सुधार करके उसे रघुपति कर दिया था।[1] जैन गुर्जर कवियो के नवीन संस्करण में रघुनाथ नाम का कोई कवि नहीं है बल्कि रघुपति-रूपवल्लभ[2] नामक कवि की वही रचनाएँ बताई गई हैं जो पहले देसाई ने रघुनाथ की बताई थी। अतः यह निश्चय है कि रघुनाथ का वास्तविक नाम रघुपति-रूपवल्लभ है और वे खरतरगच्छीय विद्यानिधान के शिष्य थे। श्री अगरचन्द नाहटा ने इनका नाम रूधपति[3] दिया है। क्योंकि आपने अपनी रचना 'गौडी पार्श्वस्तव' में यही नाम दिया है। इसके साथ इनकी १४ रचनाओं की सूची नाहटा ने दी है जो आगे यथावत् दी जा रही है--

नंदिखेण चौपई सं० १८०३ केसरदेसर, श्रीपाल चौपई सं० १८०६ घड़सीसर, रत्नपाल चौपई सं० १८१४, कालू; सुभद्रा चौपई सं० १८२५ तोलियासर, जैनसार बावनी सं० १८०२, नापासर, छप्पय बावनी १८२५ तोलियासर, कुंडलिया बावनी सं० १८४८, करणी छन्द, गौड़ी छन्द, जिनदत्त सूरि छन्द, सुगुण बत्तीसी, उपदेश बत्तीसी, उपदेश रसाल बत्तीसी, उपदेश पच्चीसी।[4] गद्य में भी आपने रचना की है। 'दुरिभरस्तोत्र बालावबोध की रचना आपने सं० १८१३ में की। प्राप्त रचनाओं द्वारा आपके सुकवि होने का पता चलता है। सं० १७८८ से १८४८ तक आपका साहित्य निर्माण काल है। आपकी प्रारम्भिक रचनाएँ विमल जिनस्तवन सं० १७८८ नाकोड़ा एवं गौड़ी स्तवन सं० १७९२ में रचित है। इसलिए आपका प्रारम्भिक रचनाकाल १८वीं शताब्दी में पड़ने के कारण आपकी चर्चा इस खण्ड में की जा रही है अन्यथा आपकी अधिकांश बड़ी बड़ी रचनाएँ १९वीं शती के पूर्वार्द्ध की हैं। आप इस प्रकार दोनों शताब्दियों में रचनाशील रहे।

आपकी प्रारम्भिक रचनाओं में तीन गौड़ी पार्श्वनाथ स्तव की रचना सं० १७९२ चैत्र शुक्ल १५, गुरुवार को हुई। इन तीनों के आदि और अन्त की पंक्तियाँ आगे क्रमशः दी जा रही हैं—

प्रथम स्तव--आदि—

धींग धवल गोड़ी धणीजीलो, परता पूरणहार हो,

---

१. जैन गुर्जर कवियो भाग ३ पृ० १२४-१२५, ३२५-३२८ और पृ० १४५५ (प्र०सं०)।
२. वही भाग ५, पृ० ३४२-३४७ (न०सं०)।
३. अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० १०५।
४. वही, परंपरा पृ० १०५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्त— सतरे वाणवैं संवते जीलो, सपरिवार श्रीकार;
अवसर जाणी आपणी जीलो, महिर करी नितमेव हो।
निज सेवक रुधनाथ ने जी, सुखदायक द्यो सेवजी।

दूसरे स्तव का प्रारम्भ—

धींग धवले मुझ धरतां ध्यान, आपीय दरसण आपरे,

अन्त— सतर संवत तणे बाणवे सार, चैत्र पुनिम निस चोपं सु,
सिद्धि योगे लह्यो दरस श्रीकार, हरष थयो मुझ हीयडे।

तृतीय स्तव का आदि—

सबलो थलवट देश सुहावो हो, गोडीया राय जी,

अन्त— नितनित त्रिविध त्रिविध सिरनामी हो,
परचो पामी हो गावे रुधपति गणी।

आपकी एक अन्य रचना 'सुगुण बत्तीसी' का भी आगे आदि और अन्त दे रहा हूँ।

आदि— सुगुण बुढापो आवीयो, लखीयो नही भाई,
रात दिवस धन्धे रह्या, केई कीध कमाई।

अन्त— सुगुणां ने समझावणी, बत्तीसी अेह,
पाठक श्री रुधपति कहै, सुणिज्यो ससनेह।[1]

इन रचनाओं में कवि ने अपना नाम रुधपति दिया है जो रघुपति का वर्णविपर्यय होकर मुखसुख की दृष्टि से बन गया है।

यद्यपि इनकी प्रमुख रचनाएँ उन्नीसवीं शताब्दी की हैं, फिर भी आपकी कुछ चुनी पद्य रचनाओं का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है—

मंदिषेण चौपाई (सं० १८०३) चौमासा, केसरदेसर, इसमें खरतरगच्छ के आचार्य जिनसुख और शिष्य विद्यानिधान का वंदन किया गया है। रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है—

शिवलोचन शिवसिघ शशि, संवत अे सुविचारो रे,
प्रथम दिवस लघुकलप ने अे पूरण अधिकारो रे।

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग ५, पृ० ३४२-३४७ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसका आदि--

वर्त्तमान चउवीस नै नमतां नवनिध थाय,
त्रिभुवन सुखदायक तिके, जगनायक जिनराय।
× × × ×
नंदिषेण नामे मुनी, परसिद्ध तास प्रकास,
वचनकला सारु विबुध, आखे मन उल्लास।

इस रचना में रचनाकार ने अपना नाम रघुपति दिया है, यथा—

रघुपति निजमन नी रुली, जुगति कथा मन जाणी रे,
मतिसारु कीधी मुदे, सुकवि नरां सहिनाणी रे।
चरित्र कथा रस चौपइ, रचतां रंग रसालो रे,
सुणतां भणतां संपजे, नवनिधि मंगल मालो रे।

श्रीपाल चौपई (सं० १८०६ प्रथम भाद्र शुक्ल १३ घडसीसर) इसमें श्रीपाल और मैनासुन्दरी की प्रसिद्ध जैन कथा दी गई है। कवि ने अपना नाम रुधपति लिखा है। गुरुपरम्परा पूर्ववत् इसमें भी है।

रचनाकाल—

संवत रस सिब सिद्ध ससी अे, सुदि पख तेरस सार,
प्रथम भाद्रव तणी अे, कीध चरित्र उदार।

मैना सुन्दरी के शीलपालन का वर्णन करता हुआ कवि कहता है-

पाल्यो सील भली परे अे, मयणसुंदरी नार,
चरित्र श्रीपाल नो अे, जग में जस विस्तार।

इसमें कवि रुधपति ने जिनसुख को अपना प्रगुरु बताया, यथा-

श्री जिनसुख सूरीदं ना अे, विनयी विद्यानिधान,
कहे रुधपति कवी अे, महिम जिनध्रम मान।

रत्नपाल चौपई आदि--

स्वति श्री प्रभु पास जिन, त्रिभुवन सुख दातार,
पहिलां तेहना प्रणमतां, जग में जस विस्तार।

रचनाकाल—

निधि ससि सिद्ध अलख ने अंके, संवत अे निस्संके जी
कालू गांम नयर आसंके, दीपे गजसिंघ उंकेजी।[1]

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई–जैन गुर्जर कवियो, भाग ५, पृ० ३४२-३४७ (प्र०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसमें भट्टारक जिनलाभसूरि के सूरित्वकाल का उल्लेख है। कवि ने यह रचना अपने शिष्य माणिक्यराज के आग्रह पर दान का माहात्म्य दर्शित करने के लिए लिखा। इसमें कवि ने अपना नाम रुधपति और रूपवल्लभ दोनों दिया है। देसाई ने पहले इस रचना का कर्त्ता हर्षनिधान को बताया था।[1]

सुभद्रा चौपई (२५ ढाल ५४० कड़ी सं० १८२५ कार्तिक शुक्ल ४)

आदि-- आदिकरण आदीसरु, शांतिकरण शांतीस,
नेमनाथ पारस प्रभू, वर्द्धमान सुजगीस।

रचनाकाल—

संवत अढारै पचवीसै, हीयडो फागे हीसै जी,
दिनकर सुतने चौथी सुदी सैं, सिद्ध जोगे सुजगीसे जी।

इसके अन्त में लेखक ने अपना नाम रूपवल्लभ दिया है, यथा—

इण इलमें अखीयात उबारी, सोझी नगरी सारी जी,
निरखकरी कह्यौ नर नै नारी, थासै रूपवल्लभ बलिहारी जी।

गुरु परम्परा में जिनलाभ सूरि के शासन का उल्लेख है, रचना का स्थान तोलियासर बताया है। दूसरी जगह कवि ने अपना नाम रुधपति भी कहा है, जिससे स्पष्ट होता है कि रुधपति ही रघुपति और रूपवल्लभ थे, यथा–

शाखा जिनसुख सूरि सवाई, पाठक पद प्रभुताई जी,
विद्यानिधान सदा वरदाई, श्री रुधपत्ति सहाई जी।

गुरुपरम्परा पूर्वोक्त ही है अतः रघुपति, रुधपति और रूपवल्लभ एक ही व्यक्ति के अलग-अलग नाम हैं, वे विद्यानिधान के शिष्य थे और १८वीं उत्तरार्ध तथा १९वीं पूर्वार्द्ध के सशक्त साहित्यकार थे। आपकी गद्य रचना दुरिभर स्तोत्र बालावबोध की चर्चा पहले ही की जा चुकी है, अतः प्रमाणित होता है कि न केवल पद्य बल्कि गद्य के क्षेत्र में भी रचना-सक्षम थे। प्रस्तुत रचना उन्होंने पाठक दीपचन्द्र के आग्रह पर की थी, यथा —

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग ५, पृ० ३४२-३४७ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दान दया आसति मति आंणी, समकित नी सहि जांणी जी,
पा० दीपचंद आग्रह मन आंणी, अरु शिक्षा ने सहिजांणी जी।[1]

राजरत्न--ये तपागच्छ के आचार्य लक्ष्मीसागर सूरि की परम्परा में विवेकरत्न>श्रीरत्न>जयरत्न के शिष्य थे। आपने बीजापुर में 'राजसिंह कुमार रास' की रचना सं० १७०५ पौष १०, रविवार को पूर्ण की। इसका प्रारम्भ इस प्रकार है--

श्री ऋषभादि चौबीस जिणंद कि,
पय प्रणमुं मनि धरीय आनन्द कि,
सोहमादिक गणधर नमुं, जे जगि वंछित सुरतरु कंद कि,
सहिगुरु आण निज सिरि वंदु, कुमति वल्लीवन जेह गयंद कि,
रास गायसि नवकार नुं, जेह थी उपसमइ दुरगति दंद कि।

गुरुपरम्परान्तर्गत लक्ष्मीसागर सूरि, सुमति साधु, हेमविमल, सौभाग्यहर्ष, सोमविमल, हेमसोम, विमलसोम, विशालसोम के पश्चात् लक्ष्मीसागर सूरि के शिष्यों—चन्द्ररत्न, अभयभूषण, लावण्यभूषण, हर्षकनक, हर्षलावण्य, विजयभूषण, विवेकरत्न, श्रीरत्न और जयरत्न की लम्बी सूची दी गई है। रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है—

संवत सतर पचोतरा वरषिइ, पोस दसमि रविवार,
अे आख्यान संपूरण कीधूं बीजापुर नगर मझारि।

अन्तिम पंक्तियाँ—

पार्श्वनाथ पद्मावती देवी, आदिनाथ जिनराय,
तीरथ त्रिणि तेहनइ गरि विराजइ, प्रणमइ सीझइ काज।
अे आख्यान नवकार तणुं नरनारी भणइ निसि दीस,
राजरिद्धि सोभाग सबल सुख, पामइं सकल जगीस।

आपकी दूसरी रचना 'चोमासी देवनंदन' है, इसका आदि इन पंक्तियों से किया गया है –

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० ५७३-७४; भाग ३, पृ० १२४-१२५ और पृ० ३२५-३२८ भाग ३, पृ० १४५५ (प्र०सं०) तथा भाग ५, पृ० ३४२-३४७ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सकल सुख दातार सार, सेवक प्रतिपाल,
प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव प्रणमुं मणि काल।

× × × ×

श्री विशाल सोम सूरीसरु अे, अह निसि ध्याऊं ध्यान,
विमलाचल गिरि राजीओ, सुरनर करि गुणगान।
श्री विमलाचल राजीउ अे, प्रणमे सुरनर वृन्द,
राजरत्न उवझाय कहि, धनि धनि आदि जिणंद।

अन्त-- मनवचन हिआलिं. वीरनी सीष चालिं,
त्रिहु भोवन मांहि, हालि दुख दोभाग जालि।
सुभनयन निहालिं, भगति विघन दालिं।
संघना कोडपालि।[१]

स्पष्ट है कि यह रचना या आख्यान भी नवकार मन्त्र के महिमा की घोषणा करने के लिए दृष्टान्त स्वरूप ही लिखी गई है। राजसिंह कुमार की कथा उदाहरण है। काव्य का रस हो या न हो पर इस प्रकार की रचनाओं में आख्यान या कथा का आनन्द तो रहता है जिसकी मिठास में धार्मिक उपदेश रूपी औषधि को ग्राह्य बनाया जाता है।

राजलाभ--खरतरगच्छ के युगप्रधान जिनचंद्र सूरि के शिष्य तिलककमल > पद्महेम > दानराज > निलयसुन्दर > हर्षराज हुए। इनके गुरु हीरकीर्ति दानराज के शिष्य थे। राजलाभ की निम्नलिखित रचनाओं की सूची अगरचन्द नाहटा ने दी है - भद्रनंद संधि सं० १७२३ पोष शुक्ल १२, सोमवार; धन्ना शालिभद्र चौपाई सं० १७२६ आश्विन शुक्ल ५, वनाड़ ग्राम; गौड़ी छन्द (गाथा २८) सं० १७६५ श्रावण शुक्ल ७, केलाग्राम में राजसुन्दर के आग्रह पर लिखित), स्वप्नाधिकार (गाथा २३) सं० १७६५ श्रावण शुक्ल ७, केलाग्राम, बीशी और दानछत्रीसी सं० १७२३ माह वद २ सोम, वीर २७; भव स्तव (गाथा २९) सं० १७३४ भाद्र; उत्तराध्ययन ३६ गीत, इत्यादि।[२]

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई–जैन गुर्जर कवियो, भाग ३, पृ० ११४०-४२ (प्र०सं०) और वही भाग ४, पृ० १४४-१४६ (न०सं०)।
२. अगरचन्द नाहटा--परंपरा पृ० ९९।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इनमें से कुछ रचनाओं के उद्धरण और विवरण आगे प्रस्तुत किए जा रहे हैं, दानछत्रीसी का रचनाकाल देखिये—

संवत सतरह सै तेवीसे, माह बहुल तिथि बीजा जी,
वार सोम अे छान छत्तीसी, समकित तरु नो बीज जी।

गुरुपरम्परा—

वाचक हीरकीरत बड़भागी, ज्ञानक्रिया गुणधारी जी,
तासु सीस गुणहरष सोभागी, मनिहर्ष मतिसार जी।
तासु पसाये दान छत्रीसी, पभणे लाभ अेम जी,
भणे सुणे जे भवि भावे, रलीरंग सुखखेम जी।

वीर २७ भव स्तव—आदि—

पाय प्रणमुं रे महावीर शासन धणी,
चउवीसमो रे सिवसुखदायक सुरमणी।

रचनाकाल—

सतरइ सइ चउत्रीसइ रे लाल, भाद्रव मास उल्हास सु,
महावीर मइ भेटिया रे लाल, सकल फली मुझ आस सु।

कलश—

इम स्तव्यउ जिनवर सयल सुखकर मात त्रिशलानंदनो,
शुभ सींह लक्षण वरण कंचन भवियजन आनंद नो।
वा॰ हीरकीरति सीस वाचक राजहर्ष सुपसाय अे,
राजलाभ सेव्यां सदा जिनवर सुखसंपद पाव अे।

उत्तराध्ययन ३६ छन्द—

विनय करे जो साधो विनय करे जो,
मन मइ नवि अभिमान धरे जो।
सजोग अभ्यंतर वाह्य मुंके जे,
अनगार भिक्खु म विनय चूके जो।

× × × ×

उत्तराध्ययन मइ प्रथम अध्ययनइ,
विनयमारग प्रकास्यउ सहुनइ,
वाचक राजहर्ष तसु सीस,
राजलाभ पभणइ सुजगीस।[1]

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई–जैन गुर्जर कवियो, भाग ३, पृ॰ १२३२-३३ (प्र॰सं॰) और वही भाग ४ पृ॰ ३१८-१९ (न॰सं॰)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वीर २७ भवस्तव की रचनातिथि मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने कार्तिक शुक्ल ११ बताई है किन्तु उपरोक्त उद्धरण में स्पष्ट ही भाद्र मास का उल्लेख है।

हरकीर्ति का स्वर्गवास जोधपुर में सं० १९२९ में चतुर्मास के समय हुआ, उसी स्थान पर आपकी पादुका स्थापित की गई, उसी स्थापना के समय राजलाभ ने दो गीत लिखे थे। एक है 'हीरकीर्ति स्वर्ग गमन गीतम्' दूसरी रचना गुरु स्तुति है उसके आरम्भ की पक्ति है—

पदमहेम गुरु प्रवर सदा सेवक सुख आपै,
दानराज दिल साच सेवतां संकट कापै।

अन्त— इम ऋद्ध वृद्धि आणंद करौ सुख संतति द्यो संपदा,
राजलाभ कहै गुरुजी हुज्यो सेवक नुं सुप्रसन्न सदा।[1]

यह कुल दो ही पद्य का गीत है।

राजविजय—ये तपागच्छ के प्रसिद्ध आचार्य विजयदेव सूरि की शिष्य परम्परा में ऋद्धिविजय>सुखविजय>तिलकविजय>हर्षविजय के शिष्य थे। विजयदेव या विजयदया का सूरित्व काल सं० १७८५ से १८०९ तक था। राजविजय की एक बड़ी रचना 'शीलसुन्दरी रास' है जो ३८ ढालों में बद्ध ८५६ कड़ी की है। इसकी रचना सं० १७९० आसो शुक्ल दसमी, रविवार को सांतलपुर में पूर्ण हुई। इसके प्रारम्भ में परब्रह्म परमात्मा की स्तुति की गई है, यथा—

त्रिहु जग नो शंकर अछे, तीण गुण करी हीन,
अेहवुं जे कोइ रूप छे, नभीये तस थइ दीन।
परब्रह्म परमात्मा, शुद्ध परम शुभ रूप,
अनुभव विण किम वेइअे आप अरूपी रूप।

कवि पर रहस्यवादी भक्ति-परम्परा का प्रभाव परिलक्षित होता है, यथा—

अगणित गुण गण जेहना, नवी सके करी लक्ष,
अनुभव सर पंकज समा, भविजन ने प्रत्यक्ष।
मनमन्दिर प्रगट्यो हवे, ज्ञान रयण उद्योत,
घट तट स्थिति न्य लख्यो, उदयी अनुभव ज्योत।

१. ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह 'हीरकीर्ति स्वर्गगमनगीतम्'।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसमें शील का महत्व दर्शित है, यथा—

च्यार सम तो पिण इहां, शील तणो अधिकार,
शील लता सुख पामीयो, शील थकी सुखकार।
ब्राह्मी चंदन बालिका सारिखी गुण गेह,
सरस कथा श्रोता सुणो आणी मन में अेह।

गुरुपरम्परान्तर्गत उपरोक्त गुरुओं का सादर स्मरण प्रस्तुत रास में किया गया है।

रचनाकाल--

संवत संयम गगन अने ग्रह, अे संवच्छर जाणो जी,
आसो सुदि दसमी रविवारे, पूरण ग्रन्थ प्रमाणो जी।
श्री श्रीविजयदया सूरि राजे, शांतलपुर चोमासो जी,
शांतिनाथ जिनवर प्रासादे, रास रच्यो उल्लासें जी।
ढाल अड़त्रीस मी पूरी भाखी, राजविजय हित आंणी जी,
मनथिर राखी सतीय तणा गुण सांभलज्यो नरनारी जी।
लीला लखमी अविचल लहस्यो, जिम गगने ध्रूतारा जी।

यह कथा शीलतरंगिणी से ली गई है जिसमें शीलसुंदर और सुरसुन्दरी का आख्यान है, कवि इस सम्बन्ध में लिखता है--

शीलसुंदर सुरसुंदरी नारी, हुइ अवसर लटकाली जी,
तेह विदेह थी मोक्षे जास्ये, सूधो संजम पाली जी।
सतीय तणा गुण में तो गाया, पावन कीधी जीहा जी,
उत्तमना गुण वर्णन कीजे, धन धन छे दी जीहाजी।
शील तरंगिणी मांहे अे छे प्रगट पणे अधिकारो जी,
सरस कथा अे ठामे ठामे, वीजा प्रकरण मझारो जी।[1]

राजसार--आप युगप्रधान जिनचन्द्र सूरि की परम्परा में धर्मसोम के शिष्य थे। इन्होंने सं० १७०२ में पुण्डरिक कुंडरिक सन्धि अहमदाबाद में, सं० १७०४ में कुलध्वजकुमार रास हाजी खानडेरा में और सं० १७०९ में धन्यचरित्र चौपई की रचना की।[2] श्री देसाई ने

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई--जैन गुर्जर कवियो, भाग ३, पृ० १४६५-६७ (प्र०सं०) और वही भाग ५, पृ० ३४७-३४९ (न०सं०)।
२. श्री अगरचन्द नाहटा--परंपरा, पृ० १०७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुलध्वजकुमार रास के अनुसार इनकी गुरुपरम्परा में युगप्रधान जिनचन्द्र के पश्चात् धर्मनिधान, धर्मकीर्ति, विद्यासार और धर्मसोम का नाम बतलाया है। परन्तु यह अस्पष्ट है कि राजसार के गुरु विद्यासार हैं अथवा धर्मसोम ? सम्बन्धित पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

धर्म कीरति धर्म करीरे, विविध विचार प्रधान,
तासु शिष्य ने गुरु माहरा रे, वाचक विद्यासार।
धर्मसोम बहुश्रुत धरु रे जयवंता जयकार।

कुलध्वजकुमार रास की रचना सं० १७०४, आसो शुक्ल १५, रविवार को हाजी खानडेरा में हुई, यह १७ ढाल २५३ कड़ी की रचना है। रचनाकाल एवं स्थान इस प्रकार उल्लिखित है—

संवत सागर नभ मुनि शशि समें (१७०४) अेह कीयो अधिकार,
आसू पूनिम आदित वासरे रे, सुणतां अे सुखकार।
हाजीखान डेरा हरष सुं रे, चउपी कीधी वाह,
राजसार मुनि रंगइ करीरे, अधिके मन उच्छाह।

स्वयं कवि ने इसे चउपी (चौपाई) कहा है जबकि नाहटा और देसाई दोनों इसे रास कहते हैं, लगता है कि इस समय तक आते-आते रास चौपाई में कोई अन्तर व्यावहारिक स्तर पर नहीं रह गया था। इसमें शील का महत्व व्यक्त करने के लिए कुलध्वजकुमार का आख्यान दृष्टान्त रूप से प्रस्तुत किया गया है। कवि ने लिखा है—

सीले संपति संपजे, भला लहे सुखभोग;
कुमर कुलध्वज जिम लह्या, सील तणे संयोग।

इस कृति का मंगलाचरण निम्न पंक्तियों से प्रारम्भ हुआ—

पारसनाथ प्रगट प्रभु, अलवेसर आधार,
गोड़ीपुर में गाजतो, जपतां हुवे जयकार।
शारद वलि समरी करी, जोतिरूप जगि मांहि,
कवियण कइ सुखसिद्धि करी, पणमी परम उच्छाह।

यह रचना जिनरतन सूरि के समय की गई थी—

वर्तमान जिनरतन सूरीसर रे, राजे धरि मनरंग,
चउपी कीअे मेलि चुंप सु रे, सुणतां हुवे शुभ संग।[1]

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० १६९-१७१ (प्र०सं०) और वही भाग ४, पृ० १४२-१४३ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इनकी अन्य दो रचनाओं का विवरण-उद्धरण न तो नाहटा ने और न देसाई ने ही दिया है। मुझे उनकी हस्तप्रतियाँ नहीं प्राप्त हो सकीं इसलिए उनके उद्धरण देना सम्भव नहीं हो सका।

राजसुन्दर--ये खरतरगच्छीय हीरकीर्ति 7 राजहर्ष > राजलाभ के शिष्य थे। इन्होंने सं० १७७२ मागसर शुक्ल अथवा सं० १७७३ में 'चौबीसी' की रचना की। नाहटा ने चौबीसी का रचनाकाल सं० १७७२ बताया है।[1] इसमें २५ स्तवन हैं। इसके छः पत्रों की एक प्रति महिमा शक्ति भण्डार में उपलब्ध है। यद्यपि नाहटा जी ने रचनाकाल संबंधी कोई उद्धरण नहीं दिया है, परन्तु यह निर्णय उन्होंने किसी आधार पर लिया होगा। देसाई ने भी रचनाकाल सं० १७७२ बताया है किन्तु उन्होंने भी उद्धरण नहीं दिया है। उन्होंने सं० १७७३ में क्षमाधीर द्वारा लिखित प्रति का हवाला दिया है।[2] जैन गुर्जर कवियो के प्रथम संस्करण भाग ३ पृ० १४२३ पर कोई रचनाकाल नहीं दिया था, किन्तु नवीन संस्करण के सम्पादक ने सं० १७७२ दिया है, साथ ही उसे शंकास्पद भी बताया है। जो हो, यह रचना सं० १७७३ से पूर्व की अवश्य है। क्षमाधीर राजलाभ गणि के शिष्य थे। उन्होंने यह प्रति अहमदाबाद में सं० १७७३ चैत्र शुक्ल द्वितीया को लिखी थी। इसके आदि की पंक्तियाँ निम्नांकित हैं--

सरस वचन द्यो सरसति, गायसुं श्री जिनराय,
सनेही साहिबा।
आदे आदि जिनेसरु, तारण तरण जिहाज,
सनेही साहिबा।

× × × ×

सखीय सहेली सवि मिली, पूजै प्रथम जिणंद,
सनेही साहिबा।
राजलीला अविचल सदा, गावौ गुण भागचंद,
सनेही साहिबा।

---

१. अगरचन्द नाहटा--परंपरा पृ० ९९।
२. मोहनलाल दलीचन्द देसाई-जैन गुर्जर कवियो, भाग ३, पृ० १४२३ (प्र०सं०) और वही भाग ५, पृ० २८८ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुरुपरम्परा--

श्री खरतर जिनसुख सूरिंदा, प्रतपो जिम रविचंदा जी,
वाचक हरकीर्त्ति गुणवृन्दा, राजहर्ष सुखकंदा जी।
तासु सीस वाचक पदधारी, राजलाभ हितकारी जी,
तासु चरण कमल अनुचारी, राजसुन्दर सुविचारी जी।
गुरुमुखि ढाल सुणी जे गावे, ते परमारथ पावे जी,
भणतां गुणतां वधते भावै, आरत दूरे जावै जी।

राजसोम--ये खरतरगच्छ के समयसुन्दर के प्रशिष्य एवं जयकीर्ति के शिष्य थे। इन्होंने गद्य और पद्य दोनों साहित्य-रूपों में साहित्य सृजन किया है। इन्होंने कल्पसूत्रान्तर व्रतचवदह स्वप्न का विवरण मरुप्रधान पुरानी हिन्दी में सं० १७०६, जैसलमेर में लिखा। इन्होंने सं० १७१५ में श्रावक आराधना भाषा तथा पंचसंधि व्याकरण बाला० और इरियावही मिथ्या दुष्कृत बाला० भी लिखा।[1]

पद्य में आपने अनादिविचार चौपाई सं० १७२९ सांगानेर, पद्मप्रभ स्तवन और सूसढ़ रास नामक वृहद् काव्य लिखा है। इनकी एक अन्य रचना 'उंदर रासो' भी प्राप्त है, किन्तु इनकी किसी रचना का उद्धरण प्राप्त नहीं हो सका है। श्री देसाई ने इनकी गुरपरम्परा में समयसुन्दर, हर्षनन्दन और जयकीर्ति का उल्लेख किया हैं। उन्होंने भी इनकी श्रावकाराधना (भाषा) और इरियावही मिथ्या दुष्कृत स्तवन बालावबोध का मात्र नामोल्लेख किया है।[2]

राजहर्ष--खरतरगच्छ के आचार्य कीर्तिरत्न सूरि शाखा के उपाध्याय ललितकीर्ति आपके गुरु थे। इन्होंने 'थावच्या सुकोशल चौपई सं० १७०३ या १७०७ में लिखी, इसी प्रकार श्री नाहटा ने इनकी दूसरी रचना अरहन्ना चौपई का भी रचनाकाल सं० १७२४ और १७३२ दोनों बताया है।[३] उन्होंने इनकी एक अन्य कृति नेमिफाग का भी उल्लेख किया है।

१. अगरचन्द नाहटा--परंपरा पृ० १०९-११०।

२. मोहनलाल दलीचन्द देसाई--जैन गुर्जर कवियो, भाग ३, पृ० १६२२ (न०सं०) और वही भाग ४ पृ० १४९ (न०सं०)।

४. अगरचन्द नाहटा--परंपरा पृ० १०७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री देसाई ने 'थावच्या शुकसेलग चोपाई' नाम बताया है, यह रचना २५ ढाल की है। इसका रचनाकाल देसाई ने सं० १७०३ मागसर, शुक्ल १३ सोमवार और रचनास्थान बीकानेर बताया है, इसके प्रमाण में उन्होंने संबंधित पंक्तियाँ उद्धृत की हैं, यथा—

संवत सतरइ सै वरसे त्रिडोत्तरइजी बीकानेर मझारि,
मोटो संघ सदा श्री बीकानेर नो जी जीवदया प्रतिपाल।

इसमें गुरुपरंपरान्तर्गत कीर्तिरत्न, हर्षविशाल, हर्षधर्म, साधुमंदिर>विमलरंग, लब्धिकल्लोल और ललितकीर्ति का वंदन किया गया है। इसकी अन्तिम पंक्तियों में राजहर्ष ने अपने गुरुभाई पुण्यहर्ष का भी उल्लेख किया है, यथा—

जेहनो भाई पुण्यहरष विद्यानिलो जी सहुजाणें संसार,
तेहनी सांनिधि लहिरि कीधी चौपाई जी, राजहरष सुखकार

आपकी दूसरी रचना अर्हन्नक चौपई का रचनाकाल देसाई ने सं० १७३२ महा शुदी १५ गुरुवार और स्थान दंतवासपुर बताया है, संबंधित पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

तिहां थकी उद्धर्योअे, सत्तर सें बत्तीस,
माह सुदी पूनमे अे, गुरु पुष अेह जगीस।
दंतवासपुर सुदीपतो अे, जिहाँ चिंतामणि पास,
सूधे मन सेवता अे, अविचल लीलविलास।

यह रचना उत्तराध्ययन पर आधारित है, यथा—

आगम उत्तराध्ययन ना टीका छे परबंध,
कथा चोथी कही अे, वीय अज्जयण संबंध।

इसमें अरहन्ना ऋषि की कठिन साधना का वर्णन किया गया है--

अरहन्ना रिषि वंदीये अे, लघुवय चारित पात,
कठिन किरिया करी अे, कंचन कोमल गात।[1]

इसकी प्रारंभिक पंक्तियाँ आगे दी जा रही हैं—

श्री फलवधि प्रणमुं सदा, परतखि पारसनाथ,
सुखदाइक सांचोधणी, सहू बोले ससमाथ।

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग ४, पृ० ७१-७४ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गौतमादि गणधर नमी, प्रणमी श्री गुरुपाय,
अरहन्नक अणगारना, गुण कहिस्युं चितलाय।

नेमि फाग नेमिनाथ के आकर्षक चरित्र पर आधारित सरस रचना है। इसके आदि-अंत की पंक्तियाँ दी जा रही हैं--

आदि-भोगी रे मन भावीयो रे, आयो मास वसंतो रे,
नर नारी बहु प्रेम सुं, केलि करे गुणवंतो रे,
फाग रमे मिली यादवा।

अंत-समुद्रविजय सुत नेमिजी, जीव सकल प्रतिपाल,
राजहरष बहुभाव सुं, गायो फाग रसालो रे।[1]

यह रचना 'जैन सत्यप्रकाश' वर्ष १४ अंक ६ में प्रकाशित है। इसमें गुरुपरंपरा नहीं है इसलिए यह इन्हीं राजहर्ष की रचना है अथवा किसी अन्य राजहर्ष की यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता।

रामचन्द्र 'बालक'--दिगम्बर सम्प्रदाय के विद्वान् रचनाकार थे। इन्होंने सं० १७१३ में 'सीताचरित की रचना की। इसमें महासती सीता का चारित्रिक गुण, विशेषतया सतीत्व की महिमा का वर्णन है। मानव मनोभावों का हृदयस्पर्शी विश्लेषण, वस्तुव्यापार वर्णन, करुण वीर और शांतरसों की मार्मिक निष्पत्ति, सशक्तभाषा शैली आदि विशिष्ट गुणों के कारण यह जैन प्रबन्ध काव्यों में श्रेष्ठ स्थान का अधिकारी ग्रन्थ है। यह ३६०० पद्यों का विस्तृत महाकाव्य है, इसकी रचना तिथि इस प्रकार बताई गई है—

संवत सतरह सरोतरे, मगसिर ग्रन्थ समापित करे।[2]

यह सीताचरित के अंतिम पृष्ठ की पंक्ति है। रचना सर्गबद्ध नहीं है फिर भी वाल्मीकि रामायण या तुलसीकृत रामचरितमानस की तुलना में इसका कथानक अनेक नवीन उद्‌भावनाओं और विविध

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग २ पृ० १२५-१२६ और वही भाग ३, पृ० ११८१-८२ (प्र० सं०) तथा भाग ४ पृ० ७१-७४ (न० सं०)।

२. डा० लालचन्द जैन--जैन कवियों के ब्रजभाषा प्रबन्धकाव्यों का अध्ययन पृ० ६७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रसंगों के कारण विशिष्ठ बन गया है। इसकी प्रति दिगम्बर जैन मंदिर, वासन दरवाजा, भरतपुर (राजस्थान) से प्राप्त हुई।

रामचन्द्र—पार्श्वचन्द्रगच्छ के हीराचन्द्र > चन्द्र के शिष्य थे। इन्होंने दिगम्बर साधु नेमिचन्द्र कृत द्रव्यसंग्रह पर 'द्रव्यसंग्रह बालावबोध' लिखा। इस लेखक और इसकी रचना का अन्य विवरण एवं उद्धरण नहीं मिला, यद्यपि इसकी चर्चा देसाई और नाहटा दोनों ने की है।[1]

रामचन्द्र चौधुरी—आपकी एक सामान्य कृति 'चतुर्बिंशति जिन पूजा', जो एक प्रकार की 'चौबीसी' है, का उद्धरण देसाई ने दिया है। इसके आदि और अंत की पंक्तियाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ—

आदि—सिद्धि बुद्धिदायक कर्मजित भरमहरण भयभंजन,
चउबीसू जिन द्यउ मुझइ ज्ञान नमूँ पदकंज।

अंत-वृषभ आदि चउबीस जिनेश्वर ध्यावही,
अर्घ्य करइ गुण गाय तूर बजावही।
ते पावइ सिव सर्म भक्ति सुरपति करइ,
रामचन्द्र सकताही कीर्ति जग विस्तरइ।

इति श्री चतुर्विंशति पूजा चौधरी रामचन्द कृत संपूर्ण।[2]

रामचन्द्र—इनके गुरु खरतरगच्छ के प्रधान जिनसिंह सूरि के शिष्य पद्मकीर्ति के शिष्य पद्मरंग थे। पद्मकीर्ति को कवि ने चौदह विद्याओं में पारंगत और चारों वेदों का अर्थ पहचाननेवाला बताया है, यथा—

श्री जिनसिंह सूरि सुखकारी, नाम जपैं सब सुर नरनारी,
जाकै शिष्य सिरोमण कहिये, पद्मकीर्ति गुरुवर जसु लहिये।
विद्याच्यार दस कंठ बखाणै, वेद च्यार को अरथ पिछानै।
पद्मरंग मुनिवर सुखदाई, महिमा जाको कही न जाई।

---

१. (अ) अगरचन्द नाहटा—राजस्थान का जैन साहित्य पृ० २३२।
(ब) मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग ३, पृ० १६२८ (प्र०सं०) और वही भाग ४ पृ० ३०५ (न०सं०)।

२. वही, भाग ५, पृ० ४२०-४२१ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कवि इन्हीं पद्मरंग का शिष्य था। श्री अगरचन्द नाहटा ने बताया है कि इन्होंने सं० १७११ में 'मूलदेव चौपई' की रचना तोहर नामक स्थान में की और श्रीपाल चौपई सं० १७२५, बीकानेर में लिखी। इन्होंने दस पच्चखाण स्तव, सम्मेत शिखर स्तव, आदिनाथ स्तव के अलावा रामविनोद, वैद्यविनोद नामक वैद्यक ग्रंथ तथा सामुद्रिक भाषा नामक सामुद्रिक शास्त्र संबंधी ग्रन्थ भी लिखा[1] अर्थात् ये भी अपने गुरुओं के समान काव्य, शास्त्र, वैद्यक और ज्योतिष आदि के पारंगत विद्वान् तथा लेखक थे।

मिश्रबन्धु विनोद में इनका नाम 'रामचन्द्र साकी बनारस वाले' दिया गया है।[2] किन्तु बनारस के नहीं थे। रामविनोद चौपई में इन्होंने अपने को मिश्र केशवदास सुत तथा अपना नाम मिश्र रामचन्द्र बताया है। काशी नागरी प्रचारिणी सभा के खोज विवरण में इन्हें जैनेतर बताया गया है।[3]

परदुख भंजण के लियै, कीयो मिश्र रामचन्द्र,
ग्रन्थ रच्यो हे सुखदा, जांलगिध्रू रविचंद।

इति मिश्र केशवदास सुत रामचन्द्रेण विरचिते श्री रामविनोदे··· कवि ने स्वयं गुरुपरंपरा दी है, यथा—

कोटिगच्छ खरतर परधान श्री जिनसिंह सूरि राजान,
रंजे जिण अकबर साह सलेम, करामात दिखलावै अेम।

अतः वह अवश्य ही जैन होगा। पर शंकास्पद बातें भी कई हैं, इसमें तीर्थंकरों, गणधरों की नहीं बल्कि 'गवरीपुत्र गणेश' की वंदना है। धन्वन्तरि के चरणयुग को प्रणाम करके यह वैद्यक ग्रन्थ प्रारंभ किया गया है। कवि ने रचनाकाल १७२० मागसर शुक्ल १३ बुद्धवार बताया है, यथा—

गगनं पाणि फुनि द्वीप शशि, हिमरितु मगसिर मास
शुक्ल पक्ष तेरसि दिने, बुधवार जिन जास।

यह रचना शाह औरंगजेब के समय की गई और उसके शासन सुव्यवस्था की प्रशंसा भी की गई है, यथा—

१. अगरचन्द नाहटा – परंपरा पृ० १०६।
२. मिश्रबन्धु—मिश्रबन्धु विनोद, भाग २ पृ० ४६६।
३. काशी नागरी प्रचारिणी सभा – खोज विवरण भाग ८ पृ० ४६५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मरदानौ अरु महाबली अवरंग साहि नरंद,
तास राज मैं हर्ष सुं, रच्यो शास्त्र आनंद।

यह रचना खुरासांन देशान्तर्गत बन्नू प्रदेश के सक्की नामक स्थान में की गई थी शायद इसीलिए मिश्र बन्धुओं ने इनका उपनाम 'साकी' समझ लिया हो। पंक्तियाँ इस प्रकार है--

उत्तर दिसि खुरसांन मैं, बानू देस प्रधान,
सजलभूमि रै सर्वदा, सक्की सहर सुभथान।[1]

इनके मूल स्थान का निश्चय नहीं हो सका है, रायबहादुर हीरालाल कटनी ने इनकी भाषा के आधार पर इन्हें राजस्थानी कहा है और नाहटा जी भी ऐसा ही मानते हैं। यह वैद्यक ग्रंथ है, जैसा स्वयं कवि कहता है—

श्री धन्वंतर चरण युग प्रणमु धरी आणंद;
रोग नसै जसु नाम थी, सब जन कौ सुखकंद।
विविध शास्त्र देखी करी, सुखम करु अधिकार,
राम विनोदह ग्रंथ यहु, सकल जीव सुखकार।

इसमें एक जगह रचनाकाल 'संवत सोलह सै वीसा' भी दिया हुआ है किन्तु वह पाठ अशुद्ध प्रतीत होता है, रचना औरंगजेब के शासन काल की है अतः सं० १७२० की ही हो सकती है।

'रामविनोद स्वोपज्ञ हिन्दी टीका' भी इनकी लिखी बताई गई है किन्तु रचनाकाल सं० १७१९ माघ शुक्ल १३ बुद्ध दिया है जो सही नहीं हो सकता क्योंकि यदि मूल रचना १७२० की है तो टीका १७१९ की कैसे हो सकती है। इसका आदि देखिये—

अथ रामविनोद ग्रंथ वचनिका वंध वार्त्ता लिख्यते।

अथ प्रथम श्री गणेश जी की स्तुति लिखिये है। कैसे हैं गणेश जी, ऋद्धि सिद्धि के देणहार हैं।

अन्त—श्री कोटिकगण श्री खरतरगच्छे श्री जिनसिंह सूरि भट्टारक कैसे हुअे अकबर पातिसाह कु साह सलेम जहांगीर तिनहू ने जिनसिंह सूरि भट्टारक कुं आपके हाथ ठीक दिया तखतं वैणय समातिक हुइं तिसकै चेला पद्मकीर्ति हुए। माहर वैद्यविद्या में निपुण

1. डा० प्रेमसागर जैन--हिन्दी जैन भक्तिकाव्य और कवि, पृ० २४२-२४३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भये । तिसके पाट पद्मरंग जी हुआ तिसका चेला रामचन्द्र हुआ तिसने सं० १७१९ मृगसिर सुदि तेरस बुद्धिवार के दिन यह ग्रन्थ टीका पूरण किया। वैद्यक सम्बन्धी एक अन्य ग्रंथ 'नाड़ी परीक्षा' भी आपने लिखा है ।[1] जिसकी प्रारम्भिक पंक्तियां इस प्रकार हैं--

सुभमति सरसति समरीयै, शुद्ध चित्त हित आन;
प्रगट परीक्षा जीवनी, लहीयो चतुर सुजाण ।

१३ गाथा की एक छोटी रचना 'मान परिमाण' भी आपने की है। वैद्यक सम्बन्धी एक अन्य विस्तृत रचना आपकी उपलब्ध है जिसे 'सारंगधर भाषा' अथवा वैद्यविनोद (वैद्यक) कहा गया है, यह रचना सं० १७२६ वैशाख १५ भरोट में की गई थी । कवि ने लिखा है--

विविध चिकित्सा रोग की करी सुगम हित आंणि,
वैद्यविनोद इण नाम धरि, यामै कीयो बखाण ।
या सारंगधरभाषा कीयौ, वैद्यविनोद रसाल
भेद ज इणकै सुणत ही, पंडित होइ सुचाल ।
पहिली कीनौ रामविनोद, व्याधि निकंदण करण-प्रमोद,
वैद्यविनोद यह दूजा कीया, सजन देखि खुसी होइ रहीया ।

इसमें भी ऊपर दी गई गुरुपरंपरा बताई गई है । रचनाकाल इस प्रकार बताया है--

रस दृग सायर शशि भयौ रितु वसंत वैशाख,
पूरणिमा शुभ तिथि भली, ग्रन्थ समाप्ति इह भाख ।
साहि न साहिपति राजतौ औरंगजेब नरिंद,
तास राज मै अे रच्यो, भलो ग्रंथ सुखकंद ।

आपने सामुद्रिक भाषा की रचना सं० १७२२ माघ कृष्ण ६ को मेहरा में की जो पजाब में वितस्ता नदी के किनारे एक सुन्दर नगर था । आपने काव्य संबंधी ग्रन्थोंका प्रणयन किया है । जिनमें दो चरित संबंधी चौपाई है और तीन स्तवन हैं । स्तवन हैं--दस पच्चखाण स्तवन, समेत शिखर स्तवन और आदिनाथ स्तवन । चरित काव्यों में मूलदेव चौपई और श्रीपाल चौपई का पता चलता है । मूलदेव चौपई सं० १७११ कार्तिक नवहट में जिनचंद्र सूरि के राज्य में लिखी गई ।

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई--जैन गुर्जर कवियो, भाग ४, पृ० १७२ (न०सं०) ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री प्रेमसागर जैन ने इसका रचनाकाल सं० १७११ फाल्गुन बताया है। श्रीपाल चौपाई की चर्चा नाहटा ने की है और रचनाकाल तथा स्थान क्रमशः सं० १७२५, बीकानेर बताया है। अन्य विवरण-उद्धरण नहीं दिया है। इसी प्रकार मिश्रबन्धुओं ने इनकी रचित जंबूचरित का उल्लेख किया है किन्तु परिचय नहीं दिया है। अतः इन चरित काव्यों का विशेष विवरण-उद्धरण देना सम्भव नहीं हो सका है। मूलदेव चरित एक ऐतिहासिक काव्य है जिसमें मूलदेव का चरित्र वर्णित है। स्तवनों में दस पच्चखाण गर्भित वीर स्तवन ३३ कड़ी की रचना है जो सं० १७३१ पोष शुक्ल दसमी को पूर्ण हुई थी। इसका आदि देखें--

श्री सिद्धारथनदन नमुं, महावीर भगवंत,
त्रिगटइ वइण जिनवरु परखद बार मिलंत।

रचनाकाल--

संवत विधि गुण अश्व शशि, वलि पोस सुदि दसमी दिनइ,
पदमरंग वाचक सीस गणिवर रामचन्द्र तपविधि भणइ।[1]

यह रचना चैत्य आदि संज्झाय भाग १ तथा अभयरत्नसार आदि में प्रकाशित है।

सम्मेद शिखर स्तवन (सं० १७५०) में जैनों के प्रसिद्ध तीर्थ क्षेत्र सम्मेद शिखर की स्तुति है। यहाँ जैनों के २० तीर्थङ्करों का निर्वाण हुआ था। इसलिए इसकी महत्ता और पवित्रता की सभी मुक्तकंठ से सराहना करते हैं। बीकानेर आदिनाथ स्तवन सं० १७३० जेठ सुदी १३ की रचना है। इसमें बीकानेर में स्थित आदिनाथ की वंदना है।

इनके कुछ पद भी प्राप्त हैं जिनमें भक्ति, लालित्य एवं मधुर कल्पना की झलक एकत्र मिलती है। कवि जिनराज का भक्त है और कहता है—

अब जिनराय मिलिया, गुण गणधर सुन्दर अनूप,
जबलौं भेद लह्यौ नहि प्रभु को गति गति में अतिरुलिया।

× × × ×

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० ३०७-३०८ भाग ३, पृ० १३८, १२९६, १३०१ और वही भाग ४, पृ० १७१-१७५ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चरन कमल पूजत थिरता लहि, एक अहं सुधि झिलिया,
रामचन्द्र गुन बरनत ही सकल पाप टलि चलिया ।

इन्होंने आदि जिन ऋषभ के तपसी भेस की भव्यता का वर्णन करते हुए लिखा है—

चलि जिन आदि देखै, सुर गन खग वंदित सभूय
सकल संग तजि त्रणवत् वन में नगन चिदावम पेषै ।
रामचन्द्र धनि दानी कहै सुररतन वृष्टि करि पेषैं ।[1]

रामविजय—तपागच्छ के विमलविजय आपके गुरु थे। आप ख्यातिलब्ध सुकवि थे और आपकी कई रचनाएँ प्रकाशित हैं। प्रसिद्ध रचनाओं का विवरण आगे दिया जा रहा है। 'बाहुबल स्वाध्याय' (सं० १७७१, भाद्र शुक्ल १, रवि) का आदि—

स्वस्ति श्री वरवा भणि, पणला रीषभ जिणंद,
गायस्यु तस सुत अतिबलि, बाहुबलि मुनिचंद ।
भरते साठि सहस बरस, साध्यां षट खंड देश;
अछि ऊछव आणंद स्यु, वनिता किध परवेश ।

रचनाकाल—

ऋषभजिन पसाय इण परे, संवत सतर अकोतरे,
भादर सुत पडवा दिने रविवार ऊलटभरे ।

गुरुपरम्परा—

विमलविजय उवझाय सदगुरु शिष्य तस शुभवरे,
बाहुबल मुनिराय गातां, रामविजय जयजयवरे ।

यह रचना 'जैन संज्झाय संग्रह' (साराभाई नवाब) और मोटुं संज्झाय माला संग्रह में प्रकाशित है।

गौडी पास स्तवन (अथवा छन्द) ६३ कड़ी, सं० १७७२, विजयादशमी ।

रचनाकाल—

नयणां मुनि मुनि चंद वरसे विजेदशमि दिने,
रचिओ रंगे छंद कमलाकीर्ति संनिधि ।

१. डा० प्रेमसागर जैन—हिन्दी जैन भक्तिकाव्य और कवि, पृ० २४२-२४७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रोहिणी संञ्झाय— अंतिम पंक्ति—

विमलविजय उवझाय नो सीस, रामविजय लहे सकल जगीस।
यह भी तीर्थमाला में संग्रहीत है।

महावीर जिन पंच कल्याणक (सं० १७७३ आषाढ़ शुक्ल ५, सुरत)
रचनाकाल—

अेम चरम जिणवर सयल सुखकर थुण्यो अति ऊलटभरे,
आषाढ़ उज्ज्वल पंचमी दिन संवत सत्तर तिहोत्तरे।

यह कृति चैत्य आदि संञ्झाय भाग ३ तथा अन्यत्र से भी प्रकाशित है। २४ तीर्थङ्कर आंतरानुं स्तव (१७७३ सुरत)

आदि— सारदा सारदा ने सूमरे, पद पंकज पणमेव
चोवीसे जिन वरणवु, अंतरजूत संखेव।

रचनाकाल—

चोवीस जिनवर तणो अंतर भणो अति उल्लास अे,
संवत सतर तोतेरे अेम रही सूरत चोमास अे।

यह रचना जिनेन्द्र भक्ति प्रकाश और चैत्य आदि संञ्झाय भाग ३ तथा अन्यत्र से भी प्रकाशित एवं लोकप्रिय है।

विजयरत्नसूरि रास (सं० १७७३ भाद्र कृष्ण २ के पश्चात्) यह एक[1] महत्वपूर्ण रचना है। यह 'जैन ऐतिहासिक गुर्जर काव्य संचय' में प्रकाशित है। इसमें विजयरत्न की गुणावली और उनका इतिवृत्त वर्णित है। इसका प्रारम्भ इन पंक्तियों से हुआ है—

सुप्रसन्न आल्हादकर, सदा जास मुखचंद[2],
वंछित पूरण कल्पतरु, सेवक श्री जिनचंद।

इसमें विजयरत्न और रत्नविजय दोनों नाम मिलते हैं। रास द्वारा सूचना मिलती है कि आप साह हीरा और हीरदे के तीसरे पुत्र थे। पति की मृत्यु के पश्चात् हीरदे ने तीसरे पुत्र जेठो को जूनागढ़ जाकर विजयप्रभ सूरि को सौंप दिया, उन्होंने दीक्षा दी और नाम जिनविजय

---

१. सम्पादक मुनिजिनविजग जैन—ऐतिहासिक गुर्जर काव्यसंचय विजयरत्न सूरि रास, पृ० ३७-४५।

२. श्री मोहनलाल दलीचंद देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग ५, पृ० २८१-२८४ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिया। सं० १७३२ जूनागढ़, में इन्हें सूरिपद देकर नाम विजयरत्न रखा गया। राणा अमरसिंह, रावल खुमाण सिंह और आजमशाह आदि इनका सम्मान करते थे। जोधपुर के महाराज अजीत सिंह के ये विशेष आदर भाजन थे। यह रचना विजयक्षमा सूरि के समय हुई। इनका स्वर्गवास सं० १७७२ भादो शुक्ल अष्टमी को हुआ था। इसके आदि में लिखा है--

गास्युं गिरुआ गच्छपति, श्री रत्नविजय सूरींद।

और कलश में कहते हैं--

विजयरत्न सूरिंद सुन्दर गच्छ गयण दिवायरो,
जगचित्तरंजन कुमतिभंजन कुल पयोज कलाधरो।
संपत्तिदाता सुखविधाता कुसलवल्लि पयोहरो,
तस चरण सेवक रामविजये गायो गुरु गुरु जयकरो।[1]

चौबीसी-आदि--हां रे आज मलिओ मुझनें तीन भुवन नो नाथ जी,

अन्त-- आज सफल दिन माहरो अे,
भेट्यो वीर जिणंद के, त्रिभोवन नो धणी अे।

यह रचना चौबीसी-बीसी संग्रह पृ० ४५२-४६९ और स्तवन मंजूषा में भी प्रकाशित है।[2] इन कृतियों की भाषा को प्राकृताभास रूप देने के लिए काफी तोड़ा मरोड़ा गया है यथा दिवायरो, पयोहरो, गयण आदि क्रमशः दिवाकरो, पयोधर और गगन के लिए प्रयुक्त शब्द हैं।

रामविजय(रूपचंद)-आप खरतरगच्छीय प्रसिद्ध कवि जिनहर्ष>सुखवर्द्धन>दयासिंह के शिष्य थे। इनका जन्म नाम रूपचंद था और ये ओसवाल आंचदिग्या गोत्र के वैश्य थे। आपका जन्म सं० १७४४ में और दीक्षा सं० १७५१, वैशाख कृष्ण द्वितीया को जिनचंद्र सूरि द्वारा हुई। उसी समय इनका दीक्षा नाम रामविजय पड़ा था। अपनी रचनाओं में ये अपना नाम रामविजय और रूपचन्द दोनों दिया करते थे। आपने गद्य के क्षेत्र में अधिक कार्य किया और अनेक भाषा टीकायें लिखीं। ये व्याकरण एवं ज्योतिष के अच्छे जानकार

१. सम्पादक मुनि जिनविजय-जैन ऐतिहासिक गुर्जर काव्यसंचय पृ० ३७-४४
२. मोहनलाल दलीचंद देसाई-जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० ५२१-५२३ और भाग ३, पृ० १४३४ तथा वही भाग ५, पृ० २८१-८४(न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थे। संस्कृत में इन्होंने गौतमीय काव्य और संस्कृत गद्य में गुणमाल प्रकरण नामक ग्रंथ लिखा है। इनकी मरुगुर्जर गद्य और पद्य में अग्रलिखित रचनाएँ प्राप्त हैं 'भर्तृहरि शतक त्रय बालावबोध १७८८ सोजत; अमरशतक बालावबोध १७९१ सोजत; समयसार बालावबोध १७९८; भक्तामर टबा १८११ कालाऊना; हेम व्याकरण भाषा टीका सं० १८२२ कालाऊना; नवतत्व भाषा टीका सं० १८२३ कालाऊना। सन्निपात कलिका टबा १८३१ पाली, दुरियर स्तोत्र टबा १८१३, बिलाडा; कल्याण मंदिर स्तोत्र टबा सं० १८११ कालाऊना; मुहूर्त्त-मणिमालाग्रंथ भाषा सं० १८०१ (जोशी वछराज के लिए रचित) विवाह पडल भाषा, कल्पसूत्र बालावबोध और महावीर ७२ वर्षायु खुलासापत्र।'[1]

इनमें से आधे से अधिक रचनाओं का रचनाकाल १९वीं (वि०) का पूर्वार्द्ध है, फिर भी इनकी रचना प्रक्रिया १८वीं (वि०) के उत्तरार्द्ध में प्रारम्भ हो चुकी थी, अतः पूर्व रीति पर इनका वर्णन १८वीं में ही कर दिया जा रहा है। इनके पद्यबद्ध रचनाओं की सूची आगे प्रस्तुत की जा रही है—

चित्रसेन पद्मावती चौपई १८१४ बीकानेर; नेमिनवरसो, ओसवाल रास (गोत्र नामावली), गौड़ी पार्श्वनाथ वृहद् छन्द (११३ गाथा), आबूस्तवन, फलौदी पार्श्वनाथ स्तवन, नयनिक्षेपणादि स्तवन, सहस्रकूट स्तवन, जिनभक्तसूरि सींह चक्री छन्द (पंजाबी भाषा)। आपकी सर्व-प्रथम रचना 'समुद्रवद्ध कवित्त' सं० १७६७, वील्हावास में लिखी गई थी। हिन्दी में लिखित १८वीं शताब्दी की एक अन्य रचना जिनसुख सूरि मजलस है।[2] आपका स्वर्गवास ९० वर्ष की आयु में सं० १८३४ पाली में हुआ। आपकी कतिपय रचनाओं का परिचय आगे प्रस्तुत किया जा रहा है।

गद्य की भाषा को लेखक ने लोकभाषा कहा है किन्तु उसके उद्धरण उपलब्ध नहीं हैं। 'भतृहरिशतक त्रय बाला०'(सं० १७८८ कार्तिक शुक्ल १३ सोजत) के आदि में इन्होंने लिखा है, यथा —

सर्वदर्शन मानम्य रूपचंद यतिः कविः,
सन्नीतिशतकस्यास्य व्रूतेऽअर्थं लोकभाषया।

---

१. अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० १०४-१०५।

२. वही,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह रचना इन्होंने छाजड़ के मन्त्री जीवराज के पुत्र मनरूप के आग्रह पर की थी। पद्य रचनाओं में प्रयुक्त भाषा, शैली आदि का नमूना देने के लिए अब 'चित्रसेन पद्मावती रास' का विवरण-उद्धरण दिया जा रहा है। चित्रसेन पद्मावती रास (४९५ कड़ी, सं० १८१४ पोष शुक्ल १०, बीकानेर)

आदि— श्री रिसहेसर पयकमल, पणमिय धरि आणंद,
दान धरम गुण वरणवूँ सुणो सभी नरवृन्द।

रचनाकाल-अठारह सौ ऊपरि वरसै, चवदोतर वहृंत,
पोस मास शुदि दसमी तणै दिन, रास रच्यो मनखंत।

गुरुपरम्परा—

श्री जिनलाभ सूरीसर राजै, खरतर गछ बड़भागी,
खेमसाख श्री शांतिहरष सिष, श्री जिनहरष वैरागी।
तास सीस वाचक सुखवरधन, कलानिधान कहायां,
तास सीस वाणारस पदधर, श्री दयासिंध मुनिराया।
तासु चरण कमल सुपसायै, सरसति सुनिजी पाई,
रामविजै उवझाय अे चौपई, बीकानेर बणाई।

इसकी अंतिम पंक्तियों में धर्म का महत्व कहा गया है और यह रचना धर्म के दृष्टान्त स्वरूप की गई है जिसमें चित्रसेन पद्मावती द्वारा धर्मपालन की मर्यादा का वर्णन है। कवि कहता है—

भवियण साचौ अेक धर्म भाई,
भवकंतार भमंता जीवनें अेहिज होइ सहाई।
धरम पदारथ सार जगत में जिहां तिहां ग्यानी अे गायौ,
तिण ऊपरि चित्रसेण नरिंद नौ, अे दसटांत सुणायौ।[1]

अमरुशतक बालावबोध सं० १७९८ आश्विन स्वर्णगिरि में गणधर गोत्री जगन्नाथ के लिए लिखा गया। भक्तासर स्तोत्र बालावबोध सं० १८११ ज्येष्ठ शुक्ल ११ कालाऊना में लिखा गया तथा नवतत्व बालावबोध सं० १८३४ सबलसिंह के पठनार्थ लिखा गया था।

इस प्रकार संस्कृत, हिन्दी, पंजाबी, मरुगुर्जर आदि नाना भाषाओं और गद्य, पद्य की विविध शैलियों के ये सिद्धहस्त लेखक थे।

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग ३, पृ० ५५-५६, ३२३-३२४ और १६४२ (प्र०सं०) तथा वही भाग ५, पृ० ३३९-४० (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(वाचक) रामविजय--आप तपागच्छ के युगप्रधान हीरविजय सूरि की परम्परा में कल्याण विजय>धर्मविजय>जयविजय>शुभ-विजय>सुमति विजय के शिष्य थे। इन्होंने प्रचुर साहित्य-सृजन किया है। ये गद्य और पद्य दोनों रूपों में साहित्य रचना कुशलता पूर्वक करते थे। गद्य में लिखित उपदेश माला बालावबोध (१७८१ माघ शुक्ल ९, कर्णभूषानगर) में ७१ उपदेशपरक कथायें हैं और उनकी टीका गद्य में है। ऐसी रचनाओं में रचनाकाल आदि संस्कृत में लिखने की परिपाटी पड़ गई थी, यथा --

संवच्चंद गजाद्रिभ प्रभुजिते वर्षे मद्यावुज्वले,
सिद्धचार्थ नवमी दिने पुरवरे श्री कर्णभूषाह्वये।

आपकी दूसरी गद्य रचना नेमिनाथ चरित्र बालावबोध (सं० १७८४) भी प्राप्त है, पर इनके गद्य के नमूने अप्राप्त हैं।

पद्य में आपने तेजपाल रास सं० १७६०, धर्मदत्त ऋषि रास सं० १७६६, शांतिजिन रास और लक्ष्मीसागर सूरि निर्वाण रास नामक विस्तृत रचनाओं के अतिरिक्त चौबीसी तथा बीसी भी लिखा है।

शांति जिनरास में हीरविजय सूरि की प्रशस्ति में उनकी दो महान उपलब्धियों का उल्लेख किया गया है। अकबर से मिलकर उसे प्रभा-वित करने की घटना तो सर्वज्ञात है, दूसरी घटना भी गच्छ की दृष्टि से पर्याप्त महत्वपूर्ण है। दूसरी घटना है मेघऋषि का लोकागच्छ छोड़कर हीरविजय का शिष्य होना। इस रास का रचनाकाल (सं० १७८५ वैशाख शुक्ल ७ गुरु राजगर) इस प्रकार वताया गया है–

संवत सतर पंचासीया वर्षे, वैशाख मास कहाया,
शुदि सातम गुरु पुण्य संयोगे, पूरण कलश कढ़ाया।

रचना स्थान—

श्री राजनगर नो संघ सोभागी, तेहने प्रथम सुणाया।
ऋद्धि वृद्धि प्रगटी अधिकेरी, आणंद अधिक उपाया।

इसमें गुरुपरम्परा का विस्तृत विवरण है। हीरविजय द्वारा बिंब प्रतिष्ठाओं, तीर्थयात्राओं के साथ उनका वंश-परिवार, दीक्षा, पदवी आदि का भी वर्णन किया गया है। तत्पश्चात् विजयसेन का भी जीवन परिचय दिया गया है। तदुपरान्त सागरगच्छ के संस्थापक राजसागर, वृद्धिसागर, लक्ष्मीसागर, मानविजय, कल्याणविजय, धर्मविजय, जय-विजय, शुभविजय और सुमति विजय का सादर वंदन किया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बाद में शांतिनाथ के उदात्त चरित्र का चित्रण किया गया है। इसका प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है--

सकल श्रेय वरदायिनी, मुनिवर वंदित जेह,
जिन पद लक्ष्मी नितनमुं, आणी अधिक सनेह।

यह रचना जैनकथा रत्नकोश भाग ८ में प्रकाशित है।

लक्ष्मीसागर सूरि निर्वाण रास सं० १७८८ के कुछ ही पश्चात् रची गई है।

आदि— श्री युगादि जिणवर तणा, पद प्रणमुं कर जोड़ि,
भविमन वंछित पूरवा, कल्पतरू नी जोड़ि।

× × ×

तपगछ नायक जिनवरू श्री लक्ष्मीसागर सूरि;
गुण तेहनां गास्युं घणां, आणी आनंद पूरि।

इसमें लक्ष्मीसागर सूरि का सादर वंदन-स्मरण किया गया है। यह रास जैन ऐतिहासिक रासमाला भाग १ (सं० मोहनलाल दलीचंद देसाई) में प्रकाशित है।[1]

चौबीसी सं० १७७८ से पूर्व महसाँणा में लिखी गई। इसकी अंतिम पंक्तियाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं—

इम भुवनभासन दूरितनासन विमल शासन जिनवरा,
भवभीति चूरण आसपूरण सुमतिकारण संकरा।
में थुण्या भगतें विविध जुगतें नगर महिसाणें रही,
श्री सुमतिविजय चरण सांनिधि, रामविजय जयसिरी लही।

२० विहरमान स्तवन का आदि—

सुणि भवि प्राणी रे, श्री सीमंधर जिनध्यावो,
प्रथम प्रभू विचरत विदेहे, गुण तस अहनिसि गावो।

× × ×

श्री सूमति सुगुरु सेवा शुद्ध मनथी करतां सुजस ऊपावो।
वाचक रामविजय कहे जगमां जीत निसान बजावो।

१. सम्पादक मोहनलाल दलीचन्द देसाई–जैन ऐतिहासिक रासमाला भाग १।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसकी अन्तिम पंक्तियां निम्नांकित है—

श्री अजिन वीर्य जिन वीर्य अनंतू प्रकट्यूं क्षापक भावे रे,
सहज समाधिनी लीला विलसे, ते प्रभु एक सभावे रे।
× × ×
सद्गुरु सुमति विजय कवि सांनिधि, जगि लहीइं जस वादो रे,
वाचक रामविजय कहे अे प्रभु ध्याने अमृत आस्वादो रे।[1]

इन तीन बड़े रामविजय नामधारी लेखकों के अलावा इन्हीं लोगों के समकालीन एक रामविजय और हो गये हैं। इस प्रकार १८वीं शताब्दी में दोनों गच्छों में मिलाकर कुल चार रामविजयों का उल्लेख और विवरण-उद्धरण मिलता है। इन लोगों ने पर्याप्त साहित्य की रचना की है और जैन साहित्य का संवर्द्धन किया है।

आगे चतुर्थ रामविजय का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

रामविजय—आपके गुरु तपागच्छीय कनकविजय थे। इन्होंने 'विजयदेव सूरि निर्वाण रास' (२८ कड़ी) सं० १७१२ आसो २, शंदेर में पूर्ण की। इसके प्रारम्भ की पंक्तियाँ आगे दी जा रही हैं—

सकल जनमन रंजनी रे, सरस द्यो वर सार,
श्री विजयदेव सूरि तणा रे, गुण गातां जयकार, रे जंगम सुरतरु

रचनाकाल —

संवत १७ सत्तर आसो बारोतरइ वीजइ रच्यूं निर्वाण,
रही रानेर चौमासु सुहंकरु, श्री संघनई कल्याण।

इसमें गुरुपरंपरा इस प्रकार बताई गई है—

इय पूरण पुन्य पुन्यावद्य प्राणी श्री विजयदेव सूरि गुण नीलऊ।
मयकंद चंद गोखीर सरीखो जास जगि जस निरमलउ।
तस पट्टदीपक कुमति जीपक श्री विजयप्रभ चिरंजयो,
कनकविजय कवि राम जंपइ, वंदत गुरु आणंद थयो।[2]

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई-जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० ५४६-५५२, भाग ३, पृ० १४४१-४३ तथा १६४०-४१ (प्र०सं०) और भाग ५, पृ० २०२-२०८ (न०सं०)।

२. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग ३, पृ० १५२३ (प्र०सं०) और वही भाग ४, पृ० २४९ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इससे स्पष्ट है कि आप विजयदेव सूरि > विजयप्रभ सूरि > कनक विजय के शिष्य थे। कवि ने अपना नाम रामविजय के स्थान पर केवल 'राम' दिया है।

रामविमल—ये तपागच्छीय सोमविमल के प्रशिष्य एवं कुशलविमल के शिष्य थे। इन्होंने 'सौभाग्य विजय निर्वाण रास' अथवा 'साधुगुण रास' की रचना सं० १७६३ औरंगाबाद में की। जैन सत्यप्रकाश वर्ष २ अंक १२ में सौभाग्यविजय के सम्बन्ध में पर्याप्त सूचनायें दी गई हैं। उससे लगता है कि सौभाग्य विजय एक सच्चे साधु थे। इस रास में उनके गुणों का वर्णन किया गया है। इसकी प्रारम्भिक पंक्तियों में सरस्वती की वन्दना है, यथा—

सरसति सामिणि पय नमी, पामी सुगुरु पसाय,
साधु तणां गुण गावतां, पातिक दूरि पलाय।

रचना स्थान का उल्लेख कवि ने इस पंक्ति में किया है—

नगर अवरंगावाद मांहे रच्यो जी
पंडित श्री सौभाग्य विजय निरवाणहो।

गुरुपरम्परान्तर्गत विजयरत्न, सोमविमल और कुशलविमल की वंदना की गई है। सम्बन्धित पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

तपगछ तेज तरणी सम सोभता जी,
श्री विजेरत्न प्रभू भूपाल हो।
वादी मदभंजन गंजन केसरी जी,
पट्ट प्रभाकर सुगुरु दयाल हो।
तस पदपंकज गछ माहि सौभता जी
पंडित श्री सोमविमल सुविशाल हो।
सेवक कुशल विमल गुण आगरु जी,
मुझ थायो गुरु भवि भवि अेह कृपाल हो।
जे भवि भावें भणें गुणें जी,
तस घरि दिन दिन जय जयकार हो,
रंगे हो रामविमल इम वीनवें जी,
ध्यावें ते पावें भवजलपार हो।
धन धन सोभागी गुरु जी वंदिये जी।[1]

१. मोहनलाल दलीचंद देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग ३, पृ० १४०९-१० (प्र०सं०) और वही भाग ५, पृ० २२२-२२३ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रायचन्द--इस नाम के कई जैन लेखक हो गए हैं। सं० १७०० के आसपास एक रायचन्द नागर[1] हुए जिन्होंने गीत गोविंदादर्श और लीलावती की रचना की। १७वीं शताब्दी में एक अन्य रायचंद हुए जो गुणसागर के शिष्य थे, जिन्होंने विजयसेठ विजयासती रास की रचना सं० १६८२ में की, इनका उल्लेख मरुगुर्जर जैन साहित्य के बृहद् इतिहास खण्ड दो में हो चुका है। १९वीं शती के पूर्वार्द्ध में भी एक रायचन्द नामक साहित्यकार हुए हैं जिन्होंने गौतम स्वामी रास, कलावती चौपई, ऋषभचरित आदि पचीसों ग्रन्थ लिखे हैं। इनका विवरण यथास्थान १९वीं शताब्दी में दिया जा सकेगा। शायद इन्होंने ही अवयवी शकुनावली की रचना सं० १८१७ नागपुर में और कल्पसूत्र हिन्दी भाषा की रचना सं० १८३८ बनारस में की। कहा जाता है कि यह ग्रंथ शिवप्रसाद सितारे हिंद के किसी पूर्वज ने लिखवाया था और राजासाहब ने उसे काव्य भाषा नाम से प्रकाशित कराया था। २०वीं शताब्दी के सिद्ध पुरुष रायचन्द ने अध्यात्म सिद्धि की रचना की है। इन्हें महात्मा गांधी अपने आध्यात्मिक गुरु की तरह मानते थे। इनकी भी चर्चा यथास्थान की जायेगी। सारांश यह कि रायचन्द इतने लोगों का नाम है कि उनकी रचनाओं में घालमेल होना सहज सम्भव है।

इन सबसे भिन्न १८वीं शताब्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार रायचन्द का विवरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। ये मरुगुर्जर (हिन्दी) के श्रेष्ठ कवि हैं। इन्होंने सं० १७१३ में 'सीताचरित' की रचना की जो यद्यपि रविषेण के पद्मपुराण पर आधारित है पर कवि ने अपनी प्रतिभा से इसे मौलिक रचना की तरह सरस बना दिया है। इसमें सीता के चरित्र की प्रधानता है। नारी भावों की व्यंजना सुन्दर ढंग से हुई है। वाह्य एवं अन्तःप्रकृति का इन्हें सूक्ष्म ज्ञान प्रतीत होता है, भाषा सशक्त है, इसलिए जैन साहित्य में यह ग्रन्थ महत्वपूर्ण है। इसमें ३६०० पद्य हैं। मिश्रबन्धु ने भी इसका रचनाकाल सं० १७१३ ही बताया है।[2]

संवत सतरह तेरोतरै, मगिसर ग्रंथ समापति करै।

यह रचना श्रीमद् रायचन्द नामक ग्रंथ में प्रकाशित है। इस कवि

१. मिश्रबन्धु—मिश्रबन्धु विनोद भाग २, पृ० ४२५।

२. वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ने कविता में अपना उपनाम चन्द्र लिखा है। राम जानकी के अपरिमित गुणों का वर्णन करता हुआ कवि लिखता है—

राम जानकी गुन विस्तार, कहै कौन कवि वचन विचार,
देव धरम गुरु कुं सिर नाय, कहै चंद उत्तिम जग माय।

रामराज्य में प्रसन्न धार्मिक जन राम का गुणगान कर रहे हैं—

रावन को जीत राम सीता विनीता आये,
वरतै सुनीत राज षलक सुहावनों;
सुष मे वितीत काल दुष कौ वियोग हाल,
सबही निहाल पाप पंथ मैं न आवतो।
वाही वर्त्तमान दीसै सब ही सुबुध लोक,
सुरग समान सुषभोग मनभावनौ,
कोऊ दुषदायी नाहि सज्जन मिलायो मांहि,
सबही सुधर्मी लोक राम गुन गावहीं।

इस ग्रन्थ की अनेक प्रतियाँ विविध ज्ञान भण्डारों में उपलब्ध हैं। इसकी एक प्रति का उल्लेख नागरी प्रचारिणी के बारहवें खोज विवरण में है।[1] इसका अन्तिम दोहा निम्नांकित है—

जो जाणौं निज जाणं तो वहै जान परवाण,
जाण पणस्यों जाणियै जानपणौ परधान।[2]

उपर्युक्त दोहे की भाषा में प्राकृताभास उत्पन्न करने का कृत्रिम प्रयास है जिससे भाषा में अस्वाभाविक रुक्षता आ गई है। सब मिलाकर यह श्रेष्ठ रचना है और ऐसे नीरस स्थल विरल हैं।

रायचंद II—आप लोकागच्छीय भागचंद>गोवर्धन के शिष्य थे। इन्होंने अवंति सुकमाल चौढालियुं (४८ कड़ी) सं० १७९७ और थावच्चा कुमार चौढालियुं लिखा है। प्रथम रचना का समय स्पष्ट नहीं है, यथा—

---

१. नागरी प्रचारिणी सभा काशी, हस्तलिखित ग्रन्थों का १२वाँ त्रैमासिक खोज विवरण पृ० १२६१।

२. कामताप्रसाद जैन—हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ० १५९-१६० और डा० प्रेमसागर जैन—हिन्दी जैन भक्तिकाव्य और कवि, पृ० २३०-२३३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सतर सताणु अने आसु मास, कीधु मांडवी सहेर चौमास।
दीवाली दिन गाया उल्लास।

इससे देसाई जी द्वारा दी गई सूचना मेल नहीं खाती। गुरुपरंपरा इस प्रकार बताई गई है--

श्री पूज्य भागचंद जी लोंका गछराया,
ऋषि गोवर्द्धन जी शासन सुखदाया।
सिष्य रायचंद साधुगुण गाया।[1]

इस रचना की कथा अंतगडसूत्र से ली गई है। कवि ने लिखा है--

अंतगड सूत्रे अधिकार, गजसुकुमाल नो विस्तार,
कह्यो जिनवर जी हितकार।

इनकी दूसरी रचना थावच्चा कुमार चौपाई प्रकाशित हो चुकी है। विवरण के लिए जैन संज्झाय संग्रह (ज्ञान प्रसारक सभा) देखा जा सकता है। रचनायें सामान्य कोटि की हैं और साधु चरित्र की विशेषतायें प्रकट करने के लिए दृष्टान्त स्वरूप प्रस्तुत की गई हैं।

यह स्पष्ट करना आवश्यक प्रतीत होता है कि आध्यात्मी रायचंद या श्रीमद् राजचंद्र के प्रति महात्मा गांधी अपने आध्यात्मिक गुरु जैसी श्रद्धा रखते थे। उनका जन्म सं० १९२४ और शरीरांत सं० १९५७ में केवल ३३ वर्ष की अवस्था में हो गया था। सं० १९५३-५४ में विलायत से बम्बई आने पर गांधीजी रायचंद जी से मिले थे। उस समय रायचंद की अवस्था मात्र २५ वर्ष की थी परन्तु गांधी जी ने उनके कई गुणों का उल्लेख किया है। इस सम्बन्ध में उनकी आत्मकथा देखी जा सकती है।[2]

रुचिरविमल—ये तपागच्छीय मानविमल>केशरविमल>भोजविमल के शिष्य थे। इनकी रचना 'मत्स्योदर रास' (३३ ढाल) सं० १७३६ का विवरण दिया जा रहा है। इसके मंगलाचरण में कवि ने शांतिनाथ की वंदना के बाद मां शारदा की विनती की है, यथा--

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० ५८४ (प्र०सं०) और वही भाग ५, पृ० ३५९-३६० (न०सं०)।
२. वही —जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास पृ० ७१३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सरस वयण रस वरसती; समरी शारद माय,
वयण अनोपम आपज्ये, जिम जग मां जस थाय।
कालिदास कविता लहे, ते ताह्रो उपगार,
माता तिम मुझ ऊपरे धरज्यो हेज अपार।

गुरु की वन्दना करता हुआ कवि लिखता है—

गुरु गिरुओ संसार मां, आपे विद्यादान,
भोज विमल कविराजनो पामी अविहड मान।

यह कथा पुण्य के दृष्टान्त स्वरूप लिखी गई है, यथा—

पुण्ये उपर संबंध अे, सुणयो सहु नर नार,
सुणता अचिरिज ऊपजे बाधे बुद्धि अपार।

× × × ×

मत्स्योदर पुण्ये करी पाम्यो सुख भरपूर,
ते संबंध सुणंता सदा, बाधे अधिको नूर।

रचनाकाल—

संवत सत्तर छत्तीस में, अे भाष्यो संबंध,
सुणता अचिरिज ऊपजे बाधे अति आणंद।

गुरुपरम्परान्तर्गत विजयप्रभसूरि>विजयरत्न के पश्चात् मानविमल से भोजविमल तक का सादर स्मरण किया गया है। इसकी अंतिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

विद्यागुरु गुरु नो गुरु समरंता सुख थाय,
तास पटोधर दीपतो, भोजविमल बुधिराय।
ढाल तेतीसमी अे कही, रुचिर विमल सूपरांण,
भणे गुणे जे सांभले, तस घरि कोडिकल्याण।[1]

रूपभद्र—ये उदयहर्ष के शिष्य थे। इन्होंने सं० १७६८ में 'अजापुत्र चौपाई' की रचना की। अन्य विवरण सन्दर्भादि अज्ञात है।

रूपविमल—आप कनकविमल के शिष्य थे। आपने 'भक्तामर

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० ३३५-५४ (प्र० सं०) और भाग ४, पृ० ४१६-१७ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बालावबोध सं० १७२८ चैत्र कृष्ण १ सोमवार को लिखा।[1] । इसके गद्य का नमूना अनुपलब्ध है।

लक्ष्मण—आप मलधारी गच्छ के वाचक भगवंत विलास के शिष्य थे। आपकी कृति 'छ आरा नी चोपाई' सं० १७५८ कार्तिक शुक्ल १३, बुधवार को पटना में पूर्ण हुई थी। इसके प्रारम्भ की पंक्तियाँ निम्नवत् हैं—

श्री जिनदेव अराधियै रे लाल, वंदी श्री गुरुपाय सुखकारी रे,
भावै जिनवर वंदीयै रे लाल।

रचनाकाल—

संवत सतरह सै समये अठानवइ रे, फाल्गुन नै सित पाषिरे,
त्रितायां बुधवारे रास रच्यौ सुभभाव सौं रे,
देव शास्त्र गुरु साषी रे।

पटना निवासी श्री दीपचंद के अनुरोध पर यह रचना की गई थी। इसका अंतिम अंश 'कलश' आगे दिया जा रहा है—

श्री आदि जिनवर सकल सुखकर युगल धरम निवारणो,
समकित्त दाता शुभ विख्याता भव समुद्र तारणो।
गछ श्री मलधार मंडण दुह विहंडण
वाचक श्री भगवंत विलास जी,
तस्स शिष्य मुनि श्री कहइ लक्ष्मण,
श्री संघ पूरौ आस जी।[2]

लक्ष्मीचन्द्र—पाठक लब्धिरंग आपके गुरु थे। ऐसा प्रतीत होता है कि आपका दीक्षा नाम लब्धिविमल था, बाद में आचार्य पद पर आने के बाद नाम लक्ष्मीचन्द्र पड़ा। ग्रन्थ में सम्बन्धित पंक्तियाँ इस प्रकार दी हुई हैं—

ज्ञान समुद्र अपार पय, मति नौका गति मंद,
पै केवल नीकौ मिल्यौ आचारज शुभचन्द्र।

१. मोहनलाल दलीचंद देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग ३, पृ० १६३० (प्र०सं०) और भाग ४, पृ० ४१८ (न० सं०)।

२. वही, भाग २, पृ० ४८८ (प्र० सं०) और भाग ५, पृ० १९१-१९२ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ताके वचन विचारि कै, कीने भाषा छन्द,
आतमलाभ निहारि मनि, आचारज लक्ष्मीचंद ।

इससे स्पष्ट विदित होता है कि यह ग्रंथ लेखक ने शुभचंद्र के ग्रन्थ ज्ञानार्णव के आधार पर रचा है। यह पद्यबद्ध भाषानुवाद है। यह रचना इन्होंने फतहपुर के सरदार अलफखाँ के दीवान ताराचन्द के आग्रह पर किया था। एक जगह इन्होंने अपना नाम लब्धिविमल भी दिया है, यथा--

लब्धिविमल पाइ मनुष की गति नीकी ताहि,
फल लीनौं राचौं ध्यान के विधान सौं।

सेठ कूचा दिल्ली के ज्ञान भण्डार में सुरक्षित ज्ञानार्णव ग्रन्थ का लेखक लब्धिविमल गणि को ही बताया गया है। यह एक आध्यात्मिक ज्ञानरस पूर्ण कृति है, इससे जीवों का उपकार होगा। इसका प्रारंभिक छंद देखिए--

ललितचिह्न पद कलित मिलत निरषत जिन लंपति,
हरषित मुनिजन होय धोय कलिमल गुण जंपति।
दृढ़ आसन थिति वासु जासु उज्वल जग कीरति,
प्रतीहार ज अष्ट नष्ट गत रोग न बीरति।
अजरामर एकल अछल जग अनुपम अनगित शिवकरन,
इन्द्रादिक वंदित चरण युग जय जय जिन अशरण शरण।

इसकी भाषा प्रसादगुण सम्पन्न और छंद प्रवाहपूर्ण है। श्री कामता प्रसाद जैन ने इन्हें १८वीं शती का कवि बताया है किन्तु रचनाकाल स्पष्ट रूप से निश्चित नहीं किया है।[1]

लक्ष्मीदास—आपकी दो रचनाओं का उल्लेख दो-तीन विद्वानों ने किया है एक 'श्रेणिक चरित्र' और दूसरा 'यशोधर चरित्र' का। इनका विवरण प्रस्तुत है। श्रेणिक चरित्र (५४ ढाल, सं० १७३३, ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी, में श्रेणिक (बिम्बसार) का चरित्र प्रधान रूप से चित्रित किया गया है। राजा श्रेणिक अंतिम तीर्थङ्कर महावीर की समवशरण सभा के प्रधान श्रोता थे इसलिए जैन साहित्य में इनकी विशेष चर्चा मिलती है।

१. **श्री कामताप्रसाद जैन**—हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास पृ० १५६-१५९।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह ढालबद्ध रचना है। ढालों में प्रबन्ध काव्य की रचना विशेष गौरव की बात मानी जाती थी क्योंकि ऐसी रचना वही कर सकता है जो संगीत की विविध राग रागनियों और उनकी बारीकियों से वाकिफ हो। ढालों में रागरागनियों की सुमधुर गेयता संचरित होती है। श्रेणिक चरित भी गेयकाव्य है। इसकी व्रजभाषा में राजस्थानी का पुट भाषा शैली को स्वाभाविक एवं सरस बनाने में सहायक है। रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है--

संवत सतरा से ऊपरि तेतीस जेठ सुपाष,
पंचमी ता दिन पूर्ण लहि मंगलकारो भाष।[1]

इनकी दूसरी रचना 'यशोधर चरित्र' जीवदया पर आधारित है। इसका रचनाकाल सं० १७८१ है, यथा—

संवत सतरा सै भले अरु ऊपर इक्यासी
(यशोधर चरित प्रशस्ति पद्य ८९३)

इसमें छह संधियाँ हैं। कवि ने यशोधर के अनेक जन्मों का वर्णन करके उसके आधार पर पाप-पुण्य, हिंसा-अहिंसा आदि के परिणामों पर पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया है। इसमें कवि ने दोहा, चौपाई छन्दों के अतिरिक्त अडिल्ल, सवैया आदि अन्य कई छंदों का सफल प्रयोग किया है।[2]

श्री कस्तूरचंद कासलीवाल ने लेखक का नाम 'लिखमीदास' बताया है। इनकी रचना का समय उन्होंने भी सं० १७८१ कार्तिक शुक्ल ६ बताया है।[3] दोनों रचनाओं के बीच अंतराल अवश्य विचारणीय है किन्तु असम्भव नहीं है। इसलिए रचनाओं और उनके कर्त्ता लक्ष्मीदास के सम्बन्ध में शंका की गुंजाइश अत्यल्प है।

लक्ष्मीरत्न—आप हीररत्न के शिष्य थे। आपकी प्रसिद्ध रचना 'खेमाहडालियानो रास' है। इसका विवरण दिया जा रहा है। खेमाह-

---

१. डा० लालचन्द जैन—जैन कवियों के व्रजभाषा प्रबन्धकाव्यों का अध्ययन पृ० ७०-७१।

२. वही पृ० ८२

३. डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल—राजस्थान के जैन शास्त्रभंडारों की ग्रंथ-सूची, भाग ३, पृ० २१८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

डालियानो रास (६ ढाल, १३५ कड़ी, सं० १७४१ मागसर, शुक्ल १५, गुरुवार, ऊना) का आदि देखिए—

आद्य जिनेसर आद्य नृप, आद्य पुरुष अवतार,
भवभय भाव भगवंतनर, करुणानिधि करतार।

इसमें सेठ खेमा के दान की कथा कही गई है। गुरु के महत्व पर प्रकाश डालते हुए कवि ने लिखा है—

कुंभे बांध्यु जल रहै, जल बिना कुंभ न होय,
ज्ञाने बांध्यु मन रहै, गुरु बिना ज्ञान न होय।

इसका रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है—

संवत सतर अेकतालिसा वरसे, रास रच्यो मन हरषें जी,
मागसर सुद पुन्यम गुरुवारे गाम ऊनाऊं मझार जी।

गुरुपरंपरान्तर्गत कवि ने हरिरत्न की वंदना की है, यथा—

पंडित हीररत्न परसीध्या तस पसाय रास कीधो जी,
छट्टी ढाल धनाश्री मां गाये, सांभलता सुष पावे जी।

अन्तिम पंक्ति की भाषा में पंजाबीपन का पुट मिलता है, यथा—

कीजे धर्म भवक जन वृन्दा लषमीरतन कहंदा जी।[1]

गुजरात की एक स्मरणीय दुखद घटना पर यह रास प्रकाश डालता है। जब गुजरात पर मुहम्मद बेगड़ा का राज्य था, उसी समय वहाँ भयंकर दुष्काल पड़ा। प्रजा अन्न के बिना भूखों मरने लगी, तब खेमा सेठ ने (हडाला निवासी) एक वर्ष तक मुफ्त अन्न की आपूर्ति करके लोगों का प्राण बचाया था। बेगड़ा का शासन सं० १५०२ से १५६८ तक रहा। उसने चंपानेर का किला तोड़ा था। हम्मीर के पश्चात् रामदेव ने चंपानेर को अपनी राजधानी बनाई थी। सं० १५४१ में बेगड़ा ने उसपर चढ़ाई की और उस युद्ध में जयसिंह देव वीरगति को प्राप्त हुए थे। उस समय चंपानेर ने नगरसेठ चांपसी मेहता थे। वे एक दिन जब दरबार जा रहे थे तो एक भाट ने हडाला के खेमा सेठ की विरुदावली का बखान किया। दुष्काल के समय जब सेठ को बुलाया गया तो उसने प्रसन्नता पूर्वक ३६० दिन तक लगातार अन्न

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई– जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० ३६०-३६१ (प्र०सं०) और वही भाग ५, पृ० ३७-३८ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संभरण का भार स्वीकार किया। इस ग्रामीण बनिये का यह उत्साह-पूर्वक दान देख नगरसेठ आदि अन्य महाजन चकित हुए और प्रेरित भी हुए और दुष्काल में लोगों की जान बचाने के कार्य में लगे। शाह प्रसन्न हुआ और उसने खेमा को शाह की पदवी दी। इसी घटना पर आधारित यह रास लक्ष्मीरत्न ने १८वीं शती में लिखा है। इसमें जंबूद्वीप, गुर्जर प्रदेश और शाहेवक्त बेगड़ा की प्रशंसा की गई है, यथा—

पातसाह तिहा परगडो राज्य करे मोहम्मद बेगड़ो।
सतरसेत गुर्जर नो घणी, जिणे भुजबले कीधी पोहवी घणी।

भाट की एक उक्ति आगे दे रहा हूँ—

कसु सहर साहा बिना, पंडित बिना समाज,
जीम गुण हीणि गोरडी, तिम राजा हीण राज।[1]

कवि ने रचना में अपना नाम इस प्रकार बताया है—

कहे कवी लषमी रतन्न चांपानेर आवीया रे,
पांचमी ढाल रसाल सुणो रे सोभागिया रे।

इस प्रकार यह रास ऐतिहासिक महत्व की सूचनायें देने वाली रचना है।

(उपाध्याय) लक्ष्मीवल्लभ—खरतरगच्छ के यशस्वी आचार्य जिनकुशलसूरि की परंपरा में उपाध्याय लक्ष्मीकीर्ति आपके गुरु थे। संस्कृत और मरुगुर्जर में आपकी अनेक रचनाएँ प्राप्त हुई हैं। आपने सिन्धी भाषा में भी कुछ स्तवन लिखे हैं। कल्पसूत्र, उत्तराध्ययन और कुमारसंभव पर आपने संस्कृत में पांडित्यपूर्ण टीकायें की हैं। टीका ग्रन्थों के अलावा संस्कृत में पंचकुमार चरित्र जैसे कुछ काव्यग्रंथ भी लिखे हैं। श्री अगरचन्द नाहटा ने इन्हें राजस्थानी का महाकवि कहा है। उन्होंने राजस्थानी भाग २ में 'राजस्थानी भाषा के दो महाकवि' शीर्षक लेख में इनका विशेष परिचय दिया है। इनके मरुगुर्जर रचनाओं की सूची आगे दी जा रही है—

अभ्यंकर श्रीमती चौपई १७२५, रत्नरास चौपई १७२५, विक्रम-पंचदंड चौपई १७२८ (गारबदेसर), रात्रिभोजन चौपई १७३८

१. संशोधक विजयधर्म सूरि—ऐतिहासिक रास संग्रह, भाग १, पृ० ६५-६६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बीकानेर, अभयकुमार चौपई, महावीर गौतम छंद, भरतबाहुबलि छंद, कुंडलिया, छप्पय बावनी, राज (चेतन) बत्तीसी, बरकाणा पार्श्वनाथ छंद, श्री जिनकुशल सूरि छंद और कुछ स्फुट स्तवन, पद इत्यादि। मरुगुर्जर पद्य के साथ ही गद्य में इन्होंने पृथ्वीराज कृत प्रसिद्ध राजस्थानी कृति कृष्ण-रुक्मिणी री बेलि, भर्तृहरि शतक त्रय और संघपट्टक की भाषा-टीकायें लिखी हैं।[1]

श्री देसाई ने इनकी गुरुपरंपरा बताते हुए इन्हें जिनकुशल सूरि > विनयप्रभ > विजयतिलक > क्षेमकीर्ति सूरि (क्षेम शाखा संस्थापक) > तपोरत्न > तेजोरत्न > भुवनकीर्ति > हर्षकुंजर > लब्धिमंडन > लक्ष्मीकीर्ति का शिष्य बताया है। इनकी संस्कृत टीकाओं का नाम कल्पद्रुम कलिका और उत्तराध्ययन दीपिका बताया है और इन्हें लक्ष्मीवल्लभ-राज-हेमराज कहा है। उन्होंने इनकी बाईस रचनाओं का विवरण-उद्धरण दिया है। उसके आधार पर कुछ महत्वपूर्ण कृतियों का संक्षिप्त विवरण आगे प्रस्तुत किया जा रहा है।

रत्नहास चौपई (दानशीलाधिकारे) १२ ढाल, सं० १७२५ चैत्र शुक्ल १५, का आदि—

सरसति सामणि पय नमी, पामी सुगुरु पसाय,
दान तणा फल दाखिस्युं, सुणउ श्रवण सुखदाय।

रचना समय —

संवत सतरहसइ पचवीसइ वाणी विलास बखाणी,
दान कथा चैत्री पुनिम दिने, जयस खकर जिनवाणी।

अन्तिम पंक्तियाँ —

उपाध्याय श्री लखमीकीरति शिष्य, लखमिवल्लभ मतिसारइ
चोपी करी कर ढाल करि, भवियणनइ उपगारइ।[2]

भावनाविलास (हिन्दी, सं० १७२७ पौष कृष्ण १०) का प्रारंभ—

प्रणमि चरणयुग पास जिनराज जु के
विघिन के चूरण हैं पूरण हैं आसके।
दिढ़ दिलमाझि ध्यान धरि श्रुत देवता को,
सेवै ते संपूरत है मनोरथ दास के।

१. अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० १००

२. मोहनलाल दलीचन्द देसाई - जैन गुर्जर कवियो, भाग ४, पृ० ३४८ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्यान दृगदाता गुरु बड़े उपकारी मेरे,
दिनकर जैसे दीपैं ग्यान परकास के।
इनके प्रसाद कवि राज सदा सुखराज,
सवी अे बनावत हैं भावनाविलास के।

इसमें प्रत्येक भावना का वर्णन किया गया है। रचना का समय आगे दिया जा रहा है—

द्वीप युगल मुनि शशि १७२७ वरसि, जा दिन जनमे पास;
ता दिन कीना राजकवि, यह भावना विलास।
यह नीकैं कैं जानीयै, पढ़ीये भाषा शुद्ध,
सुख संतोष अति संपजै, बुद्धि न होय विरुद्ध।

सवैया बावनी (हिन्दी, ५८ कड़ी) सं० १७३८ मागसर शुक्ल ६, को पूर्ण हुई। विक्रमादित्य पञ्चदण्ड रास अथवा चौपाई (६ खण्ड ७५ ढाल, ३१६८ कड़ी, सं० १७२८ फाल्गुन शुक्ल ५) का आदि निम्नवत् है--

प्रणमु पास जिणंद पाय कलियुगि सुरतरुकंद,
सेव करइ नित जेहनी, पदमावति धरणिंद।

इसमें प्रसिद्ध महाराज विक्रमादित्य का चरित्र गान किया गया है, यथा--

कहिसु विक्रमराय नो चारित महागुण चंग,
सुणतां श्रुतसुख ऊपजे जिहां नवरस बहु रंग।

रचनाकाल--सिद्धि नेत्र मुनि शशहर वरषे,
फागुण शुदि पञ्चमि मन हरषै।

इसकी लोकप्रियता का अनुमान विभिन्न ज्ञान भण्डारों में प्राप्त इसकी अनेक हस्तप्रतियों की विद्यमानता से लगाया जा सकता है।

रात्रिभोजन चौपाई (२६ ढाल, सं० १७३८ पौष शुक्ल सप्तमी, बीकानेर)

इसमें रात्रि भोजन के दोषों को बताकर उसके त्याग का उपदेश दिया गया है।

आदि— वरधमान जिनवर तणा, चरण नमूं इकचित्त,
धरम प्रकाशक जगधणी, नमता सुख द्यै नित।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रचनाकाल—

संवत सतर सै अड़तीसे सातम दिन सुजगीसे हो,
मास ताइ वै सित पोष माहे, आगम धुरि अवगाहे हो।

चेतन बत्तीसी (३२ कड़ी सं० १७३९)

आदि— चेतन चेत रे अवसर मत चूकै, सीख सुणे तूं सांची,
गाफल हुई जो दांव गमायौ, तौ करसि बाजी सहु काची।

अन्त— सुवचन अेह अमीरस सरिखा, पण्डित श्रवणे पीसी,
सतरह सें गुणचालें संवत, बोलै राज बत्तीसी।

कालज्ञान प्रबन्ध (वैद्यक का ग्रंथ है, इससे कवि के वैद्यक ज्ञान का भी पता लगता है) यह १७८ कड़ी की रचना सं० १७४१ मा० शु० १५, गुरुवार को पूर्ण हुई थी।[1]

नवतत्त्व चौपाई (हिन्दी, सं० १७४७ वैशाख कृष्ण १३, गुरुवार, हिसार)

यह रचना कवि ने हिसार निवासी मोहनदास, ताराचंद और तिलोकचंद के आग्रह पर किया था। इसका रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है—

श्री विक्रम तै सत्तर सै, वीते सइतालीस,
तेरसि दिन वैशाख बदि, वार बखाणि वागीस।

इसमें जैनागमों में वर्णित नवतत्त्व विचार का हिन्दी भाषांतरण किया गया है।

अभयकुमार चरित्र रास—(दान के विषय में दृष्टान्त रूप से यह रचित है) यह १७ ढाल २५७ कड़ी की रचना है पर इसका रचनाकाल नहीं दिया गया है। गुरुपरम्परा अन्य ग्रंथों जैसी ही दी गई है इसलिए रचना और रचनाकार के बारे में शंका की जगह नहीं है। इसका प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है—

श्री आदीसर प्रथम जिन, शांतिकरण श्री शांति,
प्रणमु नेमि श्री पास जिण, वीर नमुं अेकंति।

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग ४, पृ० ३४८-३५७ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महावीर गौतम स्वामी छन्द (गाथा ९६, सं० १७४१ से पूर्व)

आदि — वर दे तु' वरदायिनी, सरसति करि सुप्रसाद,
वांचु वीर जिणंद सु' गौतम गणधर वाद।

उपदेश बत्तीसी भी हिन्दी में रचित है, यह गेय है, यथा—

आतम राम सयाणो तूं झूठे भरम भुलाना, आंकडी
किसके माई किसके भाई, किसके लोक लुगाई जी,
तूं न किसी का को नहि तेरा, आपो आप सहाई।

अन्त— इस काया पाया का लाहा, सुकृत कमाई कीजै जी,
राज कहै उपदेश बत्तीसी, सद्गुरु सीख सुणो जै जी।

यह रचना प्रकाशित है।

इनकी कुंडलिया बावनी और दोहा बावनी जैसी रचनाओं से पता चलता है कि सवैया, कुण्डलिया, दोहा आदि लोकप्रिय मात्रिक छन्दों के प्रयोग का इन्हें अच्छा अभ्यास था। दूहा बावनी के अंत की पंक्ति देखिये—

दोहा बावनी करी, आतम-परहित काज,
पढ़त गुणत वाचत लिखत, नर होवत कवि राज।

चौबीसी भी अनेक रागों में बद्ध संगीतमय रचना है। इसका प्रथम स्तवन-ऋषभगीत-राग विलावल में आबद्ध है।

आदि— आज सकल मंगल मिले, आज परमानंदा,
परम पुनीत जनम भयो, पेखे प्रथम जिनंदा, आज।

भरत बाहुबलि छंद (९९ कड़ी) अपेक्षाकृत कमजोर रचना है। इसकी भाषा शिथिल और छंदों में प्रवाह की कमी है। अन्त की पंक्तियाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं—

बाहूबल बलवंत, साधु मोटो सांचो सिद्ध,
भल गुण बूधि भंडार, ग्यांन दरिसण चारित्र निधि।
जंग अरीदस जीप, इला अखीयात उबारी,
संयमि कर्म संहरै, नवल परणी सिद्धि नारी।
सुद्ध खेमसाखि पाठक प्रगट, लिखमी कीरति जस लेअण,
तसु सीस राज कर जोड़ि तव, चित्त सूद्ध प्रणमि नित चरण।[1]

१. मोहनलाल दलीचंद देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग ४, पृ० ३५६ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(गोडी पार्श्वनाथ) देशांतरी छंद (त्रिभंगी छंद, ३९ कड़ी) का आदि--

सुवचन सूंपो सारदा, मया करो मुझ माय,
तो सुप्रसन सुवचन तणी, तु मणा न होवें काय।
कालीदास सरिखा किया, रंक थकि कविराज,
महेर कर माता मुंने निज सुत जाणी निवाज।

मुहपत्ती पड्लिेहण विचार स्तवन (कड़ी १६) यह मुँहपत्ती के बारे में लिखित शुद्ध सांप्रदायिक रचना है। इसके अलावा कम्मपयडी गर्भित स्तवन (गाथा २९), कर्म प्रकृति निदान गर्भित स्तवन गाथा ४७; तेरह गुणस्थान गर्भित ऋषभ स्तवन गाथा ५७ आदि उनकी प्राप्त रचनायें हैं। उनकी कुछ अन्य कृतियाँ प्रकाशित भी हैं जैसे इरियावही भिच्छामि दुक्कड संख्या गर्भित स्तवन गाथा १३, आशातना संञ्झाय इत्यादि।[1]

उनकी एक सरस रचना 'अध्यात्म फाग' प्राचीन फागु संग्रह में प्रकाशित है जिसमें शरीर रूपी वृन्दावन में ज्ञान वसंत के प्रकट होने पर मतिरूपी गोपी के साथ पाँच गोप (इंद्रियाँ) मिलकर सुमति राधा जी के साथ आत्महरि होली का खेल रचाते हैं। इस होली के रूपक द्वारा इस फाग में वेदांत और योग का तथ्य कथन साहित्यिक और सशक्त ढंग से व्यक्त किया गया है। १३ कड़ी की यह छोटी रचना है पर काव्य का सुन्दर उदाहरण है। इससे लक्ष्मीवल्लभ को वास्तविक कवि सिद्ध करने में बड़ी सहायता मिलती है। इसके अलावा इनकी अधिकांश रचनाएँ शुष्क और उपदेश प्रधान तथा संप्रदाय के सिद्धांतों का छंदबद्ध प्रवचन मात्र हैं। इसका आदि और अंत दे रहा हूँ--

आदि— तनु वृन्दावन कुंज ने हो, प्रगटें ज्ञान वसंत,
मति गोपिन सुं हंसि सवे हो पंचेउ गोप मिलंत।

अन्त-- लक्ष्मीवल्लभ को रच्यौ हौ इहु अध्यात्म फाग,
पायतु पद जिनराज को हो, गावत उत्तम राग।[2]

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० २४३-२४५; भाग ३, पृ० १२४६-५५ (प्र० सं०) और भाग ४, पृ० ३४८३५७ (न०सं०)।

२. सम्पादक भोगीलाल सांडेसरा --प्राचीन फागुसंग्रह पृ० २१९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसमें इन्हें खरतरगच्छीय क्षेमहर्ष का शिष्य बताया गया है। यह तथ्य ग्रंथों में दी गई गुरुपरंपरा से मेल नहीं खाता, अतः शंकास्पद है।

डॉ० प्रेमसागर जैन ने इनकी चौबीसी, महावीर गौतम स्वामी छंद, दूहाबावनी, सवैया बावनी, भावना विलास, चेतन बत्तीसी, उपदेश बत्तीसी, देशांतरी छंद के विवरण-उद्धरण दिए हैं तथा अभयंकर चौपई, अमरकुमार रास, विक्रमादित्य पञ्चदण्ड चौपई, रत्नहास आदि का भी उल्लेख किया है। इनके अलावा उन्होंने इनकी एक सरस काव्यात्मक कृति नेमिराजुल बारहमासे का वर्णन किया है। इस सरस रचना का एक छन्द उदाहरणार्थ प्रस्तुत करना आवश्यक लगता है; देखें श्रावणमास का वर्णन--

उमरी विकट घनघोर घटा चिहुँ
ओरनि मोरनि सोर मचायो,
चमके दिवि दामिनि यामिनि कुंभय
भामिनि कुंपिय को संग भायो।
लिव चातक पीउ ही पीड़ लइ,
भई राज हरी मुंइ देह छिपायो,
पतियाँ पै न पाई री प्रीतम की अली,
श्रावण आयो पै नेम न आयो।[1]

इन रचनाओं के विवरणों से प्रकट होता है कि लक्ष्मीवल्लभ जैन साधु और उपदेशक के अलावा हिन्दी, राजस्थानी और संस्कृत के अच्छे कवि भी थे। उन्होंने न केवल संख्या की दृष्टि से पर्याप्त रचनायें की हैंबल्कि गुण की दृष्टि से भी उनकी कई कृतियों में पर्याप्त काव्यत्व है, संगीतात्मकता है, तथ्य है और शाश्वत संदेश हैं। इस दृष्टि से विचार करने पर लक्ष्मीवल्लभ १८वीं (वि०) शती के निस्संदेह महाकवि सिद्ध होते हैं।

लक्ष्मीविजय --आप तपागच्छीय विमलहर्ष उपाध्याय>प्रीतिविजय>पुण्यविजय के शिष्य थे। इन्होंने खंभात में ७०९ कड़ी की एक रचना 'श्री पाल मयणासुन्दरी रास' सं० १७२७ भाद्र शुक्ल नवमी को

1. डा० प्रेमसागर जैन--हिन्दी जैन भक्तिकाव्य और कवि, पृ० ३०७-३११

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूर्ण की थी। जिसके अंत में विजयदान के पश्चात् हीरविजय द्वारा अकबर प्रतिबोध का उल्लेख है, तत्पश्चात् गुरुपरंपरा में विजयसेन, विजयतिलक, विजयाणंद, विमलहर्ष, प्रीतिविजय और पुण्यविजय का उल्लेख किया गया है। इसका रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है—

संयम भेद लोचन नइं जलधि, अे संवत्सर जांणो जी,
भाद्रपद सित नवमि मूल रिषह, शशि धनरासि बषाणो जी।
श्रीपाल मयणां सुंदरि नो, रास रच्यो गुण जाणी जी,
उत्तम जनना गुण बोलतइ, जग सोभा विरचांणी जी।
रंगभरि अे रास भणीनइं, जिह्वा पवित्र कहेयो जी,
लक्ष्मीविजय कहि भविका जन, शिवरमणी वरेयो जी।[1]

इस रास में श्रीपाल और मयणा (मैना) सुन्दरी की प्रेमकथा को जैन धर्म के प्रमुख सिद्धांतों के दृष्टांत स्वरूप दिया गया है। रचना यद्यपि सामान्य कोटि की है किंतु कथा की मनोरंजकता के कारण उपदेश अधिक शुष्क नहीं लगता।

लक्ष्मीविजय II–तपागच्छ के यशस्वी साधु गंगविजय की परंपरा में मेघविजय आपके प्रगुरु और उनके शिष्य भाणविजय आपके गुरु थे। लक्ष्मीविजय ने सं० १७९९ पौष शुक्ल तृतीया को अपनी गद्यकृति शांतिनाथ चरित्र बालावबोध को पूर्ण किया। रचना में उपर्युक्त गुरु-परंपरा दी गई है और रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है--

निधि ग्रह विधणाथोधिदुभिः समिते धवल तृतीयां
लिखितमखिलमेतत्पुस्तकें मयि विहितकृपै पंडितै मंदबुद्धचै।[2]

लेखक की गद्यभाषा का नमूना नहीं प्राप्त हो पाया।

लक्ष्मीविनय –खरतरगच्छीय विनयचंद सूरि की लघुखरतर शाखान्तर्गत सागरचंदसूरि>ज्ञानप्रमोद>विशालकीर्ति>हेमहर्ष>अमर और रामचंद>अभयमाणिक्य के शिष्य थे। इन्होंने अभयकुमार

१ मोहनलाल दलीचंद देसाई--जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० २५१-२५२ (प्र०सं०) और वही भाग ४, पृ० ३७७-३७८ (न०सं०)।

२. वही, भाग २, पृ० ५९३, भाग ३, पृ० १६४६-४७ (प्र०सं०) और वही भाग ५, पृ० ३६४-३६५ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महामंत्रीश्वर रास (४ खंड, सं० १७६०, फागुन शुक्ल पंचमी सोमवार भरोट नगर) का आरंभ इन पंक्तियों से किया है—

परतख सुरतरु सारिखो, प्रणमुं पास जिणंद,
सुरनर किन्नर सासता, प्रणमे पय अरविंद।

गुरु परंपरा का उल्लेख करते हुए कवि ने सोहं स्वामी की परंपरा में वैरी शाखा के कोटिक गण के खरतरगच्छीय आचार्य जिनचंद्रसूरि की सागरचंद्र शाखा के ज्ञानप्रमोद से लेकर ऊपर बताए गये गुरुओं की शृंखला में अभयमाणिक्य तक का नमन-स्मरण किया है। इसका रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है—

संवत नभ रस मुनि शशि (१७६०) रे भरोट नगर मझार
फाल्गुन शुदनी पंचमी रे, तुंगीपति दिनवार।
अे आवश्यक सूत्र थी रे, कीधो चरित्र उल्लास,
ओछो अधिको जे कह्यो रे, मिच्छा दुक्कड़ तास।

इस रचना के अंत में कवि ने लिखा है इसके पढ़ने से लोगों की मनोकामनाएं पूर्ण होंगी, यथा—

वीछडिया साजन मिले रे, पूगे मननी आस,
चार बुद्धि उपजे अंग में रे, पामे वली जसवास।

यह कृति भीमशी माणक द्वारा प्रकाशित की जा चुकी है।[1] इन्होंने गद्य में भुवनदीपक बालावबोध सं० १७६७ में लिखा है। यह ज्योतिष संबंधी ग्रंथ है।

इन रचनाओं के अलावा 'ढुंढक मतोत्पत्ति रास' को भी इनकी कृति बताया गया था किन्तु यह अन्य किसी कवि की रचना है। आपने पद्य और गद्य में रचनायें करके अपनी बहुमुखी प्रतिभा को प्रमाणित किया है।

लक्ष्मीविमल—तपागच्छीय विबुधविमल सूरि 7 ज्ञानविमल सूरि >सोभागसागर 7 सुमति सागर सूरि 7 ऋद्धि विमल>कीर्ति विमल के शिष्य थे। इनकी एक 'बीशी' और एक 'चौबीसी' के अलावा एक गद्य रचना का विवरण उपलब्ध है। उपर्युक्त रचनाओं का परिचय

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग ३, पृ० १४०६ और पृ० ४५६-४५८ (प्र०सं) तथा भाग ५, पृ० १९५-१९६ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आगे दिया जा रहा है। वीशी (सं० १७८०, विजयदशमी, गुरुवार) का आदि इस प्रकार है—

सुजन सुजन सोभागी बाहलो होजी, मोहन सीमंधर स्वामी।

इसका रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है—

आकाश (वसु) सागर विधु वर्षे विजयदशमी जाणे रे,
गुरु वासर अति मनोहर, बीसी चढ़ी परमाण रे।

चौबीसी जिनस्तवन

इसमें २४ जिनवरों का स्तवन है। इसके अन्त में गुरु को सादर स्मरण किया गया है, यथा—

वीर धीर शासनपति साचो, गातां कोडि कल्याण;
कीर्ति विमल प्रभु परम सोभागी, लक्ष्मी वाणी प्रमाणु रे।[1]

इसका मंगलाचरण इन पंक्तियों से शुरू हुआ है—

तारक ऋषभ जिनेसर तु मिल्यो, प्रत्यक्ष पोत समान हो,
तारक जे तुझनि अवलंबिया, तेणे लहुं उत्तम स्थान हो।

यह चौबीसी प्राचीन स्तवन रत्नसंग्रह भाग २; ११५१ स्तवन मंजूषा और चौबीसी बीशी स्तवन संग्रह में प्रकाशित है।

लक्ष्मीविमल ने गद्य में 'सम्यक्त्वपरीक्षा बालावबोध सं० १८१३ में लिखा। इससे पता लगता है कि आप का रचनाकाल १८वीं के उत्तरार्द्ध से १९वीं शती के प्रथम चरण तक फैला था। जैन गुर्जर कवियो भाग १ प्रथम संस्करण में इन्हें १७वीं शती के कवियों में रखा गया था किन्तु उक्त ग्रन्थ के नवीन संस्करण में उसके संपादक ने इन्हें १८वीं शती का कवि बताया है। साथ ही प्रथम संस्करण में इनकी बीशी को इनके गुरु कीर्तिविमल की रचना बताया गया था, वह भी नवीन संस्करण के संपादक जयंत कोठारी की दृष्टि में गलत था और वे बीशी को लक्ष्मीविमल की ही रचना मानते हैं। जो हो, इतना निश्चित है कि लक्ष्मीविमल १८वीं शती में रचनायें कर रहे थे और अधिकतर कार्य इसी शती में पूर्ण किया था, अतः वे प्रधानतया १८वीं शती के लेखक हैं और गद्य तथा पद्य दोनों विधाओं के समर्थ लेखक हैं।

१ जैन गुर्जर कवियो-भाग १, पृ० ५९६ और भाग ३ पृ० १०८८, १४४३, १४६५, १६६८(प्र०सं०) तथा वही भाग ५, पृ० ३०९-३१०(न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(पं०) लाखो—इनकी एक रचना 'पार्श्वनाथ चौपाई' का उल्लेख मिलता है जो सं० १७३४ में रचित है। इसलिए १७वीं शताब्दी के लाखों से इन्हें भिन्न होना चाहिए।[1] ये वणहट के ग्रामवासी थे तथा औरंगजेब के समकालीन थे। चौपाई में २६८ पद्य हैं।

रचनाकाल—

संवत सतर सै चौतीस, कार्तिक शुक्ल पक्ष सुभदीस।

अन्त— कर्मक्षय कारण शुभहेत, पार्श्वनाथ चौपइ सचेत।
पण्डित लाखो लाख सभाव, ······

यह रचना चौपाई छंद में रचित है। इसकी भाषा सरस एवं प्रसादगुण सम्पन्न है। इसमें पार्श्वनाथ की जीवन चरित्र वर्णित है।

लब्धि—आपकी गुरु परंपरा अज्ञात है। आपने १८१० से पूर्व मनक महामुनि संञ्झाय नामक एक छोटी रचना (१० कड़ी) की है अतः रचना १८वीं शती की ही मानी गई है। इसके आरम्भ की पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

नमो नमो मनक महामुनि बाल थकी व्रत लीधो रे,
प्रेम पिता स्युं परठी ओ स्युं मोह न कीधो रे।

इसकी अंतिम पंक्तियाँ निम्नवत् हैं—

लब्धि कहे भविजन तमे म करो मोह विकारो रे,
वो तमे मनक तणीं परे पामो सद्‌गति चारो रे।[2]

यह मोटु संञ्झायमाला संग्रह में तथा अन्यत्र से भी प्रकाशित रचना है। भाषा के आधार पर रचना स्थान गुर्जर प्रदेश प्रतीत होता है।

लब्धिरुचि—आप तपागच्छीय हर्षरुचि के शिष्य थे। इनके दो रचनाओं की सूचना उपलब्ध है, प्रथम 'चंदराजा चौपाई' और दूसरी

---

१. सम्पादक कस्तूरचन्द कासलीवाल—राजस्थान के जैन शास्त्रभंडारों की ग्रंथसूची भाग ४, पृ० ३७-३८ और ५४ तथा भाग ४, पृ० ४४८-४४९

२. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग ५, पृ० ४२१-४२२ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पार्श्वनाथ नो छंद अथवा स्तोत्र या स्तवन। यह स्तवन ३२ कड़ी का है और इसका रचनाकाल सं० १७१२ है। रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है --

गुर्जर जनपद मांहे राजे,
त्रिभुवन ठकुराई तुझ छाजे,
इम भाव भले जिनवर गायो,
वामासुत देखि बहु सुख पायो।
रवि मुनि शशि संवच्छर रंगे,
जयदेव सूरमाँ सुख संगे।
जय शंखपुराभिध पार्श्व प्रभो,
सकलार्थ समीहित देहि विभो।
बुध हर्षरुचि विजयाय मुदा,
तप लब्धरुचि सुखदाय सदा।

इसके मंगलाचरण में पार्श्वनाथ की वंदना है, यथा--

जय जय जगनायक पार्श्व जिन,
प्रणताखिल मानवदेव गतं।
जिन शासन मंडन स्वामि जयो,
तुम दरिसन देखी आनन्द भयो।[1]

लब्धिरुचि की यह रचना प्राचीन छन्द संग्रह और चैत्य आदि संञ्झाय भाग ३ तथा अन्यत्र भी प्रकाशित है।

इनकी दूसरी कृति 'चंदराजा चौपाई' का रचनाकाल जैन गुर्जर कवियो के प्रथम संस्करण में १७०७ बताया गया था किन्तु नवीन संस्करण के सम्पादक इसे १७१७ बताते हैं। प्रथम संस्करण में देसाई ने इस रचना का लेखक विद्यारुचि ओर लब्धिरुचि को सहकर्त्ता बताया था।[2] लब्धिरुचि विद्यारुचि के 'लघुबंधव' अर्थात् लघु गुरुभाई थे। नवीन संस्करण में इसका रचनाकाल सं० १७१७ फाल्गुन शुक्ल १३ गुरुवार बताया गया है। रचनाकाल का यह आधार जयंत कोठारी (सम्पादक नवीन संस्करण) ने विवेक रुचि (विद्यारुचि) का संभावित कर्त्ता होना बताया है।

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग ४, पृ० २५३-२५४ (न० सं०)।

२. वही भाग २ पृ० १५० और भाग ३ पृ० ११९९ (प्र०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लब्धिविजय—तपागच्छीय विजयसिंह 7 विजयदेव 7 संजमहर्ष गुणहर्ष आपके गुरु थे। इन्होंने 'उत्तम कुमार रास' सं० १७०१ कार्तिक शुक्ल ११ गुरुवार को पूर्ण किया। इसका आदि—

श्री गुणहरष (गुरु) तणो, पामी पुण्य प्रभाव,
विषम विघन जल तार वा, जे वड अविहड नाव।

× × ×

वीणा पुस्तक धारिणी भगवती भारती देव,
कवित्त करूं संखेप थी, हियडे तुझ समरेव।

रचनाकाल—

संवत सतर शत अेक ऊपरि (१७०१) वरसि कातिमास,
उज्जवल अग्यारसे गुरुवासरें, रच्यो रास उल्लास।

गुरुपरंपरा—

श्री तपगछ गयणंगणि दिनमणि, श्री विजयदेव सूरींद,
विजयसिंह सूरी आचारज, प्रतपो ज्यां रविचंद।
तास पटंपर गुरु तप गछपति विजयदेव सूरिराय,
तास सीस संजमहर्षाभिध वरपंडित कहवाय।
तास सीस पंडित मुगुटमणि, श्री गुणहर्ष सुसीस,
लब्धिविजय कवि कहे करजोडी, इमि हर्ष निसदीस।

आपकी दूसरी रचना 'अजापुत्र रास' का रचनाकाल सं० १७०३ आसो शुक्ल १९ है। इसकी प्रारंभिक पंक्तियाँ निम्नलिखित हैं—

बंदु श्री जिनवर तणां चरण कमल उल्हास,
जे प्रणमंते पामीइ, शिवसुख वारेमास।

× × ×

श्री सरसती तु सारदा, गिरवांणी गुणगेल,
ब्रह्माणी ब्रह्मांडवि, मोह्यो मोहनवेलि।

रचनाकाल—

संवत सतरत्रन आसु सुद मां दसमी शुक्रे सही,
श्री अजापुत्र तथा सुकोमल, रास वंधे अेम कही।

इसमें भी उपर्युक्त गुरुपरंपरा दी गई है। तत्पश्चात् अंतिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तस सीस लीला लबधि विजयभिध विबुध भावें मणे,
अजापुत्र नरपति निघट निरुपम कीरतपट हो रणंजये।

इस रचना में सात खण्ड और २९ ढाल हैं। इन विस्तृत रचनाओं के अलावा आपने मौन एकादशी स्तवन, सौभाग्यपञ्चमी ज्ञानपंचमी स्तवन और पंच कल्याणकाभिध जिनस्तवन नामक तीन स्तवन भी लिखे हैं। प्रथम स्तवन की अंतिम दो पंक्तियाँ उदाहरणार्थ उद्धृत कर रहा हूँ—

श्री विजयदेव सूरीदेव सद्गुरु लह्यो,
श्री गुण हरष कवी सीस लेशि;
मौन अेकादशी दिवस महिमा कह्यो,
गहगह्यो लबधि लीला विशेषि।[1]

पंचकल्याणाभिध जिन स्तवन की प्रारंभिक पंक्तियाँ निम्नांकित हैं--

चौबीसइं जिणवर नमी, निअ गुरु छरण नमेवि,
कल्याणक तिथि जिनतणी, सुणि भवियण संखेवि।[2]

इनका उल्लेख नवीन संस्करण में सम्भवतः छूट गया है।

लब्धिविजय (वाचक)—आप पौर्णिमागच्छीय लक्ष्मीचंद सूरि के प्रशिष्य और वीर विमल के शिष्य थे। आपकी एक रचना 'सुमंगलाचार्य चौपाई' का उल्लेख मिलता है। यह रचना सं० १७६१ भागवानगर पूर्ण हुई थी। इसके मंगलाचरण की प्रारंभिक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं--

सकल सुरासुर सामी भलउ, समरथ साहिब पास,
देव 'दयाकर दारिद्रहर, नीलवरण तनु जास।

× × ×

सरसति भगवती पय नमी, माँगी वचन विलास,
करजोड़ी सहि गुरु तणां, प्रणमु चरण उल्हास।

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० ११९-१२४ (प्र०सं०)।

२. वही भाग ३, पृ० ११८० (प्र०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह रचना कूर्मापुत्र चरित्र पर आधारित है, यथा--

कूर्मापुत्र ना चरित्र थी अे उधरीओ अे अधिकार,
धरम हीअे धरो अे, टाली सयल परमाद,
भवियण साभंलो अे, धरम हीअे धरो अे,
छंग कुडउ विवाद; धरम······

गुरुपरंपरा--

पूनिम गछपति राजीद्या अे, पालइ पंचाचार,
श्री लक्ष्मीचंद सूरीसरु अे जसु दरसन छइ सुखकार।
प्रथम शिष्य मुख्य तेहना अे, वीरविमल मुनींद,
विनय विवेकइं आगला अे, प्रवर्त्तावक मांहि दीपइ जिमचंद।
तेह गुरुनी अनुमतिइं रचिउ रास रसाल, धरम ·····

रचनाकाल—

शिव दरिसनोदधि भू वत्सरइ अे, भागवा नयर मझारि,
अे रास सरस जिकोपभणइ अे, आणी हरष ज जाण,
लब्धिविजय वाचक भणइ अे, तेहनइ कुशल कल्याण।[1]

प्रस्तुत लब्धिविजय (वाचक) की प्रथम लब्धिविजय से न केवल गुरु परंपरा ही भिन्न है अपितु दोनों के रचनाकाल में अर्द्ध शताब्दी का लम्बा अंतराल है जिसे देखते हुए यह निश्चित होता है कि ये दोनों भिन्न-भिन्न रचनाकार थे। अतः एक को केवल लब्धिविजय तथा दूसरे को वाचक लब्धिविजय लिखकर अलगाया गया है। इस रचना में कवि ने पार्श्वनाथ की वंदना करते हुए उनके जन्म स्थान वाराणसी को भी स्मरण किया है। प्राचीन जैन साहित्य में बनारस के वाराणसी शब्द का प्रयोग प्रायः मिलता है। इससे इस शब्द की प्राचीनता प्रमाणित होती है।

लब्धिसागर—खरतरगच्छीय जिनचंदसूरि की माणिक शाखा के कमलकीर्ति > सुमतिमंदिर > जयनंदन आपके गुरु थे। इन्होंने सं० १७७० आसो कृष्ण ५, शनिवार को चूडा में अपनी चौपाई ध्वजभुजंगकुमार चौपाई पूर्ण की थी। इसकी अंतिम पंक्तियों में ऊपर दी गई गुरु परंपरा बताई गई है। इसकी अंतिम पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं--

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० ४५८-४५९ (प्र० सं०) और भाग ५, पृ० २११-२१२ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तसु पाटै जयनंदन चिरजयो रे, लबधसागर शिष्य तास,
संवत सतरै सै सित्यरे समै रे, उत्तम आसू मास।
पषि अंधारै पांचिम थावरै रे, चूडा गांम मझार,
चोपी कीधी पूरी चूंप सूं रे, आंणी हरष अपार।[1]

अगरचंद नाहटा ने इनका जन्म नाम लालचंद बताया है। इनकी रचना का नाम ध्वजरंग कुमार चौपाई तथा रचना स्थान का नाम भी (संभवतः छापेखाने की असावधानी के कारण) चूहा ग्राम लिखा है।[2] पहले भ्रमवश इस रचना को किसी तपागच्छीय लब्धिसागर की कृति बताया गया था, किन्तु यह प्रमाणित हो गया है कि प्रस्तुत लब्धिसागर खरतरगच्छीय थे।

लब्धोदय गणि—ये खरतरगच्छीय जिनमाणिक्य सूरि शाखा के विद्वान् और जिनरंग सूरि की गद्दी के आज्ञानुवर्ती थे। इनके गुरु का नाम ज्ञानराज था। श्री नाहटा ने इनका जन्म सं० १६८० के आसपास अनुमानतः बताया है। उनका कथन है कि इनकी प्रथम रचना पद्मिनी चरित्र १७०६ से प्रारंभ होकर सं० १७०७ की चैत्र पूर्णिमा को पूर्ण हुई। उस समय तक ये 'गणि' उपाधि से विभूषित हो चुके थे और इनकी आयु लगभग २७ वर्ष की होगी। इनकी दीक्षा इस अनुमान के आधार पर सं० १६९५ में पूर्ण हुई होगी। इनका दीक्षा नाम लब्धोदय था। इनके बाल्यकाल का नाम लालचंद था। इनकी गुरुपरंपरा इस प्रकार है। खरतरगच्छीय जिनमाणिक्य सूरि > विनयसमुद्र > हर्षविलास > ज्ञानसमुद्र > ज्ञानराज। इनकी प्रथम रचना पद्मिनीचरित्र अथवा गोराबादल चौपाई (३ खंड ८१६ कड़ी) सं० १७०७ चैत्र शुक्ल १५ शनिवार को चित्तौड़ में पूर्ण हुई थी। यह शील के माहात्म्य पर रचित है। मेवाड़ के राणा जगतसिंह की माता जंबूवती के मन्त्री कटारिया केशरी के पुत्र हंसराज भागचंद के आग्रह पर यह रची गई थी। इस पर हेमरत्न की तत्संबंधी रचना का भी प्रभाव है। इसमें भागचंद और उनके परिवार का भी उल्लेख है। यह रचना भँवरलाल नाहटा द्वारा सम्पादित होकर रिचर्स इंस्टीच्यूट बीकानेर से

१. मोहनलाल दलीचंद देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग १, पृ० १०१, भाग २, पृ० ५१४ (प्र० सं०) और वही भाग ५, पृ० २७८ (न०सं०)।
२. अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० १०९।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशित हो चुकी है। इसके अलावा आपकी अन्य रचनाओं में रत्न-चूडमणिचूड़ चौपाई (दानधर्म के माहात्म्य पर) मलयसुन्दरी चौपाई शीलधर्म पर) गुणावली चौपाई के अलावा घुलेवा ऋषभदेव स्तवन (१३ पद्य) और दूसरा ऋषभदेव स्तवन (१५ गाथा) का उल्लेख मिलता है। इनकी रचनाओं का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है--

पद्मिनी चौपाई (सं० १७०६ पूणिमा चैत्र सं० १७०७, ३ खंड ८१६ कड़ी)

आदि-- श्री आदिसर प्रथम जिन, जगपति ज्योति सरूप,
निरभय पद वासी नमूँ, अकल अनंत अनूप।

× × ×

ज्ञाता दाता ज्ञानधन, ज्ञानराज गुरुराज,
तास प्रसाद थकी कहूं, सती चरित सिरताज।
गोरा बादल अति गुणि, सूरवीर सिरताज,
चित्रकोट कीधउ चरीत, सांमी धरम सिरताज।

इस रचना पर जटमल के गोराबादल का भी प्रभाव है, साथ ही हेमरत्न कृत गोराबादल चौपाई से भी सहायता ली गई है। कवि बादल की वीरता और स्वामिभक्त के बारे में लिखता है—

सामि धरम बादल समो, हूओ न कोई होइ,
जुधि जीतो दील्ली धणी, कुल अजुआल्या होइ।

रचनाकाल--

तसु आग्रह करि संवत सतर सतोतरै रे, चैत्र पूनिम शनिवार,
नवरस सहित सरस संबंध नवौ रच्यौ रे, निज बुधनै अनुसार।

मलयसुन्दरी चौपाई सं० १७४३ धनतेरस, गोधूंदा के अन्त की कुछ पंक्तियाँ देखें--

महोपाध्याय ज्ञानराज गुरु, कह्यो सुपन में आय,
पाँच चौपाइ थें करी, अे छठी करो बनाय।

इससे लगता है कि इससे पूर्व वे पाँच चौपाइयाँ रच चुके थे पर इससे पूर्व उन्होंने दानधर्म के दृष्टांत स्वरूप रत्नचूड़ मणिचूड़ चौपाई की रचना सं० १७३७ में की थी। यह रचना भी भागचंद के आग्रह पर वसंत पंचमी सं० १७३७ को उदयपुर में की गई थी। इसमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भी भागचंद के परिवार का विस्तृत ब्यौरा दिया गया है। इसकी एकमात्र प्रति हित सत्कार ज्ञानमन्दिर घाणेराव से प्राप्त हुई है। पद्मिनी चौपाई की रचना सं० १७०७ के पश्चात् प्राप्त प्रस्तुत रचना सं० १७३७ को देखते दोनों के बीच तीस वर्षों का लंबा अंतराल है। इस अवधि में कवि ने अवश्य कुछ रचनायें की होंगी पर वे लुप्त हो गई या अब तक अनुपलब्ध हैं। श्री नाहटा का अनुमान है कि प्रथम रचना और प्रस्तुत पाँचवीं रचना के मध्य रचित इनकी तीन रचनाएँ अवश्य लुप्त हैं।[1]

मलयसुन्दरी का रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है—

संवत सतर त्रयाला वरसे, वदि श्रावण तेरस कीध आरंभ जी,
धनतेरस संपूरण कीधी, सुणतां अधिक अचंभ
प्रौढ़ोपाध्याय पदधारी, श्री लब्धोदय गुणखाणी जी,
व्याकरण तर्क साहित्य छन्द कोविद, अलंकार रसि जाणी जी।

इस समय तक लब्धोदय प्रौढ़ौपाध्याय हो चुके थे। वे साहित्य के विविध अंग-रस-छंद-अलंकार आदि के साथ तर्क शास्त्र, व्याकरण आदि के भी ज्ञाता थे। पर यह सब बातें स्वयं वे अपने बारे में लिखते हैं जिससे कवि की आत्मश्लाघा व्यक्त होती है जो एक निस्पृह साधु के लिए ओछी बात लगती है। जो हो लब्धोदय महोपाध्याय इस शताब्दी के खरतरगच्छीय कवियों में प्रमुख कवि हैं। गुणावली चौपाई ज्ञान पंचमी व्रत पर आधारित रचना है। यह सं० १७४५ फाल्गुन शुक्ल १०, उदयपुर में रचित है।[2] यह भागचंद की पत्नी भावल दे के लिए लिखी गई। ऋषभदेव स्तवन प्रथम सं० १७१० ज्येष्ठ कृष्ण २, बुधवार और दूसरा स्तवन सं० १७३१ में लिखित है। आपकी अंतिम प्राप्त रचना गुणावली ही प्रतीत होती है जो सं० १७४५ की रचित है अतः यह भी अनुमान है कि इनकी मृत्यु सं० १७५० के आसपास हुई होगी। पद्मिनी चौपाई में यह उल्लेख है कि खरतर गच्छाचार्य श्री जिनरंगसूरि की आज्ञा से आप उदयपुर आये थे। इसके पश्चात् की रचनायें प्रायः उदयपुर, गोगूँधा और धुलेवा में रचित हैं अतः आपका

१. अगरचन्द नाहटा - परंपरा पृ० ९५-९७।

२. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० १३४-१३८, भाग ३, पृ० ११८५-८६ (प्र० सं०) और भाग ४, पृ० १५७-१६२ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विहार मेवाड़ प्रदेश में ही अधिक हुआ सिद्ध होता है, परिणामतः आपकी रचनाओं का कथ्य, विषय और भाषा शैली प्रायः मेवाड़ी संस्कृति और भाषा से प्रभावित है। आपकी महत्वपूर्ण रचना रत्नचूड़ मणिचूड़ चौपाई का उद्धरण नहीं प्राप्त हो सका। आपका तत्कालीन समाज, इतिहास और राजसमाज से अच्छा परिचय था। पद्मिनी चौपाई में तत्कालीन जैन धर्म और राज सत्ता के प्रधानों का परिचय प्रस्तुत किया गया है। सुधर्मास्वामी से लेकर ज्ञानराज तक की गुरु परंपरा के साथ चित्तौड़, मेवाड़पतियों का विशेषतया हिंदूपति जगत सिंह आदि का व्यौरा दिया गया है। कवि ने लिखा है —

हिन्दूपति श्री जगतसिंह राणो जिहां, राज करै जग भाण।

इससे प्रकट होता है कि हिन्दू धर्म और जैसे धर्म में उस समय कोई दुराव नहीं था।

लाघाशाह—ये कडुवा गच्छ के अच्छे लेखक थे; इन्होंने अपनी रचनाओं में कडुवाशाह से लेकर भीम, वीरो, जीवराज, तेजपाल, रत्नपाल, जिनदास, तेजपाल, कल्याण, लघुजी और शोभणजी तक की गुरु परंपरा बताई है। ये शोभणजी के शिष्य थे। इनकी रचनाओं का परिचय प्रस्तुत है—

चौबीसी (सं० १७६०, विजयदशमी, शुक्रवार, अहमदाबाद) का रचनाकाल :–

संवत सतर साठे कविवारे, विजयदसम मन लाया,
राजनगर मध्ये रहीय चोमासु, चौबीस गीत बनाया रे।

यह रचना करमण शा के आग्रह पर लिखी गई थी, यथा–

श्री थराद नगर ना वासी, सा हीरो मन भाया,
सा करमण आग्रह थी कीधां, सरस संबंध रचाया रे।

अंत—अक्षर न्यून अधिक जे भाष्युं, सुद्ध करयो कविराया,
साहा लाघो कहे पूरण कीधां, सारद सुगुरु पसाया रे।

जंबू कुमार रास (३२ ढाल, सं० १७६४ कार्तिक शुक्ल द्वितीया, गुरुवार)

सोही ग्राम में यह रचना की गई थी। इसमें वही गुरुपरंपरा दी गई है जो पहले बताई जा चुकी है। रचनाकाल इस प्रकार दिया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गया है—

संवत सतर चौसठा वरसे, कार्तिक सुद सुषदाया रे,
बीज गुरु दिन पूरण कीधो, सारद सुगुरु पसाया रे।

सूरत चैत्य परिपाटी (८१ कड़ी सं० १७९३, मागसर कृष्ण १० गुरु, सूरत)

आदि–प्रणमी पास जिणंद ना, चरण कमल चितलाय,
रचना चैत्य प्रवाड नी, रचसूं सुगुरु पसाय।

रचनाकाल—

संवत सतर त्राणुआ वरसे, रही सूरत चौमासे जी,
मागसिर वदि दसमी गुरुवारे, रचीउं स्तवन उल्लासे जी।[1]

यह रचना साह लालचंद के आग्रह पर की गई, इसमें सूरत बन्दरगाह के सभी जिनविहारों का वर्णन किया गया है। यह प्रकाशित रचना है।

इनकी अधिक प्रसिद्ध रचना 'शिवचंद सूरिरास' है। यह रास ७ ढालों में रचित है और इसका रचनाकाल सं० १७९५ आसो शुक्ल ५, गुरुवार तथा स्थान राजनगर बताया गया है।[2] शिवचंद सूरि का जन्म मरुधर देशीय भिन्नमाल निवासी ओसवाल गोत्रीय सा पदमसी की पत्नी पद्मा की कुक्षि से हुआ था। जिनधर्म सूरि के उपदेश से १३ वर्ष की वय में वैराग्य हुआ और सं० १७६३ में दीक्षा ली। जिनधर्म ने १७७६ में इन्हें गच्छनायक की पदवी प्रदान की और उदयपुर में महोत्सव मनाया गया। इन्होंने सं० १७७८ में क्रियोद्धार किया; अनेक तीर्थों को यात्रायें कीं। इनके खिलाफ यवनशासकों के कान भरे गये और उन लोगों ने इन्हें यातनायें भी दीं। सं० १७९४ में हीरसागर को पट्टधर बनाकर इन्होंने देहोत्सर्ग किया। इन्हीं हीरसागर के आग्रह पर सं० १७९५ में यह रास लाधासाह ने राजनगर में लिखा। इसका आदि इन पंक्तियों से हुआ है—

सासन नायक समरीये, श्री वर्द्धमान जिनचंद,
प्रणमुं तेहना पदयुगल, जिम लहु परमाणंद।

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग ५, पृ० १९८-२०१ (न०सं०)।
२. ऐतिहासिक जैन काव्यसंग्रह–पृ० ३२१-३३२ तक।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसमें शिवचंद की गुरुपरंपरा बताते हुए कवि ने खरतरगच्छ के जिनदत्त से शिवचंद तक का उल्लेख किया है। यह ध्यान देने की बात है कि कवि स्वयं कड़ुवा गच्छ के थे किन्तु उन्होंने खरतरगच्छ के एक साधु पर रास सद्भावपूर्वक लिखा। खरतरगच्छ के साधुओं की प्रशंसा भी की है, यथा--

जिनदत्त ने जिनकुशल जी, सूयी हुवा सुखकार,
तस पद अनुक्रमे जाणीये, जिनवरधमान सूरींद।
जिनधरम सूरि पटोधरु, जिनचंद सूरि मुणिंद,
शिवचंद सूरी जांणिये, देश प्रसीध है नाम।
खरतरगच्छ सिरसेहरो, संवेगी गुणधाम। इत्यादि

अंत--अति आग्रह कीधो हीरसागरै हित आणी,
करी रास नी रचना, साते ढाल प्रमाण।

रचनाकाल--

संवत सतर सै पंचाणु आसो मास सोहामणो,
शुदि पंचमी सुरगुरौवारे अे रच्यो रास रलियामणो।

× × ×

निरवाण भाव उलासा साथे रामनगर मोहें कीऊ,
कहें साहजी लाघो हीर आग्रहे थी रास अेह करि दीऊ।[1]

इनकी एक गद्यरचना भी उपलब्ध है जिसका नाम है--

पृथ्वीचंद्र गुणसागर चरित्र बालावबोध (सं० १८०७ मागसर, शुक्ल पंचमी, रविवार, राधनपुर)

इसके अंत में कवि की उपर्युक्त गुरुपरंपरा दी गई है, इसकी अंतिम प्रशस्ति परंपरानुसार संस्कृत में है। अंतिम दो पंक्तियाँ निम्नवत् हैं--

राधकेति पूर्वद्रये चातुर्मास स्थितेन च,
कटुगच्छेशलब्धेन कृतोऽयं बालबोधकः।[2]

---

१. ऐतिहासिक जैन काव्यसंग्रह--पृ० ३२१।

२. मोहनलाल दलीचन्द देसाई--जैन गुर्जर कवियो भाग २ पृ० ४९६-४९८ (प्र०सं०), भाग ३ पृ० १४२१-२२ और १६६८ (न० सं०) तथा वही भाग ५, पृ० १९८-२०१ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसमें रचनाकाल दिया गया है–

अष्टशततमे वर्षे प्रमिते सप्तमोत्तरे,
मार्गशीर्षे सिते पक्षे पंचम्यां भानुवासरे। इत्यादि

इसके गद्य का नमूना नहीं दिया गया है, परंतु इतना स्पष्ट है कि लाघासाह गद्य-पद्य विधाओं में रचना करने में सक्षम थे।

लाभकुशल—आप तपागच्छीय वृद्धिकुशल के शिष्य थे। आपकी रचना स्थूलभद्र चौपई (सं० १७५८, चैत्र कृष्ण १०, गुरुवार, आमेट) के मंगलाचरण की प्रारंभिक पंक्तियाँ देखे—

जय जय करण जिणेसरु; त्रिसलानंदन वीर,
वर्द्धमान शासनधणी, प्रणमुं साहस धीर।

गुरुपरंपरा—

कवियण माहें मुकुट कहीजइ श्री वृद्धिकुशल दींव सीसोरे,
मुझ भागी करि मझनइ मिलीया अे गुरु वीसवावीसो रे।
तास सीस इग लाभकुशल कवि अे रास रच्यउ कवि काजइं रे,
तेह तणा वली वड़ गुरुभाई राजकुशल कवि राजइ रे।
गच्छनायक गुरु कहीयइं गिरुअइ विनयप्रभ सुरंदो रे,
तस पटोधर गणधर जेहवो विजयरत्न मुनिंदो रे।

रचनाकाल—

संवत सतर आट्ठावन वरसइ पख कृष्ण चइत्र मास रे,
बार वृहस्पति दशमी दिवसइ पूरण हूओ तिहां रास रे।[1]

कवि लालचंद लाभवर्द्धन की रचना 'पांडव चरित्र' हिन्दी पद्य में रचित महाभारत का जैन संस्करण है। इसका रचनाकाल सं० १७६८ है।[2] इसके सम्बन्ध में अन्य विवरण नहीं प्राप्त है। ये संभवतः लाभवर्द्धन पाठक ही हैं जिनका परिचय आगे दिया जा रहा है। ये कवि लालचंद के नाम से भी कवितायें करते थे।

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई–जैन गुर्जर कवियो, भाग ५ पृ० ४४८-४४९ (न०सं०)।

२. डा० कस्तूरचंद कासलीवाल––राजस्थान के जैन शास्त्र भंडारों की ग्रंथ-सूची, भाग ४ पृ० ५४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लाभवर्द्धन पाठक— ये कविवर जिनहर्ष (खरतर) के गुरुभाई थे। इनका जन्मनाम लालचन्द था। इनकी दीक्षा १७१३ में हुई। इनकी निम्न रचनायें उपलब्ध हैं।

विक्रम ९०० कन्या चौपई सं० १७२३ जयतारण; लीलावती रास सं० १७२८; विक्रम पञ्चदण्ड चौपई सं० १७३३; लीलावती गणित चौपई १७३६ बीकानेर; धर्मबुद्धि पापबुद्धि चौपई १७४२ सरसा; स्वरोदय भाषा सं० १७५३, (मूल अक्षयराज कवि विरचित), निसाणी महाराज अजित सिंह सं० १७६२ जोधपुर; पाण्डव चौपई १७६७ विल्हावास, शकुनदीपिका चौपई १७७०; अंकपाश प्रस्तार १७६१ गुडा, चाणक्य नीति टब्बा।[1]

लाभवर्द्धन खरतरगच्छ की क्षेमशाखा के साधुरंग>धर्मसुन्दर>कमलसोम>दानविजय>गुणवर्धन>सोमगणि>शांतिहर्ष के शिष्य थे। प्रथम रचना विक्रम ९०० कन्य चौपई का रचनाकाल १७२३ या ३३ है यह संदिग्ध है। इसका अपर नाम 'खापरा चोर चौपई' भी है। इसमें २७ ढाल हैं। यह जयतारण में माघ शुक्ल बुधवार को पूर्ण हुई थी पर संवत् संदिग्ध है क्योंकि— सतरें से तेवीसमें (पाठांतर) 'सतरे सै तेत्रीसे वरसे' दोनों पाठ मिलता है। मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने अपने ग्रन्थ जैन गुर्जर कवियो में 'खापराचोर चौपाई का परिचय विक्रम ९०० कन्या चौपाई से स्वतन्त्र एक बिल्कुल भिन्न रचना के रूप में दिया है किन्तु यह भी आशंका व्यक्त की है कि दोनों एक ही रचना हो सकती हैं। उसे देसाई ने सं० १७२७ भाद्र शुक्ल ११ जयतारण में रचित बताया है। जो हो, यह स्वतंत्र शोध का विषय है। इनकी दूसरी रचना है—

लीलावती रास (२९ ढाल ६०० कड़ी सं० १७२८ कार्तिक शुक्ल १४) इसकी चौपाई के अन्त में लाभवर्द्धन और लालचन्द दोनों नाम मिलते हैं। जैसे—

जे चतुर हुसी सो समझती, लाभवरधन वचन रसाल रे।
और- पूरीय बीजा हो ढाल कही इसी जी, लालचन्द ससनेह।

इसका आदि देखे—

तेतीसमो त्रिभुवन तिलो, जगनायक जिनराय,
दायक शिवसुख सासतां, सेवे सुरनर पांय।

1. अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० ९९।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रचनाकाल—

संवत सतरे से गया, वली ऊपर अट्ठावीस;
काती सूदि चवदश दिने, संपूरया सुजगीस।[1]

लीलावती (गणित) हिन्दी सं० १७३६ आषाढ़ कृष्ण ५, बुधवार)

आचार्य भाष्कर कृत संस्कृत ग्रन्थ लीलावती का यह भाषा पद्यानुवाद है। इसके लिए कवि ने लिखा है—

यद्यपि रचना अति भली पंडित करैं वषाण,
पिण कोइक समझै चतुर, जिको व्याकरण जाण।

× × ×

यह विवेक धरि चित्त मै, सुगुरु चरण सुप्रसाद,
लालचंद भाषा करै मूल शास्त्र मरयाद।

यह रचना बीकानेर में हुई थी जहाँ उस समय महाराज अनूप सिंह राज्य करते थे। महाराज के अधिकारी कोठारी नेणसी और उनके पुत्र जैतसी के आग्रह पर यह रचना की गई थी।

धर्मबुद्धि पापबुद्धि चौपई (३९ ढाल ५३५ कड़ी सं० १७४२ सरसा)

रचनाकाल—

संवत सतरै वैतालीसे, सरस सहर करी,
गुणतालीस कही गुणवंती, सरसैं ढाल सुढरी।

स्वरोदय भाषा सं० १७५३ भाद्र शुक्ल को रचित है। यह भाषानुवाद है। पांडव चरित्र अथवा पाँच पांडव चौपई (१५० ढाल २७५१ कड़ी) पहले इसे मोहनलाल दलीचंद देसाई ने जिनहर्ष की रचना बताया था, पर बाद में सुधार कर लिया। यह सं० १७६७ कील्हावास में पूर्ण हुई थी। यह वही रचना है जिसका उल्लेख कस्तूरचंद कासलीवाल ने किया है किन्तु रचनाकाल सं० १७६८ बताया है। इसमें रचनाकाल का पाठ इस प्रकार प्राप्त है —

संवत सतरै सतसठ समै जी, किल्हुवास मझार।

इसमें जिनसुख, साधुरंग, धर्मसुन्दर, कमलसोम, दानविजय,

---

१. मोहनलाल दलीचंद देसाई—जैन गूर्जर कवियो, भाग ४, पृ० २३८ (प्र० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणवर्द्धन, सोमवर्द्धन और शान्तिहर्ष का सादर वन्दन किया गया है।

शकुन दीपिका चौपई (५६४ कड़ी १७७० वैशाख शुक्ल ३ गुरुवार)

वर्ष सत्तर सीत्तरि शुभ दाख, अषा त्रीज मास वैशाख
शकुन दीपिका अे चौपइ, वार वृहस्पति पूरी थइ।[1]

इनकी सभी रचनाओं का परिचय-उद्धरण देना विस्तारभय के कारण सम्भव नहीं है। पर इतने नमूने के आधार पर अनुमान होता है कि ये भी अच्छे लेखक थे।

लालचंद—आप विजयगच्छ के विद्वान् थे। इन्होंने सं० १७९९ कार्तिक शुक्ल पंचमी, चीताखेड़े में 'अगरचन्द्र सुशीला चौपई' का निर्माण किया।[2] इसका अन्य उद्धरण और विवरण अप्राप्त है। श्री अगरचन्द नाहटा इन्हें लूंकागच्छीय बताते हैं। इसकी एक प्रति महरचन्द भण्डार बीकानेर में सुरक्षित है।[3] इनकी एक रचना की सूचना उत्तमचन्द कोठारी ने दी है। उसका नाम 'नेमिजी व्याहलो' बताया है। यह रचना सं० १७४४ की है।[4] नागरी प्रचारिणी की ग्रंथसूची में 'लालकृत 'नेमिनाथ का मंगल' का भी उल्लेख मिलता है। हो सकता है कि ये 'लाल' लालचन्द ही हों और 'नेमिनाथ का मंगल' नेमिजी का 'व्याहलो' ही हो। जब तक दोनों की प्रतियों का मिलान न हो जाय, इस सम्बन्ध में कुछ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता।

लालरत्न—ये तपागच्छीय राजरत्न के शिष्य थे। इन्होंने सं० १७७३ में 'रत्नसार कुमार चौपई' की रचना पद्मावती नगरी में पूर्ण किया।[5] इस रचना का उद्धरण और अन्य विवरण आगे दिया जा

---

१. मोहनलाल दलीचंद देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० ८३, २१०-२१७; भाग ३, पृ० १२१८-१२२५ (प्र०सं०) और भाग ४, पृ० २३५-२४७ (न० सं०)।
२. वही भाग ३, पृ० १४७१ (प्र०सं०) और भाग ५ पृ० ३६४ (न०सं०)।
३. अगरचन्द नाहटा—परम्परा, पृ० १४४।
४. उत्तमचन्द भंडारी की सूची, प्राप्तिस्थान - पार्श्वनाथ विद्यापीठ, शोध-संस्थान, वाराणसी।
५. श्री अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० ११३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रहा है। यह रचना २२ ढाल में रचित है। रचनाकाल सं० १७७३ भाद्र कृष्ण ३ गुरुवार बताया गया है, यथा-

संवछर सतर तिहुतरि भाद्रव वदि गुरु तीज रे,
ये चौपई कीधी उलासि, सांभलिता चित रीझि रे।

गुरुपरंपरा इस प्रकार है--

विधिपक्ष गछ गिरुआ गुरुवंदु, विद्यासागर सूरि राजै रे।

अर्थात् वे विधिपक्ष के विद्यासागर सूरि > भुवनरतन > विजयरत्न > राजरत्न के शिष्य थे। इसके मंगलाचरण की प्रारम्भिक पंक्तियाँ देखें —

सरसति पाय प्रणमी करी आंणी मन उल्लास,
सुररांणी सुप्रसाद थी, लहियै लील विलास।

इसकी अन्तिम पंक्तियाँ निम्नांकित है--

सुणता अे अधिकार, नावि तेहनी आपदा,
लालरतन सुख चैन सूं, रिध वृद्ध पामि सदा।[1]

रतनसार कुमार रतनंगद राजा का पुत्र था। इसमें उसके विनय गुण का कथा के माध्यम से वर्णन किया गया है। उसने अपने तपबल से इस लोक में समृद्धि और अन्त में निर्वाण प्राप्त किया।

लावण्यचन्द--आंचलगच्छीय अमरसागर आपके प्रगुरु और लक्ष्मीचन्द आपके गुरु थे। आपने सं० १७३४ श्रावण शुक्ल त्रयोदशी को सिरोही में 'साधुवंदना' नामक अपनी रचना १५ ढाल में पूर्ण की। इसके मंगलाचरण की प्रारंभिक पंक्तियाँ देखें--

परम पुरुष वर धर्मप्रकाशक जगत महित अरिहंत,
अविनासी शिववासी निरमल सिद्ध अनादि अनंत।

गुरुपरंपरा-सुविहित तिलक सोहम गणधर थी,
अठतालिसमि पाट जी,
आरिजरक्षित सूरि परम गुरु,
विधिपक्ष ऊपम खाटि जी।

---

१ मोहनलाल दलीचंद देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग ३, पृ० १४३७-३८ (प्र०सं०) और वही भाग ५ पृ० २९०-२९१ (न०सं०)।

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

तास परंपर अंचल गच्छपति,
अमरसागर सूरींदा जी,
तस आज्ञापालक गीतारथ,
वाचक लक्ष्मीचंदा जी।

अर्थात् सोहम् गणधर के अड़तालीसवें पट्टधर आर्यरक्षित द्वारा प्रवर्तित विधिपक्ष की परंपरा में अंचलगच्छपति अमरसागर के ये प्रशिष्य और लक्ष्मीचंद वाचक के शिष्य थे। इसका रचनाकाल इस प्रकार उल्लिखित है—

सतर चऊत्रीसे श्रावण सुदि, तेरसि मंगलदायी जी,
सीरोही सहिरे गुरु महिरि, साधुवंदना गाई जी।

इनकी एक छोटी रचना 'साधु गुण भास' (४ ढाल) भी साधुओं के गुणगान पर ही आधारित है। इसका आदि इस प्रकार है--

साहस धरि घर परिहरी विचरहि जे खगधार,
मन अेक जिन आणा विषइ, पगि पगि तसि बलिहार रे।
धन धन साधु ते थिर संघयण सुसत्त रे।

अंत--जीव जीव इम जोगवि वधति,
गुणि हे नही क्षण विश्राम कि,
साधक मुगति समाधि सुं निति,
प्रणमि हे लावण्य सिरिनामि कि।[1]

लावण्यविजय गणि—तपागच्छ के साधु भानुविजय इनके गुरु थे। इन्होंने लगभग सं० १७६१ में 'चौबीसी' लिखी जिसका आदि निम्नवत् है—

आदि जिनेसर साहिबा, जगजन पूरे आस, लाल रे।
करीय कृपा करुणा करो, मनमंदिर करो वास, लाल रे।
वीनताई तूठा प्रभु, कीधो ज्योति प्रकाश, लाल रे।
पंडित भानुविजय तणो, लावण्य मन उल्हास, लाल रे।

---

१. मोहनलाल दलीचंद देसाई--जैन गुर्जर कवियो, भाग ३, पृ० १२९०-९१ (प्र०सं०) और वही भाग ५ पृ० ७-८ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंत--संगम सुर प्रेरित सुरश्यामा, मनमथ सेना आवी,
सन्मुख प्रभु स्युं छल वाहे ने, बोले नेह जगावी,
प्रीतम लीजे रे आ यौवन चो लाहो, आंचली।[1]

लावण्यविजय (तपागच्छ) ने योगशास्त्र बालावबोध सं० १७८८ में लिखा है। इनकी गुरुपरंपरा नहीं विदित है लेकिन अन्य अनुमानों के आधार पर ये चौबीसी के कर्ता लावण्यविजय ही हो सकते हैं।[2]

लोहर(साह)—इनके पिता बूँदी निवासी बघेरवार वैश्य धर्म थे। इन्होंने सेवक को अपना गुरु बताया है। इनके दो बड़े भाई हींग और सुन्दर थे। इनकी प्रारम्भिक रचना 'अढाई को रासो' (सं० १७३६) में मैना सुन्दरी और श्रीपाल की कथा २२ छन्दों में वर्णित है। दूसरी रचना 'चौढालियो' (सं० १७८४) ५० छन्दों की है। इन दोनों से पूर्व सं० १७३५ में 'षट्लेश्या बेलि' और प्रसिद्ध कृति (सं० १७२५ में रचित) यशोधर चरित प्राप्त है। डॉ० लालचंद जैन ने यशोधर चरित का रचनाकाल सं० १७२१ बताया है। यह सरस और सुन्दर कृति है। इसमें यशोधर के चरित्र का दृष्टान्त देकर जीवदया का सिद्धांत प्रतिपादित किया गया है। कुछ पंक्तियाँ देखें—

मै मतिसारु वर्णन कीयौ, चरित यशोधर परिचय दीयौ,
सुगम पंथ लषि लागौ बाट, कीनी सरस चौपइ थाट।
भविजन कथा सुनो दै कान, तां प्रसादि पावै सुरथान,
जीवदया उपजै अधिकार, सो संसार उतारै पार।[3]

इनकी एक अन्य कृति 'चौबीस ठाणा चौपई' है जिसका रचनाकाल सं० १७३९ मगसिर शुक्ल ५ है। रचना १३०० चौपाइयों में आबद्ध है। इसमें भी कवि ने पिता का नाम धर्मा (धर्म) बताया है। पं० लक्ष्मीदास के आग्रह पर यह सरल भाषा में रचना की गई है।

आदि— श्री जिन नेमि जिनंद चंद वंदिय आनंद मन,
सिध सुध अकलंक त्र्यंक सर भरि मयंक तन।

---

१. मोहनलाल दलीचंद देसाई--जैन गुर्जर कवियो, भाग ३, पृ० १४०६-७ और भाग ५, पृ० २१०-२११ (न०सं०)।

२. वही भाग ३, पृ० १६४१ (प्र०सं०) और भाग ५, पृ० ३३८ (न०सं०)।

३. डा० लालचन्द जैन --जैन कवियों के ब्रजभाषा प्रबन्धकाव्यों का अध्ययन, पृ० ६८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रचनाकाल—लाख पचीस निन्याणव कोटिं एक अवबुध लीज्यो जोड़ि
सो रचना लख ज्योन लाय, जँत्रग कदे धरु बनाय।[1]

डॉ० कासलीवाल ने 'षट्लेश्या वेलि' का रचनाकाल सं० १७३० बताया है।[2] परन्तु अन्तर्साक्ष्य हेतु मूल पाठ की संबंधित पंक्तियां नहीं दी हैं फिर भी अन्यत्र इसका रचनाकाल १९३५ से पूर्व प्राप्त प्रति के आधार पर ही बताया गया है इसलिए सं० १७३० मानने में कोई आपत्ति नहीं है। इस प्रकार इनकी प्रायः आधा दर्जन रचनाएँ उपलब्ध हैं जो प्रबन्ध काव्य से लेकर रासो, चौपई, वेलि आदि नाना काव्य रूपों में आबद्ध हैं। इनका रचनाकाल सं० १७२१ से लेकर ३६ तक फैला है। रचनाकाल में अन्तर मिलता है। यशोधर चरित में रचनाकाल ऐसे विचित्र ढंग से बताया गया है कि कुछ विद्वान् जोड़ घटाकर सं० १७२५ और कुछ सं० १७२१ बताते हैं, पर विशेष अन्तर नहीं है।

वछराज—लोकागच्छ के लेखक थे। इन्होंने सं० १७४९ में 'सुबाहु चौढालियु' की रचना बीकानेर में पूर्ण की।[3] इसका अन्य विवरण और उद्धरण कहीं नहीं प्राप्त हुआ।

वधो—पीपाडो श्रावक, इन्होंने कुमति नो रास अथवा संञ्झाय अथवा प्रतिमा स्थापन गीत अथवा महावीर स्तवन की (३९ कड़ी) रचना सं० १७२४ श्रावण शुक्ल षष्ठी को सोजत में की। इसका आदि पहले प्रस्तुत है—

श्री श्रुतदेव तणें सुपसायें, प्रणमी सद्गुरु पाया;
श्री सिद्धांत तणे अणुसारें, सीख देउ सुखदाया रे।
कुमति। कां प्रतिमा ऊथापें,
मुगध लोक नें भामे पाडी पिंड भरे छें पायें-आंकणी।

---

१. सम्पादक डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल—राजस्थान के जैन शास्त्रभंडारों की ग्रंथसूची, भाग ३, पृ० १६९-७०।
२. वही भाग ४, पृ० ५५।
३. अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० ११४ और मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग ३, पृ० १३४७ (प्र०सं०) और भाग ५, पृ० ७५ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पहले ही कवि ने ३९ कड़ी की रचना के लिए चार नाम बताये और सीख देने की घोषणा कर दी, इसलिए इसमें किसी काव्य तत्व की तलाश अनावश्यक प्रतीत होती है। इसका रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है।

संवत सतरे वरस चोवीसे, श्रावण सुदि छठ दिवसे,
श्री जिन प्रतिमा नु दरसण करतां, कमल रतन विकसे रे।

कवि ने स्वयं का परिचय दिया है, यथा—

साह बधो ने जातें पीपाडो, नगर सोजित नो वासी,
अे तवन तव्यो सद्गुरु ने वयणे, थे छोडो कुमति नी पासी रे।[1]

यह महावीर की प्रतिमा का स्तवन है और सोजित में स्थापित महावीर की प्रतिमा को अर्पित है। इस स्तवन के पाठ से कवि का विश्वास है कि कुमति का नाश होता है।

वर्द्धमान—ये पार्श्वगच्छ के साधु कवि थे। इन्होंने सं० १७०५ आश्विन शुक्ल १ को 'हंसराज वछराज चौपाई' की रचना की। यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा गया है कि वर्द्धमान इस रचना के वास्तविक लेखक थे या मात्र प्रतिलिपिकार थे, क्योंकि नाहटा संकलन में जो प्रति उपलब्ध है उस पर 'लेखि वर्द्धमानेन' लिखा है[2], यह दोनों अर्थ देता है। अतः यह शोध का विषय है।

वरसिंह—लोकागच्छीय तेजसिंह>कान्ह>दामसि के ये शिष्य थे। इन्होंने 'नवतत्व चौपाई' की रचना (१३२ कड़ी) सं० १७६६ कालावड में की। इसका रचनाकाल बताने वाली पंक्तियाँ निम्नलिखित हैं—

संवत सतर छासठै उल्लास, नगर कालाउड रह्या चौमास;
गांधी गोकल वीनती करी, दाम सुनी शिक्ष चित में धरी।

गुरुपरंपरा वही इसमें बताई गई है जो ऊपर दी जा चुकी है।

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग ३, पृ० १२३३ (प्र०सं) और भाग ४, पृ० ३४१ (न० सं०)।
२. वही, भाग ३, पृ० ११४२(प्र०सं०) और भाग ४, पृ० १४६(न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह लोकागच्छीय श्रावकस्य सार्थं 'पंचप्रतिक्रमण सूत्र' मुम्बई से सन् १९४३ में छप चुकी है। इसका आदि देखें--

पास जिनेसर प्रणमी पाय, सद्गुरु दांम तणो सुपसाय,
नवतत्व नो कहूँ विच्यार, सांभलयौ चित्त देइ नरनार।

अंतिम पंक्तियाँ भी प्रस्तुत हैं—

तास सासण मांहि सोभता,
दांम मुनीवर पंडित हता,
तास शिष्य ऋषि वरसिंध कह्या,
अे बोल सिद्धांत थकी मै ग्रह्या।[1]

वल्लभकुशल—तपागच्छीय धीरकुशल>गजकुशल>प्रीतिकुशल >वृद्धिकुशल>सुन्दरकुशल इनके गुरु थे। इन्होंने सं० १७७५ कार्तिक कृष्ण १३, रविवार को जूनागढ़ में 'श्रेणिक रास' की रचना की। इस रचना से ऐसा लगता है कि वृद्धिकुशल और प्रीतिकुशल दोनों गुरु-भाई थे; कवि के गुरु सुन्दरकुशल वृद्धिकुशल के शिष्य थे। कवि ने लिखा है—

तस शिष्य सुंदरकुशल सुहाया, इम वल्लभ कुशल सुख पाया बे,
संवत १७ पंचोत्तरा वर्षे, काती बदी मन हरषे बे।

इसमें श्रेणिक (सम्राट् बिंबसार) की चर्चा है पर उसके ऐतिहासिक पक्ष की छानबीन करने पर परिणाम बहुत उत्साहवर्द्धक नहीं मिलता। इनकी दूसरी रचना भी जैनाचार्य हेमचंद्र गणि के व्यक्तित्व पर आधारित है पर श्रद्धा पक्ष ने इतिहास को यहाँ भी दबा रखा है। हेमचंद्र गणि रास जैन ऐतिहासिक गुर्जर रास संचय के पृष्ठ २६५ से २८४ पर प्रकाशित है। इस रास के प्रथम में आदि जिणंद, श्रुतदेवी, सद्गुरु, साधु जैनसंघ और जैनधर्म की वंदना है, तत्पश्चात् वल्लभ-कुशल लिखते हैं--

मुनीशनां गुण कहिस्युं अभिराम,
रास रचिय रलियामणो, जिम सीजे सब काम।

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग ३, पृ० १४१४ (प्र०सं०) और भाग ५, पृ० २५९ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फिर वह हेमचंद्र का परिचय देता है —

कुण हेमचंद्र किहांहवा, कवण देश विख्यात्,
धरम तणी करणी करी, ते सुणीयो अवदात।[1]

गुरुपरंपरा प्रथम रास में तपगच्छीय विजयरत्न > विजयक्षमा > धीर कुशल आदि की बताई है, दूसरे रास में विजयक्षमा के पट्टधर विजयदया के पश्चात् वृद्धिकुशल का उल्लेख किया गया है। उसके पश्चात् वह लिखता है--

तस पद पंकज सीस कहाया,
वल्लभकुशल गुण गाया रे,
सतर ताणुंआ वरस सुहाया,
सित मृगसिर सुख पाया रे।

इस आधार पर हेमचंद्र गणि रास का रचनाकाल १७९३ मागसर शुक्ल २, भौमवार निश्चित है। परन्तु श्रेणिक रास का रचनाकाल 'सं० १७ पंचोत्तरा वर्षे' का अर्थ भ्रामक होने के कारण देसाई ने पहले इसका रचनाकाल सं० १७०५ बताया था, पर पहिली रचना और दूसरी रचना के बीच लम्बे अंतराल को देखते हुए उसका अर्थ सं० १७७५ लगाना ही समीचीन लगता है अतः नवीन संस्करण[2] में रचना का यही समय बताया गया है। विजयक्षमा सूरिका सूरित्वकाल १७७३ से १७८५ तक निश्चित है। इसमें (श्रेणिक रास) विजयक्षमा का उल्लेख है अतः यह रचना सं० १७७३ से १७८५ के बीच हुई होगी। इस प्रमाण से भी इसका रचनाकाल सं० १७७५ ही उचित लगता है।

वस्ता (मुनि)—आपकी दो रचनाओं का उल्लेख मिलता है और दोनों प्रकाशित हैं। पहली रचना है—रात्रि भोजन सञ्झाय जो सञ्झाय माला तथा सञ्झाय स्तवन संग्रह में प्रकाशित है। दूसरी रचना का नाम है 'रहनेमि राजिमती सञ्झाय' यह भी सञ्झायमाला तथा सञ्झाय स्तवन संग्रह में प्रकाशित है। इन दोनों रचनाओं का कर्त्ता जैन गुर्जर कवियो के प्रथम संस्करण में भूलवश वस्तिग को बताया

१. जैन ऐतिहासिक गुर्जर रास संचय, पृ० २६५-२८४।
२. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० ५२४-२६ (प्र०सं०) और वही भाग ५, पृ० २९२-९३ (प्र०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गया था[१] वस्तुतः ये रचनायें वस्ता मुनि की हैं। यह फिर भी स्पष्ट नहीं है कि वस्ता मुनि का रचनाकाल क्या है ? और उनकी गुरुपरंपरा का भी निश्चित पता नहीं है अतः यह कहना कठिन है कि इन रचनाओं के कर्त्ता वस्ता, वस्तो और वस्तिग में से कौन हैं। इन कवियों के रचनाकाल में शतियों का अन्तराल है। अतः ये सभी अलग-अलग कवि हैं।

(ब्रह्म) वादिराज--आपकी एक रचना नेमीश्वर सवैया सं० १७८२ का उल्लेख मिलता है पर अन्य विवरण-उद्धरण अनुपलब्ध है।[२]

विक्रम--आप लूंकागच्छीय भोजा जी के प्रशिष्य एवं भीमराज के शिष्य थे। इन्होंने सं० १७०६ कार्तिक शुक्ल ९ भृगुवार को सबडार में 'धन्ना चौपाई' की रचना की। इसके भी उद्धरण अनुपलब्ध हैं।[३]

विजयसूरि--आपकी एक रचना 'रोहिणी चोढालियुं' का उल्लेख देसाई ने किया है। यह रचना सं० १७२७ में की गई, उन्होंने इसका अन्य विवरण और उद्धरण नहीं दिया है।[४]

विजयदेवसूरि—आपकी दो रचनाओं--नेमीश्वर रास सं० १७८५ (विज्ञान-ज्ञान भंडार, सूरत) और नेमि राजीमती रास सं० १७८७ का उल्लेख उत्तमचंद कोठारी ने अपनी सूची में किया है, किन्तु उसमें अन्य विवरण-उद्धरण नहीं है।[५]

विजय जिनेन्द्र सूरि शिष्य--'स्थूलिभद्र चरित्र बालावबोध'

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई---जैन गुर्जर कवियो, भाग १, पृ० २३ (प्र०सं०) और भाग ५ पृ० ३७४ (न०सं०)।

२. पुस्तक सूची उत्तमचंद कोठारी---प्राप्तिस्थान पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी।

३. मोहनलाल दलीचन्द देसाई–जैन गुर्जर कवियो, भाग ३, पृ० ११४२, (प्र०सं०) और भाग ४, पृ० १४६ (न०सं०)।

४. वही भाग २, पृ० २५१ (प्र०सं०) और भाग ४, पृ० ३८२(न०सं०)।

५. पुस्तकसूची उत्तमचंद कोठारी–प्राप्तिस्थान पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की रचना इस अज्ञात शिष्य ने सं० १७६२ में की जो मूलतः जयानंद सूरि कृत है। परंतु इसके गद्य का नमूना नहीं उपलब्ध है।[1]

विद्याकुशल--चारित्र धर्म--ये खरतरगच्छीय आणंदनिधान के शिष्य थे। इन्होंने सं० १७९१ लूणसर में रामायण चौपाई की रचना की। यह वाल्मीकि रामायण का मरुगुर्जर जैन संस्करण होगा। इसका उद्धरण उपलब्ध नहीं है।[2]

विद्यारुचि—आप उदयरुचि के शिष्य थे। इन्होंने चंदराजा रास (६ खण्ड) बनाया। इसके अलग-अलग खण्ड भिन्न-भिन्न समय में रचे गये। दूसरा खण्ड सं० १७११ भीनमाल में लिखा गया और तीसरे से छठें खण्ड तक की रचना सं० १७१७ सिरोही में हुई। यह १०३ ढाल, २५०५ गाथाओं में आबद्ध है। इसे विद्यारुचि ने अपने गुरुभाई लब्धिरुचि के सहयोग से पूरा किया था।

श्री देसाई ने इनकी गुरुपरंपरा इस प्रकार बताई है--ये तपागच्छीय विजयप्रभसूरि > सहजकुशल > सकलचंद > लक्ष्मीरुचि > विजयकुशल > उदयरुचि > हर्षरुचि के शिष्य थे। तीसरे खण्ड के अन्त में कवि ने स्वयं को हर्षरुचि का शिष्य कहा है।

यथा— तपगछनायक तेजदिणंद,
जइकारी विजइप्रभ सूरींद,
तस गछ कोविद करि फूलसिह,
श्री उदयरुचि वांदी शिरसीह।
तास सीस समतारस पूर,
विबुध हरषरुचि पुन्य पडूर,
तास सेवक विद्यारुचि कहइ,
सीलइं ऋद्धिवृद्धि सुख लहइं।

इस खंड में हीरविजय और अकबर की भेंट का भी उल्लेख है तत्पश्चात् विजयदेव, विजयप्रभ, सहजकुशल, कुशलचंद, लक्ष्मीरुचि,

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग ३, पृ० १६२५ (प्र०सं०) और भाग ५ पृ० २२१ (न०सं०)।

२. अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० १०९।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विजयकुशल और उदयरुचि के पश्चात् हर्षरुचि का उल्लेख किया है इसलिए श्री देसाई की गुरुपरंपरा ही प्रामाणिक है। इसका रचनाकाल उन्होंने भी सं० १७१७ कार्तिक शुक्ल त्रयोदशी, गुरुवार और रचना स्थान सिरोही बताया है। हर्षरुचि को अपना गुरु स्वीकार करने के पश्चात् कवि ने लिखा है--

तास सीस संवेग महोदधि श्री हर्षरुचि बुध कहीये रे,
उपगारी श्री गुरु मुझ मिलीया, दरशण थी सुख लहीये रे।
विबुध शिरोमणि मुगुट नगीनो, श्री विद्यारुचि तस सीस रे।
गुणमणि मंडित पूरो पंडित सुखदायक सुजगीस रे,
तस लघुवंधव विबुध लब्धरुचि रच्यो चंद नृप रास रे,
आछो अधिको जो कह्यो हुइ, मिच्छा दुक्कड़ तास रे।

इससे तो यह भी आभास होता है कि इन दोनों गुरु भाइयों में इस रास के कर्त्तृत्व का मुख्य कार्य लघुबंधव अर्थात् लब्धरुचि द्वारा ही निपटाया गया था। अन्तिम पंक्तियों में जिस प्रकार के विशेषण विद्यारुचि के साथ लगाये गये हैं वह शायद लघुबंधव लब्धिरुचि द्वारा प्रयुक्त हैं। स्वयं विद्यारुचि ने अपने लिए ऐसी शब्दावली शायद न लिखी होगी। रचनाकाल इस प्रकार कहा गया है--

संवत सतर सतरो तरै, कार्तिक मास उदार,
सुदि तेरस दिन निरमलो, वलवत्तर गुरुवार।

इसमें शील का महत्व दर्शाने के लिए चंद राजा के शील स्वभाव का वर्णन दृष्टांत रूप में वर्णित है। कवि ने लिखा है—

शील प्रभावि चंद नृप, जग पाम्यो जयकार,
इम जाणीनइ भविक जन, पालो शील उदार।[1]

विद्याविलास--आप खरतरगच्छीय मानविजय के प्रशिष्य एवं कमलहर्ष के शिष्य थे। आपने अर्जुन माली चौपाई सं० १७३८, कुलध्वज चौपाई सं० १७४२ लूणाकरणसर, अक्षरबत्तीसी और दशवैकालिक संञ्झाय आदि काव्य रचनायें की हैं।[2]

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० १५९-१६४ और भाग ३, पृ० १२०४ (प्र०सं०) और वही भाग ४ पृ० २७७-२८२ (न०सं०)।

२. अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० १००।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री देसाई ने इन पद्य रचनाओं का उल्लेख नहीं किया है परंतु उन्होंने कल्पसूत्र स्तवक सं० १७२९ (जिनराज सूरि राज्ये) की सूचना दी है। इन्होंने इस गद्य रचना का उद्धरण नहीं दिया है और न नाहटा जी ने पद्य रचनाओं का उद्धरण दिया है अतः इनके पद्य और गद्य का नमूना देना संभव नहीं हुआ।[1]

विद्यासागर--इनसे पूर्व दो विद्यासागर नामक लेखक १७वीं शताब्दी में हो चुके हैं जिनमें से प्रथम विद्यासागर विजयदान के शिष्य थे और दूसरे विद्यासागर सुमतिकल्लोल के शिष्य थे। इनका विवरण १७वीं शती के इतिहास (बृहद् इतिहास खण्ड २) में दिया जा चुका है।

प्रस्तुत विद्यासागर आंचलगच्छ के सूरि थे। इन्हें आचार्य पद सं० १७६२ में दिया गया था और सं० १७९३ में इनका स्वर्गवास हुआ था। इन्होंने 'सिद्ध पंचाशिका बालावबोध' की रचना सं० १७८१ में की। इसके मूल लेखक देवचंद सूरि थे।[2]

विद्यासागर (दिगम्बर)--आप भट्टारक शुभचंद्र के गुरुभाई और भट्टारक अभयचंद के शिष्य थे। ये दिगम्बर बलात्कारगण सरस्वती गच्छ के साधु और विद्वान् थे। विशेषतया हिन्दी के उत्तम लेखक और जानकार थे। इनकी नौ रचनाएँ प्राप्त हैं जिनकी सूची आगे दी जा रही है--

सोलह स्वप्न, जिन जन्ममहोत्सव, सप्तव्यसन सवैया, दर्शनाष्ठांग विषापहार स्तोत्र भाषा, भूपाल स्तोत्र भाषा, रविव्रत कथा, पद्मावती नी वीनती एवं चंद्रप्रभ वीनती। इनके अलावा कुछ स्फुट पद भी प्राप्त हैं जो भाषा एवं भाव की दृष्टि से पठनीय हैं। सोलह स्वप्न में उन स्वप्नों का वर्णन है जो तीर्थङ्करों के जन्म से पूर्व प्रायः सभी माताओं ने देखा। जिन जन्म महोत्सव में तीर्थङ्कर के जन्म पर होने वाले महोत्सव का वर्णन किया गया है। इसमें केवल १२ पद्य हैं। सभी पद्य सवैयाछन्द में है। डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल ने इन्हें

1. मोहनलाल दलीचन्द देसाई--जैन गुर्जर कवियो, भाग ३, पृ० १६३० (प्र०सं०) और भाग ४, पृ० ४२७ (न०सं०)।
2. वही भाग ५, पृ० ३१६ (न०सं०) और भाग ३ पृ० १६४१ (प्र०सं०)।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

१८वीं शताब्दी का विद्वान् बताया है, इस रचना का प्रथम पद्य देखिये--

> श्री जिनराज नो जन्म जाणा सुरराज ज आवे,
> वात वयणे कीर सार श्वेत अे रावण ल्यावे।
> प्रतिवयणे वसुदंत दंत दंते अेक सरोवर,
> सरोवर प्रति पचवीस कमलनि सोहे सुंदर।[1]

विद्यासागर सूरि कृत नेमिनाथ फाग सं० १७८३ का उल्लेख उत्तमचंद कोठारी ने अपनी सूची में किया है। काफी सम्भावना है कि ये भी उपर्युक्त विद्यासागर सूरि ही होंगे।

विनयकुशल तपागच्छीय लक्ष्मीसागर इनके प्रगुरु थे और विबुध कुशल इनके गुरु, इन्होंने सं० १७४५ और १७८८ के बीच किसी समय एक चौबीसी की रचना की। लक्ष्मीसागर सूरि का आचार्यकाल सं० १७४५ से १७८८ ही है अतः इसी बीच प्रस्तुत चौबीसी की रचना सम्भव है। इसके आदि की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं--

> श्री लक्ष्मीसागर सूरि नाम थी, पगे पगे नवेय निधान,
> विबुधकुशल सुपसाय थी, विनय स्युं कोडि कल्याण।

उदाहरणार्थ इसकी अंतिम पंक्तियाँ भी प्रस्तुत हैं--

> वीर जिणंद जय जगत उपगारी
> शासन सोह बघारी जी।[2]

श्री जयंत कोठारी की यह आशंका उचित है कि प्रस्तुत कवि विनयकुशल इसी परम्परा के लक्ष्मीसागर के शिष्य थे या किसी अन्य लक्ष्मीसागर के? यह प्रश्न विचारणीय है जिसका निर्णय जैन विद्वानों को करना चाहिए।

विनयचंद--ये महोपाध्याय समयसुंदर की परंपरा में ज्ञानतिलक

---

१. डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल--राजस्थान के जैन संत व्यक्तित्व एवं कृतित्व पृ० २०८।

२. मोहनलाल दलीचन्द देसाई--जैन गुर्जर कवियो, भाग ३, पृ० १५२७ (प्र०सं०) और वही भाग ५, पृ० ३३९ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के शिष्य थे। इनकी गुरुपरंपरा के संबंध में मतभेद है। श्री मोहनलाल दलीचंद देसाई ने इनके दो गुरुओं का नाम हर्षसागर और पुण्यतिलक बताया है जो दोनों ज्ञानतिलक के शिष्य और परस्पर गुरुभाई थे। विनयचंद ने स्वयं अपनी अधिकतर रचनाओं में ज्ञानतिलक को ही गुरु बताया है केवल उत्तम कुमार रास में हर्षसागर और पुण्यतिलक का उल्लेख किया है। हर्षनिधान के तीन शिष्यों में हर्षसागर, ज्ञानतिलक और पुण्यतिलक गुरु भाई थे, इसलिए देसाई ने इनकी जो यह गुरु परम्परा बताई है--खरतरगच्छीय समयसुन्दर > मेघविजय > हर्षकुशल > हर्षनिधान > ज्ञानतिलक > पुण्यतिलक और हर्षसागर शिष्य, वह ठीक नहीं लगती बल्कि जैसा पहले कहा गया ये तीनों ज्ञानतिलक, पुण्यतिलक और हर्षसागर हर्षनिधान के शिष्य थे, नकि पुण्यतिलक और हर्षसागर ज्ञानतिलक के शिष्य। अपनी रचना उत्तमकुमार रास (४२ ढाल ८४८ कड़ी सं० १७५२ फाल्गुन शुक्ल ५ गुरुवार, पाटण) में उन्होंने गुरु परम्परा बताते हुए खरतरगच्छ के प्रसिद्ध आचार्य जिनचंद्र, तत्पश्चात् उनके विद्वान् शिष्य समयसुन्दर का सादर स्मरण किया है। हर्षनिधान समयसुंदर के शिष्य थे। आगे कवि ने हर्षनिधान के तीन शिष्यों का इन पंक्तियों में उल्लेख किया है--

तीन शिष्य तसु जाणिये रे, पंडित चतुर सुजाण;
साहित्यादिक ग्रन्थ ना रे, निर्वाहक गुणजाण।
प्रथम हर्षसागर सुधी रे, ज्ञानतिलक गुणवंत,
पुण्यतिलक सुवखांणतां रे, हीयडइ हो गई उल्हसंत।

अतः इससे यही प्रमाणित होता है कि ये तीनों ही हर्षनिधान के शिष्य थे और कवि ज्ञानतिलक का शिष्य था क्योंकि अन्त में लिखा है—

ढाल चवदमी मन गमी रे, सहु रीझया ठाम ठाम,
ज्ञानतिलक गुरु सांनिधे रे, विनयचंद्र कहे आम।

इस प्रकार अगरचन्द नाहटा की बात ही उपयुक्त लगती है।[1] इसका रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है--

---

१. अगरचन्द नाहटा —परंपरा पृ० १०२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संवत सतरह बावने रे, श्री पाटणपुर मांहि,
फागण सुदि पांचिम दिने रे, गुरुवार उच्छाहि ।[1]

यह रचना विनयचंद कृति कुसुमांजलि में प्रकाशित है।

वीशी (सं० १७५४ विजयादसमी, राजनगर)

सम्बन्धित पंक्तियाँ देखें—

सतरे सै चौपन वर्षे, राजनगर में रंगेजी,
वीसी गीत विजयदसमी दिन, किया ऊलट धरि अंगे जी।

गुरुपरंपरा—

गच्छपति श्री जिनचंद्र सूरींदा, हर्षनिधान उवझाया जी,
ज्ञानतिलक गुरु ने सुपसाये, विनयचंद्र गुण गावे जी।[2]

यह भी 'विनयचंद कृति कुसुमांजलि' में प्रकाशित है।

शत्रुंजय तीर्थ वृहत् स्तव (२० कड़ी, सं० १७५५ पौष १०)

हा रे मोरा लाल, सिद्धाचल सोहामणउ;
ऊचो अतिहि उत्तंग मोरा लाल,
सिद्ध वधू वरवा भणी, मानुं उन्नत करि चंग—मोरालाल।

रचनाकाल—'संवत सतर पंचावनइ' बताया गया है।

'११ अंगनी स्वाध्याय' (सं० १७५५ श्रावण कृष्ण १०, अहमदाबाद) में भी ज्ञानतिलक को गुरु बताया गया है। यह रचना भी कुसुमांजलि में प्रकाशित है।

चौवीसी (सं० १७५५ या ५७, राजनगर)

अंत में रचनाकाल इस प्रकार है—

'संवत सतरे पंचावन (पाठांतर-सत्तावन) वर्षे' विजयादसमी मन हर्षे, मिलता है।

इसमें आदि जिन से चौबीसवें जिन महावीर तक की स्तुति है। यह भी उसी संग्रह में प्रकाशित है।

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग ५, पृ० १२७-१२८ (न०सं०)।

२. वही पृ० १२९ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रोहा कथा चौपाई (६ ढाल) में रचनाकाल नहीं है। ध्यानामृत रास, मयणारेहा रास भी आपकी प्राप्त रचनायें हैं किन्तु इनका प्रकाशन सम्भवतः नहीं हुआ है।

नेमिनाथ और राजुल की कथा पर इनकी दो सरस रचनायें उपलब्ध हैं एक है 'नेमिराजुल बारहमासा' और दूसरी है 'राजुल रहनेमि संञ्झायः। ये दोनों रचनायें विनयचंद्र कृति कुसुमांजलि में प्रकाशित है। प्रथम रचना की अंतिम पंक्तियाँ निम्नाङ्कित हैं--

इम भांति मन की खाति, बारह मास विरह विलास,
करिके प्रिया प्रिय पास, चारि ग्रह्यौ अति उल्हास।
दोउ मिले सुंदर मुगति मंदिर, भद्र जहाँ अति नंद,
मृदु वचन रच ही भाखत, विनयचंद कवीन्द।[1]

यह रचना 'जैन ज्योति' ज्येष्ठ १९८८ के पृष्ठ २९२-९३ पर भी प्रकाशित हो चुकी है।

द्वितीय रचना 'श्वेतांबर जैन' पत्र ता० १३-६-२९ के अंक में भी प्रकाशित हुई है। रोहा चौपाई और मयणरेहा रास के कर्त्ता ये ही विनयचन्द थे अथवा दूसरे कोई विनयचन्द थे, यह विवादास्पद होने से उनका विवरण-उद्धरण नहीं दिया गया है। अगरचंद नाहटा रोहा चौपाई का कर्त्ता स्थानकवासी विनयचंद को मानते हैं और मयणरेहा को अनोपमचंद के शिष्य विनयचंद की रचना मानते हैं। यह प्रश्न विचारणीय है।

(बालचंद) विनयलाभ--आप खरतरगच्छीय सुमतिसागर > साधुरंग > विनयप्रमोद के शिष्य थे। वच्छराज देवराज चौपाई, सिंहासन बत्तीसी चौपाई, सवैया बावनी और १४ स्वप्न धवल आपकी प्रमुख काव्य कृतियाँ है। इनके अतिरिक्त इन्होंने भर्तृहरिशतकत्रय का हिन्दी पद्यानुवाद भी किया है।[2] इनका अपरनाम बालचंद था। इनकी रचनाओं का परिचय उद्धरण आगे प्रस्तुत किया जा रहा है।

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० ४२३-२४ और वही भाग ३, पृ० १३७०-१३७५ (प्र०सं०) और भाग ४, पृ० १२६-१३२ (न०सं०)।

२. वही भाग २ पृ० ३४६-३४९ एवं भाग ३, पृ० १३१९-२१ (प्र०सं०) और भाग ४, पृ० ४३०- ४३४ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वछराज देवराज चौपाई अथवा रास (४ खंड ६२ ढाल सं० १७३० पौष कृष्ण २, सोमवार, मुलतान) का आदि--

परम निरंजन परम प्रभु, परमेश्वर श्री पास,
सो साहिब श्री नित समरतां, अविहड पूरे आस ।

वछराज का चरित्र पुण्य के आदर्श-दृष्टांत रूप में चित्रित किया गया है। अपने श्रेष्ठ आचरण से अकबर को प्रसन्न करके युगप्रधान जिनचंद्र द्वारा जीवदया सम्बन्धी फरमान प्राप्त करने के लिए सर्वप्रथम उनकी वन्दना की गई है, तत्पश्चात् सुमतिसागर, साधुरंग और विनयप्रमोद का सादर स्मरण किया गया है। इसमें रचनाकाल दर्शाने वाली पंक्तियाँ निम्नलिखित हैं—

संवत (सत्तर) समै सैंतीसे पोस मास बदि बीज,
तिण दिन कीधी चौपइ सोमवार तिम हीज ।

यह रचना कवि ने अपने शिष्य सुमतिविमल के आग्रह पर की। अंत में कहा है--

अधिक जइ सहु जंजाल है, इम विनयलाभे कहे,
भविक नर फूले फले मंगलमाल लहे ।

सिंहासन बत्रीसी अथवा विक्रम चौपाई (३ खंड ६८ ढाल सं० १७४८ श्रावण कृष्ण, सप्तमी, फलौधी) का आदि--

आदि जिणेसर आदि दे, चउवीसे जिनचंद,
कर जोड़ी भावे करी, नमतां परमानंद ।

इसमें भी जिनचंद की अभ्यर्थना है, यथा—

सुरप्रधान जिनचंद यतीसर, बड़भागी विरुदा जे,
जसु दीदार देखि दिल्लीपति, अकबर साहि निवाजे ।

रचनाकाल—

संवत सतर समै अड़ताले, श्रावण वदि सातम साजे,
फलवधिपुर श्री रिषभ जिणेसर, सानिधि अलिय विघन ताजे ।

यह रचना गच्छेश जिनचंद सूरि के आदेश से की गई थी। कवि ने कहा है--

तसु आदेश विशेष सुकृत फल
लहिवा पर निज हित काजे,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर उपगार दातार शिरोमणि,
वर गुण चरणण सिरताजे।
विक्रमराय तणो गुण वर्णन,
कीधउ शास्त्र समझि माजे,
सिंहासन बत्रीसी तामे,
तिहाँ अधिकार सुणी जई।

'सवैया बावनी' में ५२ के बजाय ५६ छंद है। अकारादि क्रम से ५२ और दो-दो आगे पीछे जोड़ने से ५६ हो गये हैं। भर्तृहरिशतकत्रय के हिन्दी पद्यानुवाद का नाम भाषाभूषण बताया गया है। विनय-लाभ का अपर नाम 'बालचंद' था इस विषय में कोई प्रमाण न मिलने से यह शंकास्पद है। भाषा सरल है। मुगल संसर्ग के कारण चलते उर्दू के शब्दों का भी प्रयोग यत्र-तत्र मिलता है।[1]

(उपाध्याय) विनयविजय--आप तपागच्छीय कीर्तिविजय के शिष्य थे और प्रसिद्ध विद्वान्, लेखक-कवि और साधु श्री यशोविजय के आप गुरुभाई, सहपाठी और सहलेखक थे। आप दोनों का रचना-काल १७वीं शताब्दी का अंतिम चरण तथा १८वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध है। ऐसे लेखकों का परिचय १७वीं शताब्दी के इतिहास खण्ड २ में दिया गया है और १८वीं शती में उनकी उन रचनाओं का संक्षिप्त परिचय दे दिया जा रहा है जो १८वीं शती में ही रचित हैं ताकि ऐसे विशेष महापुरुषों की विद्यमानता दोनों शतियों में अंकित रहे।

श्री विनयविजय ने कल्पसूत्र पर संस्कृत में सुखबोधिका नामक टीका सं० १६९६ में और मरुगुर्जर में सूर्यपुर चैत्यपरिपाटी सं० १६९८ में लिखी थी, इस प्रकार इनका रचनाकाल १७वीं से प्रारंभ होकर १८वीं शती तक फैला है। सं० १७३८ में इनका स्वर्गवास हो गया, इसलिए श्रीपाल रास का शेष भाग अकेले यशोविजय जी को पूरा करना पड़ा। इस रास के साथ कुछ अन्य रचनाओं की चर्चा इस ग्रंथ के द्वितीय खंड में की जा चुकी है।

आपके गुरु कीर्तिविजय के सम्बन्ध में पहले दो शब्द लिखना आवश्यक प्रतीत हो रहा है, तत्पश्चात् आपके व्यक्तित्व एवं शेष कृतियों की चर्चा की जायेगी। श्री कीर्तिविजय के जन्म का नाम कल्याण जी था। उनके पिता सहसकरणजी वीरमगाम वासी पोरवाल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थे और दादा मुहम्मदशाह के वजीर रह चुके थे। इनके एक भाई गोपाल जी इनसे पूर्व ही हीरविजय से दीक्षित हो चुके थे और उनका नाम सोमविजय पड़ा था। इन्हीं की प्रेरणा से कल्याण जी ने भी दीक्षा ली और नाम कीर्तिविजय पड़ा। इन्हीं कीर्तिविजय के शिष्य विनयविजय तथा यशोविजय थे।

विनयविजय के पिता का नाम तेजपाल तथा माता का नाम राजश्री था। इन्होंने यशोविजय के साथ काशी आकर संस्कृत और न्याय आदि की प्रगाढ़ शिक्षा प्राप्त की थी। अतः इन्होंने संस्कृत में ग्रंथ रचनायें भी खूब की जिनमें महाग्रंथ 'लोकप्रकाश' भी है। यहाँ उनकी मरुगुर्जर (हिन्दी) रचनाओं का परिचय संक्षेप में दिया जा रहा है।

इन्होंने अनेक स्तवन लिखे हैं जैसे पंचकारक स्तवन या पंच समवाय स्तवन अथवा स्याद्वादसूचक महावीर स्तवन (५८ कड़ी सं० १७२३), पुण्यप्रकाश (आराधना) नुं स्तवन अथवा महावीर स्तवन १९२९, रानेर, उपधान (लघु) स्तवन अथवा तपविधि स्तवन अथवा महावीर स्तवन, गुणस्थानक वीर स्तवन, छः आवश्यक स्तवन, आदिनाथ विनति अथवा शत्रुंजय मंडन ऋषभ जिन विनति आदि। इनमें प्रायः महावीर, ऋषभ आदि तीर्थङ्करों का स्तवन है। इनमें से एक दो के नमूने प्रस्तुत किए जा रहे हैं, यथा; पंचकारण स्तवन का आदि--

सिद्धारथ सुत वंदीई, जगदीपक जिनराज;
वस्तु तत्व सब जांणीई, जस आगम थी आज।

इसी क्रम में 'पुण्य प्रकाश नुं स्तवन' की अंतिम पंक्तियां भी प्रस्तुत हैं। इसका रचनाकाल सं० १७२९ रानेर, विजयादशमी बताया गया है।

नरभव आराधन सिद्धि साधन सुकृत लील बिलास अे,
निर्जरा हेतें तवन रचिऊं, नामे पुण्य प्रकाश अे।

इन सभी स्तवनों में गुरुपरंपरान्तर्गत हीरविजय और कीर्तिविजय की वंदना है। इस स्तवन का उल्लेख 'आराधना स्तवन' के नाम से विजयसूरि कृत बताकर डॉ० कस्तूरचंद कासलीवाल ने ग्रंथ सूची में भी किया है। उन्होंने भी उपर्युक्त रचनाकाल बताया है।[1]

१. डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल--राजस्थान के जैन शास्त्रभंडारों की ग्रन्थ-सूची, भाग ३, पृ० १००-१०१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्तवन के अतिरिक्त संज्झाय संज्ञक अनेक लघु रचनायें भी आपने रची है यथा पंचखाण नी सं०, इरियावही सं०, आंबिल सं०, भगवती सूत्र संज्झाय आदि; इनमें से भी उदाहरणार्थ कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं। भगवती सूत्र की पंक्तियाँ देखें—

वंदि प्रेमस्युं रे, पूछे गौतम स्वाम,
वीर जिनवर हितकारी रे, अरथ कहे अभिराम रे।
भविक सुणज्यो भगवइ अंग, मन आणी उछंग रे।

आपकी प्रसिद्ध रचना (संकलन) विनय विलास और बीसी, चौबीसी आदि की चर्चा पहले की जा चुकी है। इनकी प्रायः सभी छोटी रचनाएँ 'विनयसौरभ' नामक संग्रह में प्रकाशित है। वैसे तो इनकी सभी रचनायें कई स्थानों से प्रकाशित हो चुकी हैं।

नेमिराजुल के मार्मिक आख्यान पर इनकी कई रचनायें हैं जिनमें नेमिनाथ भ्रमर गीता मुख्य रचना मानी जाती है। यह २७ कड़ी की रचना सं० १७०६ भाद्रपद में रचित है। इसकी भी दो पंक्तियां प्रस्तुत हैं—

मुनि मन पंकज भमर लो, भव भय भेदणहार,
भमर गीत टोडर करी, पूजूं बंधु मोरारि।[1]

इस विषय पर इनकी दूसरी रचना नेमिनाथ बारहमास स्तवन है। साहित्यिक कृतियों के अतिरिक्त आपने क्लिष्ट विषयों जैसे व्याकरण, न्यायशास्त्र आदि पर भी अनेक रचनायें की हैं, साथ ही लोकप्रिय आख्यान, संज्झाय, स्तवन, भास आदि विविध काव्यरूपों और शैलियों में प्रचुर साहित्य की सर्जना की है जो इनकी अद्भुत प्रतिभा का स्वतः प्रमाण है।

पट्टावली संज्झाय आपकी विशिष्ट कृति है जिसमें महावीर से लेकर इन्द्रभूति, सुधर्मा, हीरविजय और गोपाल, कल्याण (कीर्ति विजय) तक का सादर स्मरण किया गया है। इसमें कल्याण के दीक्षा का वृत्तान्त भी वर्णित है। इनके दीक्षा लेने की बात सुन माँ-बाप बड़े

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग ४, पृ० ७ से २७ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दुखी हुए थे, अनुमति नहीं दे रहे थे, उसकी चर्चा इन पंक्तियों में देखिये --

अनुमति नवि पामइ, माय बापनी तेह,
लूखइ मनि वसिआ, सिवकुमार परि गेह।
पणि केते वरसे माय बाप अभावइं,
दिष्यानि हेतिं राजनगर मांहि आवइं।

अन्त में इनके भगिनीपति साह हनुआ के सहयोग से दीक्षा महोत्सव सम्पन्न हो पाया। यह रचना ऐतिहासिक रास माला में प्रकाशित है। उपमिति भव प्रपंच का इन्होंने धर्मनाथ स्तवन के नाम से मरुगुर्जर में लघु रूपान्तरण सं० १७१६ में किया है। इर्यापथिका और भगवती सूत्र पर इन्होंने सामान्य श्रावकों की सुविधा के लिए हिन्दी में संञ्झाय लिखे हैं। इनकी एक रचना 'शाश्वत जिन भास' के अंत की दो पंक्तियाँ देकर यह विवरण समाप्त कर रहा हूँ और निवेदन करता हूँ कि उपाध्याय यशोविजय के वटवृक्ष जैसे विशाल व्यक्तित्व की छाया में इनकी आभा भले कुछ आच्छादित हुई हो पर इनके सर्जक प्रतिभा का अधिक निखार ही हुआ था। पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

कीरतिविजय उवझाय केरो, लहीइं पुण्य पसाय,
सासता जिन थुणइं इणि परि, विनयविजय उवझाय।

यह रचना विनय सौरभ में प्रकाशित है। श्री पाल रास में दिखाया गया है कि राजा श्रीपाल ने सिद्धचक -अर्हत्, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप नामक नवपद का सेवन करके सिद्ध चक्र की पूजा की थी इसलिए उसे इहलोक में अनुपम समृद्धि और परलोक में परम आनंदमय मुक्ति की प्राप्ति हुई। इसकी विशेषताओं का नमूना देने के लिए इसकी पंक्तियाँ पूर्व खंड में उद्धृत की जा चुकी हैं। नेमि भ्रमर गीता और नेमिनाथ बारहमासा नाहटा संग्रह में है तथा इनका उल्लेख उत्तमचंद कोठारी ने अपनी सूची में भी किया है।[1]

विनयशील--आप गुणशील के शिष्य थे। सं० १७०१ में आपने

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग २ पृ० ४-२० और भाग ३, पृ० ११०३-१११० (प्र० सं०) और भाग ४, पृ० ७-२७ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'सहस्रफणा पार्श्वनाथ स्तवन' (४५ पद्यों) की रचना शाहपुर में की। आपकी अन्य रचना 'चौबीस जिनभास' का भी उल्लेख मिलता है।[1] इनका विवरण आगे प्रस्तुत है।

सहस्रफणा पार्श्वनाथ स्तवन (४५ कड़ी, सं० १७०१ मागसर शुक्ल ६, सोमवार, साहपुर) का आदि--

श्री सुखकारण जगपति, प्रणमी जग जीवन्न;
सहस्रफणा जिन पास नुं, रचसु सरस तवन्न।

रचनाकाल—

संवत सतर अेक तेरइ, प्रतिष्ठा हो करि मोटइ मंडाण,
मागसिर सुदि छठि तिथि भली, सोमवार हो खरची द्रव्य अनेक
जिनवर सहस्रफणा तणी, करावि हो प्रतिष्ठा सुविवेक।

गुरु— तुझ नाम जपस्ये कुमति वमस्ये,
तारसि तेहने जग धणी,
गुणशील शिष्य विनयशील,
जंपे देव दि मति आपणी।

'२४ जिनभास' का आदि--

तूँ मुझ साहिब हूं तुझ वंदा, अपर परंपर परमानंदा,
हो निर्जित मोह मनोभव फंदा, भविजन मन कैरव का चंदा, हो।

इसमें रचनाकाल एवं स्थान का उल्लेख नहीं है। ऋषभ स्तुति संबंधी कुछ इसकी पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं--

तुझ गुण निसदिन जपत सुरिंदा,
पढ़ते जस अकुलात फणिंदा हो,
गिरिवट वृक्ष वासी जे मुनिंदा,
ध्यावत तुझ पद सहज दिणंदा हो।
तुझ पद कमल अरविंदा,
पूजत देखत नाहि मतिमंदा हो,
विनयशील प्रभु आदि जिणंदा,
हूँ तुझ सेवक नहीं आप छंदा हो।[2]

१. अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० ११२-११३।
२. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग ३, पृ० ११२५-२७ (प्र०सं०) और भाग ४, पृ० ३३-३४ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विनयसागर –आप सागरगच्छीय वृद्धिसागर सूरि के शिष्य थे। आपने 'राजसागर सूरि संञ्झाय' (गाथा ६३) सं० १७१५ के पश्चात्) की; इसके मंगलाचरण की प्रारंभिक पंक्तियाँ देखें—

पास जिणंद प्रणमी करी, आणां मनस्युं रंग लाल रे,
समरी सरसति सामिनी गजगामिनी द्यो मतिचंग लाल रे।
सुविहित साधु शिरोमणि श्री राजसागर सूरिंद लाल रे,
तास तणां गुण वर्णवुं, सांभलयो सहू आणंदि लाल रे।

आदि-- इम भव्य प्राणी भगति आणी, हरष स्युं गुण उच्चरइं,
श्री राजसागर सूरि केरो तेह जयमंगल वरइ।
तस पट्टधारक सौख्य कारक, श्री वृद्धिसागर सूरिसरो,
तस चरण सेवक विनय सागर सकल संघ मंगलकरो।[1]

राजसागर इनके प्रगुरु थे और उनका स्वर्गवास होने पर यह रास लिखा गया था।

विनयसागर II –ये अंचलगच्छीय लेखक थे लेकिन इनकी गुरु परम्परा अज्ञात है। इनकी एक रचना 'अनेकार्थ नाममाला' का उल्लेख मिलता है। यह रचना १८वीं शताब्दी की है किन्तु रचनाकाल संदिग्ध है। कवि ने रचनाकाल इस प्रकार कहा है--

'सतर सइ विडोतरे'[2] जिसका आशय सं० १७०२ भी हो सकता है।

विनीत कुशल –ये तपागच्छीय सुमतिकुशल के प्रशिष्य एवं विवेक कुशल के शिष्य थे। इन्होंने 'शत्रुंजय तीर्थमाला' (७ ढाल सं० १७२२) लिखी। आपने उसी समय जूनागढ़ निवासी संघवी सहस किरण के सातपुत्रों को संघवी तिलक कराकर संघ यात्रा निकाली और शत्रुंजय तीर्थ तक संघ ले गये। इस रचना में उसी तीर्थ की संघयात्रा का वर्णन है। जब संघयात्रा पालीताणा पहुँची तो संघवी को प्रोत्साहन

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई--जैन गुर्जर कवियो, भाग ३, पृ० १२११ (प्र०सं०) और भाग ५, पृ० २७४-२७५ (न०सं०)।

२. वही भाग ३, पृ० ११३७ (प्र० सं०) और भाग ४, पृ० ६६ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देने विनयप्रभ सूरि १५५ साधुओं के साथ पालीताणा पधारे थे, कवि ने लिखा है—

संवत सत्तर सार बावीस मां,
जात्र जुगति करी अे बरषइ,
जंगम तीरथ जैन शासन पती,
वंदीया विजयप्रभ सूरी हरषइ।

इसकी प्रारंभिक पंक्तियाँ निम्नांकित हैं—

सरसति माय मया करी, आपो वचन विलास,
श्री शत्रुंजय गिर तणुं, तवन करुं उल्लास।

यह प्रकाशित है। इन्होंने 'शत्रुंजय स्तवन' नामक एक अन्य रचना भी उसी समय की थी इसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

सकल तीरथ मां भूलगो रे लाल,
सेत्रुंज तीरथ सार, मनमोह्योरे।
सिद्ध अनंत इह्या हुया रे लाल,
अेहनो महिमा अपार।
सेत्रुंज सेवो भविजना रे लाल।

इसका रचनाकाल निम्नलिखित पंक्तियों में वर्णित है—

संवत सत्तर बावीसनी रे लाल,
माह सुदि पंचमी सार, मन;
संघ साथि जात्रा करी रे लाल,
सफल कर्यो जवार, मन।

यह स्तवन उसी समय लिखा गया था जब इन्होंने संघ के साथ शत्रुञ्जय तीर्थ की यात्रा की थी।

संघ यात्रा के समय जूनागढ़ में नवाब सरदार खान राज्य करते थे। गुरुपरंपरा इस प्रकार बताई है—

सुमति कुशल पंडित तणो रे लाल, विनीत कुशल कहइ सीस, मन;
सेत्रुंज मंडण माहरी रे लाल, पूरो मनह जगीस, मन।[1]

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० २०४-०६ (न०सं०) और भाग ४, पृ० ३१६-३१८ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रथम रचना ६९ छन्दों की और द्वितीय स्तवन कुल १५ कड़ी की है।

विनीतविजय--ये तपागच्छीय विजयनानन्द सूरि>विजयराज सूरि>प्रीतिविजय के शिष्य थे। इनकी रचना १२४ अतिचारमय श्री महावीर स्तव (१२५ कड़ी रचना सं० १७३२ आसो सुद १३) का रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है--

भेद संयम तणा चित्त धरो अे दंत मित संवत सार,
आसो सुदि दिन तेरसि अे तवन कर्युं जयकार।

इसका 'कलश' प्रस्तुत है--

श्री वीर जिनवर भविक सुखकर कामितपूरण सुरतरु,
तपगच्छनायक सुमति दायक श्री विजयाणंद सूरीसरु।
तस पाटि सोहइ त्रिजग मोहइ श्री विजयराज सूरि गणधरु,
पंडित श्री प्रीत विजय विनयी विनीतविजय मंगलकरु।[1]

विनीतविमल--आप तपागच्छ के साधु शांतिविमल के शिष्य थे। आपने कई शलोको संज्ञक स्तवन लिखे हैं जैसे आदिनाथ शलोको नेमिनाथ शलोको और अष्टपद शलोको आदि। उनका परिचय आगे प्रस्तुत है।

आदिनाथ शलोको अथवा ऋषभदेव नुं गीत अथवा शत्रुंजय शलोको का आदि--

सरसति माता द्यो मुझ वाणी;

इसमें रचनाकाल नहीं है किन्तु यह विजयप्रभ सूरि के समय की रचना है; वे सं० १७४९ में स्वर्गवासी हुए थे अतः यह इससे पूर्व ही किसी समय लिखी गई होगी। कवि ने गुरुपरम्परा का उल्लेख इस प्रकार किया है--

तपगछनायक श्री विजयप्रभसूरि,
गिरुओ गच्छनायक पुण्याइ पूरी,
कहे विनीतविमल कर जोड़ी,
अे भणतां आवे संपति कोड़ी।

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई--जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० २९३ (प्र०सं०) और भाग ५, पृ० २-३ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह प्राचीन स्तवन रत्न संग्रह भाग २ और सलोका संग्रह में प्रकाशित है। नेमिनाथ शलोको (६५ कड़ी) की कुछ पंक्तियाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं—

सरसति समरुं बे कर जोड़ी,
याद‌व जोरावर छप्पनकुल कोड़ी,
ते मांहि ठाकुरे काहान कहवाइ,
मथुरा मूकी ने दुवारिकां आवइ।

× × ×

द्वारावती ने मथुरा नो आगे;
यस जोड़ूँ तो बहु दिन लागे,
चढ़तो शलोको सबल थाये,
नाहना निरबोधी वतीत भणाय।

अष्टापद शलोको (५५ कड़ी) की अंतिम पंक्तियाँ—

पूरो पंडित ते विचारे जोई,
जूनो शास्त्र तो झूठो न होई।
गुरुना वचन थी वांची ने जाण्यो,
ते माटे म्हें तवन में आण्यो।
श्री विजेरतन सूरि गछनायक वारे,
चोसठमे पाट श्री पूज्य त्यारें।
कहे विनीतविमल कर जोड़ी,
अे भणतां आवे संपत दोंड़ी।

इनके अलावा विमल मन्त्रीसर नो शलोको (१११) में विमल मन्त्री की कीर्ति वर्णित है। इसकी प्रारंभिक पंक्तियाँ देखें—

सरसति समरु बे कर जोड़ी, बांदु वरकाणों गिरनार गोड़ी,
जाई सेत्रुंज संखेसर दोड़ी, कविता नेउ सै कल्याण कोड़ी।
मरुधर मांहे तो तीरथ ताजा, आबू नवकोटि गढ़ नो राजा,
ग्राम गढ़ ने देवल दरवाजा, चोमुष चंपो ने ऊपरे छांजा।[1]

इन शलोको के अलावा एक छोटी रचना 'शांतिनाथ स्वाध्याय' (७ कड़ी) भी उपलब्ध है।

---

१. जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० ३८३ और भाग ३ पृ० ११४३-४५ (प्र०सं०) और भाग ५, पृ० ७३-७५ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विनोदी लाल--आप साहिजादपुर के रहने वाले थे। अपनी मातृभूमि की प्रशंसा इन्होंने मुक्तकंठ से की है। उस समय औरंगजेब दिल्ली का बादशाह था; कवि ने उसकी भी प्रशंसा की है; उदाहरणार्थ कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत है--शाहिजादपुर की प्रशंसा--

कौशल देश मध्य शुभ थान, शाहिजादपुर नगर प्रधान।
गंगातीर बसै शुभ ठौर, पटतर नाहिं तासु पर और।

औरंगजेब की प्रशंसा—

नौरंग साहिबली को राज,
पातसाह सब हित सिरताज।
सुख विधान सक बंधनरेस,
दिल्लीपति तय तेज दिनेस। इत्यादि।[1]

ये पंक्तियाँ 'भक्तामर भाषा-कथा' से ली गई है जिसकी रचना कवि ने दिल्ली में की थी। ये गर्ग गोत्रीय अग्रवाल वैश्य थे, परन्तु मिश्र बन्धु विनोद में इन्हें न जाने क्यों हीन श्रेणी का बताया गया है।[2] ये नेमिश्वर के भक्त थे और अधिकांश रचनाएँ इन्होंने उनके उदात्त चरित्र को ही आधार बनाकर की है। ऐसी रचनाओं में नेमिराजुल बारहमासा, नेमिब्याह, राजुलपच्चीसी, नेमिजी रेखता और नेमिजी का मंगल आदि उल्लेखनीय हैं। इनके अलावा उन्होंने 'चतुर्विंशति जिन स्तवन सवैया', नौकाबन्ध, प्रभात जयमाल, फूलमाल पच्चीसी, रत्नमाल, श्रीपाल विनोद, और भक्तामर भाषा आदि अनेक काव्य ग्रंथ लिखे हैं। भक्तामर भाषा संस्कृत के भक्तामर स्तोत्र का छायानुवाद है इसी प्रकार 'श्रीपाल विनोद' भी अनुवाद है किन्तु शैली मौलिक एवं सरस है।

नेमिराजुल बारहमासा बारहमासा संग्रह पृष्ठ २२ से ३० पर प्रकाशित रचना है। इसके प्रकाशक हैं जैन पुस्तक भवन, कलकत्ता। इस बारहमासे में राजुल अपना विरह दुख व्यक्त करने की अपेक्षा नेमि के दुख दर्द पर अधिक ध्यान देती है। सावन आने पर वह प्रिय से कहती है कि सावन में व्रत मत लो—

---

१. प्रकाशक--नागरी प्रचारिणी सभा काशी – हस्तलिखित ग्रन्थों का त्रैवार्षिक बारहवाँ विवरण, परिशिष्ट २ पृ० १५७४।

२. मिश्रबन्धु विनोद, भाग २, पृ० ५१५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रिया सावन में व्रत लीजै नहीं,
घनघोर घटा जुर आवैगी।
चहुं ओर तें मोर जु शोर करें,
वन कोकिल कुहक सुनावैगी।
प्रिय रैन अंधेरी में सूझै नहीं,
कछु दामिनि दमक डरावैगी,
पुरवाई की झोंक सहोगे नहीं,
छिन में तप तेज छुड़ावैगी।

दीपावली के पूर्व सब स्त्रियाँ अपना-अपना घर सजाती हैं, सबके प्रिय घर आते हैं वह कहती है--

पिय कातिक में मन कैसे रहे, जब भामिनि भौन सजावेंगी,
रचि चित्र विचित्र सुरंग सबैं, घर ही घर मंगल गावैंगी।
प्रिय नूतन नारि सिंगार किये, अपनो पिय टेरि बुलावैगी,
पिय बारहि बार बरे दियरा, जियरा तुमरा तरसावैगी।

वह अपने तरसने की बात नहीं करती बल्कि प्रिय के तरसने पर तरस खाती है। रचनाकाल रचना में नहीं है, यह भाव प्रधान कृति है। नेमिब्याह काव्यखण्ड है। इसमें नेमिनाथ के विवाह की परंपरा प्राप्त कथा है, जब वे बलि पशुओं की पीड़ा से मर्माहत होकर द्वार से ही वापस लौट जाते हैं तो उसके पिता राजुल से अन्यत्र विवाह की चर्चा करते हैं इस पर वह पिता से कहती है--

काहे न बात सम्हाल कहौ तुम जानत हो यह बात भली है,
गालियाँ काढ़त हौ हमको सुनो तात भली तुम जीभ चली है।[1]

राजुलपच्चीसी—रचनाकाल सं० १७५३ माघ सुदी २, गुरुवार साहिजादपुरा), रचनाकाल देखें–

सुन भविजन हो, संवत् सत्रहसे पर त्रेपण जानिये;
सुन भविजन हो, माघ सुदी तिथि दौज वार गुरु जानिये।

इसमें राजुल और नेमिनाथ के भावमय चित्र पचीस छंदों में अंकित हैं। यह बड़ी लोकप्रिय रही है। इसकी तमाम प्रतियाँ शास्त्रभंडारों में पाई गई हैं।

१. डा० लालचन्द जैन--जैन कवियों के ब्रजभाषा प्रबन्धकाव्यों का अध्ययन पृ० ७४-७५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नेमिजी रेखता—इसमें नेमीश्वर के विवाहार्थ आने से लेकर राजुल के स्त्रीलिंग को छेदकर स्वर्ग जाने तक की अनेक बातों का मुक्तक छंदों में वर्णन है।[1]

रेखता का उदाहरण देखिये–

गिरनेरगढ़ सुहाया, सुख दिल पसंद आया,
तहाँ जोग चित्त लाय तन कहाँ गया है।
शुभ ध्यान चित्त दीन्हा नवकार मंत्र लीन्हा,
परहेज कर्म किया है,
स्त्रीलिंग छेद कीन्हा पुल्लिग पद लीन्हा,
ससदेह स्वर्ग पहुँची ललितांग पद भया है,
खुस रेखते बनाये लाल विनोदी गाये अनुसाफ दर्प ढाते,
राजुक का भया है।

नेमिनाथमंगल (सं० १७४२) इसमें राजकुमार नेमिनाथ का त्याग-तप और उसके द्वारा तीर्थंकर पद तक पहुंचने का वर्णन गेय एवं सरस शैली में किया गया है।

रचनाकाल—अरी यह संवत सुनहु रसाला हां,
अरी सत्रह सै अधिक बयाला हां।[2]

नेमि के बरात का वर्णन देखिये—

अरी सब घोरे सरस बनाये हाँ।
अरी फूलन की पाखरी झारी हाँ।
अरी मखमल के जीन बनाये हाँ।
अरी कुन्दन सो जरित जराये हाँ।
कुंदन सो जरित जराइ राषे हेमनाल मढ़ाइया;
आन द्वारे करे ठाढ़े नैमकुंमर चढ़ाइया।[3]

प्रभात जयमाल को मंगल प्रभात और नेमिनाथ जी का मंगल भी कहते हैं। इसकी रचना सं० १७४४ में हुई। इसमें भगवान् नेमिनाथ की भक्ति में कतिपय मुक्तक पद्यों का निर्माण किया है। सभी पद्य

१. उतमचन्द जैन की ग्रन्थसूची–प्राप्तिस्थान पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी
२. डा० लालचन्द जैन– जैन कवियों के ब्रजभाषा प्रबन्ध काव्यों का अध्ययन पृ० ७२-७३।
३. वही पृ० ७६-७७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भक्तिभाव से ओतप्रोत है। प्रातःकाल उठकर उनका पाठ करने से शुभगति मिलती है इसीलिए इसे मंगलप्रभात कहते हैं। चतुर्विंशति जिनस्तव सवैया (७१ पद्य, सभी सवैया छंद हैं) में चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति है। आदिनाथ की स्तुति से संबंधित एक सवैया प्रस्तुत है—

जाके चरणारविन्द पूजित सुरिंद इंद
देवन के वृन्द चंद सोभा अतिभारी है।
जाके नख पर रवि कोटिन किरण वारे
मुख देखे कामदेव सोभा छविहारी है।
जाकी देह उत्तम है दर्पन सी देखियत
अपनो सरूप भव सात की विचारी है,
कहत विनोदीलाल मन वचन तिहुंकाल
ऐसे नाभिनंदन कूं वंदना हमारी है।

फूलमाल पच्चीसी—(२५ पद्य) दोहा, छप्पय, नाराच आदि छंदों का प्रयोग किया गया है। तीर्थंकर नेमिनाथ के चरणों में इन्द्र ने जो फूलमाला अर्पित की उसे इन्द्राणी ने स्वयं पुष्पों, मोतियों-माणिकों से गूँथा था, उसकी शोभा का वर्णन इसमें किया गया है, यथा—

सुगन्ध पुष्प बेलि कुन्द केतकी मंगाय के,
चमेलि चंप सेवती जुही गुही जुलाय के।

× × ×

सची रची विचित्र भाँति चित्त दे बनाइ है,
सु इन्द्र ने उछाह सो जिनेन्द्र को चढ़ाइहै।

प्रसाद स्वरूप उस माला को वह भक्त प्राप्त कर सकता है जो जिनेन्द्र यक्ष और बिंब प्रतिष्ठा करवा कर संघ चलाने का श्रेय प्राप्त करे।

भक्तामर स्तोत्र कथा और भक्तामर चरित—इनमें से प्रथम कृति की रचना सं० १७४७ सावन सुदी २ को हुई यह पद्य में नहीं बल्कि हिन्दी गद्य में रचित है। इसके हस्तप्रति की सूचना नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज के त्रैवार्षिक बारहवें विवरण में दिया गया है।

भक्तामर चरित का रचनाकाल भी यही है पर यह पद्यबद्ध है। इसमें दोहा, कुण्डलिया, अडिल्ल, सोरठा आदि छंदों का प्रयोग हुआ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। पंचकल्याणक कथा, नौकाबंध, सुमति-कुमति की जाखड़ी, सम्यक्त्व कौमुदी (सं० १७४९), विष्णुकुमार मुनिकथा और श्रीपाल विनोद कथा आदि इनकी उपलब्ध कृतियाँ हैं।[1] इन सबका विवरण और उद्धरण देकर विवरण का कलेवर बढ़ाना उचित नहीं है। भक्तामर स्तोत्र कथा भाषा में ३८ कथायें हैं। सम्यक्त्व कौमुदी का विवरण डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल ने ग्रन्थसूची में दिया है। इन तमाम विवरणों से यह प्रमाणित होता है कि विनोदीलाल १८वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध के सशक्त जैन कवि थे जिन की भाषा प्रायः हिन्दी है और यत्रतत्र राजस्थानी का पुट है। उनकी काव्यशैली पर हिन्दी साहित्य के रीतिकालीन काव्यशैली, छंद और काव्यरूपों का पर्याप्त प्रभाव दिखाई पड़ता है, किन्तु भाव सर्वथा जैन धर्मानुकूल भक्तिभाव प्रधान है न कि संयोग श्रृंगारमय; श्रृंगार का प्रयोग भी विप्रलंभपक्ष में ही हुआ है इसलिए उसमें मांसलता के बजाय आध्यात्मिकता अधिक है।

विमलरत्न सूरि—ऐतिहासिक जैन काव्यसंग्रह में 'जिनरतन सूरि गीतानि' शीर्षक के अन्तर्गत पाचवाँ गीत 'निर्वाणगीत' है। ९ कड़ी का यह गीत विमलरत्न कृत है। इसकी दो पंक्तियाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत कर रहा हूँ—

युगप्रधान श्री पूज्य जी, श्री जिनरतन सुरिंद
सयलं संघनइ सुखकरु, विमलरतन आणंद।[2]

यह रचना जिनरत्न के निर्वाण पर लिखी गई है अतः यह १८वीं शती की रचना है परन्तु इसका निश्चित रचनावर्ष ज्ञात नहीं है।

विमल विजय तपागच्छीय विजयप्रभ सूरि के शिष्य थे। इन्होंने विजयप्रभ सूरि निर्वाण स्वाध्याय (३८ कड़ी) की रचना की। इसमें रचनाकाल नहीं है किन्तु विजयप्रभसूरि ने सं० १७४९ में ऊना में शरीरत्याग किया था, इसके कुछ ही काल पश्चात् यह रचना हुई होगी। इसका प्रारंभ इन पंक्तियों से हुआ है—

१. डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल——राजस्थान के जैन शास्त्रभंडारों की ग्रन्थसूची, भाग ३, पृ० ३२६ और वही भाग ४, पृ० २५२ और ४४०।
२. ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह–जिनरत्न सूरि गीतानि।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रणमी पास जिणेसर अे, समरि सरसती माय,
निज गुरु ना आधार थीरे, गायस्यु तपगछरायो रे।

इस स्वाध्याय में विजयप्रभ सूरि के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का लेखा-जोखा संक्षिप्त रूप से वर्णित है। विजयप्रभ सूरि कच्छ प्रान्त के मनोहरपुर ग्राम में सं० १६७७ माह सुदी ११ को पैदा हुए थे। इनके पिता का नाम साह शिवभण और माता का नाम भाणी था। सं० १६८८ में नौ वर्ष की अवस्था में विजयदेव सूरि ने दीक्षित कर नाम विजयप्रभ रखा। तत्पश्चात् शिक्षाभ्यास, विहार, बिम्बप्रतिष्ठा आदि द्वारा पर्याप्त प्रसिद्ध हुए और कच्छ लौटने पर राजा ने सम्मानित किया। सं० १७४९ में शरीर त्याग किया और पट्टपर विजयरत्न आसीन हुए। यह रचना जैन ऐतिहासिक गुर्जर काव्य संचय में प्रकाशित है। इसका अंतिम कलश नमूने के तौर पर प्रस्तुत है--

श्री वीर सासन जगनभासन, सुध परंपर पटधरो,
गुरु नाम जंपीइ कर्म खंपीइ, विमलसार संयम धरो।
तपगच्छ दीपक कुमति जीपक, विजयप्रभ गुरु गणधरो,
तस चरण सेवक विमल विजये, गायो जयमंगल करो।[1]

आपकी दूसरी रचना 'अष्टापद समेत शिखर स्तवन' (५५ कड़ी) में भी रचनाकाल नहीं है किन्तु यह रचना श्री विजयरत्न के सूरित्व-काल की है अर्थात् सं० १७५० के बाद की। इसका आभास इन पंक्तियों से मिलता है--

श्री विजयरत्न सूरि गछनायक वारे,
चौसठमें पारे श्री पुजता रै।

इसका प्रारम्भिक छंद निम्नवत् है—

अगारो आगलि ऊलग लाइये, पाय लागे ते पण्डित थाये;
मोखागामिनइ मन शुद्ध गाईं, ते तो पुरुषोत्तम पुरुष कहवाये।[2]

---

१. जैन ऐतिहासिक गुर्जर काव्यसंचय पृ० १८५।

२. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० ४१७-१८, भाग ३ पृ० १३६७ (प्र०सं०) और वही भाग ५, पृ० ११४-११५ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विमलसोम सूरि—गुरु परम्परा अविदित, रचना 'प्रभास स्तवन'; रचनाकाल सं० १७८० से पूर्व, क्योंकि सं० १७८० की हस्तप्रति प्राप्त है।

आदि- सकल मंगल केरु सुरतरु, पूजइ श्री ऋषभ जिनेसरु,
नाभिराय मरुदेवी शतवरु, पद नमइ विमल सोम सूरीसरु।[1]

एक विमलसोम हेमविमल सूरि की परंपरा में १७वीं (विक्रमीय) शती में हो चुके हैं, इसलिए ये उनसे भिन्न १८वीं शती के सूरि हैं परन्तु गुरु परम्परा के अभाव में कुछ निश्चित रूप से कहना कठिन है।

विबुध विजय—आप तपागच्छीय विजयसिंह के प्रशिष्य एवं वीरविजय के शिष्य थे। आपने 'मंगल कलश रास' की रचना ४४ ढाल और ६६८ कड़ी में की है। इस रास का प्रारम्भ सं० १७३० में अंत सं० १७३२ के माधव मास द्वितीया बुधवार को सिद्धपुर में हुआ था। इसके मंगलाचरण का प्रारम्भ निम्न पंक्तियों से हुआ है--

श्री जिनपय प्रणमुं सदा, ऋषभादिक जिनजेह,
चौबीसे अे जिनवर नमुं, वाधे अधिको नेह।

यह रचना दान के माहात्म्य को दर्शाती है, यथा—

दान शियण तप भावना, धरम अे चार प्रकार,
प्रथम दान गुण वरणवुं, मंगलकलश अधिकार।

गुरुपरम्परान्तर्गत विजयदेव, विजयसिह और विजयप्रभ आदि की वन्दना है, तथा राजा जगतसिंह द्वारा विजयसिंह को सम्मानित करने का भी उल्लेख है। इन्हीं विजयसिंह के शिष्य वीरविजय प्रस्तुत कवि विबुधविजय के गुरु थे, यथा—

सकल पंडित परधान, पंडित सिरमुगट समान;
श्री वीरविजय कविराय, सीस विबुध कहे सुपसाय।

रचना का प्रारम्भकाल—
श्री विजयरत्न सूरींद ने आदेशें उल्लास,
सत्तर त्रीसे बड़नगर चतुर रहिया चौमास।
आणंदपुर अे नगर थी जोडवा मांड्यो रास,
संपूरण कीधो सिद्धपूरे, आणी मन उल्लास।

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई--जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० ७४७ (प्र०सं०) और भाग ५, पृ० ३०९ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रचना का पूर्णकाल –

शशि सागर ने दंत संवछरि, माधव मास कहेवायो,
द्वितीया बुध दिन सिद्ध संयोगे, अनोपम रास निपायोरे।

अंतिम पंक्तियाँ—

छसें अडसठि गाथा कहिये सरब संख्या कहिवायो,
जिहाँ लगि ध्रू ससि सायर दिनकर तिहां लगि अे थिरथायो रे।[1]

विबुधविजय II—आप तपागच्छ के प्रसिद्ध आचार्य हीरविजय>शुभविजय>भावविजय>ऋद्धिविजय>चतुरविजय के शिष्य थे। इन्होंने 'सुरसुन्दरी रास' (४० ढाल; ९५५ कड़ी सं० १७८१) लिखा, उसका प्रारम्भ देखिये--

श्री शत्रुंजे गिर बडो, सवी तीर्थ सिरदार,
पूर्व नवाण समोसर्या, ऋषभ जिनेस्वर सार।

यह रास नवकार मन्त्र की महिमा स्थापित करने के लिए लिखा गया है।

श्री नवकार तणे महिमाये, सुरसुन्दरी सुख पाई।
कष्ट उपजी ने सुख हुओ, धरम तणे सोभाई।

जैसे ग्राम कथाओं के अन्त में कहानी सुनाने वाला कहता था कि जैसे राजा का राजपाट लौटा तैसे सबका लौटे। उसी प्रकार प्रायः जैन रास भी इस दृष्टि से सुखांत हैं। व्रतकर्त्ता या धार्मिक श्रावक श्राविका अंत में तमाम कष्टों को पार कर सुख पाते और मोक्ष जाते हैं। इसका रचनाकाल इन पंक्तियों में बताया गया है--

संवत ससी सेला मुधर चैक,
मास मुनीसर सारो रे,
अजुआली ससी ने नेग्नीइं,
वार भलो दधीना सुतनी सुनो धारो रे।

गुरुपरम्परा में कवि ने हीरविजय के साथ उन सबका उल्लेख किया है जिनका पहले नाम दिया गया है। विबुधविजय जी अपनी

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० २७८-७९; भाग २, पृ० १२७८(प्र०सं०) और भाग ४, पृ० ४५०-५१ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बुद्धि के पेंच से ऐसी बुझौवल पंक्तियाँ लिख देते हैं कि उनका अर्थ सामान्य लोगों की समझ से परे होता है, यथा—

पर्वत सुतापती को पहेलो ले जो,
ससरा तणो वली त्रीजो,
शनी सरताज को पहेलो घर जो,
पं. विबुध विजय अे गाम मां अे कीओ रे।[1]

अब इस ग्राम का नाम ढूँढ़ निकालना किसी पण्डित के बलबूते का काम है। सामान्य जन नहीं बता सकते कि कौन सा रचना स्थान है।

विवेकविजय--ये तपागच्छीय वीरविजय के शिष्य थे। इन्होंने सं० १७३५ आसो, शुक्ल १० गुरुवार को शाहपुर (मालवा) में 'मृगांक-लेखा रास' चार खण्डों में पूर्ण किया।[2] इसकी प्रारम्भिक पंक्तियां निम्नांकित हैं—

उदय आदिसर नांम थी, शांत सदा सुखकार;
नेमनाथ नवनिद्ध दीपे, पार्श्व प्रेम दातार।

× × ×

श्री गुरु पाय प्रसाद थी चरित्र करुं सुप्रसिद्ध,
मृगांक लेखा निर्मल सदा अे में उद्यम कीद्ध।

इसमें शील का महत्व समझाया गया है, मृंगाकलेखा चरित्र उसका उदाहरण है -

शील सदा सुखदाय छे, सील समो नहीं अे कोय;
सीले सुप मृगांक लेह्यो, सुणजो सहु सविवेक।

गुरुपरम्परा में सुधर्म के पश्चात् वीरविजय को पूज्यभाव से स्मरण किया गया है। रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है--

संवत सतर त्रीषा वरसें, विजयादसमी गुरुवार रे,
साहपुर सोभीत मालवे, रास रच्यो जयकार रे।

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग ३, पृ० १४४६-४९ (प्र०सं०) और भाग ५, पृ० ३१७-३१९ (न०सं०)।

२. अगरचन्द नाहटा—परंपरा, पृ० १११।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चोथो खंड वर चउपइं पुरण बधते प्रेमो रे,
ढाल चोत्रीसमी धनाश्रीइ, ऋद्धि वृद्धि वरो नेमो रे।

इसकी अंतिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

मृगांक लेषा गुण सलेष्यो देष्यां मुझ मन सुषकरु,
तपगछराज जेवी साहिब सुं, विवेक संघ मंगलकरु।[1]

यह रचना मृगांकलेखा और सागरचन्द के सम्बन्धों पर आधारित है।

विवेकविजय II—आप तपागच्छीय आचार्य हीरविजय > शुभविजय > भाणविजय > ऋद्धिविजय > चतुरविजय के शिष्य थे। इनकी रचना 'रिपुमर्दन रास' (१७ ढाल) सं० १७६१ व्यंक मास शुक्ल ११, भृगुवार, वडावली में पूर्ण हुई। यह शील के माहात्म्य पर रचित है। इसका आदि इस प्रकार है--

थंभणपुरवर पास जिण, हूं प्रणमुं तुम पाय,
वामानंदन नाम थी, परम पामुं सुखदाय।
सरसति भगवति आपयो, मुझ नइ बुद्धि प्रकाश,
कालिदास जिम माघ तिम, तिम द्यो वचन विलास।

× × ×

दान शील तप भावना कहीइं, अे जग मां सही च्यारे रे,
अे च्यार थी अधिको जाणो, शील बडो सुखकारे रे।

रचनाकाल —

संवत चैक सैलादिक रागा, ज्ञानी नाम धरीजे रे,
मास व्यंक अजुआली तिथि सीवा, वार भलो भृगु लीजे रे।

यह रचनाकाल अस्पष्ट है, मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने पहले इसका रचनाकाल सं० १६७५ बताया था, बाद में सं० १७६१ बताया। इनकी अन्य रचना भी १८वीं शती की है अतः यह भी इसी समय की अवश्य होगी। रचनाकाल में प्रयुक्त 'चैक' शब्द का अर्थ एक; शैल का सात, आदि का एक और राग का अर्थ यदि छह लगाया जाय तो संवत् १७६१ मिलता है। पर इस प्रकार रचनाकाल गिनाने की बुझौवल

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० २७३-२७५ और भाग ३, पृ० १२७८ (प्र० सं०) और भाग ५, पृ० ३७ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिपाटी बड़ी भ्रामक है। इसका दूसरा अर्थ भी लगाया जाना संभव है। इसी तरह इसकी अंतिम पंक्तियों में कहा गया है कि यह रचना राग धनाश्री में की गई है। यह भी एक रूढ़ि ही है। ऐसा प्रायः कवि कहते हैं कि उनकी रचना धनाश्री राग में आबद्ध है पर सभी रचनायें राग सम्बन्धी नियमों पर खरी नहीं उतरतीं, पंक्तियाँ देखें—

अन्त-- राग धनाश्री ढाल सतावीस, रिपुमर्दन गुण गाया रे,
विवेकविजय कहे सुणतां सहुने, आणंद ऋद्धि सवाया रे।

इनकी दूसरी रचना 'अर्बुदाचल चौपाई' (सं० १७६४ जेठ कृष्ण ५, दांता) का आदि इस प्रकार हुआ है--

सरस वचन द्यो सरस्वती, भगवती भारती माय,
अर्बुदना गुण गायवा, मुझ मन आणंद थाय।

लेखक ने रचना स्थान बताते समय दांतां के अन्तर्गत एक सौ साठ गाँव बताये हैं और दांतां तालुका के राजा का नाम पृथ्वी सिंह बताया है। इसमें रचनाकाल स्पष्ट है--

संवत सतर चोसठा तणो अे, अवल ज अनोपम मास के;
जेठ वदनी पांचमे अे, गाओ हर्ष उल्लास के।[1]

अर्बुदाचल चौपाई का रचनाकाल जब स्पष्ट ही सं० १७६४ है तो पहली रचना रिपुमर्दन रास सं० १६७५ की हो नहीं सकती, इसलिए सं० १७६१ सत्य के अधिक करीब है।

अन्त में वही गुरु परम्परा इसमें भी बताई गई है जो पहली रचना में कही गई थी। उसमें अकबर बोधक हीरविजय से लेकर प्रारम्भ में लिखे गये सभी गुरुओं का सादर स्मरण किया गया है। इसमें केवल चतुरविजय का विशेष रूप से वंदन है। रिपुमर्दन रास के रचनाकाल में 'व्यंक' का अर्थ मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने शुचिमास या ज्येष्ठ मास लगाया है, वही महीना मैंने भी बताया है।[2]

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग १, पृ० ४९२-९३, भाग ३, पृ० ९७२ तथा १४११-१२ (न० सं०)।
२. वही, भाग ५, पृ० २१२-२१४ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साध्वी विबेक सिद्धि--इनका एक गीत 'विमलसिद्धि गुरुणी गीतम्' ऐतिहासिक रास संग्रह में प्रकाशित है जिससे ज्ञात होता है कि विमलसिद्धि मुल्तान निवासी मोल्हू गोत्रीय साहु जयतसी की पत्नी जुगता दे की पुत्री थी। उन्होंने साध्वी लावण्य सिद्धि से प्रवज्या ली थी और बीकानेर में उनका स्वर्गवास हुआ था। विवेकसिद्धि इनकी शिष्या थी और इन्होंने अपनी गुरुणी की स्तुति में यह गीत लिखा है। इसका निश्चित रचनाकाल तो ज्ञात नहीं हो सका पर इन गुरु-शिष्या का समय १८वीं शताब्दी का मध्यकाल है अतः इनका उल्लेख इसी शताब्दी में होना उचित है। इस गीत के आदि और अन्त की पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं--

आदि— गुरुणी गुणवंत नमीजइ रे,
जिम सुख संपति पामीजइ रे।
दुख दोहग दूरि गमीजइ रे,
परमगति सुर साथि रमीजइ रे।

अन्त-- विमलसिद्धि गुरुणी महीयइ रे,
जसु नामइ वंछित लहीयइ रे।
दिन प्रति पूजइ नरनारी रे,
विवेकसिद्धि सुखकारी रे।[1]

अनेक जैन साधु रचनाकारों के मध्य यदाकदा किसी साध्वी की उपस्थिति जैन संघ में साध्वियों के सुखद अस्तित्व का अनुभव कराती है। इनकी किसी अन्य रचना का पता नहीं चल पाया है।

विश्वभूषण--आप बलात्कारगण की अटेर शाखा के शील-भूषण > ज्ञानभूषण > जगतभूषण के शिष्य थे।[2] इनकी भट्टारकीय गादी हथिकान्त में थी। यह जिला आगरा का एक प्रमुख स्थान था। इनके अनेक शिष्यों में ललितकीर्ति विशेष उल्लेखनीय हैं। ये हिन्दी के कवि थे और जिनदत्तचरित, जिनमत खिचरी; निर्वाण मंगल अढ़ाई द्वीप आदि के अलावा इन्होंने कई पूजा और पदादि भी लिखे हैं। इन्होंने संस्कृत में मांगीतुंगी गिरि मंडल पूजा सं० १७५६ में लिखा।[3]

१. जैन ऐतिहासिक रास संग्रह, पृ० ४२२।
२. विद्याधर जोहरापुरकर—भट्टारक सम्प्रदाय, पृ० १३२।
३. डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल--राजस्थान के जैन शास्त्रभंडारों की ग्रंथसूची, भाग ४, पृ० ५०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इनकी हिन्दी रचनाओं का परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

निर्वाण मंगल (१७२९)—इस छोटे से गीतकाव्य में निर्वाण और भक्ति विषयक गीत हैं।

अष्टाह्निका कथा (१७३८) इसमें नंदीश्वर की भक्ति सम्बन्धी कथा है। आषाढ़, कार्तिक और फाल्गुन के अंतिम आठ दिनों में यह पर्व मनाया जाता है। इन दिनों नंदीश्वर की पूजा की जाती है।

आरती—(९ पद्य) की उदाहरणार्थ निम्न पंक्तियाँ देखें—

पहली आरती प्रभु की पूजा, देव निरंजन और न दूजा;
दुसरी आरती सिवदेवी नंदन, भक्ति उधारण करम निकंदन।

नेमिजी का मंगल—यह रचना सं० १६९८ श्रावण शुक्ल अष्टमी की है। उस समय ये भट्टारक की गद्दी पर सम्भवतः नहीं थे, केवल मुनि थे। इसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

प्रथम जपौ परमेष्ठि तौ हियौ धरौ,
सरस्वती करहुं प्रणाम कवित्त जिन उच्चरौ।
सोरठि देस प्रसिद्ध द्वारका अति बनी,
रची इन्द्र नै आइ सुरनि मनि बहु कनि।

पार्श्वनाथ का चरित्र—यह आचार्य गुणभद्र के उत्तरपुराण पर आधारित रचना है।

आदि— मनउ सारदा माई भजौ गणधर चितु लाई।
पारस कथा संबंध, कहौं भाषा सुखदाई।

पंचमेरु पूजा—सुदर्शन, विजय, अचल, मंदिर और विद्युन्माली को पंचमेरु कहते हैं। इन्हीं की पूजा की विधि इसमें वर्णित है।

जिनदत्त चरित (सं० १७३८) यह रचना जिनदत्त की भक्ति से प्रेरित है। इसका उल्लेख नाथूराम प्रेमी, मिश्रबन्धु और कामताप्रसाद जैन ने अपने-अपने ग्रंथों में किया है इससे इसकी महत्ता स्वतः स्पष्ट है।

जिनमत खिचरी—यह छोटा सा मुक्तक काव्य है। कुल १४ पद्य हैं। इसमें दाम्पत्य भाव से आत्मा परमात्मा के भक्ति भाव को व्यक्त किया गया है। इसपर सूफियों के 'इश्क मजाजी से इश्क हकीकी' का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रभाव परिलक्षित होता है। उदाहरणार्थ इसकी दो पंक्तियाँ पर्याप्त हैं–

लग रही मो हिय दरसन की, पिया दरसन की आस;
दरसन काहे न दीजिए।
काहे को भूले भ्रम पिया, भूले भ्रम जाल;
मोह महामद पीजिए।[1]

पद—आपने उत्कृष्ट गेय पद रचे हैं जो भक्तिभाव से सराबोर है। एक पद का साहित्यिक स्वाद लें—

ता जोगी चित लाऊं।
सम्यक् डोरो सील कछोटा धुलि धुलि गाँठ लगाऊं।
ग्यान गूदरी गल में मेलौं जोग आसन ठहराऊं।
आदि गुरु का चेला होकै मोह का कान फराऊं।
शुक्ल ध्यान मुद्रा दोउ सोहै, ताकी सोभा कहत न घाऊं।

ये पद कबीर आदि निर्गुण सन्तों के पदों जैसे श्रेष्ठ आध्यात्मिक भावों से भरे हैं, यथा—

कैसे देहुं कर्मनि खोरि, या
जिननाम ले रे बौरा तू जिन नाम लैरे बौरा, अथवा
साधो नागनि जागी, ता जोगी चित लाऊं। इत्यादि

अनेक सुमधुर और भक्तिभावपूर्ण पदों की आपने रचना की है।

ढाई द्वीप—यह रचना संस्कृत में है किन्तु इसकी कई जपमालायें हिन्दी में हैं। इसलिए इसका उल्लेख हिन्दी रचना में भी किया जा सकता है। इनका भक्तिभाव तथा काव्यत्व दोनों ही उच्च कोटि का था।[2]

वीरविजय—तपागच्छ के साधु कनकविजय इनके गुरु थे। विजयसिंह सूरि निर्वाण स्वाध्याय (१७०९, भाद्र कृष्ण ६, सोमवार, अहमदाबाद) इनकी प्रसिद्ध रचना है। विजयसिंह सूरि की मृत्यु सं० १७०९ आषाढ़ शुक्ल ९ को अहमदाबाद में हुई थी। उसके दो माह

१. डा० प्रेमसागर जैन—हिन्दी जैन भक्तिकाव्य और कवि, पृ० २५८-२६८
२. श्री कामताप्रसाद जैन—हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ० १६६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पश्चात् यह रचना की गई थी। विजयसिंह सूरि के सम्बन्ध में इस स्वाध्याय से पर्याप्त जानकारी प्राप्त होती है। वे मेड़ता निवासी नथमल ओसवाल की पत्नी नायक दे की कुक्षि से उत्पन्न पांच पुत्रों– जेसो, जेठो, केशव, कर्मचन्द और कपूरचन्द में चौथे पुत्र थे। इनके माता-पिता ने अपने अन्तिम तीन पुत्रों के साथ सं० १६५४ में विजयसेन सूरि से दीक्षा ली थी। कर्मचन्द ही बाद में विजयसिंह सूरि हुए। इनका जन्म सं० १६४४ और दीक्षा सं० १६५४ में हुई इन्हें पण्डित पद १६७०, वाचक पद विजयदेव सूरि द्वारा सं० १६७३ पाटण में और आचार्य पद सं० १६८१ वैशाख शुक्ल ६ को ईडर में प्राप्त हुआ। सं० १७०८ में दीव की तरफ चातुर्मास के लिए जाने को तैयार हुए किन्तु अहमदाबाद के संघ द्वारा आग्रह करने पर वहीं चातुर्मास किया और बाद में वहीं सं० १७०९ में स्वर्गस्थ हुए।[1] इसका आदि इस प्रकार है–

समरु सरसति सामिनी, आपो अविचल वाणी,
श्री विजयसिंह सूरी तणो जी, बोलीस हूं निरवाणि।
माहरा गुरुजी तुं मनमोहन वेलि।

रचनाकाल—

संवत सतर नवोतरइ रे, अहमदपुर मझारि,
सहु चोमासुं अेकण रे, श्रावक समकित धारो रे।

अंतिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

गुरु पद पंकज भमरलो रे, आणी मन उल्लास,
वीरविजय मुनि वीनवइ रे, पूरो संघनी आसो रे।
सुणि सुणि साहिबा, अेक करुं अरदासो रे,
कां छोड्या निरासो रे, सुणि सुणि साहिबा सुणि।[2]

बंभणवाडा महावीर स्तवन (सं० १७०८ दिवाली माट वंदर) आपकी दूसरी रचना है जिसका आदि इस प्रकार है—

मांगु श्री गुरुनइ नमी, सारद दिउ श्रुततेज,
चोवीसमों जिनवर स्तवुं, जिम आणी ऊलट हेज।

---

१. जैन ऐतिहासिक गुर्जर काव्य संचय, पृ० १८१-१८२।

२. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० १३८-१३९, भाग ३, पृ० ११८६-८७ (प्र०सं०) और भाग ४, पृ० १६४-१६५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसमें गुरु परम्परा इस प्रकार बताई गई है--

श्रीविजयदेव सूरि गच्छ दीपायो,
श्री विजयसिंह गणरायो रे,
कनकविजय बुध प्रणमी गातां,
वीरविजय जय थायो रे।

इससे लगता है कि विजयसिंह सूरि इनके प्रगुरु थे। रचनाकाल निम्नांकित पंक्तियों में बताया गया है--

वसु अंबर मुनि शशि संवच्छर, आसो दिन दीवाली रे,
माट वंदिर म्हां थुणिउ सुणतां, होइ मंगलीक माली रे।[1]

वीरजी--(वीरचन्द) ये पार्श्वचन्द सूरि>समरचंद सूरि>राजचंद सूरि>देवचन्द सूरि के शिष्य थे। इनकी रचना कर्मविपाक अथवा जंबूपृच्छाराज (१३ ढाल सं० १७२८, पाटण) का प्रारम्भ इस प्रकार है--

सकल पदारथ सर्वदा, प्रणमु श्यामल पास;
नामिये तेहने उठि नित्य, परमानंद प्रकाश।

इसमें सोहम् स्वामी और जंबू स्वामी का प्रश्नोत्तर है। वे प्रश्न करते हैं--

कहो भगवन् धनवंत सुखी, शे कर्मे जीव थाय;
दारिद्री निर्धन दुखी, कुण कर्मे कहेवाय।

इसी प्रश्न के उत्तर में सम्पूर्ण रचना की गई है। इसमें वही गुरु-परम्परा दी गई है जो पहले लिखी गई है। रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है--

संवत सतर अठावीसे, पाटण नगर मोझारी,
जंबू पृच्छा रची में रंगे, वीरजी मुनि सुखकारी।

इसे भीमसिंह माणेक ने प्रकाशित किया है। इसकी एकाध प्रतियों में लेखक का नाम वीरचंद भी मिलतां है, यथा--

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई--जैन गुर्जर कवियो, भाग ३, पृ० ११८६-८७ (न०सं०) और भाग ४, पृ० १६४-१६५ (न० सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदर स्युं ढाल आठवीं सु० सुणता होइ आणंद हो;
देवचंद वाचक तणो सु०, शिष्य कही वीरचंद हो।[1]

लगता है कि ये कभी वीरजी और कभी वीरचंद नाम लिखते थे।

वीरचंद – इस नाम के कई लेखक मिलते हैं। एक दिगंबर कवि वीरचंद १७वीं शताब्दी में हुए हैं जिन्होंने वीरविलास फाग आदि आठ रचनायें की हैं। इनका विवरण इस ग्रन्थ के द्वितीय खण्ड में दिया जा चुका है। प्रस्तुत वीरचंद १८वीं शताब्दी के लेखक हैं। इनकी गुरुपरंपरा का पता नहीं चल पाया। इनकी रचना 'पंदरमी कला विद्या रास' अथवा वार्ता सं० १७९८ श्रावण कृष्ण पंचमी को रत्नपुरी में पूर्ण हुई थी। इसका रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है—

संवत सतर अठाणुवे, अ० व्रत श्रावण मास;
वदि पखे दिन पंचमी, कीनी मन उल्लास।
रत्नपुरी अति खूब है, राणा कायम राज,
वीरचंद पूरण करी, सिणगारु सिरताज।[2]

संसार में चौदह विद्या प्रसिद्ध है जिन्हें सब जानते हैं किन्तु इसमें पन्द्रहवीं विद्या की चर्चा है, यह अध्यात्म विद्या है, कवि ने लिखा है–

चउदे विद्या हे भली, कहे सबे मुनीराय;
पनरमी विद्या इम कहे, जे सहू ने आवे दाय।[2]

इस विद्या से अंतरग्रह से मुक्ति होती है। इसका नाम कवि ने 'वार्त्ता' भी दिया है क्योंकि इसमें गुजराती गद्य में वार्त्ता भी दी गई है तत्पश्चात् दोहे दिए गये हैं।

वीरविमल—तपागच्छीय सिंहविमल>लाभविमल>मानविजय के ये शिष्य थे। इन्होंने 'भावी नी कर्मरेख रास' सं० १७२२ श्रावण कृष्ण ५, रविवार को बुरहानपुर में पूरा किया। अपनी गुरुपरंपरा में इन्होंने हीरविजय और विजयसेन सूरि तथा इन दोनों सूरियों की

1. मोहनलाल दलीचन्द देसाई–जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० २५२-२५५; भाग ३, पृ० १२६१ (प्र०सं०) और भाग ४ पृ० ४२४-४२५ (न०सं०)।
2. वही, भाग ३, पृ० १४७० (प्र० सं०) और भाग ५, पृ० ३६३-३६४ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्राट् अकबर से भेंट का भी उल्लेख किया है। इन्होंने 'जंबूस्वामी रास' भी लिखा है पर इसका विवरण-उद्धरण नहीं प्राप्त हो सका। प्रथम रचना का विवरण आगे दिया जा रहा है।

'भावीनी कर्मरेखा रास' का रचनाकाल निम्नांकित पंक्तियों में है–

युग्म नयन मुनिचंद अंक वाम गति जाणी,
श्रावण वदि पांचमी रविवारइ, ऊलट मन मांहि आणी रे।
विबुधावतंसक मानविजय वर अमृत वाणि सुहाया,
तास प्रसाद लही तस सेवक, वीरविमल गुण गाया रे।
मइ आज परमसुख पाया रे।

रचनास्थान के बारे में सूचना इस प्रकार है—

वरहानपुर मंडन वामानंदन, पामी तास पसायो रे,
मैं आज परमसुख पायो रे।[१]

वृद्धिविजय—आप तपागच्छ के विद्वान् धीरविजय के प्रशिष्य एवं लाभविजय के शिष्य थे। इनकी गद्य-पद्य विधा में कई रचनाएँ उपलब्ध हैं जिनका संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है—

ज्ञानगीता (३५ कड़ी सं० १७०६, साईंपुर)

इसमें विजयदेव, विजयप्रभ के पश्चात् धीरविजय और लाभविजय की वंदना गुरुपरंपरा के अन्तर्गत की गई है। यह रचना प्राचीन फागुसंग्रह में प्रकाशित है। उसमें इसकी ३५ नहीं ५१ कड़ियाँ बताई गई हैं। रचनाकाल संबंधी कड़ी ही ५१वीं है।[२] इसमें मोह की प्रबलता और उससे रक्षा हेतु संखेश्वर पार्श्वनाथ से प्रार्थना की गई है। कुछ संबंधित पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

मोह तणें कर चडीयो जडीयो माया जाल,
ते गत जाणें अवर को तुझ विण दीनदयाल।

मोह की प्रबलता दिखाने के लिए मोहग्रस्त महेश, ब्रह्मा, कृष्ण आदि का नाम लिया गया है, यथा –

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई– जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० १९६-१९७ (प्र०सं०) और भाग ४, पृ० ३१५-३१६ (न० सं०)।

२. प्राचीन फागुसंग्रह पृ० २१७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मोह महाभाव पाने ताने नाच्यो महेश,
बंभ रमे करमें करी पुत्र सुं सुविशेष।
केसव ते सवि लज्जा लोपी गोपी रत्त,
अहो तिहुअंण जयकारी मोह महा उन्मत्त।

इस महामोह से मुक्ति दिलाने में समर्थ पार्श्वनाथ की इसमें वंदना की गई है—

पास सुषवास प्रभु तेह सोहे, नेहभरी नीरबतां चित्त मोहे;
माता वामा सती जेह जायो, सुरनर कीन्नर कोडि मायो।

इसका रचनाकाल देखिये—

दर्शन मुनी शशी मान वर्षे, साईपुर नयरमां चित्तहर्षे।
ज्ञानगीता करी प्रेमपूर, पास प्रभु संथुण्यो चढ़त नूर।

गुरुपरंपरा से संबंधित दो पंक्तियाँ भी देखें—

धीर विजय कवि सेवक लाभविजय बुध सीस,
बुद्धि विजय कहे पास जी, पूरी सयल जगीस।[1]

'दशवैकालिक ना दश अध्ययन नी दश सञ्झायो' का आदि—

(प्रथम द्रुम पुष्पिका अध्ययन)

श्री गुरुपद पंकज नमी जी, बली धरी धर्म नी बुद्धि,
साधु क्रिया गुण भाखशुंजी, करवा समकित शुद्धि।

अंत—श्री विजयप्रभ सूरि नै राजइ, बुध लाभविजय नउ सीस रे,
वृद्धिविजय विबुध ३ आचारै अं, गायो सफल जगीसइ रे।

यह रचना प्रकाशित है।

आपकी तीसरी उपलब्ध रचना है 'शंखेश्वर पार्श्वनाथ स्तवन' (३८ कड़ी, सं० १७३० भाद्र शुक्ल ५) इसकी प्रारंभिक पंक्तियाँ निम्नवत् हैं—

प्रभु पास जी मिलीयो तो मनवंछित
फलियो काज रे साहेब जी,
पातक परजलियो दुःखसति
दलियो आज रे साहेब जी।

---

१. प्राचीन फागुसंग्रह, पृ० २१७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रचनाकाल अंत में है–

इम थुण्यो भगति शास्त्र जुगति पास शंखेसर वरु;
सत्तर त्रीसइ भाद्रवा सुदि पंचमी दिन मनहरु।
पंडित श्री धीरविजय गणि, चरणपंकज मधुकरो,
लाभविजय कवि सीस पभणइ, वृद्धिविजय शिवसुखकरो।[1]

वृद्धिविजय II — आप तपागच्छीय विजयराजसूरि>धनहर्ष> सत्यविजय के शिष्य थे। आप अच्छे साधु के साथ अच्छे कवि भी थे। आपकी अनेक रचनाएँ उपलब्ध हैं। जीवविचारस्तवन, त्रिषष्टि शलाका पुरुषविचार स्तवन, नवतत्वविचार स्तवन और चौबीसी आदि के अलावा आपने गद्य में उपदेशमाला बालावबोध भी लिखा है। जीवविचार स्तवन (सं० १७१२, आसो सुदी दशमी, शनिवार) का रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है–

संवत ससी सागर चन्द्रलोचन स्तव्यो,
आसो सुदी दशमी रविवार राजइ।

इसमें गुरुपरंपरा वही बताई गई है जैसा ऊपर लिखा जा चुका है। इसकी प्रारंभिक पंक्तियाँ देखें–

श्री सरस्वती रे वरशति वचन विलास रे,
थुणस्युं त्रिभुवन रे तारण श्री जिनपास रे;
सुणो समरथ रे सुंदर श्री जिनदेव।

त्रिशष्टि शलाका पुरुषविचार स्तवन (१७१२) में रचनाकाल इस प्रकार कहा गया है–

संवत शशी सायर खीइं जिनस्तवीया कर जोडी कवीइं,
भणइ गुणइ जे सांभलइ, तस घर आंगणि सुरतरु फलिय।

नवतत्व विचार स्तवन (९५ कड़ी सं० १७१३ कार्तिक शुक्ल २ गुरु, घोघाबंदर)

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई–जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० २७०-२७१, भाग ३, पृ० १२७२-७३ (प्र० सं०) और भाग ४, पृ० १४८-१४९ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदि-- सरसती सरसती देवी, सेवी श्री गुरु पांय रे,
वीर जिणंद थूणस्यूं गुणखांणी, जाणी वाणी पसाय रे।
सद्गुरु सांचो तुम्ह उपदेश रे।

रचनाकाल--

संवत सतर तेरोत्तरा कार्तिक द्वितीया गुरुवार,
श्री घोघा वंदिर जिन स्तवीयो, नवखंड पास आधार रे।[1]

चौबीसी--इसमें चौबीस तीर्थङ्करों की स्तुतियाँ हैं। प्रथम तीर्थंकर की स्तुति से सम्बन्धित दो पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं--

प्रेमइ प्रणमुं रे प्रथम जिणेसरु, आदिसर अरिहंत,

इसकी अंतिम पंक्तियाँ निम्नलिखित हैं--

श्युं कहुं प्रभु तुझ आगलि, तु दिला जाणइ छइ देव,
वृद्धिविजय कहइ माहरइ, होयो तुझ पद सेव।

आपने अधिकतर भक्तिपरक स्तवन और स्तुतियां ही लिखी हैं। इनकी रचनाओं पर भक्ति परम्परा का प्रभाव पर्याप्त पड़ा था।

आपकी गद्य रचना 'उपदेश माला बालावबोध (सं० १७३३,[2] आसो १५ गुरु, सूरत) इसकी संस्कृत में लिखित पुष्पिका से पता चलता है कि यह रचना सं० १७३३ में यशोविजय जी के प्रसाद से निर्मित हुई थी। इसके गद्य का नमूना नहीं प्राप्त हो सका।

वेणीराम आप आद्यपक्षीय शाखा के साधु दयाराम के शिष्य थे। पीपाड़ (जोधपुर) के जागीरदार माधोसिंह राठौड़ आपके प्रशंसक एवं आश्रयदाता थे। इन्होंने प्रसिद्ध चारण भक्तकवि ईसरदास के 'हरिरस' से प्रभावित होकर 'गुण जिनरस' की रचना की। इसका रचनाकाल संदिग्ध है क्योंकि रचनाकाल जिन शब्दों में बताया गया है इससे सं० १७९९ और सं० १७६९ दोनों तिथियों का बोध होता है। संबंधित पंक्तियाँ देखें—

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई-जैन गुर्जर कवियो, भाग ४, पृ० २५०-२५२ (न०सं०)।

२. वही भाग ५, पृ० १५०-१५२, ५९१ और भाग ३ पृ० ११९५-१२००, १६२७-२८ (प्र०सं०) और भाग ४ पृ० २५०-२५२ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संवत निध खंड समुद्र चंद, जिनरस कीय रचना,
माघ सुकल सुत मही तिथ जु अेकादसी निरणा।

इसमें प्रयुक्त चंद=१, समुद्र=७, खंड=९ और ६ दोनों तथा निधि=९ होता है इससे दोनों तिथियाँ १७६९ और १७९९ बनती है। नाहटा १७६९ बताते हैं।[१] पर मोहनलाल दलीचन्द देसाई १७९९ बताते हैं।[२]

इसी प्रकार गुरुपरंपरा में प्रयुक्त 'कोटिक' शब्द को लेकर भी शंकायें की गई हैं और कुछ लोग इन्हें कोटिक गण का और कुछ अन्य लोग कड़वागच्छ का कवि बताते हैं; पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

गछ कोटिक गुरु राज, प्रसिद्ध श्री पुज्य पंचाइण,
जिनहरष जिन लबध, पाट हम्मीर परायण,
विनयहरी लखराज हुव, दयाराम दिल सुद्ध लही,
शिष्य अेम पयंपै गुरु भगति, करजोड़े वेणीराम कही।

मुझे तो स्पष्ट ही नाहटा जी का निर्णय ठीक लगता है और ये आद्यपक्षीय कोटिकगण के कवि सिद्ध होते हैं। श्री देसाई ने पहले इन्हें खरतरगच्छीय बताया था जो ठीक नहीं लगता।

इसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ निम्नलिखित हैं—

गणपति सारद पाय नमी, आखु जिनरस अेह,
विघन विदारण सुखकरण, अविरल वाणी देह।
नमण करीनै हुं नमुं, प्रथम ज सद्गुरु पाय;
शास्त्र केरा सुभ अरथ, दीया मोहि बताय।

आपने अपने आश्रयदाता की चर्चा इन पंक्तियों में किया है--

नयरी पीपाड ज नवल, कमधज माधौसिंघ,
कांमेती सोभौ अभौ, धरज ध्वजा धयधींग।[३]

'धरम ध्वजा धयधींग' शब्दावली तुलसी की इसी शब्दावली की याद दिलाती है।

---

१. अगरचन्द नाहटा—परंपरा, पृ० १०९
२. मोहनलाल दलीचंद देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग ५, पृ० ३६६-३६७ (न०सं०)।
३. वही भाग २, पृ० ५११-५१२; भाग ३, पृ० १४३३ (प्र०सं०) और भाग ५, पृ० ३६६-३६७ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शांतसौभाग्य —तपागच्छीय राजसागर सूरि > वृद्धिसागर > लक्ष्मी सागर > कल्याणसागर > सत्यसौभाग्य (उपा०) > इन्द्र सौभाग्य > वीर सौभाग्य > प्रेम सौभाग्य के शिष्य थे। आपकी एकमात्र रचना 'अगड-दत्त ऋषी नी चौपाई'[1] प्राप्त है जो सं० १७८७ में पाटण में लिखी गई थी। इस रचना का कोई अन्य विवरण और उद्धरण प्राप्त नहीं है।

शांतिदास —श्रावक थे। इनकी रचना 'गौतम स्वामी रास' (६१ कड़ी) सं० १७३२ आसो शुक्ल १० को पूर्ण हुई थी। इसका आदि निम्नवत् है--

सरस वचन दायक सरसती, अमृत वचन मुख थी वरसती।
सद्गुरु केरु कीने ध्यान, अलवे आले बुद्धि निधान।
तीर्थंकर चौबीसे तणा, अेक मनां गुण गाऊं घणा।
विरहमान वंदु जिन वीस, सिद्ध अनंता नामुं सीस।

रचनाकाल इस प्रकार कहा गया है—

संवत सतर बत्रीसे लहुं, आसो सुदिन दसमी कहुं;
कर जोड़ी कहे शांतिदास, गौतम ऋषि आपो सुखवास।[2]

शांतिविजय--आपने 'शत्रुञ्जय तीर्थमाला' (३ ढाल) सं० १७९७ माह शुक्ल २) का निर्माण किया है। इसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ आगे दी जा रही हैं--

आदि-- आदीसर अरिहंत जी, नाभिराय कुल मउड;
मरुदेवा सुत गुणनिलउ, आपै अविचल ठउड।

× × ×

तीरथ अे सासतउ जासा, श्री वीरवचन प्रमाण;
साध सीधा अनंता कोड, ते प्रणमुं बे कर जोड़।

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० ५६३ (प्र०सं०) और भाग ५, पृ० ३३७-३३८ (न०सं०)।

२. वही, भाग २, पृ० २९०-२९१, (प्र०सं०) और भाग ५, पृ० १ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कलश में इसका रचनाकाल दिया गया है--

इम मिद्ध तीरथ तणीय यात्रा चैत्र परिपाटी करी,
छअ री पालत जेह विचरै, सुद्ध आतम संवरी।
मुणि शांति विजये सुजस कीधो, हेत आणी इक मनें;
संवत्त सतर सताणू आना माघ सित दुतीया दिने।[1]

शामलदास--शामलभट्ट आप गुजराती आद्य कवियों में अग्रणी हैं। आपकी रचना पंचदण्ड चौपाई प्रकाशित है। इसमें कुल ५९७ पद हैं। इनकी दूसरी रचना नंद आख्यान या नंद बत्रीसी ५०४ कड़ी की है। यह भी प्रकाशित हो चुकी है। कवि शामलभट्ट के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए तथा उनके साहित्य का रसास्वादन करने लिए अंबालाल जानी द्वारा सम्पादित 'सिंहासन बत्तीसी' और उसकी प्रस्तावना का अंश 'कवि शामल' द्रष्टव्य है। यह कृति बडोदरा साहित्य सभा द्वारा प्रकाशित है।[2]

श्यामकवि--आपने 'तीन चौबीसी चौपाई' की रचना सं० १७५९ में की। इसका अन्य विवरण या उद्धरण अज्ञात है।[3]

शिरोमणि दास - दो शिरोसणि नामधारी कवि पहले हो चुके हैं। शिरोमणि मिश्र ने सं० १६७५ में 'जसवंत विलास' की रचना की थी। दूसरे शिरोमणि दास १७वीं शती के अंतिम चरण में विद्यमान थे और उनका शाहजहाँ के दरबार में अच्छा सम्मान था।

प्रस्तुत शिरोमणिदास साधु गंगादास के शिष्य थे। ऐसा प्रतीत होता है कि ये जैन धर्म में निष्ठा रखते थे और भट्टारक सकलकीर्ति से प्रभावित थे। उन्हीं की प्रेरणा से इन्होंने सिगरौल में 'धर्मसार' नामक ग्रंथ की रचना की थी। उस समय वहाँ राजा देवीसिंह का

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई--जैन गुर्जर कवियो, भाग ३, पृ० १४६८ (प्र०सं०) और भाग ५, पृ० ३५६-३५७ (न० सं०)।
२. वही, भाग ३, पृ० २१७८-७९ (प्र०सं०)।
३. डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल—राजस्थान के जैन शास्त्र भंडारों की ग्रंथ-सूची, भाग ४, पृ० १६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शासन था। नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट[1] में धर्मसार की समाप्ति आगरा में बताई गई है। इसमें सकलकीर्ति के प्रभाव का उल्लेख भी नहीं है। अपने दूसरे ग्रंथ 'सिद्धांत शिरोमणि' में उन्होंने जैनधर्म के दोनों सम्प्रदायों—दिगंबर और श्वेतांबर को खूब खरीखोटी सुनाई है, पर यह जैनमत की अस्वीकृति का आधार नहीं बनता। कबीर दोनों धर्मों—हिन्दू, मुसलमान को खरीखोटी सुनाते रहे पर वे धर्म विहीन व्यक्ति नहीं थे। इनकी रचनायें सम्यक्त्व प्रधान हैं। इन्हें बनारसीदास के अध्यात्मवादी परिवार में परिगणित किया जा सकता है। ये आगरा के रहने वाले थे और आगरा इस परिवार का केन्द्र था। इनकी दोनों कृतियों का परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

सिद्धांत शिरोमणि—मध्यकाल में धर्म के नाम पर बढ़ते शिथिलाचार का कुप्रभाव जैनों पर भी पड़ा था। शिरोमणिदास इसके लिए दोनों सम्प्रदायों के अनुयायियों को कबीर की शैली में फटकारते हैं और धर्माडंबर का विरोध करते हुए लिखते हैं—

नहीं दिगंबर नहीं शेतधार,
ये जती नहीं भव भमैं अपार,
यह सुन कै कछु लीजै सार,
उतरै चाहौ जो भव के पार।
सिद्धांत शिरोमणि सास्त्र को नाम,
कीनौ समकित राखिबे कै काम।
जो कोउ पढ़ै सुने नरनारि,
समकित लहै सुद्ध अपार।

धर्मसार (सं० १७३२ वैशाख शुक्ल ३) का रचनाकाल इन पंक्तियों में है--

संवत १७३२ वैशाख मास उज्ज्वल पुनि दीस,
तृतीय अक्षय शनौ समेत, भविजन को मंगल सुखदेव।

एकाध प्रतियों में पाठांतर है और रचनाकाल सं० १७५१ बताया गया है, यथा—

---

१. नागरी प्रचारिणी सभा काशी की १५वीं त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट, विवरण संख्या २००।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संवत सत्रै से इक्यावना, नगर आगरे मांहि,
भादो सुदि सुख दूज को, बाल ख्याल प्रगटाय।[1]

किन्तु नाथू राम प्रेमी सं० १७३२ को ही सही रचना-तिथि बताते हैं।[2] उन्होंने यह सूचना जैन मंदिर कठवारी, रुनकता, आगरा की प्रति के आधार पर दी है। हो सकता है कि सं० १७५१ प्रति का लेखनकाल हो, मूल रचना सं० १७३२ की हो।

धर्मसार में कुल दोहा-चौपाई छन्दों की संख्या ७६३ है। उसका एक पद्य भी नमूने के तौर पर यहाँ दिया जा रहा है--

वीर जिनेसर प्रनवौं देव, इन्द्र नरेन्द्र करै तुव सेव;
और वंदों हूँ गुरु जिन पाय, सुमिरत जिनके पाप नसाय।[3]

ये पंक्तियाँ ललकारकर शिरोमणिदास को जैन साधु घोषित कर रही हैं। वे सुधारवादी जैन साधु थे और उनकी रचनाओं का स्वर कबीर की तरह फक्कड़ाना है।

शिवदास - (चारण) इनकी एक वचनिका उपलब्ध है जिसका नाम है--'अचलदास भोजावत री गुण वचनिका', यह रचना सं० १७९५ से पूर्व की है। इसमें अचलदास भोजावत का गुणगान चारण शैली में किया गया है। अचलदास बादशाह के साथ युद्ध करते हुए वीरगति को प्राप्त हुए थे। चारण शिवदास कहते हैं कि वीरगति प्राप्त अचलदास के लिए विश्वकर्मा ने विष्णुपुरी; इंद्रपुरी और ब्रह्मपुरी के बीच अचलपुरी का निर्माण किया और वहाँ अचलेसर जी को सिंहासनस्थ किया। इसका वर्णन गद्य वार्त्ता में इस प्रकार किया गया है--

धन धन राजा अचलेसर भोजुनया,
महाराज जी विश्वक्रमा बोलाया, विश्वक्रमा जी आया,
विश्वक्रमा जी विसनपुरी इन्द्र की इन्द्रपुरी, ब्रह्मा की
ब्रह्मपुरी विचै अचलपुरी बसायो अेक अधखण माहे ऊपावो,
राजा अचलेसर जी नै पाट धरावो।

---

१. नागरी प्रचारिणी सभा काशी की १५वीं त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट, विवरण संख्या २२०।

२. श्री नाथूराम प्रेमी--हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास, १९१७ ई०, पृ० ६७

३. डा० प्रेमसागर जैन--हिन्दी जैन भक्तिकाव्य और कवि, पृ० २७६-२७८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यहाँ पाट शब्द द्रष्टव्य है। हिन्दी कथा कहानियों में राजाओं के राजपाट की बात चलती है। इसी पाट को विशिष्ट अर्थ देते हुए जैन परंपरा में 'पाट' का अर्थ पट्टधर की 'गादी' किया गया है। अचलदास की वीरता का पद्यबद्ध वर्णन देखिये--

गढ खांड पडंती गागिरण दिढ देखे सुरतांण दल;
संसार नाम आतम सरग अचले बे कीधा अचल।

गद्य में मंगलाचरण किया गया है और सरस्वती की वन्दना है, यथा--

'' चरणं वेणां पुस्तक धारिणी कासमीर गिरकंदरे वसती गीतनाद गुण गुणगाह दैयण देव कवीयणां दायन।' गद्यरूप (१८वीं शती) का परिचय देने के लिए ही ऐसी रचनाओं का उल्लेख कर दिया गया है।

शील विजय - तपागच्छीय शिवविजय आपके गुरु थे। आपने सं० १७४६ में 'तीर्थमाला' की रचना चार खण्डों में पूर्ण की। इसका आदि--

अरिहंत देव नमु' सदा, जस सेवि गुरुराय;
तीर्थमाला थुणस्यु मुंदा, सद्गुरु तणी पसाय।
अरिहंत मुख कंज वासिनी वाणी वर्ण विलास,
कविजन माता विनवुं, पूरो मुझ मन आस।

इसके प्रथम खण्ड में पश्चिम प्रदेश में स्थित कई तीर्थों का वर्णन है। साथ ही कुम्भाराणा के प्रधान प्रागवंशी धरणीसाह की विमलाचल संघयात्रा का भी वर्णन है। इसी प्रकार इसके अन्य खण्डों में विविध तीर्थों और संघयात्राओं का सोत्साह वर्णन किया गया है। पूर्व देश की यात्रा का वर्णन द्वितीय खण्ड में दक्षिण देश की यात्रा और तीर्थों का वर्णन तृतीय खण्ड में तथा उत्तर दिशा की संघ यात्राओं और तीर्थों का वर्णन चतुर्थ खण्ड में मुख्य रूप से किया गया है। उत्तर दिशा में स्थित केदार, कुरुक्षेत्र, हरद्वार जैसे जैनेतर तीर्थों की भी चर्चा है। प्रथम खण्ड के अन्त में कलश है उसी में रचनाकाल इस प्रकार दिखाया गया है--

१. मोहनलाल दलीचंद देसाई--जैन गुर्जर कवियो, भाग ३, पृ० २१८१-८२ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इम अनेक तीरथ अछि समरथ पछिम दिसि सोहामणां,
जय जयकारक शिवसुख कारक, त्रिभुवन नायक जिन तणां।
संवत ससी मुनि वेद रस आसो मासि अभिनवी;
बुध शिव विजय शिष शील, सेवी वदि आणंद विनवी।

इस रचना के चौथे खण्ड का अंतिम हिस्सा-कलश-उद्धृत करके यह विवरण समाप्त किया जा रहा है।

कलश—

इह चार दिग वधू कंठि राजि तीरथ मणीमय माल अे,
जस दरिस परिमल लहिं निरमल भविक वृन्द रसाल अे।
बुध शिवविजय शिष शीलविजइ अखय आणंद अति घणुं,
कर विमल जोडी कुमति छोडी कर्युं तवन सोहामणुं।[1]

यह 'तीर्थमाला' प्राचीन तीर्थमाला संग्रह के पृष्ठ १०१ से १३१ पर प्रकाशित हो चुकी है।

शुभचन्द्र—जैन साहित्य में यह बड़ा परिचित नाम है क्योंकि इस नाम के कई भट्टारक, मुनि-साधु लेखक और कवि हो गये हैं। भट्टारक सम्प्रदाय के चार शुभचन्द्र अलग-अलग शताब्दियों में हो गये हैं। प्रथम शुभचन्द्र १६वीं में थे और कमलकीर्ति के शिष्य थे। दूसरे भी १६वी शती के ही साधु थे और पद्मनंदि के शिष्य थे। १७वीं में भी इसी प्रकार दो शुभचन्द्र हुए— एक विजयकीर्ति के शिष्य और दूसरे हर्षचन्द के शिष्य थे।

१८वीं शताब्दी में भी एक साहित्यिक अभिरुचि संपन्न एक शुभचन्द्र हुए जो भट्टारक रत्नकीर्ति 7 भ० कुमुदचन्द्र 7 भट्टारक अभयचन्द्र के शिष्य थे। अभयचन्द की भट्टारक गादी पर शुभचन्द सं० १७२१ ज्येष्ठ कृष्ण प्रतिपदा को पोरबंदर में प्रतिष्ठित हुए थे। इनकी सांस्कृतिक-साहित्यिक क्रियाकलापों में बड़ी रुचि थी। इनके पिता गुजरात के जलसेन नगर निवासी और हूबड़ जाति के श्रावक थे। उनकी पत्नी माणिक दे की कुक्षि से नवलराम नामक बालक उत्पन्न हुआ जो बाद में अभयचन्द से दीक्षित होकर भट्टारक शुभचंद्र के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० ३७४-३७८ (प्र०सं०) और भाग ५ पृ० ५५-५८ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इनके अनेक सरस भक्तिपूर्ण पद प्राप्त हैं, यथा–'पेखो सखी चन्द्र सम मुखचंद्र' अथवा 'आदि पुरुष भजो आदि जिणंद ।' 'कौन सखी सुध ल्यावे श्याम की' शीर्षक पद में नेमिराजुल का मार्मिक प्रसंग अंकित है, वह पद उद्धृत किया जा रहा है ताकि पाठक इनकी सर्जन क्षमता का अनुमान कर सकें--

कौन सखी सुध ल्यावे श्याम की ।
मधुरी धुनि मुख चंद विराजित, राजमति गुण गावे;
अंग विभूषण मणिमय मेरे, मनोहर मान नी पावे ।
करो कछू तंत मंत मेरी सजनी, मोहि प्राननाथ मिलावे ।

यह पद कृष्ण भक्ति शाखा के सशक्त कवि सूरदास जैसा प्रतीत होता है और मरुगुर्जर साहित्य के विशाल रेगिस्तान में यत्र तत्र ऐसे नखलिस्तान सहृदयों के उदास मन को जीवंत और हराभरा कर देते हैं । जैन साहित्य में ऐसे हरेभरे नाना रूप रंगों से विभूषित साहित्यिक स्थल सर्वत्र हैं पर वे अभी भी पाठकों की दृष्टि से ओझल हैं क्योंकि उनका प्रकाशन नहीं हुआ । जो प्रकाशित रचनायें हैं उनमें अधिकतर सिद्धान्त प्रवचन और साम्प्रदायिक दृष्टान्त कथन ही अधिक हैं ।

इनकी कोई बड़ी कृति अब तक प्राप्त नहीं है, सम्भवतः आगे किसी शास्त्र भण्डार से कोई रचना प्राप्त हो जाय; न भी मिलें तो इनके पद इन्हें साहित्य में अमर रखने के लिए पर्याप्त हैं । ये सं० १७४५ तक भट्टारक रहे, इसलिए ये सभी पद इसी काल से पूर्व के हैं । इनके सभी पद जिनभक्ति से रससिक्त हैं । 'जपो जिन पार्श्वनाथ भवतार' आदि विशेष रूप से पठनीय हैं ।[1]

मुनिशुभचंद्र—आप भट्टारक जगत्कीर्ति संघ के साधु थे । ये हड़ौती प्रदेश के कुजड़पुर स्थित चंद्रप्रभ चैत्यालय में रहते थे और वहीं सं० १७५५ में इन्होंने 'होली कथा' की रचना की जिसे भाषा प्रयोग की दृष्टि से अच्छी रचना बताया गया है । डा० कासलीवाल ने अपनी इस धारणा को प्रमाणित करने के लिए कोई उद्धरण इस रचना से नहीं दिया और न कोई विवरण उपलब्ध हो सका कि यह पद्यबद्ध या गद्यकथा है ?

---

१. डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल—राजस्थान के जैन संत, पृ० १६०-१६४ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शुभविजय—तपागच्छीय पुण्यविजय आपके प्रगुरु और लक्ष्मीविजय गुरु थे। इन्होंने सं० १७१३ आसो शुक्ल ५, बुधवार को संखेटकपुर में 'गजसिंह राजा रास' लिखा। रचनाकाल का इस प्रकार उल्लेख किया गया है—

संवत ससि सायर मेरु वह्नि अे संवच्छर जांणो जी,
आश्विन सित पंचमी बुधवारइ अनुराध रिष बखाणो जी।

गुरुपरम्परा एवं अन्य आवश्यक सूचनायें निम्नलिखित पंक्तियों में हैं—

पंडित सकल शिरोमणि सुन्दर, पुन्यविजय गुरुराय जी,
लक्ष्मीविजय पंडित वर केरो, सकल संघ नमि पाय जी।
संषेटकपुर रही चोमासु, श्री गजसिंघ गुणगाया जी।
सरस संबंध अे रास जांणिनीं, रचियो मन उल्लास जी।
शुभविजय कहि सकल संघनी, नित नित फलज्यो आस जी।[1]

श्रीदेव—आप ज्ञानचन्द के शिष्य थे। आपने अनेक रचनायें की हैं, उनका परिचय आगे प्रस्तुत है—

'थावच्चा मुनि संधि' (सं० १७४९ माघ शुक्ल ७, जैसलमेर)

इसे श्रीदेव ने अपने शिष्य कल्याण की सहायता से पूर्ण की थी। 'नाग श्री चोपाई' का आदि—

स्नान करी शुधोदकइ, वइस रसोडइ तेह,
भाई तिने एकण, जीमै धरता नेह।

अन्त- आया अवासे आपणो, विलसइ ते वंछित भोग,
श्री देव कहे भद्र श्री धर्म थी, संपजइ सुख संजोग।

साधु वन्दना—

पाँच भरत पाँच ईखइ जांण, पाँच महाविदेह बखांण,
जे अनंत हुवा अरिहंत, ते प्रणमु कर जोड़ि संत।

अन्त (कलश)—

चौवीश जिनवर प्रथम गणधर चक्र हलधर जे हुवा;
संसार तारक केवली वली श्रमण श्रमणी संजुया।

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० १७९-१८० (प्र०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संवेग श्रुतधर साधु सुखकर आगम वयणे जे सुण्या,
ज्ञानचंद गुरु सुपसाय थी, श्री देव मुनि ते संथुण्या ।[1]

इन बड़ी कृतियों के अलावा श्रीदेव ने, राजलगीत, राजिमति रहनेमि संञ्झाय, धन्ना माता संवाद, धन्ना संञ्झाय, मेघकुमार सं० आदि कई सरस और भावपूर्ण छोटी रचनाएँ भी की हैं। उनकी मार्मिकता और भाषा सामर्थ्य का अनुमान आगे दिए उद्धरणों से मिलेगा। राजिमति रहनेमि संञ्झाय (७ कड़ी) में राजुल अपने देवर रथनेमि को संबोधित करके कहती है—

देवर दूरि खड़ा रहो, तेरा दिल फिरेगा,
तेरा सीयल हटैगा, तो पापे पिंड भरेगा, देवर।
झिरमर झिरमर मेंह बरसइ तिणि थया घोर अंधेरा,
राजिमती रहनेमी दोनुं एक गुफा उत्तारा दे।

इसकी भाषा में खड़ी बोली हिन्दी का प्रारम्भिक प्रयोग दिखाई दे रहा है। इसके अन्त में कवि कहता है—

साधो संयम पाली दोनु पावइं मोखि विशाला,
कहे श्रीदेव सदा मुझ होज्यो वंदन वेग त्रिकाला।

इसी प्रकार 'राजलगीत' (आठ कड़ी) भी छोटी किन्तु सरस कविता है। इसकी प्रारंभिक पंक्तियाँ आगे प्रस्तुत हैं—

गोरव चड़ी राजल इम आखे,
दरद हृदय अवधारी रे,
कइसइ करि राखु मन मन मारी,
छयल छबीले छत्र हुतइ सो छाड़ी चले निहारी।

समुद्रविजय शिवादेवीय नंदन स्याम शरीर के धारी रे,
नवभव के नेमीश्वर प्यारे तबही की मे प्यारी रे।

धन्नामातासंवाद (११ कड़ी) इसमें धन्ना को जब वैराग्य हो गया तब वह माता से आदेश मांगता है—

जिनवचने वइरागीयो हो मे हो
धन्ना मांगे मात आदेश।

---

१. मोहनलाल दलीचंद देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० ७५-७६ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुत्र से माता का यह संवाद बड़ा मार्मिक है, नमूने के लिए एक पंक्ति देखें—

तुं मुझ प्यारा प्राण थी हो धन्ना हुं तुझ जा न परदेस ।[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रीदेव एक समर्थ कवि और सच्चे साधु थे ।

श्रीपति--आपकी एक रचना 'रत्नपाल रास' सं० १७३० का उल्लेख तो मिलता है किन्तु विवरण-उद्धरण नहीं मिले ।[2]

श्रीसोम--ये युगप्रधान जिनचंद्र सूरि>उपा० धर्मनिधान> समयकीर्ति के शिष्य थे । इन्होंने सं० १७२५ में 'भुवनानंद चौपाई' (१३ ढाल) की रचना असनीकोट में की ।[3]

इसमें शील का महत्व भुवनानंद के चरित्र के दृष्टांत से समझाया गया है, यथा—

दान तपस्या भावना, मोटा छइ जगमांहि,
सील समो जगि को नही, पाणी पावके थाहि ।

रचनाकाल--

सत्तरइ सइ पचवीस संवत्सरइ, असणीकोट मझारि,
मगसिर वदि पंचमि शुक्रवासरइ, पुरइ कीधउं अधिकार ।

इसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ भी आगे दी जा रही हैं--

चउवीसे जिनवर चरण, रिद्धि सिद्धि करतार,
नमता नवनिधि संपजे, निरमल थइ मतिसार ।
गुण गिरुआ गुरु जण नमूं, ज्ञानदृष्टि दातार,
मूरख थी पंडित करइ, आणी मनि उपगार ।

श्री मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने इसे पहले तो समयकीर्ति की रचना बताया था । किन्तु बाद में उसे सुधार कर श्री सोम की रचना

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई--जैन गुर्जर कवियो, भाग ३, पृ० १३४६ (प्र०सं०) और भाग ५, पृ० ४०८-४११ (न०सं०) ।

२. अगरचन्द नाहटा—परंपरा, पृ० १०८ ।

३. अगरचन्द नाहटा—परंपरा, पृ० १०५ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कहा है।[1]

संतोषविजय--(संतोषी) आप तपागच्छीय विजयदेवसूरि के शिष्य थे। आपने सं० १७०१ के लगभग 'सीमंधर स्तवन' नामक ४० कड़ी की रचना की है। इसका आदि इस प्रकार है--

सुणि सुणि सरसती भगवति, ताहरी जगत विख्यात,
कवि जननी कीरति वधे, तिम तूं करजे मात।
मंदिर स्वामि विदेह मां, वेठां करे वषांण,
वंदना माहरि तिहां जइ, कहेज्यो चंदा भाण।

इसकी अंतिम पंक्तियाँ भी नीचे उद्धृत की जा रही हैं--

श्री तपगछ नो नायक सुंदर श्री विजयदेव पटोधारी रे,
कीरति जेहनी जग मां झाझी, बोले नर ने नारी रे।
श्री गुरु वयण सुणी बुद्धि सारु, सीमंधर जिन गायो,
संतोषी कहे देव गुरु धर्म पूरब पुन्ये पायो रे।[2]

यह रचना चैत्य आदि संज्झाय भाग ३, पृ० ४२८ पर प्रकाशित है।

संघसोम--ये तपागच्छ के सूरि श्री विशालसोम के शिष्य थे। इनकी एक 'चौबीसी' प्राप्त है। यह चौबीसी सं० १७०३ भाद्र शुक्ल चतुर्थी को लिखी गई थी। रचनाकाल कवि ने इन पंक्तियों में प्रकट किया है--

संवत सत्तर त्रिडोत्तरा शुभ मास,
भाद्रवा सुदि चउथी तवीय वीर उल्हास।
कवि संघसोम कहइ पहुंचाडूँ मन आस,
आ भवि परभवि मुझ दीऊ तुम्हां चरणेइ वास।

इसके आदि और अन्त की पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं--

आदि-- सरसती पय प्रणमुं, मांगु वचन विलास,
गुण गावा जिनना मुझ मन अधिक उल्लास।

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई-जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० २२८ और भाग ३, पृ० १२३४ (प्र०सं०)।

२. वही भाग ३, पृ० ३२०-२१ (प्र०सं०) और भाग ४, पृ० ६५-६६ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्त-- तपगछपती दीपइं श्री विशाल सोम सूरिंद,
अहनिस ध्यान पांमइ परिमाणंद।[1]

संघरुचि—तपागच्छीय हर्षरुचि आपके गुरु थे। आपने सं० १७१२ में ३२ कड़ी की एक रचना 'पार्श्वनाथ नो छंद' नाम से की। इसका रचनाकाल इन पंक्तियों में बताया गया है--

रवि मुनि शशि संवच्छर रंगे जयदेव सूर मां सुख संगे,
जय शंखपुराभिध पार्श्वप्रभो, सकलार्थ समीहित देहि विभो।
बुध हर्षरुचि विजयाय मुदा, तप लब्धि रुचि सुखदाय सदा।

आदि— जय जय जगनायक पार्श्व जिन,
प्रणताखिल मानव देव गतं,
जिन शासन मंडन स्वामि जयो,
तुम दरसिन देखि आनंद भवो।

इसकी अंतिम पंक्तियाँ निम्नांकित हैं--

गुर्जर जन पद मांहे राजे, त्रिभुवन ठकुराइ तुम छाजे,
इम भाव भले जिनवर गायो, बामासुत देखि बहु सुख पायो।[2]

सकलचंद्र—गुरुपरम्परा अज्ञात है। इनकी एक रचना का केवल नामोल्लेख श्री देसाई ने किया है, वह है 'सुरपाल रास'[3] यह रचना सं० १७१७ की है। अन्य विवरण नहीं दिया है।

सकलकीर्ति शिष्य—पता नहीं ये 'सुरपाल रास' के कर्त्ता सकलकीर्ति हैं या कोई अन्य। उनके शिष्य का नाम भी अज्ञात है। इनकी रचना ज्ञात है 'बार आरा नी चौपाई'; यह २११ कड़ी की रचना है और सं० १७३४ से पूर्व की रचित है। इसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ इस प्रकार है--

---

१. मोहनलाल दलीचंद देसाई--जैन गुर्जर कवियो, भाग ३, पृ० ११३९ (प्र०सं०) और भाग ४, पृ० ७८-७९ (न०सं०)।

२. वही भाग २, पृ० १५० (प्र०सं०)।

३. वही भाग ३, पृ० १२१२ (प्र०सं०) और भाग ४, पृ० २८४ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदि— जिनगुरु वाणीय करीअ प्रणाम,
जांणइ तुठि बुद्धि हुइ सुमान।
कालद्वार नी परि तुह्मि सुणु,
जिनवाणी तु निश्चइं करु।
सुखम सुखम जे पहिलु काल,
च्यार कोडा कोडि सागर धार।
त्रिणी पल्य जीवी तसु होई,
त्रिणि गाउ ऊचो देह जोई।

अन्त— आगम शास्त्र थिका मइ कहा,
निपुण निरंतर भणज्यो सहा।
भणतां सुणतां पुण्य अपार,
धरम तणु निश्चे हुइ सार।
पंचम गुरु प्रणमूं नित करुं सेव,
जिनवर वाणीमात नमेवि।
श्री सकलकीरति गुरु प्रणमुं सार,
भणतां गुणतां पुण्य अपार।[1]

सभाचंद—खरतरगच्छीय वेंगड़शाखा जिनचंदसूरि>पद्मचन्द 7 धर्मचन्द के शिष्य थे। इन्होंने 'ज्ञान सुखड़ी' की रचना सं० १७६७ फाल्गुन शुक्ल सप्तमी, रविवार को थट्टा में पूर्ण की।

आदि— श्री गुरु ज्ञानी सुं कह्यो, आगम अर्थ विचार,
भाव भगति सौं संग्रहो, ग्यांन सूखड़ी सार।

रचनाकाल--

संवत सतर सतसठै, आसनि आदितवार;
सित फागुन फुनि सप्तमी, आनंद योग संभार।

रचना स्थान—

थट्टा नगर बखाणीयै, श्रावक चतुर सुजांण,
सभाचन्द सोहे भलो, कुसल वरण कल्याण।

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई–जैन गुर्जर कवियो, भाग ३, पृ० १२३९-४० (प्र०सं०) और भाग ५, पृ० ४ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुरु परंपरा--

वेगड़ विरुद बखान गछ खरतर गच्छ नी साख,
श्री जिनचंद स्वसूरीश्वरी, परमचंद गुरु भाख।
धर्मचंद नित ध्याइये, ग्यानसूखड़ी ग्रंथ,
तसु प्रसाद कज्यं लहुं, मुक्त महिल को पंथ।[1]

सत्यसागर—ये तपागच्छीय विनीतसागर के प्रशिष्य और रत्नसागर के शिष्य थे। इनकी रचना 'वछराज रास' सं० १७९९ में सूरत के चौमासे में पूर्ण हुई थी। यह कृति शांतिनाथ चरित्र पर आधारित है। इसमें वछराज की कथा दी गई है—

शांतिनाथ चरित्र थी, रच्यो अे रास रसाल,
वछराज नरपति तणो, अनुपम-गुणगणमाल।

इसमें हीरविजय सूरि और सम्राट् अकबर के भेंट की चर्चा है–

अकबर साह असुर प्रतिबोधी, जैन निसाण बजाया।

तत्पश्चात् विजयसेन, विजयदेव, विजयप्रभ, विजयरतन, विजयक्षमा, विजयदया, लक्ष्मीसागर, विद्यासागर, आणंदविमल, सहजविनय, प्रीतिज्ञान, विनीतसागर और रत्नसागर तथा उनके गुरुभाई धीर भोज सुरज और जयंत का ससम्मान स्मरण किया गया है। रचनाकाल से संबंधित पंक्तियां आगे उद्धृत कर रहा हूँ–

संवत सतर से निन्नाणुजी, सूरति सहर चोमासु जी,
श्री पूज्य जी प्रभु आप विराज्या तेहों ने रहीया पासे जी।

इसे कवि ने श्रावक लाघो जी के आग्रह पर लिखा था—

साह लाघो जी विनय विवेक, सगली बात सनूरो जी,
तेह तणां आग्रह थी कीधो, वच्छराज नृप रास जी।

इसकी अन्तिम पंक्तियाँ निम्नांकित हैं–

सुगुरु रत्नसागर सुपसाये, रास रच्यो सुविशाल जी,
सत्यसागर कहे सकल संघ ने, थाज्यो मंगलमाल जी।[2]

---

१. मोहनलाल दलीचंद देसाई–जैन गुर्जर कवियो, भाग ३, पृ० १६३८-३९ (प्र०सं०) और भाग ५, पृ० ३६६ (प्र०सं०)।

२. वही, भाग २, पृ० ५८८-५८९; भाग ३, पृ० १४७१ (प्र०सं०) और भाग ५, पृ० ३६९-३७०(न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समयनिधान—आप खरतरगच्छ के प्रसिद्ध विद्वान् समयसुंदर > हर्षनंदन > जयकीर्ति > राजसोम के शिष्य थे। इन्होंने 'सुसढ़ चौपाई' सं० १७३१ या ३७ में लिखी। 'संवत सतरै सैतीस' और संवत सतरै अेकतीस' दोनों पाठ उपलब्ध होते हैं। यह रचना अकबराबाद में आलमगीर के समय हुई थी, यथा—

रिधू (धूरि) तले तसु राजमइ रे, संवत सतरै सैंतीस (अथवा)
संवत सतरै अेकतीस।
अकबराबाद कीधी अम्हे रे, आलमगीर अधीस।[1]

पहले देसाई ने इस कृति का कर्त्ता समयसुन्दर को बताया था बाद में सुधार कर लिया और समयनिधान को कर्त्ता कहा। इसके अन्त में वही गुरुपरम्परा वर्णित है जो पहले दी गई है। इसमें लेखक ने अपने शिष्य मुरारी का भी उल्लेख किया है, इसमें भी यह कृति समयनिधान की ही प्रमाणित होती है क्योंकि समयसुन्दर के किसी मुरारी नामक शिष्य का उल्लेख ज्ञात नहीं है। उसी के आग्रह पर यह रचना हुई, यथा–

सुसढ़ तणी अति सुंदरु रे, मुझ शिष्य नाम मुरारी,
तेहनै करि देवो तुम्हे रे, अरज अेह अवधारी।[2]

अगरचन्द नाहटा ने भी इसे समयसुन्दर की परंपरा में राजसोम का शिष्य बताया है और इनकी 'सुसढ़ चौपाई' का उल्लेख किया है। उन्होंने इसका रचनाकाल सं० १७३१ और रचना स्थान अकबराबाद बताया है।[3]

समयमाणिक्य—सागरचन्द्र सूरि शाखा के साधु मतिरत्न इनके गुरु थे। इनका जन्म नाम समर्थ था और दीक्षा नाम समयमाणिक्य। इन्होंने दोनों नामों से रचनायें की हैं। इन्होंने मत्स्योदर चौपाई सं० १७३२ नागौर, मल्लीनाथ पंचकल्याणक स्तवन सं० १७३६ सकी ग्राम, बावनी और रसमंजरी आदि रचनायें की हैं।[4] रसमंजरी की रचना

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग १, पृ० ३७० और भाग ३, पृ० १२७७-७८ (प्र०सं०)।
२. वही भाग ४, पृ० ४५२-४५३ (न०सं०)।
३. अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० ११०।
४. वही, परंपरा पृ० १०८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन्होंने समर्थ नाम से की है। इस रचना की भाषा शुद्ध हिन्दी है। इन्होंने 'रसिक प्रिया' की वृत्ति संस्कृत में लिखी है। इससे अनुमान होता है कि ये मरुगुर्जर हिन्दी और संस्कृत भाषा में सुविज्ञ थे। इनकी अन्य रचनाओं का विवरण-उदाहरण नहीं उपलब्ध हो सका पर रसमंजरी का विवरण देसाई के आधार पर प्रस्तुत किया जा रहा है। यह वैद्यक का ग्रंथ है। इसकी रचना सं० १७६५ फाल्गुन ५ रविवार को देरा ग्राम हुई थी, यथा–

संवत सतरै सै पैंसठ समे,
फागुण मास-मन रमै,
पंचमी तिथि अरु आदित वार,
कीयो ग्रंथ देरै मझारि।
श्री मनिरतन गुरु परसाद,
भाषा सरल करी अति स्वाद'
ताको शिष्य समर्थ है नाम,
तिस करी यह भाषा अभिराम।

यह रचना किसी बनवाली के आग्रह पर लिखी गई थी, यथा–

रसमञ्जरी तौ रससेती भरी, पढ़ौ गुणहु आदर करी,
बनवाली को आग्रह पाई, कीयो ग्रंथ मूरख समझाई।[1]

समयमाणिक्य ने यह रचना सम्भवतः किसी पूर्व ग्रन्थ के आधार पर भाषांतरित की थी। वे उस समय तक दीक्षित हो चुके थे पर रचना में अपना जन्म नाम-समर्थ ही उन्होंने दिया है।

समयहर्ष – ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में इनका एक गीत 'सुखसागर गीतम्' शीर्षक से उपलब्ध है। इससे इनका कवि होना प्रमाणित होता है किन्तु इनकी जीवनी और गुरुपरंपरा ज्ञात नहीं है। इसमें कुल ६ सवैये हैं। कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं–

वाचनाचार्य सुखसागर वंदियै,
सुगुण सोभाग जसु जगि सवायो,
अंग उच्छरंग धरि नारिनर नित नमै,
कठिन किरिया करेण ऋषि कहायो।

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई–जैन गुर्जर कवियो, भाग ३, पृ० १२५५-५६ (प्र०सं) भाग ५, पृ० २३० (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसकी अन्तिम कुछ पंक्तियाँ दे रहा हूँ–

संघ सुखदायक मनलाय सुखसागरा,
नागरा नित नमइ सीस नामी।
गणि समयहर्ष नित सुगुरु गुण गावता,
सिद्धि नव निद्धि बहु बुद्धि पामी।[1]

सिद्धितिलक –ये सिद्धिविलास के शिष्य थे। इन्होंने सं० १७७० जैसलमेर में एक 'चौबीसी' लिखी जिसमें २५ छन्द (स्तवन) हैं। ये सिद्धि विलास कौन थे, यह निश्चित नहीं है।[2] एक सिद्धिविलास जिनसागर सूरि शाखा में हो गये हैं। उन्होंने भी 'चौबीसी' बनाई है। ये सिद्धितिलक के गुरु हो सकते हैं पर इनकी चौबीसी सिद्धितिलक कृत चौबीसी के बाद की रचना है अर्थात् सं० १७९६ की रचना है, इसलिए कुछ शंका होती है, यह १७९६ माघशुक्ल १० की रचना है।

कीर्तिविजय कृत गोड़ी प्रभु गीत की पुष्पिका में सिद्धिवर्द्धन का इन्हें शिष्य कहा गया है। देसाई ने इनकी चौबीसी का कर्त्ता पहले गुण विलास को बताया है, लेकिन यह भूल थी। उक्त चौबीसी के कर्त्ता सिद्धिविलास हैं, यह फिर भी निश्चित नहीं है कि यही सिद्धविलास सिद्धतिलक के गुरु थे।

सिद्धिविजय -आप तपागच्छीय हीरविजय>शुभविजय>भाव-विजय के शिष्य थे। इन्होंने (निगोद दुख गर्भित) सीमंधर जिन स्तवन (१०६ कड़ी) सं० १७१३ शुचिमास शुक्ल ७, शुक्रवार को तपरवाड़ा में पूर्ण किया। इसकी आरंभिक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं–

अनंत चउबीसी जिन नमुं, सिद्ध अनंती कोडि,
केवलनाणी थिवर सवि, वंदु बे कर जोडि।

यह स्तवन कवि ने वडली निवासी गेल्हाकुल दीपक अमीचंद के निमित्त रचा था। रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है–

---

१. ऐतिहासिक जैन काव्यसंग्रह।
२. अगरचन्द नाहटा––परंपरा पृ० ११०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संवत सत्तर सिं तेरोत्तर शुभ (सुचि) मास,
सुदि सातम शुक्रि स्वाति योग सुभ तास,
सूरि विजयप्रभ राजइ चित्त उल्लास,
तपरवाडा मांहि थुणियो रही चउमास।[१]

इसके कलश में उपर्युक्त गुरु परम्परा बताई गई है। यह रचना प्रकरणादि विचार गर्भित स्तवन संग्रह और जिनगुण पद्मावली में प्रकाशित है। देसाई ने भ्रमवश इसे अमीचंद की ही रचना बताया था किन्तु बाद में भूल सुधार कर दिया था।[२] इनकी एक और कृति महावीर स्तवन सं० १७१३ का भी उल्लेख मिलता है पर विवरण अनुपलब्ध है।

स्थिरहर्ष--खरतरगच्छीय सागरचंद्र शाखान्तर्गत समयकलश > श्रीधर्म > मुनिमेरु आपके गुरु थे। आपने सं० १७०८ फाल्गुन शुक्ल पंचमी को 'पद्मारथ चौपाई'[३] की रचना की है। यह रचना स्थिरहर्ष ने शेरगढ़ में की थी।[४] इस कृति का उद्धरण उपलब्ध नहीं है।

सिंह- आप कनकप्रिय के शिष्य थे। इनकी गच्छ परम्परा अज्ञात है। सिंह ने सं० १७८१ में 'शालिभद्र सलोको'[५] (गाथा १४७) लिखा था। यह रत्नसागर संग्रह में प्रकाशित है। इसका भी उदाहरण अप्राप्त है।

सिंहविमल—इन्होंने 'अनाथी ऋषि स्वाध्याय' (१९ कड़ी) सं० १७६० से पूर्व लिखा था। इसका आदि और अन्त दिया जा रहा है-

---

१ मोहनलाल दलीचंद देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० १५२-१५३, भाग ३, पृ० १२००-०१ (प्र०सं०) और भाग ४, पृ० २५४-२५५ (न०सं०)।

२ वही

३. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग ३, पृ० ११४४ (प्र०सं०) और भाग ४, पृ० १६४ (न०सं०)।

४. अगरचन्द नाहटा—परंपरा, पृ० १०७।

५ मोहनलाल दलीचंद देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग ३, पृ० १४३९ (प्र०सं०) और भाग ५ पृ० ३३८ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदि -- मगध देश नी राज राजेसर हय गज-रथ-पखरियो,
श्रेणिक चेलणा देवी बालेसर रथ वाडी संचरीयो के, राजन;

अन्त-- अनाथी ऋषि चरित्र पाली कीधी शिवपुर वास;
सीहविमल कर जोड़ी बोले छोड़ बज्यो गर्भवास के। राजन।
ऋषिराय पंच महाव्रत धारी।[1]

सुखदेव--आपकी रचना 'वणिक निधि' व्यापार-वाणिज्य संबंधी महत्वपूर्ण विषय पर आधारित है। इसका रचनाकाल सं० १७६० और सं० १७१७ दोनों मिलता है। लेकिन डॉ० कासलीवाल ने रचनाकाल से सम्बन्धित जो पंक्तियाँ उद्धृत की है उनसे सं० १७१७ ही प्रमाणित होता है, रचनाकाल--

सत्रह सै सत्रह बरस संवत्सर के नाम,
कवि करता सुखदेव कह लेखक मायाराम।

इनके पिता का नाम विहारीदास था। सुखादेव गोला पूरब जाति के वैश्य थे। यह दोहे चौपाइयों में लिखी व्यापार विषयक अच्छी रचना है। इसकी भाषा साधारणतया प्रसादगुण सम्पन्न हिन्दी है। इसका प्रारम्भ इस प्रकार है-

गुरु गनेस कहै सुखदेव, श्री सुरसती बतायो भेव,
बनिक प्रिया बनिक बांचियो, दिया उजियार हाथ कै दयो।
गोला पूरब पचविसे वारि विहारीदास,
तिनके सुत सुखदेव कहि, बनिक प्रिया प्रकास।

ज्येष्ठ मास में वस्तु-व्यापार के बारे में उपयोगी सूचनायें निम्न पंक्तियों में दिया गया है --

ग्रीष्म ऋतु वरसै लछिमी, वचै वस्तु न आवै कमी,
यहि मति जौ न मान है कोई, वीधै सारै व्याज गये सोई।
जेठै वस्तु न धरिये धाइ, अपनै तोइ तौं वेचो जाइ,
साहु सम्हारै रहियौ बाकी, जल के वरसै दुलभ गहकी।

अन्त -- वनिक प्रिया मै सुभ असुभ सबही गयो बताइ,
जिहि जैसी नीकी लगै, वैसी कीजो जाइ।

---

१ मोहनलाल दलीचन्द देसाई--जैन गुर्जर कवियो, भाग ५, पृ० ४१६ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसमें प्रत्येक माह और मौसम में किए जाने वाले व्यापार के सम्बन्ध में उपयोगी सूचनायें दी गई हैं और व्यापारियों को क्रय-विक्रय का गुर बताया गया है, यथा–

बनिकनि को बनिक पिया, भउसारि कौ हेत,
आदि अंत श्रोता सुनो, मतो मंत्र सो देत।[1]

सुखलाभ--खरतरगच्छ की कीर्तिरत्नशाखा के प्रभावशाली विद्वान् सुमतिरंग आपके गुरु थे। आपने जयसेन राजा चौपाई[2] नामक रचना में (सं० १७४८ भाद्र कृष्ण ८, जैसलमेर) रात्रिभोजन त्याग व्रत का पालन करने के लिए राजा जयसेन की कथा को उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किया। इसका उद्धरण अनुपलब्ध है। यह रचना रामलाल संग्रह, बीकानेर में उपलब्ध है।

सुखविजय—आप दयाविजय के शिष्य थे। इनकी एक रचना 'जिन स्तवनों' उपलब्ध है। इसका आदि और अन्त दिया जा रहा है।

आदि— पूजो प्रथम जिनेसरु रे लो, आदिसर अरिहंत रंगीला;
प्रथम भिक्षाचर अे प्रभु रे लो, वंदो संमकितवंत रे।

अन्त— साहिब जी मुझ नइ दीउ रे, बोध बीज माहाराज,
दयाविजय कविराज नो रे, सुखविजय लहि सुखसाज।[3]

सुखरतन--आप कनकसोम के शिष्य थे। भुवनसोम आपके शिष्य थे। उनके शिष्य राजसागर ने आपको बड़ा चमत्कारी और प्रसिद्ध आचार्य बताया है। आपका स्वर्गवास हाजीखान डेरा में हुआ था। इस स्थान की यात्रा राजसागर ने सं० १७५९ में की थी और स्वयं उनके चमत्कारों की चर्चा वहाँ सुनी थी। सुखरतन ने 'श्री यशकुशल सुगुरु गीतम्'[4] लिखा है जो ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में प्रकाशित है।

---

१. सम्पादक डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल – राजस्थान के जैन शास्त्रभंडार की ग्रन्थसूची, भाग ३, पृ० १२१-१२२।
२. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग ३, पृ० १३४५ (प्र०सं०) और भाग ५, पृ० ७० (न०सं०)।
३. वही भाग ३, पृ० १५२९ (प्र०सं०) और भाग ५, पृ० ३७३ (न०सं०)।
४. ऐतिहासिक जैन काव्यसंग्रह–श्री यशकुशल सुगुरु गीतम्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसका प्रारम्भ इन पंक्तियों से हुआ है-

श्री यशकुशल मुनीसर ना गुण गावो तुम्ह सुखकारी,
सहुजन ने सुखसाता दायक, विघ्न विडारण हारी।

अन्त - महिर करीनइ दीजइ दरशन जो जइ सेवक सार,
सुखरतन कर जोड़ी नैं, भवि भवि तूं ही अधार।

सुखसागर I आप तपागच्छीय कल्याण सागर के प्रशिष्य और सुन्दरसागर के शिष्य थे। आपने अपनी रचना इन्द्रभानु प्रिया रत्नसुंदरी सती चौपाई (३२ ढाल सं० १७३२ भाद्रपद शुक्ल ८, बुधवार रेआंग्राम)[१] में सती के शील का माहात्म्य समझाया है। इसकी प्रारंभिक पंक्तियाँ निम्नांकित हैं—

श्री संषेसर पासजिन, पणमों पय अरविंद,
आससेन नृप कुलतिलो, वामा देवी नंद।

× × ×

जगदंबा जगदीश्वरी, त्रिण जग केरी माय,
बांकेराय विश्वेसरी, सेव्यां बहु सुख थाय।

× × ×

सद्‌गुरु चरण प्रसाद थी, गावुं सती गुणगान,
सरस कथा रतनसुंदरी, सुणो भई सावधान।

रचनाकाल–

संवत संज्यम गुण लेइजइ, नर लष्यण देइ जइ,
भादव सुदि अठमी बुधवारे, ग्रंथ रच्यो सुखकारे जी।[२]

गुरुपरम्परान्तर्गत इसमें तपागच्छ के विजयप्रभ, कल्याणसागर और सुन्दरसागर का वन्दन किया गया है। इसकी अन्तिम पंक्तियां इस प्रकार है–

दिन दिन पावें श्री की वेलि,
दिनदिन वरतें रूपारेलि,
दिन दिन सुखसागर कविसार,
दिन दिन वाधे जय जयकार।

---

१. अगरचन्द नाहटा—परंपरा, पृ० १११।

२. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० २८७-२९० (प्र०सं०) और भाग ४, पृ० ४५७-४५९ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रेयां नगर में बांकेराय भवानी नामक देवी का मंदिर है। इसकी प्रशस्ति में इस कृति की रचना उसी भवानी की कृपा का परिणाम कहा गया है।

सुखसागर II—दीपसागर के शिष्य थे। इन्होंने सं० १७६३ में जिनसुन्दरसूरि कृत दीवाली कल्पसूत्र (सं० १४८३) पर 'कल्पप्रकाश' नामक बालावबोध की रचना की। अन्त में लिखा है–

श्री ज्ञानविमल सूरीश्वर प्रसादात् सुख बोधार्थं,
श्री दीपोत्सव कल्प स्तिबुकार्थं समर्पिता मयका।
कवि दीप दीपसागर, शिशुना सुखसागरेण कृता,
गण रस मुनि विधु, माने संवत् १७६३ वर्षे श्री राजनगरे।

इन्होंने पंचतत्व बालावबोध सं० १७६६ और पाक्षिक सूत्र बालावबोध सं० १७७३ में लिखा।[1] इससे प्रमाणित होता है कि ये अच्छे गद्य लेखक थे, किन्तु इनकी गद्य शैली का नमूना नहीं मिला। पद्य में इन्होंने 'चौबीसी' लिखी है जिसके आदि और अंत की पंक्तियां दी जा रही हैं—

आदि—सकल पण्डित शिरोमणि पं. श्री दीपसागर गणि
परम गुरुभ्योनमः
प्रथम जिणेसर प्रणमीइं मरुदेवी नो नंद,
नाभि नृपति कुल मंडणो, वृषभ लंछन जिनचंद रे।

कवि ने गुरु को प्रणाम करते हुए लिखा है–

दीपसागर कविराय नो, सुखसागर कहे सीस रे।

अन्त—संवेगी गछपति ज्ञानविमल सूरिराय,
ज्ञानादिक गुणनो पामी तास पसाय।
तपगछ सोभाकर दीपसागर कविराय,
तेहनो लघुबालक सुखसागर गुणगाय।[2]

वृद्धिविजय रास—उपर्युक्त दोनों में से किसी एक सुखसागर ने या किसी अन्य सुखसागर ने प्रसिद्ध क्रियोद्धारक पन्यास सत्यविजय के शिष्य वृद्धिविजय की स्तुति में वृद्धिविजय रास' लिखा है। यह रास

१. मोहनलाल दलीचंद देसाई – जैन गुर्जर कवियो, भाग ५, पृ. २७६ न.सं.।
२. वही भाग ५, पृ० ४५९-४६० (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'जैन ऐतिहासिक गुर्जर काव्य संचय' और 'ऐतिहासिक रास संग्रह' भाग ३ में प्रकाशित है। इसमें रास का रचनाकाल नहीं है। पर वृद्धिविजय का स्वर्गवास सं० १७६९ कार्तिक कृष्ण अमावस्या को हुआ था, इसलिए यह इसी तिथि के कुछ बाद का रचित होगा। यह रचना कवि ने वृद्धिविजय के शिष्य हंसबिजय के आग्रह पर की थी--

यथा—धर्ममित्र सुखसागर कबि इणि परि भणै रे,
हंसविजय नै हेति
तास कहण थी चरित कह्यां अे तेहना रे,
प्रीति तणै संकेत।[1]

ये वृद्धिविजय विजयसिंह सूरि के प्रशिष्य और सत्यविजय के शिष्य थे। इस रास से ज्ञात होता है कि वृद्धिविजय डालभी ग्राम वासी आणंद की पत्नी उत्तमदे की कुक्षि से उत्पन्न थे और इनके बचपन का नाम बोधो था। सत्यविजय के उपदेश से इन्हें वैराग्य हुआ और सं० १७३५ में इन्होंने उनसे दीक्षा ली तथा नाम वृद्धिविजय पड़ा। एक दूसरे वृद्धिविजय भी इसी समय के आसपास हो गये हैं जो कर्पूरविजय के शिष्य थे और जिन्होंने उपदेशमाला बालावबोध तथा जीवविचार स्तवन लिखा है। जिनविजय सूरि ने 'कर्पूरविजय निर्वाण रास' लिखा है और उसमें इनके शिष्य वृद्धिविजय का उल्लेख है। 'वृद्धिविजय गणि रास' का आदि इन पंक्तियों से हुआ है--

प्रेमे प्रणमी पाय चोविस जिन तणा,
जगनायक जगहित करु अे;
सिर धरि जेहनी आण सकल सुरासुर,
आदर आणी अति घणो अे।
वलीवली सरसति माय पायकमल नमी,
जेह थी मति अति पामीइ अे,
गाऊं गुरु गुण रास आस उमाहलो,
अे माहरो पूरण करो अे।

कलश—
श्री सत्यविजय कविराज केरा श्री सीस सुंदर गुणनिल्या,
श्री वृद्धिविजय पन्यास पदवी सोहता गुण अतिभला।

---

१. जैन ऐतिहासिक गुर्जर काव्य-संचय, पृ० २०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुण तास गावे सुख पावे हंसविजय सेवक सदा,
अे भविक भावें धरी ते भणिया जिम लहो सुखसंपदा।[1]

सुन्दर – इनके गुरु का नाम अज्ञात है परन्तु ये लोकागच्छीय साधु थे। मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने पहले सुन्दर और मुनिसुन्दर में भ्रम के कारण इनकी रचना 'नेम राजुल ना नव भव संञ्झाय' (१५ कड़ी, सं० १७९१) को मुनि सुन्दर की रचना बताया था परन्तु जैन गुर्जर कवियो के नवीन संस्करण में उसके सम्पादक ने इसे सुन्दर की रचना बताया है। इसका प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है –

राणी राजुल कर जोडी कहे यादव कुल सिणगार रे।[2]

यह संञ्झाय माला में प्रकाशित है।

एक सुन्दर जी गणि ने मूलप्राकृत ग्रन्थ जंबूचरित्र पर सं० १७९५ से पूर्व बालावबोध लिखा है।

सुबुद्धि विजय—आप गुलाबविजय के शिष्य थे। इन्होंने एक रचना 'मगसी जी पार्श्व दश भव स्तवन' नाम से की है। इसके प्रारंभ की पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

पणमु माहातम सदा, तेवी समा प्रभु पास,
लोकालोक प्रकाशकर, समरुं तास उलास।
मुखकमल कंठवासिनी, जिनशासन सणगार;
मुझ जीभ वासो करो, कहूं मगसी अधिकार।
मगसी मालव प्रगटिया, भवजल तारक नाव,
रंकन कूं रावण कीया, सो होय चित्त में भाव।
× × ×
जंबूद्वीप ना भरत में, मध मालव देस,
सर्वदेश में मुगुटमणि दुरभिक्ष न किया प्रवेश,
दस भव श्री जिणवर तणा, कमठ वर शठ भाव,
इत्यादिक श्री जिनकथा, कहूं सव वर्नन बताय।

---

१. मोहनलाल दलीचंद देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० ५१३-१४ (प्र०सं०) और भाग ५, पृ० २७६-७७ (न०सं०)।

२. वही, भाग ३, पृ० १४६७ (प्र०सं०) और भाग ५, पृ० ३४९ और भाग ५, पृ० ३५५ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्त में गुरु की वंदना करते हुए कवि ने लिखा है—

> अजब गति किम अद्‌भुत ज्योत जो;
> मुख थी रे केती बखाणुं रे घणी रे लो।
> गुलाबविजय ना सुबुद्धि तणी छे आस जो,
> तुम ध्याऊं छुं हूं ते पद सेवा भणी रे लो।[1]

इसकी प्रति अपूर्ण है अतः रचनाकाल नहीं ज्ञात हो सका है। कवि का भाषा प्रयोग बड़ा शिथिल है और एक छोटी पंक्ति में तीन-चार भर्त्ती के निरर्थक शब्दों को भरकर छन्द का काम किसी तरह चलता किया गया है। उदाहरणार्थ ऊपर दिए छंद की दूसरी पंक्ति के रे, रे, रे, लो को देखा जा सकता है।

सुमतिधर्म –खरतरगच्छ के जिनचंद्रसूरि>धर्मनिधान>समयकीर्ति के शिष्य थे। इन्होंने 'भुवनानंद चौपाई' सं० १७२५ माग वदी ५, शुक्रवार को असनीकोट में पूर्ण किया था। यह रचना शील का माहात्म्य प्रकट करने के लिए दृष्टान्त स्वरूप प्रस्तुत की गई है।[2]

सुमतिरंग—ये कीर्तिरत्न सूरि शाखा के चन्द्रकीर्ति के शिष्य थे। आपने सिन्ध और पंजाब में कई वर्षों तक विहार किया, तभी प्रबोधचिंतामणि (मोहविवेक रास), और योगशास्त्र चौपाई नामक आध्यात्मिक ग्रंथों का मरुगुर्जर में पद्यानुवाद किया था। आपकी प्राप्त रचनायें अग्रलिखित हैं - ज्ञान कला चौपाई, प्रबोध चिंतामणि (मोह विवेक रास) सं० १७२२, योगशास्त्र चौपाई सं० १७२४; हरिकेसी संधि सं० १७२७ मुल्तान, जंबू चौपाई १७२९ मुल्तान, जिनमालिका, चौबीस जिन सवैया १७११ से पूर्व, मंडोवर सहसफणा पार्श्व छंद (६५ गाथा), कीर्तिरत्न सूरि छंद, जिनचंदसूरि कवित्त, अमृतध्वनि और गौड़ी पार्श्वनाथ संबंध आदि।[3]

इनकी गुरुपरंपरा जैन गुर्जर कवियो में इस प्रकार बताई गई है—खरतरगच्छीय कीर्तिरत्न सूरिशाखा के लावण्यकीर्ति>पुण्यधीर>

1. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग ३, पृ० १५३० (प्र०सं०) भाग ५, पृ० ३७३-७४ (न०सं०)।
2. वही भाग ३, पृ० १३१९ (प्र०सं०)।
3. अगरचन्द नाहटा—परंपरा, पृ० ९८-९९।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञानकीर्ति>गुणप्रमोद>समयकीर्ति>चन्द्रकीर्ति। इनकी कुछ रचनाओं के विवरण-उद्धरण आगे दिए जा रहे हैं। प्रबोध चिंतामणि रास अथवा ज्ञानकला चौपाई अथवा मोह विवेक रास (सं० १७२२ विजयादसमी, रविवार, मुलतान) यह रास मुलतान प्रांत के नवलखा निवासी वर्द्धमान के आग्रह पर रचा गया था। इसका आदि देखें—

परम ज्योति प्रकाश कर, परमपुरुष परतक्ष,
परमज्ञान परमातमा अगम अरूप अलक्ष।

× × ×

सरसति गुणसारं अतिहि उदारं अगम अपारं सुखकारं,
त्रिभुवन जन तारं महिमाधारं, विमलविचारं दातारं।
दूरीकृत भारं विनयविकारं, कुमति विदारं अघहारं,
चरचति चितचारं सेवासारं गुणविस्तारं जयकारं।

शांत रस की प्रशस्ति में कवि ने लिखा है--

नवरस सब जग क हितु हे अनिष्ट अष्ट करी अंध,
शांत रस सब ते सरस, ते सरस भाखो श्री भगवंत।
ओर रस अलखामणा, करी कुमति विकार,
शांति रस सेवे जिको, तिणंकु सुख श्रीकार।

इसमें ही उपर्युक्त गुरुपरंपरा बताई गई है। रचनाकाल इस प्रकार कहा गया है –

खरतरगच्छ नायक खरो अे सरस संबंध सिवदाय,
नयण नयण द्विय शशि (१७२२) सही अे,
अश्वनि मास मन भाय।

विजय विजयदशमी दिने अे आदितवार उदार।
सुमति रंग सदा लहि अे शिववधु-सुख-हेत,
प्रबोध चिंतामणि ग्रंथ अे, उधरीयो धर्म हेत।
ज्ञानकला शिवसाधना अे, अे इण चोपइ नाम।
आतम गुण आराध्रना अे, पांचमे अविचल ठाम।

इसमें कवि ने वर्द्धमान के परिवार की पर्याप्त प्रशंसा की है। योग शास्त्र भाषा पद्य (सं० १७२० आश्विन सुदी ८) भी वन्नू (मुलतान) निवासी चातड़मल, वर्द्धमान के आग्रह पर लिखी गई थी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हरिकेशी साधु संधि (९ ढाल सं० १७२७ श्रावण शुक्ल द्वितीया मंगलवार)

आदि-- साध सकल प्रणमी करी, सिव साधक पिण साध,
जसु सेवा समरण थकी, रहइ न को अपराध।
सोवाग-कुलनउ ऊपनउ, भूलोचर गुणधार,
हरिकेसीबल नाम मुनि, भिखू गुणभंडार।

रचनाकाल--
संवत सतरइ सइ सतावीसइ श्रावण मास सुषावउ,
सुकल पक्ष बीजा भृगुवारइ, भणे गुणि भावन भावउ री।
सूरचंद्र कीरति जगि जैसी वाचक वाणि वतावउ,
सुमतिरंग साध के समरणि, सुखलाभ नित पावउ री।[1]

जम्बूस्वामी चौपाई सं० १७२९ मुलतान, जिनमालिका (७ ढाल) और चौबीसी सवैया आदि का विशेष विवरण नहीं दिया गया है। आपकी एक लघु रचना 'चन्द्रकीर्ति कवित्त'[2] ऐतिहासिक रास संग्रह में संकलित है। अपने गुरु पर लिखी इस छोटी रचना का भी भावनात्मक तथा ऐतिहासिक महत्व है। इसमें कुल दो कवित्त हैं। यह रचना सं० १७०७ में बिलाड़े में लिखी गई थी।

सुमतिवल्लभ--खरतरगच्छ की आचार्य शाखा के सूरि जिनसागर इनके प्रगुरु तथा जिनधर्मसूरि गुरु थे। इन्होंने जिनसागर सूरि के निर्वाण पर आधारित 'श्री निर्वाण रास' (८ ढाल, सं० १७२० श्रावण शुक्ल १५) लिखा। श्री जिनसागर सूरि का निर्वाण सं० १७२० ज्येष्ठ कृष्ण ३ को अहमदाबाद में हुआ था। उसके प्रायः डेढ़-दो माह पश्चात् ही यह रास लिखा गया, अतः इसमें गुणसागरसूरि का प्रामाणिक वृत्त उपलब्ध है। इसके आधार पर जिनसागर का मूल नाम चोला था। उनका जन्म सं० १६५२ कार्तिक कृष्ण १४ रविवार को बीकानेर निवासी साह वच्छराज की पत्नी गिरजादे की कुक्षि से हुआ था। उन्होंने जिनसिंह सूरि से नौ वर्ष की वय में ही सं० १६६१ महा शुदि

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० १९७-२०२, भाग ३, पृ० १२१५-१६ (प्र० सं०) और भाग ४, पृ० ३०१-३०५ (न० सं०)।
२. ऐतिहासिक रास संग्रह, पृ० ४२२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७ को अमरसर में दीक्षा ली और प्रसिद्ध विद्वान् हर्षनन्दन गणि से शास्त्राभ्यास किया। इन्हें सं० १६७४ फाल्गुन शुक्ल सप्तमी को मेड़ता में सूरिपद प्रदान किया गया और इनका नाम जिनसागरसूरि रखा इनके पट्टधर जिनधर्मसूरि भी बीकानेर निवासी रिणमल की भार्या रतना दे की कुक्षि से सं० १६९८ पौष शुक्ल द्वितीया को पैदा हुए थे। इनके बाल्यकाल का नाम खरहथ था। इन्हें सं० १७११ में आचार्य पद और सं० १७२० में जिनसागर के निर्वाणोपरांत सूरि पद प्राप्त हुआ था। सं० १७४६ में जिनधर्मसूरि का लूणकरणसर में स्वर्गवास हुआ था। श्री निर्वाणरास ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में प्रकाशित है। इस रास का प्रारम्भ इन पंक्तियों से हुआ है—

समरुं सरसति सामिनी, अविरल वांणि दे मात,
गुण गाइसु गुरुराज ना, सागर सूरि विख्यात।
सहर वीकाणो अति सरस, लषिमी लाहो लेत,
ऊस वंश मइ परगडा, बोहिथरा विरुदैत।

रचनाकाल —

संवत सतर बीणोत्तरइ अे, सुमतिवल्लभ अे रास;
श्रावण सुदि पुनिम दिनि अे, कीधो मनह उल्लास।

इस रास को पूर्ण करने में सुमतिवल्लभ ने अपने शिष्य सुमति समुद्र के सहयोग का भी उल्लेख किया है, यथा—

श्री जिनधर्म सुरीसरो अे, माथि छि मुझ हाथ,
सुमतिवल्लभ मुनि इम कहइ, सुमतिसमुद्र शिष्य साथि।[1]

इसमें सुमतिवल्लभ के गुरु और उनके शिष्य दोनों का नाम आ गया है। इस रास में सुमतिवल्लभ ने दादागुरु जिनसागर सूरि के निर्वाण पर उनका गुणानुवाद इस रास द्वारा किया है साथ ही अपने गुरु जिनधर्म सूरि का संक्षिप्त परिचय आदर पूर्वक किया है। इसीलिए गच्छ की दृष्टि से इस रास का ऐतिहासिक महत्व है किन्तु साहित्यिक दृष्टि से यह सामान्य रचना है।

---

१. ऐतिहासिक जैन काव्यसंग्रह पृ० १९१-१९८ और मोहनलाल दलीचन्द देसाई–जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० २०२-२०४ भाग ३, पृ० १२१६ (प्र० सं०) और वही भाग ४, पृ० २९९-३०१ (न०सं०) और अगरचन्द नाहटा - परंपरा, पृ० १०५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुमतिविजय—ये वृद्धतपागच्छीय रत्नकीर्ति के शिष्य थे। विक्रम सं० १२८५ में जगच्चंद सूरि ने उदयपुर के पास अपनी घोर तपस्या के बलपर 'तपा' विरुद प्राप्त किया था। इनके दो शिष्यों में विनयचंद्र सूरि की परंपरा को वृद्धतपा और देवेन्द्रसूरि की परंपरा को लघुतपा कहा गया। इन्होंने अपने गुरु के स्तवन स्वरूप 'रत्नकीर्ति सूरि चौपाई' (सं० १७४९ आषाढ़ शुक्ल सप्तमी बुधवार) लिखी। इस चौपाई द्वारा रत्नकीर्ति के सम्बन्ध में प्रामाणिक सूचनायें मिलती हैं। उनके पिता का नाम पुन्जासाह और माता का नाम प्रेमल दे था। भुवनकीर्ति के आशीर्वाद से दम्पत्ति को पाँच पुत्र हुए। उनमें सबसे छोटा राम जी नामक शिशु ही रत्नकीर्ति हुआ, इसका जन्म सं० १६७९ भाद्र कृष्ण २, भौमवार को हुआ था। सं० १६८६ वैशाख शुक्ल पंचमी गुरुवार को भुवनकीर्ति से दीक्षित होने के बाद दीक्षानाम रत्नकीर्ति पड़ा। सं० १७३४ में ५५ वर्ष की अवस्था प्राप्त कर वे स्वर्गवासी हो गये। उनके चार शिष्यों में से गुणसामर उनके पट्ट पर बैठे। इसमें ९ ढाल है, कवि ने लिखा है—

श्री रतनकीर्ति सूरि स्तव्या सु ढाल नवें मनोहार,
सीस सुमतिविजय सदा सु, पय प्रणमि बारंबार।

इसके मंगलाचरण का आदि इस प्रकार है—

संभव जिनवर विनवुं मांगु एक ज गान,
दुरगति दुख दूरि करी, आपजो निरमल ज्ञान।

इसके पश्चात् अहमदनगर (अहमदाबाद) का वर्णन किया गया है, जहाँ यह ग्रन्थ लिखा गया, रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है—

संवत संयम भेद ते सु० वर्षे भुवन निधि सार;
आषाढ़ सुकल सप्तमी सु० हस्त नक्षत्र बुधवार।[1]

अहमदाबाद के बारे में कवि ने लिखा है—

दक्षण भारत मांहे दीपतु, गुर्ज्जर देस गुणवंतो रे;
असी सहस ग्रामे करी, अधिक अधिक सोभंतो रे।
× × × ×
गढ़ मढ़ मंदिर महल सुं, श्री अहमदनगर विराजि रे;
भूमण्डल मां ओहनुं कोट, नहि को दिवाजी रे।

१. सम्पादक मुनिजिनविजय—जैन ऐतिहासिक गुर्जर काव्यसंचयपृ० २-१४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसमें अहमदाबाद को अहमदनगर और राजनगर नामों से भी सम्बोधित किया गया है। इस चौपाई में सर्वगाथा १४६, श्लोक संख्या १७० है। इसके प्रारम्भ में लिखा है—

श्री वृद्ध तपागच्छ गणधरु श्री रत्नकीर्ति सूरीराय,
चरीय भणुंमनहेत सुं, आणंद अंगि न माय।

अंतिम कलश में भी गुरु का सादर स्मरण किया गया है, यथा—

तपगच्छ नायक सुखदायक श्री भुवनकीर्ति सुरीश्वरी,
तसु वंसभूषण विगतदूषण, श्री रत्नकीर्ति सूरी पटधरी।
दिन दिन गाजी अधिक दिवाजी तास शिष्य सोहामंणा,
इमि वदी वांणी सुमति आंणी घरि घरि रंग वधामणा।[1]

सुमतिविमल -आपका एक गीत 'जिनसुख सूरि गीतम्' ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में संकलित है। इस गीत से पता चलता है कि जिनसुखसूरि रूपचंद और रतना दे के पुत्र थे। आपने जैसलमेर में 'चैत्य परिपाटी' आदि कई रचनायें की हैं जिनका विवरण यथास्थान दिया जा चुका है। इस गीत के आदि की पंक्तियाँ निम्नाङ्कित हैं—

सहु मिलि सूहव आवउ मन रली, गावौ गुरु गच्छराय;
विधि सुं वंदौ जिनसुख सूरिनइ, जसु प्रणम्यां सुख थाय।

इसके अन्त की पंक्तियाँ भी उद्धृत की जा रही हैं—

संघ मनोरथ पूरण सुरतरु, जिनसुख सूरि महंत,
इणि परि सुमतिविमल असीस दइ, पूखइमन नी रे खंति।[2]

इस गीत में कुछ ९ छन्द हैं। इसमें जिनसुख सूरि की वंदना सरल भाषा शैली में भक्तिभाव पूर्वक की गई है।

सुमतिसेन—ये क्षेम शाखान्तर्गत रत्ननंदि के शिष्य थे। इन्होंने

१. मोहनलाल दलीचंद देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० ३८३-३८४ (प्र०सं०) और भाग ५, पृ० ३२-३३ (न० सं०)।

२. ऐतिहासिक जैन काव्यसंग्रह—जिनसुखसूरिगीतम।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सं० १७०७ में 'रात्रिभोजन चौपाई' की रचना की जिसमें रात्रिभोजन के दोष बताकर उसका निषेध किया गया है।[1]

(उपा०) **सुमतिहंस**—खरतरगच्छीय जिनहर्ष सूरि इनके गुरु थे। इन्होंने चंदनमलयागिरि चौपाई' (सं० १७११ चैत्र शुक्ल १५, बुरहानपुर) लिखी है जिसके आदि में मंगलाचरण है, यथा—

स्वस्ती श्री पूरण सदा श्री चिन्तामणि पास,
पणमिय परमानंद कर, अविचल लील विलास
वीणा पुस्तक धारिणी, सरसति शास्त्र समृद्ध,
सरस वचन रचना दियो, वरदायिनी बहु बुद्धि।

यह रचना शील के महत्व पर आधारित है, यथा–

धरम धुरा दृढ धारिये धरम अनेक प्रकार,
सर्विहु माहे सार छे, सत्व शील संसार।

× × ×

चंदन ने मलयागीरी सत्व शील बे राखि,
अविचल कीरति आदरी पार्श्वचरित नी साखि।

गुरुपरंपरान्तर्गत कवि ने जिनहर्ष की वंदना की है। यह रचना उसने राजसिंह संघवी के पौत्र वीरधवल के आग्रह पर रची थी। रचनाकाल इन पंक्तियों में है–

संवत सतर इग्यारा माहे चैत्र पूनिम सुखदाय,
शील तणा गुण भासिया अे, श्री सुमतिहंस उवझाय।

इनकी दूसरी रचना 'वैदर्भी चौपाई' (सं० १७१३ कार्तिक शुक्ल १४, जयतारण) में वैदर्भी सती के श्रेष्ठ चरित्र का गुणगान है। कवि ने लिखा है—

सतीय सिरोमणी सोहग सामिणी, वैदरभी गुणगाया,
सफल जनम रसना पावन थइ, लाभ अनंता पाया।
श्री जिनहरष सूरि राजे, श्री खरतर गच्छराया,
तास सीस गुण गावे भावे, सुमतिहंस उवझाया।

---

१. अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० १०९।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रचनाकाल--

संवत सतर तेडोतरा कार्तिक सुदि चउदिस सुखदाय।
श्री जैतारण नगरी मांहि, विमलनाथ पसाय।

आपने भी 'रात्रि भोजन चौपाई' (२४ ढाल, सं० १७२३ मागसर वदी ६ बुध, जयतारण) लिखी है जिसमें रात्रि भोजन के दोष बताते हुए कवि ने लिखा है-

रात्रिभोजन दोष दिखाया, दीनानाथ बताया जी,
अचल नाम तिहां रहवाया, दिन दिन तेज सवाया जी।
धन धन जे नर अे व्रत पाले।

रचनाकाल—

सतरे से तेवीसे वरसे हेजे, हियडो हरसे जी;
मगसिर वदि छठि वर बुधि दिवसे,
चौपी कीधी सुविसेसे जी।

आदि- सुबुद्धि लबधि नवनिधि, सुख संपद श्रीकार,
पारसनाथ पय प्रणमता, वसु जस हुवे विस्तार।

अन्त— विमलनाथ जिणेसर प्रासादै,
श्री जयतारण सुभ सादै जी,
ऋद्धि वृद्धि सदा आणंदै,
संघ सकल चिर नंदै जी।[१]

सूरचंद - इन्होंने 'रत्नपाल रासो' की रचना सं० १७३२, वर्धनपुर या वर्द्धमान नगर में तीन खंडों, ३५ ढालों और १००३ पद्यों में पूर्ण किया है। इसके प्रथम खंड में १२, द्वितीय खंड में १५ और तृतीय खंड में ८ ढाल हैं। यह रास परंपरा की एक सुन्दर रचना है। इसके द्वारा कवि ने दान की महिमा का प्रतिपादन किया है। इसमें यत्र-तत्र रसात्मक स्थल मिलते हैं और चरित्रांकन सुन्दर ढंग से किया गया है। ढाल संगीतपूर्ण है। कई रागों जैसे केदार, वसंत, भूपाली, आसावरी आदि का प्रयोग किया गया है। गेयता के लिए टेक शैली का अवलंब

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० १४०-१४१, भाग ३, पृ० ११९२-९४ (प्र० सं०) और वही भाग ४, पृ० १७५-१७८ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लिया गया है। इसकी भाषा में व्रजभाषा का स्वाभाविक लालित्य और माधुर्य है। मरुगुर्जर का पर्याप्त प्रभाव भी परिलक्षित होता है। इसका रचनाकाल इन पंक्तियों में बताया गया है–

संवत सतर बत्रीसा वर्ष, शुभ मुहूरत शुभवार रे;
आसो सुदी ग्यारस रवि दिन, वर्धनपुर मझार रे।[1]

सुरजीमुनि –आपने सं० १७२१ के तत्काल पश्चात् किसी समय 'लीलाधर रास' की रचना की। इसमें संघवी लीलालाल की संघयात्रा का वर्णन किया गया है। अहमदावाद निवासी संघवी लीलालाल ने सौभाग्यसागर गणि के उपदेश से प्रेरित होकर शत्रुंजय तीर्थ के लिए संघयात्रा निकाली थी। उस समय आंचलगच्छ के गच्छेश कल्याण-सागर सूरि थे और वे राधनपुर में थे। दिल्ली में मुगल सम्राट् अकबर का शासन था। कवि ने लिखा है–

लीलाधर लीला लहिर चोषुं जेहनी चित्त,
धरम कृत्य नित्यइ करइ पावइ परिधल वित्त।

कवि का नाम इस पंक्ति में है–

मुनि सूरजी इणि परि भणइं, चिरंजीवो अेह बाल।

आदि-- ऋषभदेव प्रणमुं सदा, मंगलदायक देव,
सुर असुर नर विविह परि, सारइ अहनिसि सेव।
सांची देवी सारदा, आराधुं निसि दीस,
रिद्धि वृद्धि सुखसंपदा देज्यो मात जगीस।

प्रकृति वर्णन सम्बन्धी ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं–

ऊंचा पर्वत सामरा, लम्बा वली अछेह;
गिरि गह्वर गफा घणी, जाणइ कइड हूयो मेह।
झरझर निर्झर करइ, बलबल बलकइ नीर,
कोक पिक टुहु टुहु करइ, प्रेषित मन घन पीर।
ठामि ठामि नदी बहइ, ठामि ठामि बनराय,
ठामि ठामि चोकी धरइ, ठामि ठामि विश्राम बनाय।

---

१. डा० लालचन्द जैन—जैन कवियों के ब्रजभाषा प्रबन्धकाव्यों का अध्ययन पृ० ७०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह संघ शत्रुंजय से लौटकर ऊना, देलवाड़ा, गिरनार, जूनागढ़ वीरमगाम होते हुए अहमदाबाद आया। वृद्ध लीलाधर संघवी ने वाचक सुखलाभ से दीक्षा ली और सं० १७१५ भाद्र शुदी ६ को स्वर्गवासी हुए--

संवत सतर पनरोतरइ भाद्रवा सुदि सुविचार,
निर्वाण लबधि लाभ निग्रंथ नो, छठि तिथि शुभवार।

उनके स्वर्गवास के पश्चात् उनके पुत्र परिवार ने भी तीर्थयात्रायें निकाली, अर्बुदाचल की संघयात्रा भी निकाली। दूसरी संघयात्रा का समय इस प्रकार बताया है—

संवत सतर अेकवीसे, मागसिर सुदि सुविचार,
तिथि पंचमी सुभ वासरे, कीधो संघ उदार।[1]

यहाँ तक की संघ यात्राओं का वर्णन इस रास में किया है इसलिए रास की रचना इसके कुछ काल पश्चात् की गई होगी। इस रास में कवि ने न तो रचनाकाल दिया है और न गुरु परंपरा दी है। परन्तु इसमें आंचलगच्छ के कल्याणसागर सूरि का वंदन है इसलिए कवि का संबंध इसी गच्छ से रहा होगा।

सुरजी (सुरसागर) ये भी आंचलगच्छीय साधु थे। इन्होंने 'जंबवती चौपाई' लिखी है। इसका रचनाकाल अज्ञात है। पता नहीं कि ये लीलाधर रास के कर्त्ता सुरजी हैं या कोई अन्य व्यक्ति। इस रास का आदि-अंत दिया जा रहा है–

आदि-- पहिली ढाल सोहामणी जंबूवती अधिकार,
जयराजानी कूंमरी सीलवंत सुखकार।
सील शिरोमणि सुंदरी रूपें अधिक रसाल,
सो जंबवती जाणज्यो, परणी किसनकुमार।

इसमें जांबवती के सतीत्व का वर्णन है, उसका विवाह श्रीकृष्ण से हुआ था।

---

१. मोहनलाल दलीचंद देसाई--जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० २०६-२०९ (प्र०सं०) और भाग ४ पृ० ३११-३१३ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्त — जंबवती भाग सफलो फल्यो,
कूरवडि आव्या श्रीकुल अवतार कि,
यादव कुल रो दीवलो,
इसो छे अेक भामकुंवर सुजाण।
सुरसागर गुरु इम भणे,
हमें गुण गाया रावला,
तमे रे समासणो दियो,
अविचल पाट हुं वलहारि वीठला।[1]

सुरविजय आप तपागच्छीय सिद्धिविजय के शिष्य थे। इन्होंने रतनपाल रास (३ खंड ३४ ढाल) सं० १७३२ बुरहानपुर में पूर्ण किया। इसके प्रारम्भ में कवि ऋषभादि तीर्थङ्करों और भगवती शारदा की वंदना की है—

श्री ऋषभादिक जीनं नमुं वर्तमान चौबीस,
श्रीमंधर परमुख नमुं विरहमान वली बीस।
पुण्डरीक गौतम प्रमुख गणधर हुवा गुणवंत,
चउदसे बावन नमुं मोटा महीमावंत।

इसके पश्चात् कवि लिखता है—

तास तणे सुपसाउले रचस्युं रास रसाल;
रतनपाल गण गाइवा, मुझ मन थयो उज्याल।
दान सीयल तप भावना मुगतीमारग अे चार,
रतनपाल तणो चरीत्र दान तणो अधिकार।

यह रचना दान का माहात्म्य दर्शाने के लिए रतनपाल का दृष्टांत प्रस्तुत करती है। रचना के अन्त में भी कवि ने यही बात व्यक्त की है, यथा—

दान प्रबन्ध ग्रन्थ में दीठो, सरवरो अे अधिकार,
मे माहरी मति ने अनुसारे, रचियो रास उदार रे।

इसमें तपागच्छ के विजयाणंद, विजयराज सूरि और सिद्धिविजय का पुण्यस्मरण गुरुरूप में किया गया है। रचनास्थान और रचनाकाल

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० २०४ और भाग ३, पृ० १२१७ (प्र० सं०) और भाग ४, पृ० ३५८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से सम्बन्धित पंक्तियाँ निम्नांकित है-

श्री बुरानपुर नगर मझारे, पीठ मां रह्या चोमास रे,
श्री मनमोहन वीर प्रसादें, रच्यो अे मे रास रे।
संवत सत्तर बत्रीसा वरसे, शुभ महुर्त शुभ वार रे,
सूरविजय कहे सम्पूर्ण कीधो, रास त्रीजे खंड उदार रे।

यह रास तीन खंडों में पूर्ण हुआ है, इसकी अन्तिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

भणतां गुणतां ने सांभलतां, थुणतां हरष अपार,
गुण गांता वली गुणवंत केरा, वरत्यो जय जयकार।[1]

इनकी एक रचना हीरविजयसूरि रास[2] सं० १७२४ का उल्लेख देसाई ने किया था, पर विवरण नहीं है।

सूर – ये दिगम्बर सूरि इन्द्रभूषण के प्रशिष्य और श्रीपति के श्रावक शिष्य थे। इनकी रचना का नाम 'रतनपाल नो रास' है। इससे पूर्व वर्णित सुरविजय की रचना रतनपाल रास में थोड़ा हेरफेर करके किसी दिगंबर लेखक ने यह रास भी तीन खंडों में सं० १७३२ आसो शुक्ल ५, रविवार को लिख दिया। बुरानपुर के बदले रचना स्थान वर्धनपुर, लेखक सुरविजय के स्थान पर मात्र सूर नाम दिया गया है। यह भी दान के महत्व पर रचित है, यथा–

दान प्रबंध ग्रन्थ दीठो, सरवरो अे अधिकार रे।

इसमें रत्नवती रत्नपाल का चरित्र दृष्टान्त स्वरूप वर्णित है, यथा—

रत्नवती रत्नपाल नो, चरीत्र कह्यो अे सार,
सुणतां बहु सुष पामीअे, लहिअे लछि अपार।

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैनगुर्जर कवियो, भाग २, पृ० २९४-२९६ और भाग ३, पृ० १२८२-८३ (प्र० सं०) और वही भाग ४, पृ० ४६०-४६३ (न०सं०)।

२. वही, भाग १, पृ० ४९९ (प्र०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कवि ने अपना नाम, 'वृद्धवाल सुर' लिखा है-

वृद्धबाल सुर कहै, सुणज्यो सहु अे।

गुरु परंपरान्तर्गत इस लेखक ने दिगम्बर परम्परा का स्वयं को शिष्य कहा है-

गछ दीगंबर गरुओ गोतम, इन्द्रभूषण सूरिराय रे,
तास सीष्य श्रीपती ब्रमचार, जिनवर भक्ति सुदाय रे।
कथाकोस ग्रन्थ जोइवै, रच्यो रास सिरदार रे,
सुरचंद भैया ने आदर, अेह प्रबंध उदार रे।

रचनाकाल—'संवत सत्तर वत्रीसा वरषै, शुभ मुहरत शुभ वार रे;
आसो सूदिइ पांच रस रवि दिनै, वर्द्धनपुर मझार रे।

इसकी अंतिम दोनों पंक्तियाँ ज्यों की त्यों वही हैं जो सुरविजय कृत रत्नपाल रास के अन्त में हैं, यथा-

भणतां गुणतां ने सांभलतां, सुणतां हर्ष अपार रे,
गुण गातां गुणवंत केरा, वरत्यो जय जयकार रे।[1]

इन सबके आधार पर यह शंका पुष्ट होती है कि सुरविजय के रत्नपाल रास में ही थोड़ा फेरबदल करके किसी दिगम्बर लेखक ने यह रास लिख दिया है।

इस रचना में 'सुरचंद' नाम आया है। सुरचंद नामक एक लेखक का वर्णन लालचंद जैन ने अपने शोध प्रबन्ध में किया है। उनकी रचना रत्नपालरास का विवरण पहले दिया जा चुका है।

सुरेन्द्रकीर्ति मुनीन्द्र (वि०सं० १७४०)—ये मूलसंघ बलात्कारगण की नागौर शाखा के भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति के शिष्य थे।[2] सं० १७३८ ज्येष्ठ शुक्ल ११ को इन्हें भट्टारक गादी पर प्रतिष्ठित किया गया और सात वर्ष तक ये उक्त पद पर बने रहे। ये बिरथरा ग्राम के मूलवासी और पाटणी गोत्रीय माता-पिता के संतान थे। इन्होंने आदित्यवार

---

१. मोहनलाल दलीचंद देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग ३, पृ० १२८३-८४ (प्र०सं०) और भाग ४, पृ० ४६३-४६४ (न०सं०)।

२. लालचन्द जैन—जैन कवियों के ब्रजभाषा प्रबन्धकाव्यों का अध्ययन, पृ० ७०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कथा, पंचमास चतुर्दशी व्रतोद्यापन, ज्ञानपचीसी व्रतोद्यापन के अतिरिक्त अनेक भक्तिभाव पूर्ण पदों की भी रचना की है। रचनाओं के कुछ विवरण-उदाहरण दिए जा रहे हैं। आदित्यवार कथा (ज्येष्ठ शुक्ल १० गोपाचल गढ़; लेखक गोपाचल गढ़ प्रायः आते जाते रहते थे।) इसे वीरसिंह जैन, (इटावा, १९०६) ने प्रकाशित किया है। इसे कवि ने जैसवाल साह भगवंत की पत्नी के आग्रह पर लिखा था। इसका संबंध जिनभक्ति से है; एक उदाहरण प्रस्तुत है--

कासी देश बनारस ग्राम, सेठ बड़ो मतिसागर नाम;
तासु धरणि गुण सुंदर सती, सात पुत्र ताके सुभमती।
सहसकूर चैत्यालयो एक, आये मुनिवर सहित विवेक;
आगम सुनि सब हरषित भए, सबै लोक वंदन को गये।

इसके एक पद की भी कुछ पंक्तियाँ देखिए–

जै बोलो पाश जिनेश्वर की,
जुगल नाग जिहि जरता राख्या पदवी दई फणीश्वर की।
इत्यादि

होली का आध्यात्मिक रंग देखिए, सुमति गोरी अपने पति चेतन के साथ होली खेल रही है–

आतम ग्यान तणी पिचकारी, चरचा केसरी छोरो री
चेतन पिय पै सुमति तिया तुम, समरस जल भर छोरो री।[1]

पंचमास चतुर्दशी व्रतोद्यापन और ज्ञानपच्चीसी की हस्तप्रतियाँ ढोलियों के जैन मंदिर, जयपुर के ज्ञानभंडार में उपलब्ध हैं।

सुरेन्द्रकीर्ति II—दिग० संत सुरेन्द्रकीर्ति नामक कई मिलते हैं। काष्ठासंघ नंदीतट गच्छीय इन्द्रभूषण के एक शिष्य का नाम भी सुरेन्द्रकीर्ति था। इन्होंने भी कल्याण मंदिर, एकीभाव विषापहार और भूपाल स्तोत्र आदि का हिन्दी छप्पय आदि छंदों में रूपान्तरण किया है। इन्होंने कोई मौलिक रचना नहीं की। इनका समय भी १८ वीं शताब्दी (१७४४–१७७४) माना जाता है। इन्द्रभूषण के पश्चात् ये भट्टारक पद पर भी प्रतिष्ठित हुए थे।

---

१. डा० प्रेमसागर जैन – हिन्दी जैन भक्तिकाव्य और कवि पृ० २९८-३००।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

III सुरेन्द्रकीर्ति——बलात्कारगण जेरहट शाखा के सकलकीर्ति के पश्चात् सं० १७५६ में ये भट्टारक पद पर आसीन हुये थे, इनकी कोई मरुगुर्जर (हिन्दी) की रचना अब तक उपलब्ध नहीं हो सकी है।

IV सुरेन्द्रकीर्ति—ये भट्टारक नरेन्द्रकीर्ति के शिष्य थे। इनके बचपन का नाम दामोदर दास था। ये काला गोत्रीय खण्डेलवाल श्रावक थे। बड़े संयमी और विद्याव्यसनी थे। इनके गुणों पर मुग्ध होकर भट्टारक नरेन्द्रकीर्ति ने इन्हें अपना प्रमुख शिष्य बनाया और सं० १७२२ में इन्हें भट्टारक की गादी पर बैठाया गया। सांगानेर में इस अवसर पर बड़ा उत्सव किया गया था। उसी समय इनका नाम सुरेन्द्रकीर्ति रखा गया। ये संयम, साधना और शास्त्र के साथ साहित्य के भी पारखी थे। इनके समय आमेर शास्त्र भंडार की अच्छी प्रगति हुई। नवीन प्रतियाँ लिखवाई गई और अनेक ग्रंथों का जीर्णोद्धार हुआ। अब तक इनकी किसी मौलिक हिन्दी कृति का पता नहीं चल पाया है, संभवतः खोज के प्रश्चात् इनकी कोई रचना प्राप्त हो जाय। उक्त दोनों सुरेन्द्रकीर्ति नामक भट्टारकों की रचनायें यद्यपि नही मिली हैं परंतु इन लोगों ने साहित्य साधना के क्षेत्र में अच्छा योगदान किया था।[1]

सेवक—आप कवि लोहट के गुरु थे। तदनुसार इनका भी समय १८ वीं (वि०) शती का प्रथम चरण ही होना निश्चित है। इनकी दो रचनायें और पचासों पद प्राप्त हैं। प्रथम रचना 'नेमिनाथ का दस भव वर्णन' है। यह रचना चौधरियान मंदिर, टोंक में उपलब्ध है। इसमें नेमिनाथ और राजीमती के दस जन्मों के अनन्य संबंध पर प्रकाश डाला गया है। इनकी दूसरी रचना 'चौबीस जिनस्तुति' जैनमंदिर निवाई (टोंक) में सुरक्षित है। इसमें कुल ३० छंद हैं। इनके पद जयपुर के छाबड़ों के मंदिर और तेरहपंथी मंदिर के गुटका नं० ४७ और पद संग्रह नं० ९४६ में संकलित हैं। इनके शिष्य लोहट अच्छे कवि थे। उनका परिचय इसी खण्ड में यथास्थान 'लोहट' नाम से दिया जा चुका है।[2]

---

१. डा० कस्तूरचंद कासलीवाल—राजस्थान के जैन संत, पृ० १६९-१७०।

२. डा० गंगाराम गर्ग का लेख—राजस्थान का जैन साहित्य सम्पादक अगरचन्द नाहटा, कस्तूरचन्द कासलीवाल पृ० २१९।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सेवक नामक एक अन्य कवि मन्नाराम के पुत्र थे, उन्होंने 'नेम-वत्तीसी' नामक रचना सं० १७७८ में पूर्ण की थी।[1]

इसका विवरण-उद्धरण नही प्राप्त हो सका है।

सौभाग्य विजय--आप तपागच्छीय साधुविजय के शिष्य थे। इन्होंने विजयदेव सूरि सञ्झाय (५७ कड़ी) सं० १७१३ के पश्चात् जूनागढ़ में पूर्ण की। विजयदेव सूरि सं० १७१३ में स्वर्गवासी हुए, अतः यह रचना उसके बाद ही किसी समय लिखी गई होगी। इसका प्रारंभ इन पंक्तियों से हुआ है—

सरस सुमति आपो मुझ सरसति, वरसती वचन विलास रे,
श्री विजयदेव सूरीसर साहिब, गायतां अतिहि उल्लास रे।

अंत–इम त्रिजग भूषण दलित दूषण श्री विजयदेव सूरीसरो,
ऋद्धि वृद्धि कल्याण कारण, वांछित पूरण सुरतरो।
इम थुण्यो जीरणगढ़ मांहि अति उच्छाहि अे गुरो,
श्री साधुविजय कविराय सेवक सौभाग्यविजय मंगल करो।[2]

यह रचना जैन ऐतिहासिक काव्य संचय[3] और ऐतिहासिक सञ्झाय माला भाग १ में प्रकाशित है। इस सञ्झाय से ज्ञात होता है कि विजयदेव सूरि ईडर निवासी थिरा ओसवाल की पत्नी लाडिम दे की कुक्षि से सं० १६३४ में पैदा हुए थे। सं० १६४३ अहमदाबाद में विजयसेन सूरि से दीक्षिप्त हुए थे। सं० १६५६ खंभात में इन्हें आचार्य पद और सं० १६७१ में भट्टारक पद प्रदान किया गया था। सं० १६७४ में सम्राट् जहाँगीर ने महातपा विरुद प्रदान किया। मेवाड़ के राणा जगतसिंह और जामनगर के जामसाहब ने भी इन्हें राजसम्मान दिया था। ये प्रख्यात साधु और आचार्य थे, सं० १७१३ में इनका स्वर्गवास हुआ था। यह रचना सौभाग्यविजय ने विजयप्रभ सूरि के समय पूर्ण की थी।

---

१. उत्तमचन्द भंडारी की सूची, प्रतिस्थान पार्श्वनाथ शोधपीठ, वाराणसी
२. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० १८० (प्र०सं०) और भाग ४, पृ० २५८-२५९ (न०सं०)।
३. जैन ऐतिहासिक काव्यसंचय, विजयदेवसूरि निर्वाण सञ्झाय।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सौभाग्यविजय नामक कई रचनाकार इसी समय के आस-पास हुए जिनका परिचय संक्षेप में आगे दिया जा रहा है।

सौभाग्य विजय ।। आप तपागच्छीय हीरविजय सूरि > सोम-विजय > चरित्रविजय > सत्यविजय > लालविजय के शिष्य थे। इनके पिता मेड़ता के साह नरपाल थे और माता का नाम इन्द्राणी था। इन्होंने विजयसेन सूरि के शिष्य वाचक कमलविजय के शिष्य सत्य-विजय से सं० १७१९ में दीक्षा ली। सं० १७६२ में इन्होंने औरंगाबाद में चौमासा किया और वहीं कार्तिक कृष्ण सप्तमी शनिवार को स्वर्ग-वासी हुए। रामविमल ने 'सौभाग्यविजय निर्वाणरास' इनके स्वर्ग-वासी होने के पश्चात् लिखा है।

इनकी दो रचनायें-सम्यक्त्व ६७ बोल स्तव और तीर्थमाला स्तवन मरुगुर्जर में उपलब्ध हैं जिनका विवरण दिया जा रहा है। सम्यक्त्व ६७ बोल स्तवन १७४२ भाद्र कृष्ण ११, समाणा में रचित है। इनकी दूसरी रचना 'तीर्थमाला स्तवन' प्रकाशित हो चुकी है। यह सं० १७५० में लिखी गई थी। इसमें कवि ने पूर्व देश के तीर्थों का वर्णन करने के बाद गुजरात, काठियावाड़ और मारवाड़ के तीर्थों का भी वर्णन किया है।

यात्रा का प्रारम्भ सं० १७४६ में आगरा के चातुर्मास से हुआ। इस स्तवन का आदि इस प्रकार है—

> आणंद दाइ आगरें, प्रणमुं पास जिणंद,
> चिंतामणि चिंताहरण केवल ज्ञान दिणंद।

अंत— अनड अकव्वर यवन पातिसाह प्रतिबोध्यो गुरु हीर जी,
संवत सोले गतालाय वरसे फत्तेपुर मां सधीर जी।

इसी साल फतहपुर में हीर जी ने बादशाह अकबर से भेंट की थी।

गुरुपरंपरा—तास सीस वाचक पद धारक सोमविजय सुखकार जी,
चारित्र आदि विजय उवझाया सत्यविजय सुविचार जी।
तास सीस पंडित पदधारी, लालविजय गणिराय जी,
दिल्ली पति अवरंगजेब स्युं, मिल्या आगरे आय जी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रचनाकाल इस कलश में बताया गया है--

ये तीर्थमाला अति रसाला, पंच कल्याणक तणी,
संवत सतर सै पंचाश वर्षे लाभ जाणी में भणी।
श्री विजयरत्न सूरीश गछपति, सदा संघ सुहंकरो,
गुरु लालविजय प्रसाद पभणे, सौभाग्यविजय जयकरो।[१]

यह रचना प्राचीन तीथमाला संञ्झाय में पृ० ७३ से १०० पर प्रकाशित है। श्री देसाई ने जैन गुर्जर कवियो के प्रथम संस्करण में गुरु परंपरा सोमविजय > चारित्रविजय 7 सत्यविजय के रूप में दर्शाई थी, परंतु ये तीनों ही हीरविजय के शिष्य हो सकते हैं।

एक **अन्य सौभाग्यविजय** का उल्लेख मिलता है जिनकी रचना का नाम 'चौबीसी' और भाषा मरुगुर्जर बताया गया है। रचनाकाल सं० १७५० के आसपास है। हो सकता है ये उपर्युक्त सौभाग्यविजय ही हों। इनका विशेष विवरण तथा रचना का उद्धरण उपलब्ध न होने से कुछ निश्चित रूप से कहना कठिन है।

हंसरत्न—तपागच्छीय राजविजयसूरि के गच्छ के हीररत्न > लब्धिरत्न > सिद्धिरत्न > राजरत्न > लक्ष्मीरत्न > ज्ञानरत्न के आप शिष्य थे। आप उदयरत्न के सहोदर थे और दीक्षा में काका गुरुभाई; आपके पिता पोरवाड शा वर्धमान थे तथा माता मानबाई थीं। आपका मूल नाम हेमराज था। उदयरत्न ने हंसरत्न संज्झाय लिखी है। आपका स्वर्गवास मियागांव में १७९८ चैत्र शुक्ल ९, शुक्रवार को हुआ था। आपने कई रचनाएँ मरुगुर्जर में की हैं, कुछ का परिचय प्रस्तुत है—

चौबीसी (सं० १७५५) माघ वद ३ मंगलवार) का आदि–

श्री ऋषभदेव स्तवन अजब रंगावो साहेबा चूनडी यह देशी
सकल वंछित सुख आपवा, जंगम सुरतरु नेह,

अन्त— में गाया रे इम जिन चोबीशे गाया।

---

२. मोहनलाल दलीचन्द देसाई–जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० ४१८-१९, भाग ३, पृ० १३६७-६८ (प्र० सं०) और वही भाग ५, पृ० ४३-४४ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रचनाकाल और गुरु परंपरा–

संवत सतर पंचावन वरषे, अधिक उमंग बढ़ाया,
माघ असित तृतीया कुजवासरे, उद्यम सिद्ध चढ़ाया रे।
तपगणगगन विभासन दिनकर, श्री राज्यविजय सूरीराया,
शिष्यलेस तसु अन्वय गणिवर, ग्यानरत्न मन भाया रे।
तस्य अनुचर मुनि हंस कहे इम, आज अधिक सुख पाया,
जिन गुण ज्ञाने बोधे गावे, लाभ अनंत उपाया रे।[1]

यह चौबीसी 'चौबीसी बीसी संग्रह' पृ० ३६८-८९ पर प्रकाशित है। यह स्तवनमंजूषा में भी छपी है। आपकी दूसरी रचना है–

शिक्षा शत दुहा अथवा आत्मज्ञान बोधक शतक (सं० १७८९ फागण वदी ५ गुरु, ऊना,

आदि–– सकल शास्त्र जे वर्णव्यो, वर्णन मात्र अगम्य,
अनुभव गम्य ते नित्ति नमु, परमरूप परब्रह्म।
सोपाधिक दृष्टि ग्रह्यो, दीसे जेह अनेक,
निरुपाधिक पद चिंतता, जे अनेक थइ एक।

अन्तिम दो दोहे इस प्रकार हैं–

सूर्य गमि नहि धुंक ने, जलद जवासा गात्रि,
तोपणि महिमा तेहनो, न घटि इक तिल मात्र।
नय प्रमाण रत्ने भर्यो, जे गंभीर अगाध,
जिनमत रत्नाकर जपो, अवितथ वाक्य अबाध।

रचनाकाल––

सत्तर सें छयासी समें, अे शिक्षाशत सार,
फागुण वदि पंचम गुरौ, रच्यौ उनाइ मझार।
अे शिक्षाशत जे सुगुण, भणी धरी मनभाव,
हंसरत्न कहि तसु घरि, जयकमला थिर थाय।[2]

आपने गद्य में 'अध्यात्म कल्पद्रुम पर बालावबोध' भी लिखा है। यह बालावबोध 'प्रकरण रत्नाकर भाग ३' में प्रकाशित है। इस प्रकार

२. मोहनलाल दलीचन्द देसाई - जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० ५६१-६२, भाग ३, पृ० १४५०-५१ (प्र०सं०) और भाग ५, पृ० १५७-१५८ (न०सं०)।

२. वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हंसरत्न गद्य और पद्य दोनों विधाओं में मरुगुर्जर के सक्षम रचनाकार थे। आपकी गद्य रचना का नमूना नहीं प्राप्त हो सका।

हंसराज—आप खरतरगच्छ के जिनराज के प्रशिष्य एवं वर्धमान सूरि के शिष्य थे। आपने 'द्रव्यसंग्रह बालावबोध' की रचना सं० १७०९ से पूर्व की। यह दिगंबर कवि नेमिचंद्र कृत प्राकृत की 'द्रव्य-संग्रह' नामक मूल रचना पर बालावबोध है।

द्रव्यसंग्रह शास्त्रस्य बालबोधो यथामतिः
हंसराजेन मुनिना परोपकृतये कृतः
पौर्वापर्यविरुद्धं यल्लिखितं मयका भवेत,
विशोध्यं धीमता सर्वं तदाधाय कृपां मयि।
खरतरगच्छ नभो गण तरणीनां वर्द्धमान सूरीणां;
राज्ये विजयतितिष्टा नीतोय सहसि मासेव।

आपने पद्य में 'ज्ञान द्विपंचाशिका अथवा ज्ञान बावनी (५२ कड़ी) हिन्दी में लिखी।

इसका प्रथम छंद—

ऊंकार रूप ध्येय गेय है न जातें,
पर परतत मत छहुं माँहि गायो है।
जाको भेद पावै स्यादवादी वादी और कहो,
जानै मानै जातें आपा पर उरझायो है।
दरब तै सरबस एक है अनेक तो भी,
परजै प्रवान परि परि ठहरायो है।
अेसो जिनराय राजा राज जाके पाय पूजै,
परम पुनीत हंसराज मन भायो है।

इसका अन्तिम छंद निम्नांकित है–

ज्ञान को निधान सुविधान सूरि वर्धमान,
भान सो विराजमान सूरि रवपाट ज्यूं।
परम प्रवीन-मीनकेतन नवीन जग,
साधु गुनधारी अपहारी कलि काट ज्यूं।
ताको सुप्रसाद पाय हंसराज उवझाय,
बावन कवित्त मनि पोये गुन पाट ज्यूं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अरथ विचार सार जाको बुध अवधारि,
डोलै न संसार खोलै करम कपाट ज्यूं।[१]

इस रचना की प्रति राजकोट के मोटा संघ के अपासरा ज्ञान भंडार में सुरक्षित है। इस रचना द्वारा यह प्रमाणित हो गया कि हंसराज मरु गुर्जर और निर्मल हिन्दी दोनों भाषा शैलियों के साथ ही गद्य और पद्य दोनों साहित्यिक विधाओं में अच्छी रचनाएं कर सकते थे। ऐसे सक्षम कवि की केवल एक एक गद्य पद्य की रचना उपलब्ध हुई है। सम्भव है कि खोज करने पर इनकी अन्य रचनाएं भी उपलब्ध हों।

हर्षकीर्ति--आपने सं० १७४७ में 'नेमीश्वर जयमाल'[२] की रचना की। इसकी प्रतिलिपि दिगंबर जैन मंदिर फतहपुर के गुटका नं० ६४ में उपलब्ध है।

हरषचद साधु आपने सं० १७४० में 'श्रीपाल चरित्र' लिखा[३]। आपके व्यक्तित्व एवं कृतित्व से सम्बन्धित अन्य कोई विवरण अथवा उद्धरण नहीं प्राप्त हो सका।

हर्षचंद--हर्षचन्द १८वीं शती में कई हैं। प्रस्तुत हर्षचन्द पार्श्वचन्द्रगच्छीय थे। इन्होंने 'वर्द्धमान जन्ममंगल' की रचना की है।[४] रचना सम्बन्धी अन्य विवरण-उद्धरण नहीं उपलब्ध है।

हर्षनिधान--संभवतः ये अंचलगच्छीय साधु थे। गुरुपरंपरा अज्ञात है। इन्होंने सं० १७८३ से पूर्व 'रत्न समुच्चय बालावबोध'[५] लिखा है। इनका भी विवरण अप्राप्त है।

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई–जैन गुर्जर कवियो, भाग १, पृ० ५९३, भाग ३ पृ० ८०६-७ (प्र०सं०) और भाग ४, पृ० १६५-६६ (न०सं०)।
२. उत्तमचंद कोठारी नेमिराजीमती रचना सूची, प्राप्तिस्थान पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी।
३. मोहनलाल दलीचन्द देसाई–जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० ३५९ (प्र०सं०) और भाग ५, पृ० ३७ (न०सं०)।
४. वही भाग ३, पृ० १४७१ (प्र० सं०) और भाग ५, पृ० ३७२ (न०सं०)
५ वही भाग ३, पृ० १६४१ (प्र०सं०) और भाग ५, पृ० ३२० (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हर्षविजय—आप तपागच्छ के प्रभावक आचार्य विजयदेव सूरि के प्रशिष्य एवं साधुविजय के शिष्य थे। आपने सं० १७२९ में 'पाटण चैत्य परिपाटी स्तवन' नामक ९ ढाल की रचना पाटण में की। इसका प्रारम्भ इस प्रकार है–

समरीय सरसती सामिनि, अे प्रणमीं गुरुपाय;
पाटण चैत्य प्रवाडी स्तवन करतां सुख थाय।

रचनाकाल—

संवत सतर ओगणत्रीसे पाटण कीध चोमास हो, जिन जी,
वाचक सौभाग्यविजय गुरु, संघनी पोहती आस हो।

इसमें विजयदेव, विजयप्रभ और साधुविजय की गुरुओं के रूप में वंदना की गई है। इसकी अंतिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं--

कलश—

इम तीर्थमाला गुण विशाला पवर पाटणपुर तणी,
में भगति आणी लाभ जाणी थुणी यात्राफल भणी।
तपगच्छनायक सौख्यदायक श्री विजयदेव सूरीसरो,
साधुविजय पंडित सेवक, हर्षविजय मंगलकरो।[1]

हर्ष--पता नहीं ये हर्षकीर्ति, हरषचन्द या हर्षचन्द में से ही कोई हर्ष हैं या भिन्न ? इनकी रचना 'चन्द्रहंस कथा' का[2] नामोल्लेख डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल ने किया है परन्तु कोई अन्य विवरण नहीं दिया है।

हरिकिसन--आपने 'भद्रबाहु चरित' की रचना सं० १७८७ की।[3] अन्य विवरण अप्राप्त है।

हरिराम--आपने छंद शास्त्र पर एक रचना 'छंद रत्नावली' नाम से सं० १७०८ में लिखी। इसकी पद संख्या २११ है। इसके प्रति का रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है–

---

१. वही भाग ३, पृ० १२७१-७२ (प्र०सं०)।
२. कस्तूरचन्द कासलीवाल--राजस्थान के जैन शास्त्रभंडारों की ग्रंथसूची, भाग ४।
३. वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राग नभ निधी चन्द कर सो संवत शुभ जानि,
फागुण वदी त्रयोदशी मांझु लिखी सो जांनि ।

इससे १९०७ संख्या निकलती है, यह रचनाकाल न होकर प्रति का लेखन काल हो सकता है । अन्तिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं–

ग्रन्थ छंद रत्नावली सारथ याको नाम,
भूक्षन भरती तें भयो कहे दास हरिराम ।२११।

इति श्री छंद रत्नावली सम्पूर्ण[1]

हस्तरुचि--ये तपागच्छीय लक्ष्मिरुचि>विजयकुशल>उदयरुचि>हितरुचि के शिष्य थे । इन्होंने 'चित्रसेन पद्मावती रास' सं० १७१९ विजयदशमी, अहमदाबाद में लिखा । इसके प्रारम्भ में कवि ने अपने गुरु की वंदना करते हुए लिखा है--

श्रीमद् ॐ हितरुचि गणि गुरुभ्यो नमः,

हितरुचि ने संस्कृत में (सं० १७०२) नलचरित्र लिखा था ।

दूहा-- श्री जिनपति प्रणमु सदा, रंगे ऋषभ जिणंद,
प्रणमे पदकंज जेहना, सहजे सकल सुरेन्द्र ।

इस क्रम में शांतिनाथ, शंखेश्वर और महावीर की वंदना के पश्चात् गौतम गणधर, सरस्वती और गुरु की पुनः वन्दना की गई है । इस रास में शील का महत्व प्रतिपादित किया गया है, यथा--

सीलें सहजें संपदा, सीलें लील विलास,
सीलें सिव सुख पामीइं, सीलें पुहचि आस ।
चित्रसेन पद्मावती पामा अविचल राज,
सील पसायें तेहना सीधाँ वंछित काज ।

गुरुपरंपरा लिखते समय कवि ने सूरि हीरविजय और सम्राट् अकबर की भेंट का उल्लेख किया है, तत्पश्चात् विजयसेन, विजयदेव और लक्ष्मीरुचि आदि गुरुओं का स्मरण किया है । लेखक का नाम इन पंक्तियों में है--

---

१. कस्तूरचन्द कासलीवाल—राजस्थान के जैन शास्त्रभंडारों की ग्रंथसूची भाग ३, पृ० ८८ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सा सामिनी सुपसाउले, सिद्धांतसार अे ग्रन्थ,
रसिक लोक वल्लभ रचिओ, कहे हस्तरुचि निग्रन्थ।

रचनाकाल--

संवत सतर सतरोत्तरि, विजयदसमी शुभ दिन्न,
अहमदाबाद अल्हाद सुं श्री संघ सहु सुप्रसन्न।

अन्त-- तपगच्छि दीप कुमति जीपे उवझाय हितरुचि हितकारो,
तस सीस हस्तरुचि अेम पभणें, सकल मंगल जयकरो।[1]

आपकी एक रचना 'झांझरिया मुनि संञ्झाय' भी है, किन्तु इसका विवरण-उद्धरण नहीं मिला। श्री मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने अपनी पुस्तक जैन गुर्जर कवियों में आपकी तीसरी रचना उत्तराध्ययन स्वाध्याय का भी उल्लेख किया था किन्तु नवीन संस्करण में उसे उदयविजय की रचना बताया गया है।

हिम्मत—गुरुपरंपरा अज्ञात, रचना - अक्षर बत्रीसी आत्महित शिक्षा रूप ३५ कड़ी सं० १७५० उदेपुर) की प्रारम्भिक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

कक्का ते किरिया करो, कर्म करो चकचूर,
किरिया विण रे जीवड़ा, शिवनगर छे दूर।

अन्त-- संवत सत्तर पच्चास मां, समकित कियो वखाण,
उदयापुरे उद्यम कियो, ते मुनि हिम्मत जाण।[2]

पंक्तियों से स्पष्ट है कि हिम्मत श्रावक या गृहस्थ नहीं बल्कि मुनि थे, लेकिन इनका अन्य विवरण अज्ञात है।

हीराणंद (हीरानन्द)—पल्लीवाल चन्द्रगच्छीय अजितदेव सूरि के शिष्य थे। इन्होंने चौबीसी चौपाई की रचना सं० १७७० से पूर्व किया था।[3]

---

१ मोहनलाल दलीचंद देसाई--जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० १८४-१८६, भाग ३, पृ० १२-१३ (प्र०सं०) और भाग ४, पृ० २८२ (न०सं०)।

२. वही भाग २, पृ० ४१९-४२० (प्र०सं०) और भाग ५, पृ० ११६-११७ (न०सं०)।

३. वही भाग ३, पृ० १४२२ (प्र०सं०) और भाग ५, पृ० २७८ (न०सं०) और अगरचन्द नाहटा—परम्परा, पृ० ११३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीराणंद नामधारी कवि की एक रचना 'नेमिनाथ संज्झाय (२१ कड़ी) का भी उल्लेख मिलता है जिसके आदि की पंक्ति है-

उत्राधेन मन्झारि कहियो स्वामी वीर जिणो।

और अन्तिम पंक्ति है —

भणिइ हीरानन्द सति करो।[1]

पता नहीं ये हीरानन्द और ऊपर वाले हीराणंद एक ही हैं अथवा भिन्न-भिन्न ? यह शोध का विषय है।

हीराणंद हीरमुनि--आप लोंकागच्छीय (गुजराती गच्छ) वीरसिंह 7 जैमलजी > झंझण 7 तेजसी के शिष्य थे। आपने 'सागरदत्त रास' (४५ ढाल ७०४ कड़ी सं० १७२४ विजयादसमी, जालोर) की रचना की, इसका आदि-

अगरचन्द नाहटा इसका रचनाकाल १७४४ बताते हैं —

श्री आदीसर आदि देवं अतुलीबल अरिहंत,
चोवीसे वांदु चतुर भयभंजण भगवंत।

यह दान के महत्व का प्रतिपादन करती है, यथा—

गाऊं तास पसाय गण, उगति अनूप उपाय,
दान दीउ जिम देवदत्त, चरित रचुं चितलाय।
चतुर तणो चित रंजयण, कहिसु कथाकल्लोल,
कविरस कौतिक कान दइ, अे संभलो इलोल।

रचनाकाल —संवत वेद युग जाणीई, मुनि शशि वर्ष उदार,
मेदपाट माँहे लिख्यो, विजइदशम दिन सार।

गुरुपरंपरा —लुंकइ गछ लायक यती वीर सीह जेमाल,
गुरु झांझण श्रुतकेवली, थिवर गुणे चोसाल।
श्री गछनायक तेजसी, जब लग प्रतपो भाण,
हीर मुनि आसीस दइ, होजे कोडि कल्याण।

अन्त — सरस ढाल सरसी कथा, सरसो सहु अधिकार,
हीरमुनि गुरुनाम थी, आणंद हर्ष उदार।[2]

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग ५, पृ० ४०१-२ (न०सं०)।

२. वही भाग २ पृ० २४८-२५१ और भाग ४ पृ० ३४३-३४६ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कवि अपना नाम प्रायः हीरमुनि ही लिखता है और इसकी गच्छ परम्परा भी स्पष्ट ज्ञात है इसलिए यह ऊपर के हीराणंद से भिन्न कवि है। इनकी दूसरी रचना है—उपदेश रत्नकोश कथानके अमृत मुखी चतुष्पदी (३२ ढाल ७०० कड़ी सं० १७२७ आसो शुदी २, मेदिनीपुर या मेड़ता) का आदि--

श्री आदि सरि आदि धुरि, अतिशयवंत अधीश,
चउवीसे जिन चोपस्युं वंदु विसवा बीस।

कवि कथा का सार बताता हुआ कहता है--

श्रोता मनि आदर सरस, वक्ता मनि विस्तार,
बिहुं मनि आणंद ऊपजइ, तो सरस कथारस सार।

रचनाकाल—

संवत सतर सत्तावीसमि अति भलो आसू मास ललना,
द्वितीया तिथि चढ़ती कला, मंगलिक दिन उल्हास ललना।

इस रचना में भी वही गुरुपरंपरा बताई गई है जो सागरदत्त रास में बताई गई थी। इसलिए इन दोनों रचनाओं के कर्त्ता हीरमुनि लोंकागच्छीय हीर या हीराणंद है।[१] अगरचन्द नाहटा ने इन दोनों रचनाओं का उल्लेख किया हैं लेकिन उन्होंने उद्धरण नहीं दिया है।[२]

हीर उदयप्रमोद —आपके गुरु सूरचन्द वाचक थे। आपने सं० १७१९ में अपनी रचना 'चित्रसंभूति चोढालीउ'' जैसलमेर में पूर्ण की।[३] अन्य विवरण उद्धरणादि अनुपलब्ध हैं।

हीरसेवक (हरसेवक) ने मयणरेहा रास या संञ्झाय सं० १७७४ कुकड़ी में लिखा।[४] इसका भी विवरण-उद्धरण अनुपलब्ध है। इसका

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग ४, पृ० ३४३-३४६ (न०सं०)।
२. अगरचन्द नाहटा परंपरा पृ० ११३।
३. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग ३, पृ० १२१५ (प्र० सं०)।
४. वही भाग १, पृ० १७ (प्र०सं०) भाग ३, पृ० १४२२ (प्र०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उल्लेख श्री देसाई ने जैन गुर्जर कवियो, भाग १, पृ० ३०० पर किया था पर रचनाकाल सं० १४६३ बताया था, बाद में भाग तृतीय में इसमें संशोधन किया और रचनाकाल सं० १७७४ स्वीकार किया। नवीन संस्करण में इसका उल्लेख नहीं मिला। संदिग्ध रचनाकाल है फिर भी समय १८वीं शती बताया गया अतः यहां उल्लेख कर दिया गया है।

पं० हीरानन्द—इनका रचनाकाल १८वीं शती का प्रथम चरण माना जाता है। ये शाहजहानाबाद में रहते थे। जगजीवन के आग्रह पर इन्होंने 'पंचास्तिकाय' का पद्यानुवाद मात्र दो माह में पूर्ण किया था।[1] यह आचार्य कुन्दकुन्द की प्राकृत रचना है। इससे हीरानंद की विद्वत्ता और बहुभाषाज्ञान का परिचय मिलता है। उस समय आगरा में ज्ञानियों की मंडली थी जिसमें संघवी जगजीवन के अलावा पं० हेमराज, संघी मथुरादास, भगवतीदास आदि के साथ पं० हीरानंद भी शामिल थे। पंचास्तिकाय भाषा की रचना सं० १७११ में हुई, कविता मध्यम कोटि की है, दो उदाहरण प्रस्तुत हैं-

सुख दुख दीसै भोगना, सुख दुख रूप न जीव,
सुख दुख जाननहार है, ज्ञान सुधारस पीव। ३२१
संसारी संसार में, करनी करै असार,
सार रूप जानै नहीं, मिथ्यापन को टारि। ३२४

आपने प्राकृत के एक अन्य ग्रंथ द्रव्य संग्रह का भी हिन्दी पद्यानुवाद द्रव्यसंग्रह भाषा नाम से किया है। मूल ग्रंथ के लेखक जीवकाण्ड और कर्मकाण्ड के रचयिता आचार्य नेमिचंद हैं। इसमें छः द्रव्यों का वर्णन है। यह अनुवाद भी प्रकाशित है। समवशरण स्तोत्र (सं० १७०१ श्रावण शुक्ल ७ बुध) रचनाकाल इस प्रकार लिखा गया है—

एक अधिक सत्रह सौ समे, सावन सुदि सातमि बुध रमे,
ता दिन सब संपूरन भया, समवसरन कहवत परिनया।

संघवी जगजीवन ने संस्कृत का आदि पुराण पं० हीरानंद को पढ़ने के लिए दिया था, उसकी सहायता से उन्होंने यह रचना की है। इसमें ३०१ पद्य हैं। समवशरण की शोभा का वर्णन निम्नलिखित छंदों में देखिये—

---

१. नाथूराम प्रेमी—हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास, पृ० ६०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रतन सिषर नभ मैं छवि देत, देव देखि उपजावत हेति,
रंगभूमि तिनि साला मांहि, ऐसी सोभा और कहुं नाहिं।
तिनमें नर्त्तत अमरांगना, हाव भाव विधिनाटक घना,
चंचल चपल सोभ बीजुली, जनु सोभा घन विचि ऊछली।
किंनर सुर कर वीणा लिए, गावत मधुर मधुर इक हिये,
सुनि मुनि मोहैं कौतूहली, साता जिन सुमरैं भूबली।[1]

एकीभाव स्तोत्र--यह वादिराज सूरि के संस्कृत एकीभाव स्तोत्र का आलम्बन लेकर लिखी गई कृति है। इसकी रचना सं० १८१९ से पूर्व हो चुकी थी क्योंकि उस समय की लिखी इसकी प्रतिलिपि जयपुर के बड़ा मंदिर के पुस्तक भंडार में सुरक्षित है। भूधरदास ने भी एक एकीभाव स्तोत्र रचा था पर उससे इसकी भाषा सरल, रचना सरस और गति प्रवाहपूर्ण है।

पं० हीरानंद ने प्रायः भाषान्तरण किया है। इनकी किसी मौलिक कृति का पता नहीं चला है, पर अपनी रचनाओं द्वारा वे संस्कृत, प्राकृत और हिन्दी तीनों भाषाओं के पारंगत विद्वान् सिद्ध होते हैं।

हेमकवि-अंचलगच्छ के आचार्य कल्याणसागर सूरि आपके गुरु थे। इनकी रचना का नाम 'मदनयुद्ध' है। यह सं० १७७६ की कृति है। इसका संपादन अंबालाल प्रेमचन्द शाह ने किया है; यह रचना आनंद शंकर ध्रुव स्मारक ग्रन्थ में प्रकाशित हुई है। इसमें मदन और रति का संवाद है। कल्याणसागर सूरि की संयम साधना से कामदेव पराजित हो जाता है, तो रति काम से कहती है—

और उपाय को कीजिइं ज्यो यह माने मोंहे,
चूप रहो अजहूं लज्जा नहीं, काहा कहूं पीय तोहें।

हेम कवि ने जोधपुर वर्णन गजल लिखी है। १७वीं शताब्दी से ऐसे नगर वर्णन की परम्परा खड़ी बोली में गजल नाम से प्रारम्भ हुई, ऐसी कुछ गजलों का नामोल्लेख इसी ग्रंथ के प्रथम खंड में किया जा चुका है। सचित्र विज्ञप्ति पत्र, जो जैनाचार्यों को अपने नगर में पधारने व चातुर्मास करने के लिए विनती रूप में नगरवासियों द्वारा भेजे जाते थे, उनमें उस नगर का वर्णन प्रायः गजलों में लिखा जाने

---

१. प्रेमसागर जैन—हिन्दी जैन भक्तिकाव्य और कवि, पृ० २३०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लगा था। इस प्रकार की गजले गुलाबविजय, मनरूप और लावण्य कमल आदि कवियों की उपलब्ध है।[1] जोधपुर गजल के लेखक सम्भवतः मदनयुद्ध के लेखक हेमकवि से भिन्न हैं।

पांडे हेमराज - आप दिगंबर मुनि रूपचंद के शिष्य थे। इनका जन्म सांगानेर (जयपुर राज्यान्तर्गत) में हुआ था, परन्तु ये कामागढ़ में बस गये थे। वहाँ के शासक उस समय कीर्तिसिंह था। इन्होंने अपने गुरु से जैन सिद्धांत शास्त्रों का गहन अध्ययन किया और प्रगाढ़ पंडित हो गये थे। ये संस्कृत और प्राकृत के पारंगत विद्वान् थे किन्तु हिन्दी में ही लिखते थे। इन्होंने प्रवचनसार की भाषाटीका सं० १७०९, परमात्म प्रकाश की सं० १७१६ में, गोम्मटसार कर्मकांड की सं. १७१७ में, पंचास्तिकाय की १७२१ में और नयचक्र की भाषाटीका सं० १७२६ में लिखी। इन सबमें लेखक के पुष्ट गद्य के प्रणाम मिलते हैं। इन लेखकों की गणना हिन्दी साहित्य के गद्य ग्रंथकारों में न किए जाने से हिन्दी गद्य का इतिहास बीसवीं शती से प्रारंभ किया जाता है जबकि जैन टीका, टब्बा आदि में वह काफी पहले से मिलने लगता है।

गद्य लेखक के साथ आप अच्छे कवि भी थे। आपने प्रवचनसार का पद्यानुवाद भी किया है। इसकी पद्य संख्या ४३८ है। इन्होंने कुँअरपाल की प्रेरणा से सितपट चौरासी बोल की रचना की जिसके उत्तर में यशोविजय ने दिक्पट चौरासी बोल लिखा था। उन्होंने (यशोविजय) लिखा है—

हेमराज पाण्डे किये, बोल चुरासी फेर,
था बिध हम भाषा बचन, ताको मत किये जेर।[2]

सितपट चौरासी बोल अभी अप्रकाशित है।

आपने मानतुंग कृत भक्तामर स्तोत्र का सुंदर पद्यानुवाद किया। अनुवाद होते हुए भी इसमें मौलिक काव्य जैसी सरसता है। आपकी अन्य रचनाओं में हितोपदेश बावनी, उपदेश दोहाशतक और गुरुपूजा उल्लेखनीय हैं। उनकी कविताओं पर वाणारसिया संप्रदाय का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। सितपट चौरासी बोल की कविता का एक नमूना देखिये-

---

१. राजस्थान का जैन साहित्य, पृ० २८३।

२. यशोविजय-दिक्पलट चौरासी बोल १५९ वाँ पद्य।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुनयपोष हतदोष, मोषमुख सिवपद दायक,
गुन मनिकोष सुघोष, रोषहर तोष विधायक।
एक अनंत सरूप संतवंदित अभिनंदित,
निज सुभाव पर भाव भावि भासेइ अमंदित।
अविदित चरित्र बिलसित अमित, सर्वमिलित अविलिप्त तन,
अविचलित कलित निजरस ललित,
जय जिन दलित सु कलित धन।[1]

उपदेश दोहा शतक की रचना १७२५ कार्तिक शुक्ल पंचमी को हुई। इसमें कवि ने संत कवियों की भाँति कहा है तीर्थस्थान, मुंडन तप सब आत्मशुद्धि के बिना व्यर्थ है, यथा—

सिव साधन कौं जानियै अनुभौ बड़ो इलाज,
गूढ़ सलिल भंजन करत सरत न एको नाम।
कोटि वरस लौं धोइये सठसठ तीरथ नीर,
सदा अपावन ही रहत, मदिरा कुंभ शरीर।

हितोपदेश बावनी या अक्षर बावनी सं० १७५७ इसमें अकारादि क्रम से ५८ सवैया है, एक उदाहरण देखें—

मन मेरो उमग्यौ जिन गुण गायबो,
टालत है गर्भवास सिवपुर दीयै।

× × ×

हेमराज भणइ मुनि सुरागें सजन जन
मन मेरो उमग्यौ जिन गुण गायबो।

हिन्दी भक्तामर इनकी प्रसिद्ध रचना है। इसका प्रारंभ इस प्रकार है–

आदि पुरुष आदि जिन, आदि सुबुधि करनार।
धरम धुरंधर परम 'गुरु नमौ आदि करतार।

इसकी प्रशंसा नाथूराम प्रेमी ने की है। इसका खूब प्रचार हुआ। मूल संस्कृत में भक्तामर शार्दूल विक्रीड़ित छन्द में है किन्तु हेमराज ने चौपाई, छप्पय, दोहों में लिखा है। कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं—

१. प्रेमसागर जैन—हिन्दी जैन भक्तिकाव्य और कवि, पृ० २१६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तुम जस जपत जन छिन मांहि, जनम जनम के पाप नसा हिं ।
ज्यौं रवि उगे फटै ततकाल, अलिवत नील निशातम जाल ।

गुरुपूजा—इसमें अष्ट द्रव्यपूजा और जयमाल है। यह पंडित पन्नालाल बाकलीवाल द्वारा संपादित वृहज्जिन वाणी संग्रह में संकलित है। पंचपरमेष्ठी की पूजा में कवि ने लिखा है–

एक दया पालें मुनि राजा, रागद्वेष है हरनपरं,
तीनों लोक प्रगट सब देखैं, चारों आराधन निकरं ।
पंच महाव्रत दुद्धर धारैं, छहों दरब जानें सुहितं,
सात भंगवानी मन लावैं, पावैं आठ ऋद्धि उचितं ।[1]

नेमि राजमती जखड़ी का अंतिम भाग इस प्रकार है–

तीस दिन अरु, निराधार जी । हेम भणे जीन जानिये ।
ते पावे भव पार जी ।

आपने रोहिणी व्रतकथा भी लिखी है ।

द्रव्यसंग्रह भाषा का रचनाकाल सं० १७१९ बताया गया है ।[2]

नयचक्ररास नहीं बल्कि हिन्दी गद्य में लिखित वचनिका है। इसका रचनाकाल सं० १७२६ फाल्गुन शुक्ल १० बताया गया है, यथा–

सतरह से छवीस को संवत फागुण मास,
उजली तिथि दसमी जहां, कीनो वचन विलास ।[3]
हेमराज की वीनति सुनियो सुकवि सुजांन,
यह भाषा नयचक्र की रची सुबुद्धि उनमांन ।

यह वचनिका पं० नरायणदास के उपदेश से कवि ने पूर्ण की थी ।

'इति श्री नयचक्र की पं० नारायणदास उपदेशेन शिष्य हेमराज कृत सामान्य वचनिका संपूर्ण ।'

कवि बुलाकीदास ने पाण्डव पुराण (वि० सं० १७५४) में लिखा है कि उनकी माता जैनी (जैनुलदे) पाण्डे हेमराज की पुत्री थी । हेमराज

---

१. प्रेमसागर जैन–हिन्दी जैन भक्तिकाव्य और कवि, पृ० २१४-२१९ ।
२. कस्तूरचन्द कासलीवाल–जैनशास्त्रभंडार की ग्रंथसूची, भाग ४ ।
३. मोहनलाल दलीचन्द देसाई–जैन गुर्जर कवियो, भाग ४, पृ० ३६८-३६९ (न० सं०) और वही भाग २, पृ० २४६ तथा भाग ३, पृ० १२५६ (प्र०सं०) ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जी का गोत्र गर्ग और जाति अग्रवाल था। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि पाण्डे हेमराज का संपूर्ण परिवार जैन सिद्धांतों और जैन नियमों का निष्ठापूर्वक पालन करने वाला था तथा स्वयं पाण्डे हेमराज जैन विद्या के पारंगत पंडित थे। उन्होंने अनेक महत्वपूर्ण ग्रंथों का भाषानुवाद प्रस्तुत करके जैन विद्या की अच्छी श्रीवृद्धि की थी।

हेमसार—आपकी दो छोटी रचनायें प्राप्त हैं एक पंच परमेष्ठि नवकार सार बेलि और दूसरी सप्तव्यसन बेलि। दोनों नौ कड़ी की लघु कृतियाँ हैं। इनका संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

पंच परमेष्ठि नवकारसार बेलि का प्रारंभ इन पंक्तियों से हुआ है—

सरसति सति रति बोलडा आवहि तिम करि माइं,
जिम गावउ गुरुणा वेलडी, सामिणी तुज्झ पसाइं।

अंत परमक्षर अे परमगुरु, अे परममंत्र दातार,
मनि तनि वचनि जपउ भो भवीया, इम बोलइ हेमसार।
मनिहि न मेहलीइ।

नवकारमंत्र के माहात्म्य के बारे में कवि ने लिखा है—

परम मंत परमक्षर त्रिभुवनि महिमा गुरु नवकारु,
मनिहि न मेहलियउ।

सप्तव्यसन बेलि का आदि-अंत इस प्रकार है :—

आदि–अरिहंत देव सुसाधु सावय फुलि निज धम्म,
पामी पुण्य पसाउलइं हारिम मानुस जम्म।

अंत–वसण फलाफलु जाणि करिम करहु अनु मिच्छतु,
भविय हुअे फजि पालीयइ
जिनभावित समकितु हेमसार भणइ अे परमक्षर
अे परमारथ तत्व हिय।[1]

हेमसागर—आप आंचलगच्छीय कल्याणसागर सूरि के शिष्य थे। आपकी रचना 'छंदमालिका' सूरत के समीप हंसपुर में रचित प्राप्त है। इसमें गुजराती प्रयोगों की अधिकता से अनुमान होता है कि आप

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कवियो, भाग ५, पृ० ४२०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुजराती ही थे। छन्दमालिका में पिंगलशास्त्र संबंधी १९४ पद्य है। इसकी रचनाएं सं० १७०६ में हुई थी। कई भंडारों में इसकी अनेक प्रतियाँ उपलब्ध है। इसकी भाषा शैली का नमूना देने के लिए दो पंक्तियाँ उद्धृत की जा रही हैं --

अलष लष्यौ काहू न परै, सब विधि करन प्रवीन,
हेम सुमति वंदित चरन, घट घट अंतर लीन।

हेमसौभाग्य--तपागच्छीय सागर शाखान्तर्गत सत्यसौभाग्य > इन्द्र सौभाग्य के शिष्य थे। इनकी प्रसिद्ध रचका राजसागर सूरि निर्वाण रास है (७२ कड़ी) जो सं० १७२१ के तत्काल बाद किसी समय लिखी गई होगी क्योंकि राजसागर सूरि का स्वर्गवास सं० १७२१ में हुआ। इसी परंपरा के एक अन्य कवि तिलकसागर ने भी राजासागर सूरि निर्वाण रास सं० १७२१ के लगभग लिखा है जो जैन ऐतिहासिक गुर्जर काव्य संचय में प्रकाशित है। उस संदर्भ में राजसागर सूरि का वृत्तांत दिया जा चुका है; इसलिए उन्हीं तथ्यों को यहाँ दुहराने का कोई अर्थ नहीं है। इसमें गुरु परंपरा इस प्रकार बताई गई है-

श्री विजयसेन सूरि पट्ट प्रभाकर, राजसागर सुरिंद जी,
सकल भट्टारक सिर चूड़ामणि, जगदानंदन चंद जी।

तत्पश्चात् वृद्धिसागर, सत्यसौभाग्य और इंद्रसौभाग्य का सादर नमन किया गया है। आगे कवि कहता है --

तप गच्छ मंडन वाचक नायक सत्यसौभाग्य गुरु सीस जी,
इंद्रसौभाग्य वाचकवर राजइ, दिन दिन अधिक जगीस जी।
हेम सौभाग्य तस सीस इम कहइ, तिहां लगि अे गुरु रास जी,
प्रतिपो जिहां लगि महिमंडलि, दिनकर करि प्रकाश जी।

ग्रंथ के प्रतिपाद्य के विषय से हेमसौभाग्य ने लिखा है --

श्री राजसागर सूरीसरु, सुविदित मुनि सिणगार,
तेह तणा निर्वाण नो, भणसुं रास उदार।

इस रास का प्रारंभ इन पंक्तियों से हुआ है-

सकल मनोरथ पूरणो, मंडल केलि निवास,
वामानंदन वदिइ, श्री संखेसर पास।[1]

---

१ मोहनलाल दलीचन्द देसाई-जैन गुर्जर कवियो, भाग २ पृ० ३३८-३३९ (प्र० सं०) और वही भाग ४, पृ० ३०५-३०६ (न०सं०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपसंहार

विक्रम की सत्रहवीं और अठारहवीं शती को मरुगुर्जर जैन साहित्य का स्वर्णकाल कहा जाता है। इसमें भी १७वीं शताब्दी इस युग का उत्कर्ष काल था। इस शती में साहित्यसृजन की जो वेगवती धारा प्रवाहित हुई थी उसका प्रभाव १८वीं शती के पूर्वार्द्ध तक बना रहा, किन्तु १८वीं शती के उत्तरार्द्ध तक आते-आते उसका वेग मंद हो गया। फलत: पूर्वार्द्ध में लेखकों की जितनी संख्या दिखाई पड़ती है उतनी उत्तरार्द्ध में नहीं दिखाई देती। इसका एक कारण तो यह था कि कई उच्च कोटि के लेखक १७वीं और १८वीं शती पूर्वार्द्ध तक रचना के क्षेत्र में सक्रिय थे, इसलिए यशोविजय, विनयविजय, मेघविजय, धर्मवर्द्धन, जिनहर्ष, आनंदघन, लक्ष्मीवल्लभ और जिनसमुद्रसूरि जैसे उच्चकोटि के साधक और साहित्यकारों का दर्शन १८वीं शती के पूर्वार्द्ध में मिलता है किन्तु उत्तरार्द्ध में कुछ गिने-चुने नाम इस कोटि के मिलते हैं जिनमें श्रीमद् देवचंद, महोपाध्याय धर्मसिंह, विनोदीलाल, भूधरदास खण्डेलवाल, नेणसीमूता और विनयचंद आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन लोगों ने संस्कृत और मरुगुर्जर में पर्याप्त संख्या में स्तरीय साहित्यसृजन किया और जैनसाहित्य की श्रीवृद्धि में महत्वपूर्ण योगदान किया।

वैसे तो प्रारंभ से ही जैनसाहित्य अध्यात्म दर्शन और भक्ति भावना से अनुप्रेरित रहा है किन्तु भक्ति आंदोलन के फलस्वरूप इस शती में भक्तिपूर्ण साहित्य की प्रधानता थी। इस शताब्दी के काव्य साहित्य का अवलोकन करने पर पाठकों को स्वत: स्पष्ट लगेगा कि इस युग में स्तोत्र, विनती-स्तवन, पूजा-अर्चन से संबंधित पर्याप्त साहित्य अनेक काव्यरूपों में लिखा गया। प्राय: सभी कवियों ने भक्तिपरक पदों की रचना सूर, कबीर, तुलसी आदि की ही तरह किया है। अधिकतर पद-साहित्य भक्ति-भाव से सराबोर और सरस है।

इसका यह अर्थ न लगाया जाय कि जैन साहित्य में निवृत्तिपरक, पारलौकिक विषयों पर संबंधित साहित्य ही लिखा गया। अनेक जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लेखकों की रचनाओं में तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक स्थिति की अच्छी झलक मिलती है। विनयविजय के गेय काव्य ग्रंथ शांतसुधारस में औरंगजेब के समय की स्थिति का अच्छा संकेत मिलता है। कवि ने लिखा है जज्ञे भूमावति विषमताऽन्योन्य साम्राज्यदौस्थ्यात्, कश्चिन्मा नो नपति यतिनामीशिवु वोत्तवार्त्ताम। अर्थात् साम्राज्य की स्थिति खराब हैं। सर्वत्र अराजकता व्याप्त है। इसलिए कोई यति, आचार्य की कुशलवार्ता पहुँचाने वाला नहीं है। उस समय औरंगजेब की दुर्नीति से क्षुब्ध होकर सिक्खों, राजपूतों, रुहेलों, मराठों, सतनामियों आदि ने बगावत शुरू कर दिया था। देश के एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश की यात्रा दुष्कर और भयावह थी। ऐसी स्थिति में वणिक व्यापारी और विरहमान साधु संतों को बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ रहा था। उक्त श्लोक में इस स्थिति की तरफ ही संकेत किया गया है। लक्ष्मीरत्न कृत खेमाहड़ालिया नो तेजपाल रास, जिनहर्ष कृत कुमारपाल रास और अभयसोम कृत वस्तुपालरास आदि में पर्याप्त ऐतिहासिक प्रामाणिक सूचनायें उपलब्ध हैं। बहुत सी रचनायें जैनधर्म के इतिहास की दृष्टि से पर्याप्त महत्वपूर्ण है जैसे मेघविजय कृत विजयदेव निर्वाण रास, जिनविजय कृत कर्पूर विजय रास, जिनेन्द्रसागर कृत विजयक्षमा सूरि सलोकों, भावप्रभ सूरि कृत महिमाप्रभ रास, वल्लभकुशल कृत हेमचन्द्र गणि रास, पुण्यरत्न कृत न्यायसागर निर्वाण रास इत्यादि इसी प्रकार अन्य प्रभावक आचार्यों के निर्वाणरासों से तत्कालीन जैनधर्म एवं समाजकी स्थिति पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

इस काल में चरित्र और रास पर्याप्त मात्रा में रचे गये। रास शब्द सामान्यतः कथा द्वारा किसी नायक का यशोगान करने के अर्थ में प्रयुक्त किया जाता था। जो भी काव्य रसमय हो उसे रास कहने की एक परिपाटी चल पड़ी थी इसलिए शास्त्रीय नियमों का कठोरता से पालन प्रायः लेखक नहीं करते थे और रास, प्रबंध तथा चरित काव्यरूपों का शास्त्रीय स्वरूप नियमों के बंधन तोड़ रहा था, इस शब्द का प्रयोग दर्शन, अध्यात्म, नीति और कर्मकाण्ड जैसे विषयों से संबंधित पद्यरचनाओं के लिए भी किया जाने लगा था जैसे यशोविजय कृत द्रव्यगुण पर्याय रास, नयचक्र रास, मानविजय कृत नयविचार-सातनयरास इत्यादि। चौपाई शब्द का प्रयोग भी प्रायः सभी सामान्य काव्य रचनाओं के लिए किया जाने लगा था जैसे देवचंद कृत ध्यान-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दीपिका चौ०, हीरमुनि कृत उपदेश रत्नकोश चौ०, रंगविलास कृत अध्यात्म कल्पद्रुम चौ० इत्यादि। इस समय के सर्वप्रमुख साहित्यकार श्रीमद् देवचंद जो पूर्णतया अध्यात्मरसिक विद्वान् लेखक थे। उनकी प्रायः सभी रचनाओं में अध्यात्म की झलक दिखाई पड़ती है। जैसे १८वीं शती के पूर्वार्द्ध को देसाई जैसे इतिहासकार यशोविजय युग कहना पसंद करते हैं क्योंकि वे उस काल के अद्वितीय विद्वान्, समयज्ञ सुधारक, प्रखर न्यायवेत्ता, योगाचार्य और अध्यात्मी युगपुरुष थे उसी प्रकार उत्तरार्द्ध में श्रीमद् देवचन्द का व्यक्तित्व अन्यों की अपेक्षा अधिक भास्वर और प्रखर दिखाई पड़ता है किन्तु न तो पूर्वार्द्ध को यशोविजय युग कहना समीचीन है और न उत्तरार्द्ध को देवचंद युग। निस्संदेह ये दोनों ही अपने समय के अग्रगण्य युगपुरुष और उत्तम रचनाकार हैं।

इस काल में (१८वीं उत्तरार्द्ध) प्रबंध काव्यों और चरित्र काव्यों की अपेक्षा छोटी और मुक्तक रचनायें अधिक लिखी जाने लगी थी जिनकी अभिव्यंजना शैली पर रीतिकालीन अभिव्यंजना शैली या रीति का प्रभाव देखा जा सकता है। ऐसी रचनायें प्रायः दोहा, सवैया और पद आदि में रचित है जैसे हेमराज का दोहाशतक, नवलकृत दोहा पच्चीसी, बुधजन कृत बुधजन सतसई इत्यादि। जोधराज और पार्श्वदास के सवैये मनोहारी हैं। जोधराज कृत ज्ञानसमुद्र और धर्म सरोवर इस कोटि की उत्तम कृतियाँ हैं। संत और वैष्णव भक्तों के प्रभाव से पद साहित्य को बड़ी लोकप्रियता मिली। १८वीं सदी में आगरा और जयपुर के रचनाकारों ने विपुल पद साहित्य की रचना की जिनमें जगतराम, द्यानतराय, नवल, बुधजन, उदयचंद, नयनचंद, रत्नचंद आदि का नाम उल्लेखनीय है।

जैन साधु और श्रावक संघ निकाल कर प्रायः तीर्थयात्रायें करते थे। श्रेष्ठी महाजन व्ययभार वहन करते थे और संघवी या संघी कहे जाते थे जो सामाजिक प्रतिष्ठा का चिह्न बन गया था इसलिए प्रायः संघ यात्रायें निकाली जाती थीं और अनेक रचनाकार इन यात्राओं का मनोरम वृत्तान्त अपनी रचनाओं में प्रस्तुत करते थे जिनसे कई ऐतिहासिक, भौगोलिक और सामाजिक सूचनायें मिलती हैं। इस विषय से संबंधित विपुल साहित्य इस काल में लिखा गया जैसे महिमा सूरि कृत चैत्यपरिपाटी, विनीतकुशल कृत शत्रुंजय तीर्थमाला, शील विजय कृत तीर्थमाला, सौभाग्यविजय कृत तीर्थमाला, ज्ञानविमल कृत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीर्थमाला और जिनसुख कृत जैसलमेर चैत्य परिपाटी इत्यादि। इसके अतिरिक्त अन्यान्य विषयों जैसे ज्योतिष, वैद्यक, सामुद्रिक, गणित आदि पर भी पद्य-गद्यमय रचनायें प्रचुर परिमाण में की गई। इनका विवरण देकर ग्रंथ का कलेवर बढ़ाना उचित नहीं लगता। केवल संकेत के लिए कुछ विशिष्ट रचनाओं का नामोल्लेख कर दिया जा रहा है।

भक्तिभाव तो इस युग का प्रधान स्वर था, इसमें आनंदघन यशोविजय जैसे विश्रुत साधकों के अलावा विनीतविमल, उदयरत्न और अन्य साधुसंतों की रचनाओं जैसे आदिनाथ सलोको, नेमिनाथ सलोको, भरतबाहुबलि सलोको आदि का उदाहरण प्रमाण स्वरूप प्रस्तुत किया जा सकता है। नेमिराजुल और स्थूलभद्र कोशा की प्रेमकथा के माध्यम से अनेक कवियों ने शृंगाररसपूर्ण रचनायें भी की हैं जिसमें विप्रलंभ पक्ष की प्रधानता है। संयोग शृंगार का वर्णन विरल है, अश्लीलता तो छू भी नहीं गई है इसलिए यह साहित्य हिन्दी साहित्य का समकालीन होते हुए भी उसके शृंगारी विषयवस्तु से कत्तई प्रभावित नहीं हैं, इसके अभिव्यंजना पक्ष विशेषतया छंद प्रयोग, काव्यविद्या आदि पर रीति का प्रभाव अवश्य दिखाई पड़ता है। सरस रचनाओं की दृष्टि से नेमराजुल बारहमासा और स्थूलभद्र नवरसों जैसी अनेक रचनायें कई कवियों ने की हैं।

लोकसाहित्य के अन्तर्गत कुछ विषय अतिशय लोकप्रिय दिखाई पड़ते हैं जैसे चंदनमलयागिरि कथानक पर जिनहर्ष, सुमति हंस, अजीतचंद, यशोवर्द्धन, चतुर और केसर आदि लेखकों ने अच्छी रचनायें की हैं। इसी प्रकार विक्रमचरित्र पर मानविजय, अभयसोम, लाभवर्द्धन आदि ने चौपाइयाँ, रास, चरित्र आदि प्रचुर संख्या में रचे हैं उदाहरणार्थ परमसागर कृत विक्रमादित्य रास, मानसागर कृत विक्रमादित्य सुत विक्रमसेन रास, लक्ष्मीवल्लभ कृत विक्रमादित्य पंचदण्ड रास आदि को प्रस्तुत किया जा सकता है। इन उदाहरणों से चंदनबाला, विक्रमादित्य, धन्नासेठ आदि से संबंधित लोककथाओं की लोकप्रियता का अनुमान लगाया जा सकता है। इस प्रकार नाना विषयों पर नाना साहित्यरूपों में प्रचुर काव्यरचना इस शताब्दी में अनेक विद्वान् श्रावकों और साधक साधुओं संतों द्वारा की गई जिनकी चर्चा विस्तारपूर्वक ग्रंथ में की जा चुकी है। प्रायः जिनके पद्य की चर्चा हुई उसी के साथ उनके गद्य रचनाओं का भी उल्लेख किया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गया है और संभव हुआ है तो इनके गद्य के नमूने भी दिए गये हैं। फिर भी गद्य के संबंध में कुछ यहाँ लिखना आवश्यक लग रहा है।

१८वीं शती में मरुगुर्जर साहित्य की गद्य-परंपरा में एक नया मोड़ आया जो विशेष उल्लेखनीय लगता है। इस शती में हिन्दी का प्रभाव बढ़ता प्रतीत होता है अतः राजस्थानी और गुजराती के साथ-साथ जैन लेखकों ने खड़ी बोली हिन्दी या व्रज प्रभावित हिन्दी, ढूढाड़ी आदि का प्रयोग पूर्वापेक्षा अधिक मात्रा में करना प्रारंभ किया। इसका प्रभाव अगली शती में बढ़कर स्पष्ट हिन्दी-गुजराती और राजस्थानी भाषाओं के विकास का मुख्य कारण सिद्ध हुआ। इससे पूर्व श्वेताम्बर जैन लेखक प्रायः गद्य भाषा के रूप में हिन्दी, गुजराती, राजस्थानी के मिले-जुले रूप मरुगुर्जर का ही अधिक प्रयोग करते थे। दिगंबर संप्रदाय के विद्वान् रचनाकार पहले से साहित्य रचना में हिन्दी को वरीयता प्रदान कर रहे थे। इस हिन्दी प्रयोग या उसके भिक्षु प्रयोग के पीछे लेखकों का उद्देश्य हिन्दी, गुजराती और राजस्थानी भाषी प्रदेशों की जनता में जैन सिद्धांतों का अधिकाधिक प्रचार करना था। यह कार्य लोकभाषा में ही संभव था।

यशोविजय ने स्वरचित द्रव्यगुणपर्याय रास, सीमंधर स्तवन महावीर स्तवन, सम्यक्त्वना ६ स्थान स्वरूप चौपाई पर बालावबोध लिखा था। वृद्धिविजय कृत उपदेशमाला बालावबोध की रचना में भी उन्होंने सहयोग किया था। इनके अतिरिक्त भीमविजय और मेरु विजय ने मिलकर कल्पसूत्र पर बालावबोध लिखा। केशवजी ने दश-श्रुतस्कंध पर बालावबोध लिखा। पद्मसुंदर गणि ने भगवती सूत्र पर उत्तम टब्बार्थ लिखा अर्थात् आगम और शास्त्र संबंधित ग्रंथों को जनसुलभ बनाने के लिए उनपर गद्य में टीकायें, भाष्य, वचनिकायें बालावबोध और टब्बा आदि पर्याप्त संख्या में लिखे गये। कुंवर विजय, कनकविजय ने रत्नाकर पंचविंशति पर दानविजय ने कल्पसूत्र स्तवन पर, धर्मसिंह ने २७ सूत्रपर, कनकसुंदर ने ज्ञाताधर्म कथांग पर और अमृतसागर ने सर्वज्ञ शतक पर बालावबोध लिखा।

जिनहर्ष ने विपुल साहित्य का निर्माण किया, उसमें गद्य भाग भी अनुपात में अच्छा है। दीवालीकल्प बालावबोध, स्नात्रपंचाशिका, ज्ञानपंचमी, मौन एकादशी पर्वकथा आदि अनेक बालावबोध उन्होंने लिखा है। टब्बा संक्षिप्त संक्षिप्त अर्थ बताता है किन्तु बालावबोध में मूल रचना का विस्तृत विवेचन किया जाता है। इन दोनों विधाओं में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लोकभाषा का गद्यसाहित्य अधिक संख्या में रचा गया है। लक्ष्मीवल्लभ ने भर्तृहरि शतक और पृथ्वीराज बेलि पर टब्बा लिखा। तात्पर्य यह कि केवल जैन आयाम और सिद्धांत ग्रंथोंपर ही बालावबोध और टब्बा नहीं लिखे गये बल्कि संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश की मिल गयी रचनाओं को भी जैन जनता के समक्ष सरल विधि से गद्य में प्रस्तुत करने का कार्य किया गया। जिनवर्द्धन ने चाणक्यनीति पर टब्बा लिखा। देवचंदजी ने आगमसार नामक गद्यग्रंथ मरोठ की एक श्राविका के लिए आगमों का सारांश समझाने के लिए लिखा। विचारसार टब्बा और विचार रत्नसार प्रश्नोत्तर नामक ग्रंथ भी इसी प्रकार की रचनायें हैं।

शांतरस और सप्तस्मरण बालावबोध भी इनकी उल्लेखनीय रचनायें हैं। महोपाध्याय रामविजय ने जिनसुख सूरि मझलस नामक तुकांत गद्यरचना हिन्दी की चुलबुली शैली में की जो उन्हें अच्छा शैलीकार सिद्ध करती है। यह गद्यशैली भारतेन्दुकालीन प्रसिद्ध विद्वान् और भारतेन्दु मंडल के श्रेष्ठ लेख का चौपई बदरीनारायण 'प्रेमधन' की याद दिलाती है। इन्होंने भी भर्तृहरित्रय शतक बालावबोध मनरूप के आग्रहपर लिखा है। जयचंद ने माताजी की वचनिका लिखी जो राजस्थानी गद्य की विशेष लोकप्रिय विधा रही है; यह वचनिका प्रकाशित है। यह सब होते हुए भी अधिक रचनायें जैन धर्म-दर्शन ग्रंथों पर ही आधारित हैं जैसे सुखसागर कृत पाक्षिक सूत्र बालावबोध, योगसार भाषा बालावबोध और गुणस्थान विचार बालावबोध, सोमविमल कृत कल्पसूत्र बालावबोध, मेघराज कृत समवायांग सूत्र बालावबोध, स्थानांग सूत्र बालावबोध, हंसराज कृत द्रव्यसंग्रह बालावबोध, नंदीसूत्र बालावबोध, भोजसागर कृत आचार प्रदीप बालावबोध आदि इसी प्रकार की रचनायें हैं। तीर्थंकरों के जीवनचरित्र पर आधारित रचनाओं के बालावबोध भी प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं जैसे लक्ष्मीविजय कृत शांतिनाथ पंच बालावबोध या भानुविजय कृत पार्श्वनाथ चरित्र बालावबोध इत्यादि।

इस शती की अधिकांश गद्यरचनाओं का उल्लेख यथास्थान कर दिया गया है। मरुगुर्जर हिन्दी का गद्यसाहित्य प्राचीन और प्रचुर है। यह कई प्रादेशिक भाषाओं और हिन्दी के विकास के अध्ययन की दृष्टि से ऐतिहासिक महत्व का है। इनसे तत्कालीन गुजराती,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजस्थानी और हिन्दी गद्य की भाषा के विकास का इतिहास समझने में बड़ी सहायता मिल सकती है। इन लोगों ने प्राकृत, संस्कृत और अपभ्रंश जैसी प्राचीन भाषाओं के अलावा आधुनिक प्रादेशिक भाषाओं की श्रेष्ठ रचनाओं का गद्यानुवाद और उनपर टब्बा, वार्तिक, वचनिका, बालावबोध इत्यादि लिखकर इन मान्य कृतियों को सर्वसुलभ बनाने का स्तुत्य कार्य किया है। इस विषय में अधिक जानकारी के लिए डॉ० अचलशर्मा का शोधप्रबंध 'राजस्थानी गद्य का उद्भव और विकास' भी देखा जा सकता है।

———

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

व्यक्ति-नामानुक्रमणिका

अंबादास नागर ८१
अंबालाल जानी ४९८
अकबर १, ३, ७, ९, ४८५, ५२९
अगरचंद नाहटा ३५, ११३, १३० १६२, २५६
अचलकीर्ति २५, २६
अजबसागर १४२
अजयराज २९
अजयराज पाटणी २६
अजितदेव सूरि ५४४
अजित सिंह १७३
अजीतचंद २९
अजीमुश्शान ३१३
अनन्तकीर्ति ५८, ८३
अनूपसिंह ४८, १८०
अब्दुलहमीद लाहोरी २
अब्दुल्ला खाँ ४
अभयकुशल ३०, १३१, ३००
अभयचंद २९, ३८५, ४६०, ५०२
अभयमाणिक्य ४३२
अभयराज १३२
अभयसिंह ११२
अभयसोम ३१, ३३, ३४
अभ्र पण्डित ८५
अमरकवि ३४
अमरगणि ३५, ३६, ३७
अमरचंद ३४
अमरपाल ३५
अमररत्न ५०
अमरराज १८०
अमरविजय १४, ३७, ३८
अमरविजय II ३७
अमरसागर ३४, ३८, ४०, ४९, १९९, २६९, ४५०
अमरसिंह ११, ८७, १११, ११२, १८०, ४१०
अमीचंद २९, ३९
अमृतगणि ३९
अमृतसागर ४०
अमृतसागर II ४०
अलफ खाँ (सरदार) ४२२
अशोकचंद ७२
अहमदशाह अब्दाली ५
आजमशाह ४१०
आनंद ८२
आनंदघन ८, ११, १२, २२, ४५, ३८२
आणंदनिधान ४१, ४५८
आणंदमुनि ८, ४१
आनंदराम २४५
आणंदरुचि ८, ४२
आणंदवर्द्धन ४३
आनंदविजय १०१
आणंदविजय २८०
आनन्दविमल १०१, २९७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आनन्दसिंह ८३, २६७
आनंदसूरि ४५
आसकरण ४५
इन्द्र १३२, २०८
इन्द्रभूषण ५३२
इन्द्रशाह ६०
इन्द्रसौभाग्य ४६, ५५३
ईसरदास ४९५
उत्तमचंद कोठारी ३९, ४६, ४७, १७५
उत्तमसागर ४७, १२६, २८३
उदयकरण ८७
उदयचंद ४९
उदयचंद कोठारी ६६, ६७
उदयचंद मथेन १५, ४८
उदयतिलक ३५, ३६, ३७
उदयरत्न १५, ५०, ५३, ५३८
उदयरत्न II ५०
उदैराम ५८
उदयरुचि ४२, ४३, ४५८, ५४३
उदयविजय ५८, ६०, २३४
उदयसमुद्र ८, ६१, ७०
उदयसागर ७५, २००
उदयसागर सूरि ६२, २७०
उदयसिंह ६३
उदयसूरि ६३
उदयहर्ष ४२०
उद्योतसागर १९९
ऋद्धिविजय ६६, ४८२
ऋद्धिसागर ६४, ६६
ऋषभदास ६३, ६५, २४५
ऋषिद्वीप ६५
ऋषिविजय २६२
ऋषिविजय (वाचक ६६
ऋषिसेषा १३२
ऋद्धिविजय १२७
ऋद्धिहर्ष ६६
औरंगजेब २, ३, ४, ६, ७, ८, ४१, ४३, २४९, २६४, ३१६, ४०४, ४७५
कनककीर्ति ६७
कनककुमार ६९
कनककुशल ५६, ६७, ६८
कनककुशल (भट्टार्क) ९०, ९१
कनकप्रिय ५१४
कनकनिधान ६८
कनकमूर्ति ६९
कनकविजय ६९, ४१५, ४८८
कनकविलास ६९
कनकविमल १०१, ४२०
कनकसिंह ७०
कनकसोम ५१६
कनकावती १८५
कबीर १४, २२, ४५, ८५
कर्पूरविजय ३४४, ५१९
कमलकीर्ति ४३९, ५०२
कमलहर्ष १४, ६१, ६२, ७०, १४४, ३६३, ४५९
कर्ण ९९
कर्मचंद ७२, ४८९
कर्मसिंह ७२, ७३, १२१, २१०, २१२
कर्मसिंह II ७३
कल्याण ६३, ८२, २००, ५०४
कल्याणधीर ९१, ९३
कल्लाण लाभ ९१, ९३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कल्याण विजय १२८, २३८
कल्याण विमल ७९
कल्याणसागर ४६, ४९, १४१, १९९, ५१७, ५५२
कल्याणसागर सूरि ७५, ५२३, ५४८
कवियण १६६, २३०
कस्तूरचंद कासलीवाल ८३, १२४, १२५, १६८, २४६, ५०३
कहानजी गणि ७४
कांतिविजय ७५, ७६, ३८१
कांतिविजय II ७७
कांतिविमल ७९
कांतिसागर १७५
कानमुनि १०६
कानूबाई ९८
कानो ७५
कामताप्रसाद जैन १०५, १८१
कामदेव २१
कालिदास ७२
कालिदास सांकलचंद ५५
काशीदास १३०, १३१
कान्ह १२१, ४५४
किशनदास ८०, ८१, ८२, ८५
किशनसिंह ८२, ८३
कीर्तिकुशल १८३, १८४
कीर्तिविजय ७५, ७६, ८६, ४६६, ५१३
कीर्तिविमल ४३३
कीर्तिसागरसूरि ८६, ८७
कीर्तिसिंह ५४९
कीर्तिसुन्दर ८७, २५७
कृपाराम ८०, १७९
कृपाविजय ८०, ३६८
कृपासागर २०६
कुम्भाराणा ५०१
कुलवर्द्धनसूरि ३५०
कुँवर कुशल ६७, ९०
कुँवर विजय २३८, २६२
कुशल ८९, ९०
कुशल कल्लोल १८४
कुशलधीर ९१, ९३
कुशलमाणिक्य १८४
कुशललाभ ९१, ९३
कुशलविनय ९४, ४१६
कुशलसागर ४७, ४८, ९५, ९६, १२६, १७८, २९७
कुशलसुन्दर ९३
कुशलोजी ९८
कुसुमश्री १२३
केशव १२१, २१०, २१२
केशव ऋषि (श्रीधर) ९६, ९७
केशवदास ९५, ९६, ३१७
केशव मेहता ५७
केशवलाल प्रेमचंद मोदी १८८
केसर ९८
केसर कुशल ९९
केसर कुशल II १००
केसर विमल ७९, १०१
केशरी सिंह २४०
केशी गणधर ७८
क्षमा प्रमोद १०२
क्षमालाभ १९८
क्षमाविजय ३५३
क्षमा समुद्र २१५
क्षमासागर १०३

क्षेमकीर्ति १६२
क्षेमविजय १०३
क्षेमहर्ष १०४, १२५
खंगसेन १०५, १०६
खफी खाँ १
खान मुहब्बत ६२
खीममुनि १०६, १०७
खुमाणसिंह ४१०
खुशाल १०७
खुशालचंद १०९
खुशालचन्द काला १०७
खेडिया-जगा-जगोजी ११०
खेतल/खेता ११०, ११२, ११३
खेत्रसिंह ११३, ११४
खेम ११३, ११४
खेमचन्द ११४, ११५
खेमराज ६२
खेमहर्ष ७०, ११६
गंगविजय ३६७, ४३२
गंगादास ४९८
गंगमुनि (गांगजी) १२१
गंगसागर १७८
गंगविजय १२२
गजकुशल ११६
गजविजय ११७, १७८
गजसागर सूरि १९१
गजसिंह ११५
गजानन्द ६९
गुणकीर्ति ११८
गुणमाला ११५
गुणरत्नसूरि १९१
गुणवर्द्धन १६२, १६३
गुणविजय ६९, १७८, ३५९
गुणविनय ६९
गुणविलास ११८
गुणशील ४६९
गुणसमुद्रसूरि ६३
गुणसागर ३४, ३८, ३९, ११९, ४१७
गुणसेन ३७९
गुणहर्ष ४३७
गुणानंद ३७८
गुलाबविजय ५२०, ५४९
गालिब ४८
ग्रियोरेव अपोलान अलेक्जान्दोविच १
गोकुलचंद ११८, ११९
गोवर्द्धन ४१७
गोविंद १७७
गोविंदजी ५७
गोविंद गिल्लाभाई ८१
गौडीदास ११९, १२०
गौतमगणधर ५४, ८४
घासी १२३
चत्तर १२४
चतुर्भुज वैरागी १०५, १०७
चतुरंगचारण १७७
चतुरविजय ४८२, ४८४
चतुरसागर १२६
चतुरोजी १७३
चतुरसौभाग्य २२६
चन्द्र ४०३
चंद्रकीर्ति ५२१
चंद्रविजय १२६
चंद्रविजय I १२७
चंद्रविजय II १२७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चंद्रविजय III १२८
चंपाराम १२९
चरित्रचंद १३६
चारित्रसागर ६४
चारूदत्त ६८
चूहड़ ११३
छत्रसाल ३१०
छत्रसिंह २४४
जंबूकुमार १२७
जगच्चन्द्र १८४
जगजीवन १३२, १३३, १३४ ५४७
जगडू ७, ९९
जगतकीर्ति २७७, ५०३
जगतभूषण ४८६
जगतराम १५, १३०
जगतराय १३१, २४९
जगतसिंह ७, ४४०, ४८१
जगन १३२
जगन्नाथ २, १३२
जनतापी-तापीदास १३४
जयकीर्ति ४००
जयकृष्ण १३५
जयचंद १३५
जयचंद्रसूरि ७२, ७३, २८९
जयंतकोठारी ९९, १७२, ३६८
जयतिलक ७८
जयतिलकसूरि १७१
जयनंदन ४३९
जयमल्ल ९८
जयरंग १३६, २०४
जयरत्न ५६, ३९३
जयराज २१३
जयवंती २००
जयविजय ३५८
जयशेखरसूरि २५४
जयसागर १३८, १३९, २९२
जयसिंह ४, ९, २८, ६०, ८३
जयसिंह देव ४२४
जयसोम १३९
जयसौभाग्य १४१
जयानंदसूरि ४५८
जसराज ६४, १२४
जसवंतसिंह ४, १२१
जसवन्तसागर १४१, १७३, १७१
जसविजय २०३
जसशील २६७
जशसागर १४१
जशसोम १३९
जहाँगीर ७, ९, १३३, २०६
जहाँदारशाह ४
जाफर खाँ १३३
जायसी २२
जितविमल १४२
जितशत्रु १२१
जितसागर ३६४
जिनउदय १४२
जिनकुशलसूरि ६८
जिनगुण ६३
जिनचंद ६३, ६८
जिनचंदसूरि ७, ३१, ३५, ६१ १४३, २१५, २३० २६२, ४६५, ५०६
जिनचंदसूरि II १४४
जिणचंद मुनि ३६
जिनतिलकसूरि १९९
जिनदत्तसूरि १४४, २६२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिनधर्म ६३
जिनधर्मसूरि ५०, १०३, ५२३
जिनप्रभसूरि २६२
जिनमाणिक्यसूरि ९१, ९३
जिनमेरु ६३
जिनरंगसूरि १४३, ४४०
जिनरत्न १६३, १९८, ४७९
जिनरत्नसूरि ३५, ६१, ७०, ७१, ११६, १४४
जिनरतन ६८, ३९८
जिनराजसूरि ६८, ७०, ११० १३९, १४३, १४४ १६२, २८७, ५४०
जिनलाभसूरि ३९२
जिनवर्द्धमान ६१, ३४६
जिनविजय ५९ २०६, ५०९
जिनशेखर ६३
जिनसागरसूरि ५०, ५२३
जिनसिंहसूरि २८७, ५२३
जिनसुखसूरि २६२
जिनसुंदरसूरि ६३, १४२, १६१ १७३, ५१८
जिनसोम १६१
जिनहर्ष ८, ११, १२, १७३, ५२७
जिनहर्ष (जसराज) १६२
जिनहर्षसूरि १९१
जिनेन्द्रसागर १७३
जिनेश्वर ६३
जिनेश्वरदास १७५
जिनेश्वरसागर १७५
जिनोदयसूरि ६३
जीतविजय १९५
जीव १२१
जीवण १७६
जीवराज १७७
जीवराम अजरामर गोर ८१
जीवविजय १२८, १७५, १७८
जीवसागर १७८
जीवो जीवणदास १७६
जैकृष्ण १७९
जैना ३१४
जोगीदास मथेण १७९
जोधराज १५
जोधराज गोधीका १८०
जोरावरसिंह १७९
जोशीराम मथेन १७९, १८२
ज्ञानकीर्ति १८२
ज्ञानकुशल १८३
ज्ञानचंद ३८३, ५०४
ज्ञानतिलक ४६१
ज्ञानधर्म १८४, २२०
ज्ञाननिधान १८४
ज्ञानभूषण ४८६
ज्ञानमेरु २११
ज्ञानरत्न ७८, ५३८
ज्ञानविजय १७८, १८५, ३१४
ज्ञानविमल ३६७
ज्ञानविमल (नयविमल) १८५
ज्ञानविमलसूरि २७९
ज्ञानशेखर २६६
ज्ञानसमुद्र १९६, ४४०
ज्ञानसागर I, II, II १९९
झंझड ५४५
झाझडयति २०२
टाड (कर्नल) २७६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टालस्टाय १३
टीकम २०२
ट्रेबर्नियर २
टोडर २१०
ठाकुरसिंह ७३
डाह्याभाई लल्लूभाई १७०
डूगरसी २७७
तत्वविजय २०३
तत्वहंस २०४
तारा ७०
ताराचंद (दीवान) ४२२
ताराचंद रूपचंद ६१
तिलकचंद १३६, २०४
तिलक विजय २०५, २८०
तिलकसागर २०६, २०७
तिलकसूरि २०७
तिलकहंस २०४
तुलसी २२, ८७
तुलसीदास २१, २३०
तुलाराम ८०
तेज़पाल २०८, ४४३, ४६७
तेजमुनि २१०
तेजविजय २१७
तेजसिंह ७४, १२१, २०८, २११
तेज़सिंह गणि २१२
तेजसी ५४५
तेजहंस २०४
त्रिलोकसिंह २१३
त्रिलोकगणि ४१
थोभण ५७
थान ८२
दयातिलक २१४
दयाराम ४९५
दयामाणिक्य २१५
दयावल्लभ ११०
दयाविजय ५१६
दयासार २१६
दयासिंह ४१०
दयासुन्दर ११२
दर्शनकुशल ११६
दलपति २१६
दशरथ निगोत्या २१७
दशार्णभद्र ८९
दानविजय I २१७
दानविजय II २१९
दानविमल १०१
दामसि ४५४
दामोदर ११२, ११३, ११४, १२१, १३२, २१२, २२१
दामोदरदास ५३५
दारा २, ३
दिलाराम २२१
दीपचंद २२२, २३०
दीपचंद II २२४
दीपचंद कासलीवाल २२४
दीपविजय २२५, २३८
दीपसागर ५१८
दीपसौभाग्य २२६
दुर्गादास ११, २२८, ३७५
दुर्लभराज १४३
देवकुशल २२९
देवजी १२१, २५५
देवा या दवेजी (ब्रह्म) २३९
देवचंद (श्रीमद्) १४, २३०
देवचंदसूरि ४६०, ४९०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवविजय १०३, १०४, २२५
२३४, ३५९
देवविजय II २३७
देवविजय III २३८
देवविमल ३५५
देवीचंद २४१
देवीदास २०६, २४२
देवीप्रसाद (मुंशी) २७५
देवीसिंह २४४
देवीसिंह (राजा) ४९८
देवेन्द्र ५६
देवेन्द्रकीर्ति २६, १०७, ५३३
देवेन्द्रसूरि ५२५
दौलतराम १५, १७
दौलतराम कासलीवाल २४५
दौलतराम पाटनी २४४
दौलतविजय २४७
द्यानतराय १५, २४८
धनकीर्ति ३३५
धनंजय २५
धनपाल २२
धनपाल सोभन ९२
धनरत्नसूरि २९१
धनविजय ८०, २२१, २३८
धनहर्ष ४९४
धन्ना ७१, ११३, १२२
धन्यकुमार १०९
धर्मकीर्ति २१६
धर्मचंद २५१, ५०९
धरणीशाह ५०१
धरमदास ६२, १२४
धर्ममंदिर २०४, २५२
धर्मवर्द्धन ११, ८८, २५५
धर्मविजय ३०६
धर्मविलास ६३
धर्मसागर ३८, ३९; ४०, ९१
१२६, १९९, ३४७
धर्मसिंह ७३, ७४, ८७, २५५
धर्मसोम ३९७
धीरकुशल ४५५
धीरविजय २६२, ४९२
धीरविमल १८५
नंदराम २६२
नंदलाल १३०, ३१४
नथमल १७, २६३, ४८९
नयनशेखर २६६
नयनसिंह २६७
नयप्रमोद २६४
नयमेरु ९५
नयरंग २०४
नयविजय २०३
नयविमल १२०
नरसिंह १२१
नरायणदास ५५१
नरेन्द्रकीर्ति ५३५
नरेन्द्र भानावत
नवल १५, २६७
नवल ऋषि ३५७
नवलशाह २६७
नाथू २६८
नाथूमल १८६
नाथूराम प्रेमी ८३, १३०, १८१
२७६, ५००
नादिरशाह ५
न्यायसागर २८३
नाहर १२१

नित्यलाभ २६९
नित्यविजय १२२, १२७, १२८, २६८
नित्यविमल ३८८
नित्यसौभाग्य २७२
निहालचंद २७३
नेणसीमूता २७५
नेमचंद २७६, २७७
नेमिचंद ३
नेमिचंद I (दिग०) २७७
नेमिचंद भंडारी २४४
नेमिनाथ ४५
नेमिदत्त (ब्रह्म) १०९, १८०
नेमिदास (श्रावक) २७९
नेमविजय २८०
नेमसागर ४०
पन्नालाल बाकलीवाल २५०
पद्म २८६
पद्मकीर्ति २८७
पद्मचन्द्र २८७
पद्मचन्द्र (शिष्य) २८९
पद्मचन्द्रसूरि ७३, २८९
पद्मनन्दि १३०, ३०१, ५०२
पद्मनिधान २९०
पद्मरंग २८७, ४०३
पद्मविजय २९०
पद्मसागर १२६, २८३
पद्मसुन्दर गणि २९१
पद्मो २९१
परमसागर २९२
पर्वत धर्मार्थी २९३
प्रताप कुशल ६७, ९०
प्रतापसिंह (रावत) ३७७
प्रद्युम्न ३१
प्रमोदचंद (वाचक) ७२
पार्श्वचन्द्रसूरि ४९०
पार्श्वदास १५
पार्श्वनाथ ५४, ६०, ८५
प्रागजी २९३
प्रागराज २१२
पीतांबरदत्त बड़थ्वाल ३३८
प्रीतिलाभ २९५
प्रीतिवर्द्धन २९३
प्रीतिविजय ११७, २९४, ४७३
प्रीतिसागर २९५
पुण्यकलश २०४
पुण्यकीर्ति २९६
पुण्यनिधान २९६
पुण्यप्रधान २३०
पुण्यरत्न २९७
पुण्यरुचि ४२, ४३
पुण्यविजय ४३१, ५०४
पुण्यविलास २९९
पुण्यसागर ३८, ३९
पुण्यहर्ष ३०, १३१, २९९
पुष्पदंत २२
पूर्णप्रभ ३०१
प्रेमचंद ३०४
प्रेमराज ३०५
प्रेमविजय ७७, ३०६
प्रेमसागर जैन १०८, १६८
प्रेमसौभाग्य ४६, ४९७
प्रेमानंद १७७, ३०४
फर्रुखसियर ४, ५, २४९
बंशीधर ३०९
बख्तावरमल ३०६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बखतसिंह	२१३
बच्छराज	३०७
बधो (श्रावक)	३०७
बनारसीदास	२०, २२, १०६
	१३३, २४५, २४८
बसंत	२१
बहादुरशाह	४, २४९
ब्रह्मा	६०
ब्रह्मदीप	३१०
ब्रह्मनाथू	३११
बाल	३०७
बालक	३०९
बिहारी	१३
बिहारीदास	३१२, ५१५
बृंद	३१३
बृद्धिसागर	२०६
बुधजन	१५
बुधविजय	३१४
बुद्धिसौभाग्य	२७२
बुलाकीदास	३१४, ५५१
बेलजीमुनि	३१६
भगवतीदास(भैया)	१५, ३१६
भगीरथ	४२
भद्रबाहु	८३
भँवरलाल नाहटा	४४०
भगवतीदास	५४७
भवानीदास	५७, १७९, ३२२
भगौतीदास	२४८
भाईदास	१३०
भाऊ	१२४, ३३३
भागविजय	३२३
भाग्यसागर	३८, ३९
भाणविजय	४३२
भानुचंद्र	७
भानुविजय	३२४, ३२५, ४५१
भामाशाह	७
भारामल	१२३
भावकीर्ति	२१५
भावजी	३२६
भावविनय	३२७, ५१३
भावप्रभसूरि	२९७
भावप्रमोद	३२७
भावरत्न	५६, ३२७
भावसिंह	९१
भीमजी	२१०
भीमराज	४५७
भीमशी माणेक	५५, १७०
भीमसूरि	२०७
भीमाशाह	८७
भुवनकीर्ति	२५१, ५२५
भुवनसोम	३३५, ५१६
भूधरजी	९८
भूधरदास	१७, ५४८
भूधरदास खंडेलवाल	३३७
भोज	९२, ९३
भोजविमल	४१९
भोजसागर	३४३
मणिविजय	३२३, ३४४
मतिकीर्ति	६९
मतिकुशल	३४४
मतिमंदिर	३३
मतिरत्न	५११
मतिवर्द्धन	४१
मतिवल्लभ	३४४
मतिसार	३४६
मतिसागर	३४५

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

मतिसुंदर ३०
मतिहंस ३५१
मथुरादास ५४७
मथुरादास पाटणी ८३
मनराम ३४६
मनरूप २३०, ५४९
मनसुखराम २६
मनोहरदास १७, ३४६
मलया (सती) १२४
मल्कचंद (संघवी) ५६
महात्मा गाँधी ४१९
महाराणाप्रताप ७
महावीर १६
महिमाप्रभसूरि २९८, ३२८
महिराज २१०
महिमावर्द्धन ३५०
महिमासमुद्र १४
महिमासागर ४३
महिमासुंदर ९५
महिमासरि ३५०
महिमासेन ३५०
महिसिंह ३४९
महिमाहंस १६६, ३५०
महिमाहर्ष ३५१
महिमोदय ३५१
महेन्द्रकीर्ति २६
महेश ३५२
मुहम्मदशाह २४९
माणिक्य ३५२
माणिक्यविजय ३५३, ३६८
माणिक्यसागर १९१, ३५४
माणिक्य सौभाग्य २२६
माणेकविजय ३५४
माणेकविमल ३५५
माधवसिंह २४५
माधोसिंह राठौर ४९५
मान ८२
मानकवि ३५५
मानतुंग ५४९
मानमुनि ३५७
मानविजय ७०, ७२, ३६२
४५९, ४९१
मानविजय I ३५८
मानविजय II ३५९
मानविजय III ३६०
मानसागर ३६४
मानसिंह ४२
मानसिंह मान ३६६
मानाजी ३२२
मानूसाह १०६
मीर-मुहम्मद हाशिम २
मीरा १४
मिश्रबन्धु ४१७
मुक्तिचन्द्र ११४
मुक्तिविजय १६१
मुगतिसागर २०६
मुनिचंद ३४, ७३
मुनिमेरु ५१४
मुनिविजय २२५
मुनिविमल ३६७
मुराद २
मुहम्मद बेगडा ४२४
मुहम्मदशाह ५, १०, ४६७
मूलचंद ऋषि २७०
मेडलस्लो ६
मेघकलश १८४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मेघरत्न ५०
मेघविजय ११, ३२ ३२४, ३६७
मेघविजय II ३६८
मेघविजय III ३६८
मेधाऋषि २०४
मेरूलाभ २६९, ३७०
मेरुविजय २८०, ३७१
मोतीचन्द्र कापड़िया ३६४
मोतीमालु ३७२
मोहनदे संघहन १३३
मोहनराम दलसुखराम १७०
मोहनलाल दलीचंद देसाई ६९
९७, ९९, १०१, १२४, १६२
मोहनविमल ३७७
मोहनविजय ३७३
यशवंतसिंह २७५
यशोनंद ३७८
यशोलाभ ३७९
यशोवर्द्धन १४, ३८०
यशोविजय ८, ११, १२, २२
७५, ७६, १९०
२०३, ३२८, ३६१
४६६, ५४९
योगीन्दु २४५
रंगविजय गणि ३७१
रंगविलास गणि ३६४
रंगप्रमोद ३८३
रघुनाथ-रघुपति ३८८
रतनबाई ८०, ८१
भ० रत्नकीर्ति १३९, ५२५
रत्नकुशल २१५
रत्नचंद ३८५
रत्नजय २१४, ३८६, ३८७
रत्ननंदि ८४, १२९, ५२६
रत्नप्रभसूरि १०२
रत्नराज ३८६
रत्नराम ३८९
रत्नवर्द्धन ३८७
रत्नवल्लभ ९४, ३८०
रत्नविजय ५६, १२७, ३६२
रत्नविमल ३८८
रत्नशेखर सूरि ११५
रत्नसार १२१
रत्नसागर ५१०
रत्नसिंह २५५
रत्नसुन्दर ३८६
रमणलाल शाह १९८
रयणचंद ३४
रविविजय ३२६
राजचंद्र ७३
राजरत्न ३९३, ४४९
राजलाभ ३९४, ३९९
राजविजय ५६, ११६
राजविमल २२५
राजशेखर सूरि ३४३
राजर्षि ९१
राजसार १८४, ३९७
राजसागर सूरि ४६, २०६, २३०
५१६
रागा राजसिंह ९, ३६६
राजसिंह संघवी ५२७
राजसुन्दर २९१, ३९९
राजसोम ४००, ५११
राजहर्ष ४००
राजुल ४५
राम २१, ८७

रामचन्द्र ४२, १३०, २१५, ४०३
रामचन्द्र मिश्र ४०३
रामचंद चौधुरी ४०३
रामचन्द बालक २१, ४०२
रामचन्द शुक्ल २४७
रामदेव ४२४
रामविजय १४, ४०८, ४१५
वाचक रामविजय-रूपचंद ४१०
४१३
रामबिमल ४१६, ५३७
रामसिंह ८९
(सवाई भाई) रायचन्द ५५, ३७२
रायचन्द २३०, ४१७
रायचन्द II ४१८
(अध्यात्मी) रायचन्द ४१९
रायचन्द नागर ४१७
रायसिंह ११३, ११४
रुचिरविमल ४१९
रूपऋषि १२१
रूपचन्द ४२, २७७, ५४९
रूपभद्र ४२०
रूपराज १२४
रूपविजय ३५४, ३७३
रूपविमल ४२०
रूपसिंह ९६, १२१, २१२
रूपहर्ष ७०, ११६
(राव) लखपत सिंह ६७, ९०
लक्ष्मीकीर्ति ४२५
लक्ष्मीचन्द १२१
लक्ष्मीचन्द्र ४२१, ४३८, ४५०
लखमीदास १०७, ४२२
लक्ष्मीरत्न ४२३
लक्ष्मीरुचि १८४
लक्ष्मीवल्लभ ११, १४, ४२५
लक्ष्मीविजय २०५, २८०, ४३१
४३२, ५०४
लक्ष्मीविनय ४३२
लक्ष्मीबिमल ४३३
लक्ष्मीसागर ४६, ४६१
लघुजी ४४३
लब्धिरंग ४२१
लब्धिरत्न ५०
लब्धिरुचि ४३५, ४५८
लब्धिविजय ३२५, ३५२
४३७, ४३८
लब्धिविमल ४२२
लब्धिसागर २०६, ४३९
लब्धोदय गणि ४४०
ललितकीर्ति ३०, ८३, २९९
४००
ललितसागर १९१
(पं०) लाखो ८, ४३५
लाधाशाह ४४३
लाभकुशल ४४६
लाभवर्द्धन १४, ४४७
लाभविजय ४९२
लाभविमल ४९१
लाभानंद १२
लावण्यसागर २९२
लालकुंवर ४
लालचन्द-लाभवर्द्धन ४४६
(पांडे) लालचन्द १४, १७
लालचन्द जैन १६८, ४४९
लालजी साहु ३१६
लालरत्न ४४९
लालविजय ५३७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लावण्यकमल ५४९
लावण्यचन्द ४५०
लावण्यरत्न ९५
लावण्यविजय १२२, १२७, १२८
२६८, ४५१
लिखमीदास ४२३
(संघवी) लीलालाल ५२९
लूणराज १०६
लेनपूल ३
लोहर-लोहट ४५२, ५३५
लोहाचार्य २४०
विजयरत्न सूरि ६५, १७३, २३७
विजयराज सूरि ३७, ३८, ५०
६६, १०४, २१९
४७३, ४९४
विजयविमल १०१
विजयसागर सूरि २०७
विजयसिंह सूरि ५८, १४०, १७८
३५९, ४५७, ४८१
४९०
विजयसेन ७, १०४, १२८
विजयहंस २०४
विजयहर्ष ८८, २५६
विजयानंद सूरि ७७, १०४,
२२८, ४७३; ५३१
विद्याकुशल ४५८
विद्यानंद ४६
विद्यारुचि ४५८
विद्यावती जैन २४४
विद्याविलास ७०, ४५९
विद्यासागर १९९, ४६०
विनयकीर्ति १८२
विनयकुशल ११६, ४६१
विनयचंद १४, ४९, ४६१, ५२५
विनयचन्द (दिग०) २९१
विनयदेव सूरि १८२
विनयप्रभ सूरि ४३, ४७२
विनयप्रमोद ४६४
विनयमेरु ३५५
विनयरंग १३५
विनयलाभ ३७०
विनयविजय ११, ७५, ३८३
विनयविमल १८५
विनयशील ४६९
विनयसागर ४७१
विनीतकुशल ४७१
विनीतविजय ४७३
वछराज ४५३
वधो (श्रावक) ४५३
वर्द्धमान ६५, २२२, ४५४
वर्द्धमान सूरि ५४०
वरसिंघ ऋषि १७५
वरसिंह १२१, ४५४
वल्लभकुशल ४५५
वसुनंदी २४५
वस्ता (मुनि) ४५६
वस्तुपाल तेजपाल ७
वादिराज २५०
ब्रह्मवादिराज ४५७
वादिराज सूरि ५४८
वानर्षि गणि १०१
वासव सेठ १८५
विक्रमादित्य २५९, ४५७
विजय २०४
विजयऋद्धि सूरि १८५
विजयक्षमासूरि ११७, १७३, ४१०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विजयकीर्ति १८२, २९०, ५०२
विजयकुशल १८३, १८४
विजयचन्द २३०
विजय जिनेन्द्रसूरि शिष्य ४५७
विजयतिलक १०४
विजयदानसूरि २१७, २२१, ४६०
विजयदेव सूरि ७, ३९, ४६, ४८ ११७, १२२, १४० २०३, ४५७ ५४२
विजयप्रभसूरि ३९, ४८, ६६ ७७, १००, ११७ १८६, २०३, २०५ ४७९, ५३६
विजयरंग १३५
विजयमुनि ६२
विजयरत्न ३८, ३९, ४३, ५०, ४८०
विजयलाभ (बालचंद) ४६४
विनीतविमल ४७३
विनीतसागर ३४३, ५१०
विनोदीलाल १७, ४७५
विमलकीर्ति ८८, २५६
विमलरत्न ७०, ४७९
विमलविजय ४०८, ४७९
विमलविनय २०४
विमलसागर ७२, २८३
विमलसोम ४८१
विमलहर्ष २५६
विबुधकुशल ४६१
विबुधविजय ४८१, ४८२
विबुधविमल सूरि ४३३
विवेककुशल १८४, ४७१
विवेकरुचि (विद्यारुचि) ४३६
विवेकविजय ४८३, ४८४
(साध्वी) विवेकसिद्धि ४८६
विशालकीर्ति १०४
विशालसोम ५०७
विश्वभूषण ४८६
विष्णु ७०
वीरकुशल ९७
वीरचन्द वीरजी ११५, ४९०, ४९१
वीरधवल ३३, ५२७
वीरविजय ४८१, ४८३, ४८८
वीरविमल ४३८, ४९१
वीरसेन १२३
वीरसौभाग्य ४६, ४९७
वृद्धिकुशल ४४६
वृद्धिविनय १४, ६०, ६९, ४९२, ४९४
वृद्धिसागर ४०, ४६, २२८, ४७९
वेणीराम ४९५
शक्तिकुमार १८४
शांतसौभाग्य ४६, ४९७
शांता भानावत ९८
शांतिकुशल ३०१
शांतिदास ६, ७, ४९७, ५४
शांतिविजय १०३, १०४, २४७ ३०६, ३५३, ३६०, ४९७
शांतिविमल ७९, १०१, १०२ ४७३
शांतिसागर ४०
शांतिहर्ष १६२, १६३, ३५० ४४७
शामल भट्ट १७७
शामलदास ४९८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शारदा ७२, १०४
श्याम कवि ४९८
शाहजहाँ १, २, ३, ५, ६, ९ १०, १०६, ११८, ३२७, ४९८
शिरोमणिदास ४९८
शिरोमणि मिश्र ४९८
शिव ६०
शिवजी (ऋषि) ४१, २५५
शिवाजी ११
शिवदास ५००
शिवनिधान ३५०
शिवरत्न ५०
शिवविजय ५०१
शीलभूषण ४८६
शीलविजय ५०१
शीलसागर ४०
शुजा २
शुभचन्द्र ३८५, ४२२, ५०२ ५०३
शुभविजय २९०, ५०४
शुभशील गणि १७३
शोभणजी ४४३
श्रीकृष्ण ३१
श्रीदेव ५०४
श्रीपति ५०६
श्रीभूषण १९६
श्रीरामशर्मा ४
श्रीसोम ५०६
श्रेणिक ६१
(प्रो०) श्रोत्रिय २४७
श्रुतसागर ४०
संघराज ८०
संघरुचि ५०७
संजयहर्ष ४३७
संतोष २४२
संतोषविजय ५०७
(भट्टा०) सकलकीर्ति २६७, ५३५ ४९८
सकलकीर्ति शिष्य ५०८
सकलचन्द ५०८
(श्रावक) सच्चीदास ९१
सत्यविजय १२; १४, ४९४, ५१८
सत्यसागर ५१०
सत्यसौभाग्य ४६, ५५३
सदारंग ६३
सभाचन्द ५०९
समयकीर्ति ५०६, ५२१
समयनिधान ५११
समयमाणिक्य ५११
समर्थ ५११
सययसुन्दर ११९, ४६१; ५११
समयहर्ष ५१२
सरदार खाँ ४७२
सरस्वती ५४, ८६
सहजकुशल १८४
सहजसुन्दर २६९
सहसकरण ४६६
स्वयंभू २२
सागरचन्द सूरि ४३२
साधुकीर्ति ८८
साधुरंग २३०
साधुविजय १२८, ५३६, ५४२
साधुसुन्दर ८८, २५६
सारंगधर २१५
सिद्धरत्न ५०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिंघराज ८९
सिंह ५१४
सिद्धितिलक ५१३
सिद्धिवर्द्धन ११८, ५१३
सिद्धिविजय ५३१, ५१३
सिद्धिविलास ११९, ५१३
सिंहविमल ५१४, ४९१
स्थिरहर्ष ५१४
सीता २१
सीह ११२
सुखदेव ८२, ८३, ५१५
सुखरतन ५१६
सुखलाभ ५१६, ५३०
सुखविजय ५१६
सुखसागर ५१७, ५१८
सुजान दे १०७, १०८
सुजानसिंह ४९
सुडालादेव (गणेश) ११०
सुधर्मा स्वामी ११७
सुंदर २८६, ५२०
सुंदरकुशल ४५५
सुंदरदास १०७, ३१७
सुंदरसागर ५१७
सुन्दरसूरि १७८
सुबुद्धिविजय ५२०
सुमतिकल्लोल ४६०
सुमतिकीर्ति २७७
सुमतिकुशल ४७१
सुमतिधर्म ५२१
सुमतिमेरु २११, ३५५
सुमतिरंग ५१६, ५२१
सुमतिवल्लभ ५२३
सुमतिविजय ४१३, ५२५
सुमतिविमल ५२६
सुमतिसागर २३०, ४६४
सुमतिसिंधुर ६९
सुमतिसूरि २०७
सुमतिसेन ५२६
सुमतिहंस ५२७
सुरचंद ५२८
सुरजी (सूरसागर) ५३०
सुरजी मुनि ५२९
सुरविजय ५३१
सुरेन्द्रकीर्ति २७७, ५३३, ५३४, ५३५
सूर २२
सूर (दिग०) ५३२
सूरचंद (वाचक) ५४६
स्थूलिभद्र १२७, १२८
सेवक ५३५, ५३६
सोमगणि १६२, १६३, ४४७
सोमविजय ४६७, ५३७
सोमसुन्दर ३१, ३४, १७३
सौभाग्यकुशल ९९
सौभाग्यविजय ५३६, ५३७
सौभाग्यसागर गणि ५२९
हंसप्रमोद ६४
हंसरत्न ५३८
हंसराज ५४०
हंसराज-भागचंद ४४०
हर्ष ५४२
हर्षकीर्ति ५४१
हर्षकुशल १००
हरषचंद साधु ५४१
हर्षचंद २७३, ५०२, ५४१
हर्षनिधान ३९२, ५४१
हर्षराज ३९४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हर्षरुचि ४५८, ४३५, ५०७
हर्षविजय ३९६, ५४२, २९४
हर्षविमल १०१
हर्षविशाल २९९
हर्षसागर १९९, २२८
हरिकिसन ५४२
हरिकृष्ण ४२
हरिनाम मिश्र १८०
हरिराम ५४२
हस्तरुचि ५४३
हस्तिविजय १८५
हिम्मत ५४४
हितरुचि ५४३
(नवाब) हिम्मत खाँ १३१
हीरउदय प्रमोद ५४६
हीररत्न ५०, ५४, ५६, ४२३, ५३८
हीरविजय ७, १०४, १२६, १२८, १७५, १७८, २६२, ४६७, ४८२
हीरसागर १७८
हीरसुन्दर ९३
हीरसेवक (हरसेवक) ५४६
हीरानंद ७३, १३३, ५४७
हीराणंद (हीरमुनि) ५४४
हीरालाल १२९
हीरादेय २६४
हुसैन खाँ ४
हेतविजय ३१४
हेमकवि ५४८
हेमचन्द्र १२, ५५, ३८१
हेमराज १५, ३१४, ५४७, ५४९
हेमविमल सूरि ४८१
हेमसार ५७२
हेमसागर ५५२
हेमसूरि १९३, १९५
हेमसौभाग्य २०६, ५५३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुस्तक-नामानुक्रमणिका

अंगडदत्त ऋषि चौपइ ४६
अंजना चौपई ७०, ७२
अंजनासुन्दरी स्वाध्याय ३६२
अंतगड ४२
अंतरीक स्तवन ४३, ४४
अंबडरास ३२८
अक्षरबत्तीसी ३७, ३४९, ४५९, ५४४
अक्षरमाला ३४६
अगडदत्त चौपइ २९६
अगड ऋषि नी चौपइ ४९७
अचलदास मोजावतरी गुणवचनिका ५००
अजापुत्र चौपइ ३२७
अजापुत्ररास ४३७
अजितनाथ स्तवन ५७
अजितसेन कनकावती रास १७०
१८ नातरा संञ्झाय ६६
अठारनामां चौपाई ७३
अठारह् नेति २५
१८ पापस्थानक स्वाध्याय १००
अढ़ाई नो रास ४५२
अतीतजिन चौबीसी २३१
अध्यात्म कल्पद्रुम चौपई ३८४
अध्यात्म कल्पतरु बाला० १७८
अध्यात्मकल्पक्रम बाला० ५३९
अध्यात्म गीता २३२
अध्यात्म पंचाशिका २५१
अध्यात्म फाग ४३०
अध्यात्म बारह् खड़ी २४५
अध्यात्म बारह्मासा ३२३
अध्यात्म सारमाला २७९
अनंतचतुर्दशी व्रत कथा १९६
अनादि विचार चौपइ ४००
अनाथी मुनि नी ढाल ११३
अनाथी मुनि संञ्झाय ५९, ६१
अनाथी ऋषि स्वाध्याय ५१४
अनित्य पच्चीसिका १५
अनुभव प्रकाश २२४
अनेकार्थ नाममाला ४७१
अप्रगट संञ्झागसंग्रह २०५
अभयकुमार रास १७१
अभयकुमारादि पंचसाधु रास ८७, ८८
अभयकुमार चौपइ ४२६
अभयरत्नसार १४४
अभिमन्यु आख्यान १३४, ३०५
अभ्यंकर श्रीमती चौपइ ४२५
अमरकुमार सुरसुन्दरी नो रास २६०
अमरदत्तमित्रानंद रास १७०, २०३, ३७९
अमरशतक बालावबोध ४११
अमरसेन वयरसेन रास १६९, २०९
अमरसेन वयरसेन चौपइ १३६, १३७, २१६, २५६
असरसेन वयरसेन चरित्र १७८

अमृतध्वनि ५२१
अरहन्नक प्रबंध २६४
अरहन्ना चौपई ४००
अरहन्नकरास ४३
अरहन्ना संञ्झाय ३५
अर्जुनमाली संञ्झाय ७४
अर्जुनमाली चौपइ ४५९
अर्थबावनी जोधपुर बखानी २५६
अर्बुद ऋषभ स्तव १९५
अर्बुदाचल बृहत् स्तव २६५
अर्बुदाचल चौपाई ४८५
अवंतीसुकुमार चौढालिपु ८७
अवंतीसुकुमाल स्वाध्याय १६९
अवंतीसुकुमाल चौढालिपु ४१७
अशोकचंद्र रोहिणी रास १८९
अष्टपद सलोको ४७३
अष्टप्रकारी पूजा ५१, १९९
अष्टमी स्तव ७८
अष्टापद स्तव २१९
अष्टापदसमेत शिखर स्तवन ४८०
अष्टाक्षिका कथा ४८७
आकाशपंचमी कथा १९६
आगमविलास २४९
आगमसार २३०
आगमस्तव २६१
आचारप्रदीप ३४३
आठयोग दृष्टिविचार संञ्झाय
नो बालावबोध १९०
आठ रुचि संञ्झाय २३३
आत्मद्वादशी २२१
आंतरानुस्तवन २१२
आत्मशिक्षा स्वाध्याय २३७
आत्मावलोकन २२४
आदित्यवारकथा ३३३, ५३३
आदिनाथ गीत ३८५
आदिनाथ चौपई ७२
आदिनाथ बृहद् स्तवनगाथा ७०
आदिनाथ बेलि २५१
आदिनाथ सलोको ४७३
आदिपुराण १६, २६, १०५
आदिपुराण टीका २४५
आदिनाथ पूजा २८
आदिनाथ के पंचमंगल ३५
आदिकुमार चौपई १९५, ३६५
अध्यात्म बावनी ३१०
आनंदकाव्यमहोदधि मौक्तिक १८९
आनंदघन बहुत्तरी ४५
आनंदघन २२ स्तवन बाला० १९०
आनंदकाव्य महोदधि १२३
आरामनंदन पद्मावती चौपई २१६
आरामशोभा चौपई २१६
आबूराज स्तवन ३०४
आषाढ़भूतिरास १९४, ३६५
आहारदोषछत्तीसी १६५
२१ प्रकारी पूजा १९९
११ अंगजी स्वाध्याय ४६३
इन्द्रभानुप्रिया रत्नसुंदरी
सती चौपई ५१७
इलापुत्र चौपई २१६, २१७
इलाचीकुमार चौपई अथवा
रास १९३
इरियावही मिथ्या दुष्कृत
बालावबोध ४००
इषुकारसिद्ध चौपई ११३, ११४
उत्तमकुमार चौपई २०४
उत्तमकुमार रास ४३७, ४६२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्तमचरित्र कुमार रास १७०
उत्तरपुराण १०५, १०८, १०९
उत्तराध्ययन सूत्रबाला ३६२
उत्तराध्ययनजीत ३९५
उत्तराध्ययन ३६ संज्झाय ५९
उत्तराध्ययनगीत १३६
उत्तराध्ययन टीका ४२
उत्तराध्ययन स्वाध्याय ५४४
उदयपुर गजल ११०, १११
उदररासो ४००
उद्यमकर्मसंवाद ९१
उपदेश चिंतामणि १९४
उपदेश छत्तीसी १६३
उपदेशदोहाशतक ५४९
उपदेश बत्तीसी ३५, ३८९
उपदेशबावनी ८०, ८१
उपदेशशतक १५
उपदेशमाला बाला ४१३, ४९४
४९५, ५१९
उपदेशरत्नाकर ३८
उपदेश रत्नमाला २२४
उपदेशसिद्धांतरत्नमाला २४४
उपधान विधिस्तवन ४६
उपधान(लघु)स्तवन ४६७
उपमितिभव प्रपंचारास १६९
एकादशी चौपई ६९
एकादशी स्तवन ७८
एकीभाव स्तोत्र १३३
एकादशांगस्थिरीकरण संज्झाय
२६८
एकीभाव स्तोत्र २५०, ५४८
एलाचरित्र ३८८
ऐतिहासिक काव्यसंचय ५३६
ऐतिहासिक जैन काव्यसंग्रह ७०
१११, ११६, १६६,
२३०, २६१, ५२६
ऐतिहासिक गुर्जर काव्य संचय
२०६
ऐतिहासिक रास संग्रह ७०. ८६
२२७, ४८६
ऐतिहासिक संज्झायमाला ३०५
जैन ऐतिहासिक गुर्जर रास
संग्रह ४५५
ओसवाल रास ४११
ऋषभ जिनस्तव ७८, २१२
ऋषभदत्त चौपई ३८७
ऋषभदत्त रूपवती चौपाई ३०
३००
ऋषभस्तव १७४
ऋषभदेव स्तवन १३५, ४४१
ऋषभपंचाशिका बालावबोध १४२
ऋषिदत्ता चौपई २९५
ऋषिदत्ता रास १७१
कक्काबत्तीसी २६, ३२३
कड़खो २७७
कथाकोश १८१
कथवन्नारास १३६, २२५
कयवन्ना चौपई १९८
कर्पूरविजय निर्वाण रास ५१९
कर्मचौपइ ९१
कर्मबत्तीसी २५
कर्मविपाक ४९०
कर्मसंज्झाय २१७
कर्मस्तवन रत्न १४१
करणीछंद ३८९
कल्पकिरणावली १२६

कल्पप्रकाश ५१८
कल्पसूत्र ११९, ४१७
कल्पसूत्र बालावबोध १०३, २२९, ३८६
कल्पसूत्रांतर व्रत चौदह स्वप्न का विवरण ४००
कलावती चौपई ३८४, ४१७
कल्याण मंदिर ध्रुपद ४४
कल्याणक स्तव २१९
कल्याणमंदिर स्तोत्र ४११
कल्याणसागरसूरिरास २००, २०१
कवि प्रमोदरस ३५६
कवित्त बावनी १३५
कवि विनोद ३५५
कान्ह कठियारा रास ३६५
काल ज्ञानप्रबंध ४२८
काव्यप्रकाश ९१
कीर्तिधर सुकोशल चौढालिया ४१
कीर्तिरत्नसूरिछंद ५२१
कृष्ण रुक्मिणी बेलि भाषा टीका ४२६
कुंडलिया बावनी ३८९
कुमतिनिवारणा हुंडी स्तवन ३७०
कुमतिरास या प्रतिमास्थापन गीत ३०७
कुमति नो रास ४५३
कुलध्वज चौपई ४१, ७०, ४५९
कुलध्पजकुमाररास ६१, ३९७
कुलपाक आदिस्तवन ४४
कुशलसूरि गीत ९१
कुसुमश्री रास १२२, १६५
केशवबावनी ९५
केशी परदेशी संबंध २०४
कौतुक पचीसी ८७, ८९
खंभात तीर्थमाला ३४५
खापराचोर चौपइ ३१, ४४७
खिमऋषि पारणां १०७
खुमाण रास २४७
खेमाहडालिया नो रास ४२३
गजकुमार संज्झाय ७४
गजभावना ३४२
गजसिंह कुमाररास १२२
गजसिंह राजारास ५०४
गजसुकुमार चौपई ३०२
गजसुकुमाल संज्झाय २३३
गणितसार ४१
गिरनार स्तुति २३३
गीतगोविंदादर्श ४१७
गुणकरंडगुणावली रास १७१
गुणकरंडजुणावली चौपई ६५, २२२
गुणजिनरास ४९५
गुणठाणामीत ३४९
गुणमाला चौपई ११४, ११५
गुणमंजरी वरदत्त चौपाई ६४
गुणवर्मीरास २००, २०१
गुणसुंदरी चौपइ ९३
गुणस्थान स्वाध्याय २१७
गुणस्थानक वीरस्तवन ४६७
गुणावली ११७
गुणावली चौपइ ३१, ४४१
गुणावली कुणकरंडरास ११६
गुरुगुण छत्रीसी २३२, २३३
गुरुपूजा ५५१
गुरुरास १८२
गुरुशिष्य छत्तीसी २५६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुरुस्तुति-गुरुवाणी ३३९
गोमट्टसार भाषाटीका ५४९
गौडपिंगल ९१
गौडी छंद ३८९
गौडीपास स्तवन ४०८
गौडीपार्श्व स्तव ३८९, ३९०
गौडीपार्श्वनाथ छंद ७८, ७९
गौडी पार्म्वनाथ स्तवन १४४
गौडी पार्श्वनाथ संबंध ५२१
गौडी प्रभुगीत ८६, ५१३
गौतम स्वामी रास ४१७, ४९७
गौतम स्वामी स्वाध्याय १२२
चंदनबाला चौपई ११९
चंदनबाला संज्झाय २७१
चंदनमलयागिरि १६३
चंदनमलयागिरि चौपई ९८, १०४
१२४, १२५
चंदनमलयागिरि चौपई ५२७
चंदनमलयागिरि रास २९, ३८०
चंदराधा चोपई ४३५
चंदराजा रास २१०
चंदरामा रास अथवा चन्द्रचरित्र
३७६, ४५८
चंपक चौपई ३८३
चंपक रास २३६
चक्रवर्ति विभूति वर्णन २४२
चतुर्दशी चौपई २०२
चतुर्विध संघनाम माला १३६
चतुर्विशति छप्पय ११८
चतुर्विशति जिनपूजा ४०३
चतुर्विंशति जिनस्तवन सवैया ४७५
चतुर्विंशति तीर्थंकर पूजा २८
चतुर्विशति स्तुति ८३
चन्द्रकेवली रास १८९
चन्द्रप्रभ विनती ४६०
चन्द्रलेखा चौपई अथवा रास ३४४
चन्द्रलेखा सती रास ३७०
चन्द्रहंस कथा २०२, ५४२
चन्द्रोदय कथा ३१
चरखा चौपई २६, २७
चाणक्यनीति टब्बा ४४७
चार कषायचरित्र विनती ५७
चार मित्रों की कथा २६, २८
चिंतामणि गीत ३८५
चिंतामणि पार्श्वनाथ स्तवन १७४
चित्रबंध दोहा १८१
चित्रसंभूतिचौटालिउ ५४६
चित्रसंभूतिसंधि २६४
चित्रसंभूतिसंज्झाय १७७
चित्रसेन पद्मिनी चौपई २२६
चित्रसेन पद्मावती चौपई ४११
चित्रसेन पद्मावती रास ५४३
चित्तौड़ गज़ल ११०
चिद्विलास २२४
चेतनकर्मचरित्र ३२०
चेतन गीत ८३, ८४
चेतनगीत लूहरि २७७
चेतन लोरी ८३
चेतन सुमतिसंज्झाय ३२३
चेतन हिंडोलना गीत ३२३
चैत्यपरिपाटी ३५०
चैत्रीपूर्णिमा स्तवन २१७
चौढालियो ४५२
१४ गुणस्थानक भास ३४४
१४ स्वप्नधवल ४६४
चौबीस अतिशय नो छंद २००

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चौबीस एकादशी प्रबंध ३४
चौबीस जिननमस्कार ३६१, २९४
चौबीस जिनबोल ३२३
चौबीस जिनभास ४७०
चौबीस जिनसवैया १४३, ५२१
चौबीस जिनस्तव ११५
चौबीस जिनस्तव अथवा चौबीसी ३५४
चौबीस जिन नु स्तवन २९०
चौबीस जिनस्तुति ५३५
चौबीस जिनस्तोत्र १३९
चौबीस जिनस्तवन १३६
चौबीस ठाणा चौपई ४५२
चौवीस तीर्थङ्कर पूजा २६
चौबीस तीर्थङ्कर स्तुति २६
चौबीस दण्डक ८३
चौबीस दण्डक भाषा २४५
चौबीस दण्डक विचार बालावबोध २३४
चौबीस महाराज पूजा १०८
चौवीसी ११८, १८५, २६२, २६५ २७०, ३०६, ३३१, ३८८ ३९९, ४१०, ४३३, ४४३ ४५१, ४६१, ४६३, ४९५ ५०७, ५१३, ५१८, ५३८
चौबीसी चौढालियु २७६
चौवीसी चौपइ ५४४
चौबीसी अथवा चतुर्विंशति जिनभास २०३
चौबीसी जिनस्तवन ३६७
चौबीसी हीराबंध बत्रीसी ७८
चौवोली चौपइ ८७
चौमासी देववंदन ३९३
६ आरा चौपइ ४२१
६ आवश्यक स्तवन ४६७
६ कर्मग्रंथ बालावबोध १७८
छंदमालिका ५५२
छंद रत्नावली १३०, १३१, ५४२
छप्पय बावनी ४२६, ३८९
जखड़ी ३३९, ३१२, ३१३
जगडु प्रबंध चौपइ ९९
जंबवती चौपइ ५३०
जंबूकुमार रास १२०, १२७ १२८, ४४३
जंबू चौपइ ५०, ५२१
जंबू प्रज्ञप्ति बालावबोध १७८
जंबूरास २८८, १८८, २५३
जंबूस्वामीचरित १०८
जंबूस्वामी चौढालियु २२९
जंबूस्वामी रास ५०, ४९२, १७२, ३८०
जंबूस्वामी स्वाध्याय १२१
जयसेनकुमार चौपइ ११७
जयंती संधि ३१
जयरत्नसूरि भास ५७
जयसेनकुमार प्रबंध ३०३
जयसेनराजा चौपइ ५१६
जसराज बावनी १६७
जसवंत विलास ४९८
जिनकुशलसूरि छंद ४२६
जिनगीत २६
जिनचंदसूरि कवित्त ५२१
जिनचंदसूरि छंद ११०
जिनदत्तचरित ४८६, ३४६, ४८७
जिनदत्तसूरि छंद ३८९
जिनजन्म महोत्सव ४६०

जिनजी की रसोई २६, २८
जिनपंचकल्याणक स्तव ६६
जिनपालित जिनरक्षित रास ३००
जिनप्रतिमा दृढ़करण
हुंडीराश १६५
जिनपूजाविधि स्तवन १८८
जिनमत खिचरी ४८६, ४८७
जिनमालिका ५२१
जिनरत्नसूरि निर्वाण
रास ७०, ७१
जिनरतनसूरि गीतानि ११६, ७०
९६ जिनवर स्तवन १४४
जिनवाणी संग्रह २५०
जिनसुख सूरि गीतम् ५२६
जिनसुखसूरि मजलस ४११
जिनस्तवनो ५१६
जिनहर्ष ग्रंथावली १६७, १६३
जिनेन्द्र भक्तिप्रकाश २५८
जिनेन्द्रस्तवनादि काव्यसंदोह ५२
जिनेन्द्रस्तुति ३१२, ३४०
जीवचतुर्भेदादि बत्तीसी २४२
जीवदया रास २७३
जीवधर चरित १८, २४५
जीवलूहरि २७७
जीवविचार प्रकरण ४६
जीवविचार बालावबोध १७८
जीवविचारस्तवन ४९४, ५१९
जीवविचार भाषा ३२२
जैनकथारत्नकोश ५५
जैनचौबीसी ३१४, ३१५
जैन गुर्जर कवियो १९, ७७
जैन गुर्जर साहित्यरत्न १४१
जैनपदावली १३१, १३२
जैनयती गुणवर्णन १११
जैनरत्नसंग्रह ७५
जैनराससंग्रह २७३, ७२, ७३
जैनशतक ३३७
जैन श्वेताम्बर हेरल्ड ३६१
जैन संज्झायमाला ५६
जैन संज्झाय संग्रह ४१९, २११
जैन सत्यप्रकाश ४०२, १६७
जैन सार बावनी ३८९
जैसलमेर पार्श्व बृहत्स्तवन १३६
जैसलमेर स्तवन ३५
जोधपुर वर्णन गजल ५४८
जोबन अस्थिर सज्झाय ५७
ज्योतिष सार ८०
ज्ञाता धर्म ४२
ज्ञाता सूत्र १९ अध्ययन २९५
ज्ञाता सूत्र टव्वा ३८६
ज्ञाता सूत्र स्वाध्याय १६६
ज्ञानकला चौपई ५२१
ज्ञानगीता ४९२
ज्ञान चिंतामणि ३४८
ज्ञान छंद चालीसी ३२३
ज्ञान दर्पण २२४
ज्ञान द्विपंचाशिका अथवा
ज्ञान बावनी ५४०
ज्ञान निर्णय बावनी ३२३
ज्ञान पंचमी २०४
ज्ञान पचीसी व्रतोद्यापन ५३४
ज्ञान रस ३५७
ज्ञान समुद्र १८१
ज्ञान सुखड़ी ५०९
ज्ञानार्णव २३०, ४२२
ज्ञानानंद श्रावकाचार १३०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

झाझरिया मुनि संज्झाय ३२८, ५४४
ड़ोरी का गीत २६८
ठंठण मुनि संज्झाय २३२, २३३
ठंठण मुनि ५६
ढुंढक मतोत्पत्तिरास ४३३
णमोकार सिद्धि २६
णमोकार रास ८३
तीर्थमाला १८९, ५०१
तीर्थमाला स्तवन ५३७
तीन चौबीसी चौपइ ४९८
२३ पदवी स्वाध्याय ६३
तेजपाल रास ४१३
तेजसार राजर्षि रास २८२
त्रिभुवन कुमार रास ४७
त्रिभुवन चरित्र ४८
त्रिभुवन दीपक प्रवन्ध २५४
त्रिलोक दर्पण कथा १०५, ०६
त्रिलोक सार १०५
त्रिषष्टि शलाका पुरुष विचार स्तवन ४९४
त्रेपन क्रियाकोश ८२, ८३, २४५
त्रैलोक्य दीपक काव्य ९४
थावच्या कुमार चौढालियु ४१८
थावच्या मुनि सज्झाय २०९, २११
थावच्या मुनि संधि ५०४
थावच्या सुकोशल चौपई ४००
दंडक स्तवन ५२
दयादीपिका चौपई २५२
दरसन छत्तीसी २४२
दशमत स्तव चौबीसी सज्झाय ३७०
दशवैकालिक ७१
दशवैकालिक गीत ७०, १३६
दशवैकालिक नादश अध्ययन नीदश संज्झायों ४९३
दश वैकालिक सज्झाय ४५९
दश वैकालिक सूत्र १० अध्ययन गीत १६६
दश श्रावक गीत १३६
दश स्थान चौबीसी २५१
दशार्णभद्र चौपई २५६
दशार्णभद्र चौढालियु ८९, ९०
दशार्णभद्र की चौढालियो ९८
दशाश्रुत स्कंध बालावबोध १६
दर्शनाष्टांग विणापहार स्तोत्र भाषा ४६०
दस्तूर मालिका ३०९
द्रव्य प्रकाश भाषा २३०, २३१
द्रव्य संग्रह पद्मानुवाद भाषा ५४७
द्रव्य संग्रह बालावबोध ४०३, ५४०
दाई गीत २६८
दान छगीसी ३९४
दान दीपिका २१९
दामन्नक चौपई १८४, २०२
दिग्पट चौरासी बोल १२, ५४९
दिलाराम विलास २२१
दृष्टांत शतक (सं०) २१२
दीपमालिका कला वाला० १७३
दीवाली कल्पसूत्र ५१८
दुर्जनदमन चौपई २०२
दुरियर स्तोत्र बाला० ३८९
दुरियर स्तोत्र टब्बा ४११
श्रीमद् देवचंद (३ भाग) २३०
देवधर्म परीक्षा १२
देवराज बच्छराज चौपई ६९

देववंदन माला १८९
देववंदन माला और चैत्य
सज्झाय भाग ३ २१८
देवानन्दाभ्युदय (सं०) ३६८
देवीदास विलास (अप्रकाशित)
२४२
देवेन्द्रकीर्ति को जकड़ी २७७
दोहा पच्चीसी १५, २६७
दोहा बावनी अथवा
मातृका बावनी १६६
दोहा शतक १५
धनदत्त रास ३५०
धन्ना अणगार स्वाध्याय
अथवा ढालिया १९४
धन्ना की ढाल ९८
धन्ना चौपई ७०, १४४, ४५७
धन्ना माता संवाद ५०५
धन्ना रास ११२, १२२, २१४
धन्ना ऋषि चौपई ३४६
धन्ना शालिभद्र चौपई
३९४, १२८, ३९७
धन्य कुमार चरित १०८, ०९
धन्य कुमार चरित बाला
अथवा दान कल्पद्रुम बाला १९९
धमन्नक रास ५६
धर्मदत्त चौपई ३७
धर्मदत्त धर्मवती चौपई २१३
धर्मदत्त ऋषि रास ४१३
धर्मनाथ स्तवन ४६९
धर्म पचीसी २५०
धर्म परीक्षा ३४७
धर्म परीक्षा भाषा २१७
धर्म बावनी २५९
धर्मबुद्धि चौपई ९३
धर्मबुद्धि पापबुद्धि चौपई
४४७, २९५
धर्मबुद्धि पापबुद्धि रास
अथवा कामघट रास २८२
धर्मबुद्धि मंत्री अने पापबुद्धि
राजानो रास ५५
धर्मरासो २५
धर्मविलास २४९
धर्म सरोवर १५, १८१
धर्मसार ४९८, ४९९
धर्मसहेली ३४६
धर्मसिंह बावनी २५५
धर्मसेन चौपई ३७९
धम्मिल रास १९२
ध्यानदीपिका चतुष्पदी २३१
ध्यानमाला अथवा
अनुभव लीला २७९
ध्यानामृत रास ४६४, २९१
धूर्ताख्यान प्रबन्ध ४६
ध्वजभुजंग कुमार चौपई ४३९
नंद बत्तीसी २७२
नंदराम पच्चीसी २६३
नंद बहुत्तरी अथवा
विरोचंद-मेहतानोवार्त्ता १६४
नंदिषेण चौपई ३९०
नंदिषेण रास अथवा चौपई १९४
नंदीश्वर पूजा २७, २८
नमस्कार स्वाध्याय २८०
नर्मदासुंदरी चौपई ३३५, ३३६
नर्मदासुंदरी रास ३७२, ३७३
नयचक्र वचनिका ५५१
नयचक्र भाषाटीका ५४९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नयचक्र सार २३२, २३३
नयविचार रास ३६१
नरभव दशदृष्टांत स्वाध्याय १८७
नरसिंह मेहतानुं मामेरु ३०५
नलदमयंती चौपई १९८
नवकार बत्तीसी १३५
नवकार रास अथवा
राजसिंह राजवती रास ११९
नवकार रास २५५
नवकार स्तवन २५२
नवतत्व भाषा २७३
नवतत्व भाषाटीका ४११
नवतत्व चौपई ४५४
नवतत्व बालावबोध २८९
नवतत्व विचारस्तवन ४९४
नवतत्वप्रकरण बालावबोध ३६०
नवतत्व रास ३५८
नवतत्व चौपई ३२३
नवपद रास ३७२
नवलखी ९३
नववाड सज्झाय २८६
नववाड ब्रह्मचर्य ५०
नववाडी संज्झाय १६५
नागश्री कथा ८४
नाड़ी परीक्षा ४०६
न्यायसागर निर्वाणरास
२९७, २८४
नारी ने सिखामण संज्झाय ५७
निगोद विचार गीत १०२
निदानी सज्झाय ९०
निर्दोष सप्तमी व्रत कथा १९६
निर्वाण मंगल अढाई द्वीप ४८६
निर्वाण मंगल ४८७
निर्वाण काण्ड भाषा ८३
निसस्याष्टमी व्रत कथा १९७
निसाणी महाराज अजित सिंह
४४७
नेमजी की लूहरि ३११, २६८
नेम बत्तीसी ५३६
नेमिजी रेखता ४७५
नेमचरित सवैया २११
नेमनाथ शलोको ५५
नेमनाथ स्तवन २१२
✓नेमनाथ राजिमती बारमास ५६
✓नेम राजीमती बारमास २१२
✓नेम राजीमती बारमास सवैया
१६७
✓नेम राजुल ना नवभव सज्झाय
५२०
✓नेम राजुल बारमास २३७
✓नेम राजुल बत्तीसी १९७
नेमिकुमार धमाल ७७
नेमिकुमार रास २९९
नेमिचन्द्रिका १९, ४५, ४६,
१७५, ३५२
नेमिचरित २०
नेमि जिम शलोको ३७२
नेमि नवरसो ४११
नेमिनाथ चरित्र २०, २६, २८, २९
नेमिनाथ चौपई ६७
नेमिनाथ चरित्र बालावबोध ४१३
नेमिजी व्याहलो ४४९
नेमिनाथ मंगल ४७७
नेमिजी का मंगल ४८७, २०
नेमिनाथ का दशभव वर्णन ५३५
नेमिनाथ सज्झाय ५४५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नेमिनाथ जी का सिलोका ९८
नेमिनाथ फाग ४००, ४६१
नेमिनाथ बारमासा २६५, ३२३
नेमिनाथ भ्रमरगीता ४६८
नेमिनाथ रास ६७, ३३३, ३३४
नेमिनाथ स्तव ७४
नेमिनाथ सलोको ४७३
नेमि बारमास २८०, १०७, १६७
नेमि ब्याह २०
नेमि राजीमती जखडी ५५१
नेमि राजीमती रास ६६, ४५७
नेमि राजीमती सज्झाय २८८
नेमि राजुल बारहमासा ४३१, ४६४, ४७५, २१, ९६, ३५३
नेमि राजुल संवाद ३९
नेमि राजुल सिलोको ९४
नेमिसुर राजिमती की लूहरि २७७
नेमि हिंडोलना ३२३
नेमीश्वर जयमाल ५४१
नेमीश्वर रास २७७, ४५७, ३, १९, २०, २३
नेमीश्वर राजमती को व्याहुलो २६८, ३११,
नेमीश्वर सवैया ४५७
नौकाबंध ४७५
पंच कल्याणकाभिध जिनस्तवन ४३८
पंचकुमार चरित्र (सं०) ४२५
पंचखाण स्तव ४०४, ४०६
पंचदण्ड चौपई ४९८
पंच परमेष्ठि नवकार सारबेलि ५५२
पंच प्रतिक्रमण सूत्र ४५५
पंच महाव्रत सज्झाय ७६,७७,१०६
पंचमास चतुर्दशी व्रतोद्यापन ५३४
पंचमी चौपई ६५
पंचमी स्तवन ५७, ५८
पंचमेरु पूजा २७, २८, ४८७, ३४२
पंचविंशति का १३०, १३१
पंचविंशति हिन्दीभाषा टीका ३०१
पंच संधि व्याकरण बाला० ४००
पंच समवाय स्तवन ४६७
पंचाख्यान चौपई अथवा कर्मरेखा भाविनी चरित्र २७२
पंचास्तिकाय १३३
पंचास्तिकाय पद्यानुवाद ५४७
पंचास्तिकाय टीका ५४९
पंचेन्द्रिय संवाद ३२१
पट्टावली सज्झाय ४६८
पंदरमी कला विद्या रास ४९१
पदसंग्रह ८३, ३३९
पद्मनन्दि पंचविंशतिका भाषा १८२
पद्मपुराण १६, १०८, १०९, ४१७
पद्मपुराण भाषा टीका २४५
पद्मप्रभ स्तवन ४००
पद्मारथ चौपई ५१४
पद्मावती नी विनती ४६०
पद्मिनी चरित्र अथवा गोराबादल चौपई ४४०
पन्नवणा अल्पा बहुत ९८ बोल भाषा ३२३
परदेशी राजा रास १९४
परमात्म प्रकाश २२४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परमात्म प्रकाश चौपई २५२
परमात्म प्रकाश भाषा ५४९
परमात्म प्रकाश भाषा टीका २४१
परमानन्द स्तोत्र भाषा २४२
परस्मी त्याग सज्झाय ५७
प्रज्ञापना सूत्र बालावबोध १७८
प्रतिक्रमण टब्बा ३८६
प्रतिमा शतक ३२८
प्रबोध चिंतामणि २५४, ५२१
प्रभंजना सज्झाय २३३
प्रभात जयमाल ४७५
प्रभास स्तवन ४८१
प्रवचन सार १८१
प्रवचनसार भाषा टीका ५४९
प्रवचनसार पद्यानुवाद ५४९
प्रश्नोत्तर श्रावकाचार ३१४
पाक्षिक क्षामणा बालावबोध १९०
पाक्षिक सूत्र बालावबोध ५१८
पाँच इन्द्रिय संवाद ३०७
पांचम चौपई २२२
पाटण चैत्य परिपाटी स्तवन ५४२
पांडव चरित्र ४४६
पांडव चरित्र रास ७०, ७२ ३६३
पांडव चौपई ४४७
पांडव पुराण ३१४, ५५१
पार्श्व जिनस्तवन १८७
पार्श्वनाथ चौपई ४३५
पार्श्वनाथ नो छंद ४३६
पार्श्व छंद १३६
पार्श्वनाथ कथा ३३३
पार्श्वनाथचरित्र बालावबोध ३२४
पार्श्वनाथ का चरित्र ४८७
पार्श्वनाथ नो छंद ५०८
पार्श्वनाथ छंद ३१, ३२६
पार्श्वनाथ नाममाला ३६९
पार्श्वनाथ प्रबंध १८३
पार्श्वनाथ स्तवन ७०, १०५, २५२
पार्श्वनाथजी का सालेहा २६, २८
पार्श्वनाथ स्तुति ३७, ३४०
पार्श्वपुराण १८, २०, २२, ३४१
पार्श्वस्तवन ३५, ३७, ५७
पार्श्वस्तव २९४
पारसति नाममाला ९१
प्राचीन गुर्जरकाव्य १०२
प्राचीन छंद संग्रह ४३६
प्राचीन तीर्थमाला संग्रह ५०२
प्राचीन तीर्थसज्झाय १८९
प्राचीन फागु संग्रह ४९२
प्राचीन मध्यकालीन बारहमासा ३५३
प्राचीन मध्यकालीन बारहमासा संग्रह १०७
प्राचीन स्तवन रत्न संग्रह ३५५ ४३४, १८७
प्राचीन स्तवन सज्झादि संग्रह ७५
प्राचीन स्तवन संग्रह ७६
प्रास्ताविक कुंडलिया बावनी २५९
पिंडदोष विचार सज्झाय २८४
पृथ्वीचन्द्र गुणसागर चरित्र बालावबोध ४४५
प्रीतंकर चरित्र १८०
प्रीतंकर चौपई २७७
पुकार पच्चीसी २४२
पुंडरिक कुंडरिक संधि ३९७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुण्यदत्त सुभद्रा चौपई ३०१
पुण्यपाल गुणसुंदरी रास ३७५
पुण्यपाल श्रेष्ठि चौपई १०५
पुण्यप्रकाश (अराधना) नुं स्तवन ४६७
पुण्यसार कथा २९६
पुण्यसार चौ० २८७
पुण्यसेन चौपई २२२
पुण्यास्रव कथाकोष ८३, ८५
पुण्यास्रव कथाकोष भाषाटीका २४५
पुष्पदंत पूजा ३३३, ३३४
पूजाबत्तीसी ३५
प्रेमविलास रास १८६
फूलमाल पच्चीसी ४७५
बंकचूल रास १०२
बंकचोर की कथा २२, २६३
बंगडी और देवराज बच्छराज चौपई ४१
बंगला देश की गज़ल २७३
बचनकोश ३१४
बनारसी विलास १३३
बंभडवाला महावीर स्तवन ४८९
बलभद्रमुनि वैराग्य संज्झाय ५७
बलिभद्र गीत ३८५
बसंत पूजा २८
ब्रतकथा कोष १०८
ब्रह्मचर्य अथवा शियल नी नववाड सज्झाय ५३
ब्रह्म बावनी २७४
ब्रह्मविलास ३१७
बाईस अभक्ष निवारण सज्झाय ३८६
बारे आरा नी चौपई ५०८
बार भावना नी १२ सज्झाय अथवा भावना बेली सज्झाय १३९
बारमास २१६
बारव्रत ग्रहण (टीप) रास १८८
बारव्रत रास ५३
बारव्रत विचार २९०
बारव्रत सज्झाय २०५
बारह भावना ३४०
बावनगजा गीत ३८५
बावनी ५११
बाहुबल स्वाध्याय ४०८
बाहुबल सज्झाय २९३
बिहारी सतसई टीका ३६७
बीकानेर गज़ल ४८
बीतराग पच्चीसी २४२
बीरभाण उदयभाण रास ९५
बीर स्तवन २१२
बीरस्वामी रास २२२
बीस तीर्थङ्करों की जयमाल २६, २८
२० विहरमान स्तवन ४१४
२० विहरमान जिनस्तव १७१
२० विहरमान जिन गीतानि ५९, ६१
बीस स्थानक रास १७०
बीशी ९९, ४३४
बुद्धिविजय १६६
बुधजन सतसई १५
बुद्धि बावनी २४२
बुद्धिल विमल सती रास ३२८
बुद्धिसेन चौपई २०७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बे लघु रास कृतियों १९८
बोल सज्झाय ३५
भक्तामर टब्बा ४११
भक्तामर बालावबोध ४२१
भक्तामर भाषा कथा ४७५
भक्तामर भाषा ४७५
भक्तामर स्तोत्र पद्यानुवाद ५४९
भक्तामर स्तोत्र रागमाला २३५
भक्तामर सवैया ४४
भगवती सूत्र बालावबोध २९१
भगवती सूत्र सञ्झाय ४६८
भर्तृहरि शतकमय बालावबोध ४११, ३०१
भर्तृहरि शतकमय भाषा टीका ४२६
भर्तृहरि मय भाषा अथवा आनन्दभूषण २६७
भद्रनंद संधि ३९४
भद्रबाहु चरित ५४२, १२९, ८४, ८३
भरत बाहुवलि छंद ४२६
भरत बाहुबलि नो शलोको ५६
भवदत्त भविष्यदत्त चौपई २१५
भवभावना बालावबोध ३६०
भांगकरक सञ्झाय ५७
भामा पारसनाथ नुं स्तवन ५७
भारतीय विद्या १११
भावना विलास ४२६
भाव पच्चीसी ३५
भावरत्न सूरि भास ५७
भावी नी कर्मरेख रास ४९१
भाषा सारथ ११२
भीड़ भंजन स्तवन ५७
भीमजी चौपई ८६, ८७
भुवनभानु केवली रास अथवा रसलहरी रास ५५
भुवनदीपक बालावबोध ४३३
भुवनानंद चौपई ५२१, ५०६
भूधर शतक १५
भूधर विलास ३३८
भूपाल स्तोत्र भाषा ४६०
भोज चौपई ९१
भोजराज चौपई ९२
मंगलकलश चौपई ३६८
मंगलकलश महामुनि चतुष्पदी ३८३
मंगलकलश रास ४८१
मंगलकलश चौपई अथवा चरित्र १७६, १६४
मंगलकलश दास ५९, २२५
मगसीजी पार्श्व दशभव स्तवन ५२०
मगसीजी पार्श्वनाथ स्तवन ६२
मतानो छंद अथवा ईश्वरीछंद ९१
मत्स्योदर चौपई ५११
मत्स्योदर चौपई १६५
मत्स्योदर दास ४१९
मदनयुद्ध ५४८
मदन कुमार रास १२६
मध्यकालीन बारमासा ५६
मधुबिन्दुक चौपई ३२१
मनक महामुनि सञ्झाय ४३५
मनकरहा रास ३१०
मनराम विलास ३४६
मयणरेहा रास ५४६, ४६४
मरोठ की गजल २२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मलय चरित्र ७८, १८५
मलय सुन्दरी चौपई ४४१
मलय सुन्दरी महाबल रास
अथवा विनोदविलास रास ५४
मल्लीनाथ पंचकल्याणक स्तवन ५११
मल्लिनाथ स्तव ९३
महानिशीथ १९५
महापुराण १६
महाबल मलयसुन्दरी रास १७१
७७
महावीर गीत ५७
महावीर गौतम छंद ४२६
महावीर चौढालिया ६३
महावीर जिन पंचकल्याणक ४०९
महावीर रागमाला २८५
महावीर ७२ वर्षायु
खुलासापत्र ४११
महावीर स्तवन २९३, ५१४
महाभारत १३४
महाराओ श्री गोहडजी
नो जस ६७
महाराव लखयत दुवावैत ९१
महिमती राजा अने
मतिसागर प्रधान रास ५७
महिमाप्रभ सूरि निर्वाण
कल्याणक रास ३३०
मांकड रास ३५२
मांकड भास ७५
मांगीतुंगी गिरिमंडल
पूजा (सं०) ४८६
मांड़क रास ८७, ८८
माणिककुमर की चौपई ४९
माणेकदेवी रास २७३
माताजी की वचनिका १३५
मातृका बावनी ९५
मानबावनी ३५७
मानतुंग मानवतीरास ३७५, २९९
मानतुंग मानवती चौपई ३१, ३२
माहात्म्य गर्भित श्री नेमिजिन
स्तव ७८
मृगांक लेखा रास १७०, ४८३
मृगापुत्र चौपई अथवा संधि १६५
मृगापुत्र चौपई ३५०
मृगापुत्र सज्झाय ११३
मित्रविलास १२३
मिश्रबन्धु विनोद ४७५
मुच्छभाखण कथा ३५
मुनिपति चौपई २५२
मुनिपति रास ५२, ११७
मुहपत्ती पडिलेहणविचार
स्तवन ४३०
मूर्ख नी सज्झाय २७१
मूता नेणसी की ख्यात २७५
मूलदेव चौपई ४०४, ०६
मुहूर्त्त मणिमाला भाषा ४११
मेघकुमार चौढालिया ३५
मेघकुमार चौपई १४३
मेघकुमार सज्झाय ५०५
मेघमुनि सज्झाय ७५
मोटू संज्झायमाला संग्रह
४३५, १९४
मोहविवेक रास २५२
मौन एकादशी देववंदन २१७
मौन एकादशी चौपई ४१
मौन एकादशी स्तव १७५; ४३८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यशोधर चरित १८, २३, १०८, १०९, ४२२, ४५२
यशोधर चौपई २६
यशोधर रास ५४, ३५०
योग चितामणि बालावबोध ३८६
योग रत्नाकर चौपई २६६
योगशास्त्र चौपई ५२१
योगशास्त्रबालावबोध ३१४, ४५२
रसिकप्रिया ५१२
रसिकप्रिया भाषाटीका ९२
रत्नाकर पंचविंशतिस्तव ६९
रत्नचूड़ व्यवहारी रास ६८
रत्नत्रय व्रतकथा ११६
रत्नपचीसी रत्नचूड़ चौपई २०८
रत्नचूड़ रास १७१
रत्नशेखर रत्नवती रास १७२
रत्नसार तेजसार रास १२१
रत्नसार रास १७१, ५०६
रत्नसिंह राजर्षि रास १६९
रतनपाल रास ५३१, ५३२, ५२८, ३७४
रत्नपाल चौपई ३८९, ३९१
रत्नचूड चौपई ३८
रत्नचूड़ मणिचूड़ चौपई ४४१
रत्नहास चौपई ४२६
रत्नरास चौपई ४२५
रत्नहास रास ३६०
रत्नकीर्ति सूरि चौपई ५२५
रत्नसमुच्चय २५५
रत्नसमुच्चय बालावबोध ५४१
रत्नसार कुमार चौपई ४४९
रसमोद शृंगार २२१
रसलहरी ६१
रविव्रत कथा २५, ४६०
रसमंजरी ५११
रहनेमि राजीमती सञ्झाय ४५६
राज (चेतन) बत्तीसी ४२६
राजमती सञ्झाय ९८
राजलगीत ५०५
राजिमती रहनेमि सञ्झाय ५०५
राजविलास ३६७
राजसागरसूरि निर्वाण रास ५५३, २०६
राजसागरसूरि सञ्झाय ४७१
राजसिंह चौपई २४१
राजसिंह कुमार रास ३७८, ३९३
राजसिंह रास अथवा नवकार रास ५३
राजुल पच्चीसी २०, ४७५
राजुल रहनेमि सञ्झाय ४६४
राठोड रतन महेश दसोत्तरी वचनिका ११०
राजकपुर स्तवन ९४
रात्रिभोजन कथा ८३
रात्रिभोजन चौपई ३५, ७०, ७२, ४२५, ५२७
रात्रिभोजन परिहार रास ४०, १७२
रात्रिभोजन संञ्झाय ४५६
राधाकृष्ण बारमास १७६
रामचन्द्र लेख १९४
रामचरित मानस २१
रामविनोद ४०४
रामविनोद सारोद्धार २१५
रामायण चौपई ४५८
रिपुमर्दन रास ४८४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रूपदीपपिंगल १३५, १७९
रूपसेन कुमार रास २३८
रोहा कथा चौपई ४६४
रोहिणी चोटालियु ४५७
रोहिणी चौपई ७२
रोहिणी तप रास ५९
रोहिणी रास ५८, ६६, ७४
लक्ष्मीसागर सूरि निर्वाण रास ४१३
लखपत पिंगल ६७
लखपतमंजरी नाममाला ६७, ९१
लखपत जससिन्धु ९१, ६७
लखपत स्वर्ग प्रतिसमय ९१
लघुक्षेत्र समास बालावबोध २००
लघुसाधु वंदना ८९
लघुमंगल १३२
लब्धिविधान व्रतकथा ८४, ८५
लब्धिविधान कथा ८३
ललितांग रास २१९
लीलावती ३२, ४१७
लीलावती रास ९३, ४४७
लीलावती गणित चौपई ४४७
लीलावती सुमति विलास ५५
लीलाधर रास ५२९
लोकनाल बालावबोध १९०
लोकाशाह नो सलोको ९७
लोद्रवा स्तवन ३५
वनराजर्षि चौपई ९३, ९४
वरदत्त गुणमंजरी रास ६६, ५६
वंदारुवृत्ति २२९
व्रतविधान रासो २२१, २४४
वसुदेव हिन्डी ५६, २८१
वस्तुपाल तेजपाल चौपई ३१, ३३
वस्तुपाल तेजपाल रास ३७१
वंदना २८
वसुदेव रास १७२
वर्द्धमान पुराण १०८
वर्द्धमान जन्ममंगल ५४१
वणिक निधि ५१५
वरकाणा पार्श्वनाथ स्तव ४२६
वछराज रास ५१०
वछराजचरित्र रास २८१
वछराज देवराजचौपई ४६४, ४६५
वज्रनाभि चक्रवर्त्ती की वैराग्य भावना ३४२
वछराज हंसराज चौपई ३५०
वरसिंह कुमार चौपई ३७७
वाग्विलास संग्रह ८९
वाग्विलास कथासंग्रह ८७
वासुपूज्य स्तव २७०
वृद्धिसागर सूरि रास २२७
विक्रम कनकावती रास ७९
विद्याविलास रास ६५
विमलाचल स्तव ६१
विक्रमचरित ९६
विजयसेठ विजयासेठानी सज्झाय ९८
विजयसेठ विजया सती चौपई ४१७
विक्रमादित्य चौपई २१५
विक्रमचरित खापरा चौपई ३१
विमल मेहता नो सलोको ५६
विमलगिरि स्तवन ४४
विद्याविलास चरित्र ३४
विद्याविलास रास १६३, ३८०
विक्रम लीलावती चौपई ३१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विक्रम चौबोली ३०
विवाह पटल भाषा ३०, ४११
विनती २६, २४
विषापहार स्तोत्र २५
विवकविलास १५
विचार छत्तीसी १८४
विजयदेवसूरि निर्वाणरास ४१५
वृहज्जिन वाणीसंग्रह २५०
विशालकीर्ति कोदेहुरो
विजयदेवसूरि निर्वाण २३५
विजयदेवसूरि सञ्झाय ५३६
विद्यासागरसूरि रास २६९
विवेकविलास २४५
विचारसार प्रकरण २३४
विक्रमादित्य रास २९२
विक्रम पंचदंड चौपई ४४७ ४२५
वृद्धिविजय रास ५१८
विक्रम ९०० कन्या चौपई ४४७
विष्णुकुमार मुनि कथा ४७९
विजयप्रभसूरि निर्वाण
स्वाध्याय ४७९
विमलसिद्धि गुरुणी गीतम् ४८६
विजयसिंह सूरि निर्वाण
स्वाध्याय ४८८
विनयचंद मुनि कुसुमांजलि ४६४
विनयसौरभ (संग्रह) ४६८
विक्रमादित्य चरित्र ३६३
विक्रमादित्यसुत विक्रमसेन
चौपई ३६४
बिजयदेव निर्वाण रास ३६९
विमलमंत्रीसर नो सलोको ४७४
विजयाणंदसूरि निर्वाण
सञ्झाय ३२५
वीर वृहत् स्तवन गाथा ७०
वीर जिन स्तवन ६४
वीरचरित १९५
वीर जिनवर निर्वाण
दिवाली २३२
वीर २७ भव स्तव ३९६
वीर विलास फाग ४९१
वीशी ४६३
वैदर्भी चौपई ३१, ३०५, ५२७
वैराग्य छत्तीसी
वैद्यकसार १७९
वैद्यविनोद ४०४
शंखेसरजी नो सलोको २२५,
२२६, ५२
शंखेसर पार्श्व जिनराज गीत ५९
शंखेसर पार्श्वनाथ स्तवन ४९३
२९८, ६०, ३५२
शकुन दीपिका ४४७
शकुनदीपिका चौपई ४४९
शत अष्टोत्तरी ३२१
शत्रुंजय गीत २५५
शत्रुंजय चैत्र परिपाटी स्तव २३३
शत्रुंजय तीर्थमाला उद्धाररास ५५
शत्रुंजय तीर्थमाला ४९७, ४७१
शत्रुंजय मंडनयुगादिदेवस्तव १९०
शत्रुंजय माहात्म्य रास १७१
शत्रुंजय रास ३०३
शत्रुंजय वृहत्सव १०३
शत्रुंजय स्तवन ४७२
शांतिजिन रास ४१३
शांतिजिन वंदन २४२
शांतिजिन स्तवन १८७, २१२
शांतिनाथ चरित्र ५१०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शांतिनाथचरित्र बालावबोध ४३२
शांतिनाथ जयमाल २६
शांतिनाथ पुराण १०८
शांतिनाथ रास १९३
शांतिनाथ स्वाध्याय ४७४
शांतिनाथ स्तबन १७४
शांतिस्तव ७४
शांबप्रद्युम्नरास १९५
शालिभद्र चौढालियु २८९
शालिभद्र धन्नाऋषि सं० ३३२
शालिभद्र सलोको ५६, ५१४
शाश्वत जिनभास ४६९
शाश्वत जिनभुवन स्तव ३५५
शाश्वता अशाश्वता जिन तीर्थमाला ३२६
शिक्षा सत दूहा ५३९
शिवचंद सूरिदास ४४४
शिवरमणी विवाह २०, २६, २७
शिवसिंह सरोज २४८
शिष्य विषेसिखामण आदि संञ्झाय तथा गुरुभास ५७
शील तरंगिणी ३०२
शीलप्रकाश राश २९०
शील रास ११८, २५६
शीलवती रास २८०
शीतलनाथ स्तव २३७
शीतकार के सवैये ९६
शीलपचीसी ७६
शीलवती रास २१६, १७२, ९१
शीलसुन्दरी रास ३९६
शुकराज रास १६६, १९१
शोभनस्तुति बालावबोध ३२६
षट् और पुद्गल परावर्त्त स्वरूप स्तवन ४२, ४३
षट्लेश्या बेलि ४५२
षडावश्यक सञ्झाय २००
श्रावकाचार टब्बा २४५
श्री निर्वाण रास ५२३
श्रीपालचरित्र ५४१, १९५, २४५
श्रीपाल चौपई ४०४, ४०७, ३८९
श्रीपाल मयणासुन्दरी रास ४३१
श्रीपाल रास ११, २९, ५८ ५९, १६८, १९५ ३५१, ३५९, ३५४, ४६९
श्रीपाल विनोद ४७५
श्रीपाल विनोद कथा ४७९
श्रीपाल विनोद सञ्झाय २००
श्री भक्तामर स्तोत्र समस्यारूप श्री वीर जिनस्तवन २५६
श्रीमती रास ३५०
श्रीमद् रायचंद (संकलनग्रंथ) ४१७
श्रीयशकुशल सुगुरु गीतम् ५१६
श्रेणिक चरित १९, २०, २४५
संखेश्वर सलोको २३९
संखेश्वर स्तवन २५२
संघपट्टक भाषाटीका ४२६
संघसह यात्रा ३५
सकला हंस बालावबोध १९०
संबोध पंचाशिका ३१२
संञ्झाय पद संग्रह १४०, ३६२
संयोग बत्तीसी ३५७
सज्जन सन्मित्र १७४
सतसैयावृन्द विनोद ३१३
सत्यविजय निर्वाणरास १४, १७१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सद्भाषितावली १०८
सनत्कुमार चौढालिउ ८९, ९०
३७९
सनतचक्री रास १९५
सन्निपात कालिका टब्बा ४११
सप्तव्यसन वेलि ५५२
सप्तव्यसन सवैया ४६०
सप्तमंत्री गर्भित वीरस्तवन २१७
सभा कुतूहल ९२
समकित नी सज्झाय २००
समकित सित्तरी स्तवन १६६
समयसार नाटक २०, १०६, १३३
समस्याबंध स्तवन १९६
समयसार बालावबोध ४११
समवायांग ४२
समवायांग सूत्रपर हुंडी २५५
सूत्रपर टब्बा २५५
समवशरण विचार गर्भित
स्तवन २५९
समाधितंत्र बालावबोध २९३
समुद्रकलश संवाद ५९
समुद्रबद्ध कवित्त ४११
सम्मेदशिखर विलास २३९
सम्मेतगिरि स्तवन १६४
सम्मेत शिखर स्तवन ३५, ४०४
समोधन लूहरि २७७
सम्यक्त्व कौमुदी १३०, १३१
सम्यक्त्व ६७ बोल स्तव ५३७
सम्यक्त्व विचार गर्भित
महावीर स्तवन २८४
सम्यक्त्व कौमुदी १८१
सम्यक्त्व परीक्षा बालावबोध ४३४
सरधा छत्तीसी ३२३
सर्वज्ञशतक बालावबोध ४०
सवा सौ सीख २६०
सवैया मान बावनी ३५८
सवैया बावनी १३५, ४६४ ४६६
सहस्रफणा पार्श्वनाथ स्तवन ४७०
सहस्रफणा पार्श्वनाथ छंद ५८१
स्वप्नाधिकार ३९४
स्वयंभू स्तोत्र २५०
स्वरूपानंद २२४
स्वरोदय भाषा ४४७
सागरचंद्र सुशीला चौपई ४४९
सागरदत्त रास ५४५
साधुगण की सज्झाय ९८
साधुवंदना ९७
साधुगुण भास ४५१
साधुवंदना १८६, ४५०
सामायिक दोष संज्झाय ७४
सामुद्रिक भाषा ४०४
सारंगधर भाषा ४०६
सार चौबीसी २४५
सास बहू का झगड़ा २४०
स्नात्र पंचाशिका २००
स्नात्र विधि १६१
स्नात्रपूजा पंचासिका
बालावबोध १७३
सितपट चौरासी बोल ५४९
सिद्धपंचासिका बालावबोध ४६०
सिद्ध पूजाष्टक २४५
सिद्धगिरि स्तुति ७५
सिद्धांचल तीर्थ स्तवन ३५
सिद्धान्त शिरोमणि ४९९
सिद्धस्तुति २८
सिंहासनबत्तीसी चौपई ४६४,४९८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सीखबत्तीसी २५६
सीता आलोयणा ८९
सीताचरित २०, २१, २२, २३
३०९, ४०२, ४१७
सीताजी को आलोयणा ९८
सीमंधर सञ्झाय ९०
सीमंधर जिनस्तव बाला० १९०
सीमंधर जिन विज्ञप्ति ३९
सीमंधर विनती १२२
सीमंधर जिनस्तवन ५१३
सीमंधर स्वामी स्तवन २१२
स्त्रीचरित्र रास २५१
सुकमाल चौपई ३५
सुकोशल चौपई १३२
सुकोमल सञ्झाय ३५
सुखसागर गीतम् ५१२
सुगंधदसमी व्रतकथा ११६
सुगुण बत्तीसी ३८९, ३९०
सुगुरु सीष ३४८
सुजस बेलि भास ७५, ३८१
सुजाणसिंह रासो १८२
सुन्दर शृङ्गार रसदीपिका ६७
सुदर्शन चौपई ३५, ३६
सुदर्शन सेठ छप्पय ६५
सुदर्शन सेठ रास १७१, २२२
सुदर्शन श्रेष्ठी रास ५६
सुदर्शन सेठ सञ्झाय ७४
सुदामा चरित्र ३०४
सुप्रतिष्ठ चौपई ३५, ३६
सुबाहु चौढालिया ३०७, ४५३
सुभद्रा चौपई ३८९
सुभद्रारास ३६६
सुभद्रा सती रास ३२८, ३३१
सुमंगलरास मेतार्य चौपई ३५
सुमंगलाचार्य चौपई ४३८
सुमनि-कुमति स्तव ३६०
सुमति-कुमति बारहमासा ३२३
सुमित्रा रास २८३
सूर्ययशा रास ५७
सुरपति कुमार रास ३६५
सुरपाल रास ५०८
सुरसुन्दरी रास ४५
सुरसुन्दरी अमरकुमार रास ६३, १४२
सुरसुन्दरी रास २५६, ४८२
सुसठ चौपई ५११
सुसठ रास १८९, २००
सूड़ा बत्तीसी ३२२
सूक्तमाला १०१
सूर्यपुर चैत्य परिपाटी ४६६
स्थूलिभद्र नवरसों ५०, १९५
स्थूलिभद्र कोशा बारमास १२७, १२८
स्थूलभद्र चौपई ४४६
स्थूलिभद्र चरित्र बाला० ४५७
स्थूलिभद्र सञ्झाय २००
सोलसतवादी ११३, ११४
सोलह स्वप्न ४६०
सौभाग्य पंचमी ७८, ४३८
सौभाग्य विजय निर्वाण रास ४१६, ५३७
हंसरत्न सञ्झाय ५३८
हंसराज वछराज चौपई ४५४
हरिकेशी संधि ५२१
हरिबल चौपई ३००
हरिबल रास १७५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हरिबल मच्छी रास ३२८
हरिबल लछी रास १७०
हरिस ४९५
हरिवंश पुराण १७, १०५, १०८
हरिवंशपुराण टीका २४५
हरिवंश अथवा रस रत्नाकर
हरिवाहन चौपई २०२
हरिवाहन राजा रास ३७४
हरिश्चन्द्र रास १६९
हितोपदेश २४२
हितोपदेश बावनी ३२३, ५४९
हिन्दी भक्तामर ५५०
हीररत्नसूरि भास ५७
हीरविजय सूरि रास ५३२
हेमचन्द्र गणि रास ४५५
हेमव्याकरण भाषाटीका ४११
होलीकथा ५०३

हमारे महत्वपूर्ण प्रकाशन

1.	Studies in Jain Philosophy — Dr. Nathmal Tatia	Rs. 100.00
2.	Jain Temples of Western India — Dr. Harihar Singh	Rs. 200.00
3.	Jain Epistemology — I. C. Shastri	Rs. 150.00
4.	Concept of Panchashila in Indian Thought — Dr. Kamala Jain	Rs. 50.00
5.	Concept of Matter in Jain Philosophy — Dr. J. C. Sikdar	Rs. 150.00
6.	Jaina Theory of Reality — Dr. J. C. Sikdar	Rs. 150.00
7	Jaina Perspective in Philosophy and Religion — Dr. Ramjee Singh	Rs. 100.00
8.	Aspects of Jainology, Vol.1 to 5 (Complete Set)	Rs. 1100.00
9.	An Introduction to Jaina Sadhana — Dr. Sagarmal Jain	Rs. 40.00
10.	जैन साहित्य का बृहद् इतिहास (सात खण्ड) सम्पूर्ण सेट	Rs. 560.00
11.	हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास (दो खण्ड)	Rs. 340.00
12.	जैन प्रतिमा विज्ञान – डॉ० मारुतिनन्दन तिवारी	Rs. 120.00
13.	जैन महापुराण – डॉ० कुमुद गिरि	Rs. 150.00
14.	वज्जालग्ग (हिन्दी अनुवाद सहित) – पं० विश्वनाथ पाठक	Rs. 80.00
15.	धर्म का मर्म – प्रो० सागरमल जैन	Rs. 20.00
16.	प्राकृत हिन्दी कोश – सम्पादक डॉ० के० आर० चन्द्र	Rs. 120.00
17.	स्याद्वाद और सप्तभंगी नय – डॉ० भिखारी राम यादव	Rs. 70.00
18.	जैन धर्म की प्रमुख साध्वियाँ एवं महिलाएँ – डॉ० हीराबाई बोरदिया	Rs. 50.00
19	मध्यकालीन राजस्थान में जैन धर्म – डॉ० (श्रीमती) राजेश जैन	Rs. 160.00
20.	जैन कर्म-सिद्धान्त का उद्‌भव एवं विकास – डॉ० रवीन्द्रनाथ मिश्र	Rs. 100.00
21	महावीर निर्वाणभूमि पावा : एक विमर्श – भगवतीप्रसाद खेतान	Rs. 60.00
22.	गाथासप्तशती (हिन्दी अनुवाद सहित) – पं० विश्वनाथ पाठक	Rs. 60.00
23.	सागर जैन-विद्या भारती भाग १, २ (प्रो० सागरमल जैन के लेखों का संकलन)	Rs. 200.00
24.	मूलाचार का समीक्षात्मक अध्ययन – डॉ० फूलचन्द जैन	Rs. 80.00

पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी - ५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org